



''150वीं महामना मालवीय जयन्ती विशेषांक''



काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अंक 56, भाग 02 वर्ष 2010-11

# Published by The Banaras Hindu University

# $\begin{array}{c} PRAJ\tilde{N}\bar{A}\\ \text{(Journal of the Banaras Hindu University)} \end{array}$

Vol. 56, No. 02 (2010-11)
"150<sup>th</sup> Mahamana Malaviya Jayanti Visheshank"
ISSN 0554-9884

© Banaras Hindu University **December - 2010** 

All correspondence should be addressed to
The Editor PRAJÑĀ
BANARAS HINDU UNIVERSITY
VARANASI - 221 005

Printed at
Jaishree Printing Press
Orderly Bazar, Varanasi

# प्रज्ञा

# परामर्श मण्डल के सदस्य

प्रो० सिद्ध नाथ उपाध्याय

पूर्व निदेशक, प्रौद्योगिकी संस्थान एवं निदेशक, एकेडिमक स्टाफ कालेज

प्रो० सुशीला सिंह

पूर्व प्राचार्या, महिला महाविद्यालय

प्रो० हरिकेश सिंह

शिक्षा संकाय

प्रो० रमेश चन्द्र मिश्र

समाज विज्ञान संकाय

प्रो० शिव राज सिंह निदेशक, कृषि विज्ञान संस्थान

प्रो० सूर्य नाथ पाण्डेय

अंग्रेजी विभाग

प्रो० राणा गोपाल सिंह

नेफ्रोलॉजी विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान

प्रो० रमाशंकर दुबे

विज्ञान संकाय

# सम्पादक मण्डल के सदस्य

प्रो० अलका निगम

अंग्रेजी विभाग

प्रो० रंग नाथ पाठक

हिन्दी विभाग

डॉ० सदाशिव कुमार द्विवेदी

संस्कृत विभाग

प्रो० राघवेन्द्र प्रताप सिंह

राजनीति विज्ञान विभाग

डॉ० विश्वनाथ पाण्डेय

जनसम्पर्क अधिकारी

प्रो० राम सकल यादव

भूगोल विभाग

प्रो० माया शंकर पाण्डेय

अंग्रेजी विभाग

डॉ॰ प्रदीप कुमार मिश्र

रसायन अभियांत्रिक विभाग

श्री हीरा लाल प्रजापति

दृश्य कला विभाग

सम्पादक

प्रो० श्रीनिवास पाण्डेय

हिन्दी विभाग, कला संकाय

# कुलगीत

मधुर मनोहर अतीव सुन्दर, यह सर्वविद्या की राजधानी। यह तीन लोकों से न्यारी काशी। सुज्ञान धर्म और सत्यराशी। बसी है गंगा के रम्य तट पर, यह सर्वविद्या की राजधानी। मधुर०।। नये नहीं हैं ये ईंट पत्थर। है विश्वकर्मा का कार्य सुन्दर। रचे हैं विद्या के भव्य मन्दिर, यह सर्वसृष्टी की राजधानी। मधुर०।। यहाँ की है यह पवित्र शिक्षा। कि सत्य पहले फिर आत्म-रक्षा। बिके हरिश्चन्द्र थे यहीं पर, यह सत्यशिक्षा की राजधानी। मधुर०।। वह वेद ईश्वर की सत्यवानी। बनें जिन्हें पढ़ के ब्रह्मज्ञानी। थे व्यास जी ने रचे यहीं पर, यह ब्रह्म-विद्या की राजधानी। मधुर०। वह मुक्तिपद को दिलानेवाले। सुधर्मपथ पर चलाने वाले। यहीं फले-फूले बुद्ध, शंकर, यह राज-ऋषियों की राजधानी। मधुर०।। स्रम्य धाराएँ वरुणा अस्सी। नहाए जिनमें कबीर तुलसी। भला हो कविता का क्यों न आकर, यह वागविद्या की राजधानी। मधुर०।। विविध कला अर्थशास्त्र गायन। गणित खनिज औषधि रसायन। प्रतीचि-प्राची का मेल सुन्दर, यह विश्वविद्या की राजधानी। मधुर०।। मालवी की देशभक्ति। यह उनका साहस यह उनकी शक्ति। प्रगट हुई है नवीन होकर, यह कर्मवीरों की राजधानी। मधुर०।। मधुर मनोहर अतीव सुन्दर, यह सर्वविद्या की राजधानी।

<sup>-</sup> डॉ० एस. एस. भटनागर

अर्चना दत्ता (मुखोपाध्याय) राष्ट्रपति के विशेष कार्याधिकारी (जन सम्पर्क) Archana Dulla (Mukhopadhyay) OFD (PR) to the President



राष्ट्रपति सचिवालय राष्ट्रपति भवन नई दिल्ली-110004 President's Secretarial Rashtrapati Bhawan New Dethi - 110004



# संदेश

भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील को यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी की 150वीं जयंती समारोह का आयोजन किया जा रहा है तथा इस अवसर पर 'प्रज्ञा' के '150वीं महामना मालवीय जयंती विशेषांक' का प्रकाशन भी किया जा रहा है। उम्मीद है कि विशेषांक में संकलित शोध लेख रोचक तथा ज्ञानवर्द्धक होंगे।

राष्ट्रपति जी इस विशेषांक के सफल प्रकाशन के लिए अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करती हैं।

विशेष कार्य अधिकारी (जन सम्पर्क)

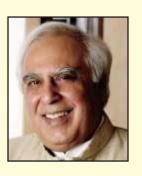
F.3.7

Tel.: 011-23016535 (Direct), 23015321 Extn 4322, Fax 23794498, E-mail - osdad@rb.nic.in

#### कपिल सिब्बल KAPIL SIBAL



मानव संसाधन विकास मंत्री भारत सरकार नई दिल्ली MINISTER OF HUMAN RESOURCE DEVELOPMENT GOVERNMENT OF INDIA NEW DELHI-110 115



संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक पूज्य महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी की 150वीं जयन्ती समारोह के अवसर पर 25 दिसम्बर, 2010 से 25 दिसम्बर, 2011 तक विश्वविद्यालय परिवार द्वारा वर्षपर्यन्त विविध प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाएगा।

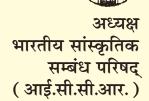
मैं 150वीं महामना मालवीय जयन्ती विशेषांक के सफल प्रकाशन तथा कार्यक्रमों की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएँ देता हूँ।

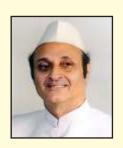
(कपिल सिब्बल)



संसद सदस्य (राज्य सभा) संसद उच्च सदन

# डॉ. कर्ण सिंह





18 अक्टूबर, 2010

प्रिय श्री पाण्डेय,

आपका 12 अक्टूबर, 2010 का पत्र जिसमें आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका **प्रज्ञा** का एक विशेषांक महामना पंडित मदन मोहन मालवीय की 150वीं जयन्ती पर प्रकाशित करने का संकल्प लिया है, प्राप्त हुआ, यह एक सराहनीय प्रयास है।

इसमें कोई संदेह नहीं मेरे मन में महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी के प्रति अपार श्रद्धा और आदर है। मालवीय जी के सिद्धान्तों और विचारों से मुझे ही नहीं समूचे भारत के शिक्षाविद्, राजनेता तथा सभी धर्मों और सम्प्रदायों के लोग प्रेरणा और ज्ञान अर्जन करते रहे हैं।

देश की आजादी के लिए महामना मदन मोहन मालवीय जी का योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। भारतीय शैक्षिक धरोहर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय सदैव भारतीय जन मानस के लिए प्रेरणा श्रोत रहेगा।

महामना मदन मोहन मालवीय पर केन्द्रित **प्रज्ञा** के इस विशेषांक के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

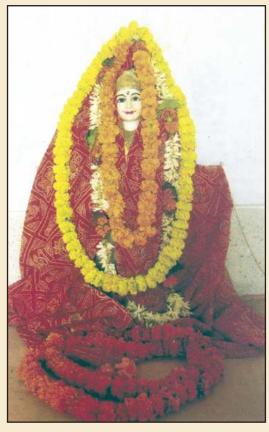
प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय सम्पादक ''प्रज्ञा'' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय बी-23, कोसलेशनगर सुन्दरपुर, वाराणसी-221005

(डॉ. कर्ण सिंह)

ऑफिस : आई.सी.सी.आर., आजाद भवन, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002 दूरभाष : 23378616, 23370698 फैक्स : 23370702







काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का स्थापना स्थल

सरस्वती माता मंदिर (ऊपर), विश्वविद्यालय स्थापना शिलापट्ट (बाँये नीचे), माँ सरस्वती

प्रोफेसर धीरेन्द्र पाल सिंह कुलपति Prof. D. P. Singh Vice-Chancellor





#### काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी-221005 (भारत) BANARAS HINDU UNIVERSITY (Established by Parliament by Notification No. 225 of 1916) VARANASI-221 005 (INDIA)

## संदेश

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रज्ञा के "150वीं मालवीय जयंती विशेषांक" (अंक-56, भाग-02, वर्ष 2010-11) का प्रकाशन किया जा रहा है। यह और भी महत्वपूर्ण है कि इस विशिष्ट अंक का लोकार्पण महामना के 150वें जयंती वर्ष के प्रथम दिन 25 दिसम्बर, 2010 को किया जा रहा है।

इस महान विश्वविद्यालय की यह विशिष्टता है कि महामना के रूप में इसके पास एक ऐसा विराट आदर्श है जिसका संकल्प, साहस, मूल्यों के प्रति अगाध आस्था, दिव्य अर्न्तदृष्टि एवं राष्ट्रनिर्माण के प्रति समर्पण हमें एवं आने वाली अनेकानेक पीढ़ियों को प्रेरणा देता रहेगा। यह आवश्यकता हमेशा बनी रहेगी कि महामना का व्यक्तित्व एवं कृतित्व हमेशा ग्राह्य रूप में विश्वविद्यालय परिवार के सम्मुख उपलब्ध रहे जिससे अधिकाधिक लोग महामना की दृष्टि एवं विचारों से लाभान्वित हो सकें। इस दिशा में प्रज्ञा के इस विशिष्ट अंक का प्रकाशन एक सार्थक पहल है। इस अंक में सम्मिलित लेखों से महामना के विराट व्यक्तित्व के अनेक आयामों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। आशा है कि पाठक इस विशेषांक का अधिकाधिक लाभ उठायेंगे। महामना के आदर्शों एवं विचारों को अधिकाधिक लोग अपने जीवन में अपनाएं, यही इस 150वें जयंती वर्ष में महामना को सच्ची श्रद्धांजिल होगी।

दिनांक: 16 दिसम्बर, 2010

वाराणसी

(धीरेन्द्र पाल सिंह)

## प्रोफेसर ब्रह्म देव सिंह रेक्टर

Prof. B. D. Singh

Rector





#### काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी-221005 (भारत) BANARAS HINDU UNIVERSITY

(Established by Parliament by Notification No. 225 of 1916) VARANASI-221 005 (INDIA)

Tel. : (0542) 2368781, 6703230, 6703235 (0)

Fax : (0542) 2369951

e-mail: rectoroffice bhu@sify.com

दिनांक: 08.12.2010

# शुभ संदेश

''प्रज्ञा'' के ''150वीं महामना मालवीय जयंती विशेषांक'' (अंक-56, भाग-2, वर्ष 2010-11) के प्रकाशन के अवसर पर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। हम सभी को ज्ञात है कि दिसम्बर 25, 2010 से दिसम्बर 25, 2011 तक महामना जी के जयंती समारोह को विश्वविद्यालय परिवार द्वारा बड़े धूमधाम से मनाये जाने का शुभ संकल्प लिया गया है। ''प्रज्ञा'' के सम्पादक प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय बधाई के पात्र हैं क्योंकि उन्होंने अत्यन्त परिश्रम पूर्वक इस विशिष्ट अंक को महामना की 150वीं जयंती के प्रथम दिन (दिसम्बर 25,2010) को ही प्रकाशित/लोकार्पित करने का शुभ संकल्प लिया है।

इस विशिष्ट अंक की सफलता हेतु मेरी अनन्त शुभकामनायें हैं कि यह अंक प्रबुद्ध वर्ग में समादरणीय एवं चिरस्मरणीय बने और लोग महामना के विराट व्यक्तित्व से न केवल सम्यक रूपेण परिचित हों अपितु उनके विविध कार्य कलापों से अनेक महत्वपूर्ण प्रेरणायें लें और अपने व्यवहार एवं जीवन में उसे चिरतार्थ भी करें।

(ब्रह्म देव सिंह)

## सम्पादकीय

विश्वविश्रुत काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक प्रातः स्मरणीय पूज्य महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी महान राष्ट्रभक्त, भारतमाता के अमर सपूत एवं वीणावादिनी हंसवाहिनी माँ सरस्वती के बरदपुत्र थे। आधुनिक भारत के निर्माताओं में उनका अद्वितीय एवं विलक्षण स्थान था। उन्होंने अपने युग के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक



एवं शैक्षणिक परिवेश की आवश्यकताओं के अनुरूप अनेक युगांतकारी कार्य किया। उन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा द्वारा तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुरूप अनेक चिरस्मरणीय एवं कल्याणकारी कार्य सम्पन्न किया है। उनमें नीर-क्षीर विवेकनी प्रखर बुद्धि थी जिसके द्वारा वे संस्कृति एवं परम्परा के सारवान अंशों का ग्रहण करके न केवल उनकी युगानुरुप सार्थक व्याख्या की अपितु उसे व्यवहार क्षेत्र में भी प्रतिष्ठित किया। यही कारण है कि उनकी विवेक दृष्टि तत्कालीन आवश्यकताओं के साथ-साथ उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में भी सफल रही। देश के भावी कर्णधारों के निर्माण हेतु उन्होंने शिक्षा एवं संस्कृति के क्षेत्र में चिरस्मरणीय योगदान किया। यह पावन विद्यामंदिर महामना के उसी दूरगामी दृष्टि, त्याग, तपस्या, साधना एवं सत्- ज्ञान की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। हम सभी परम भाग्यशाली हैं कि हमें महामना के इस पवित्र ज्ञान धाम की सेवा करने का अवसर मिला है। अतः हम सबका परम कर्तव्य है कि हम पूरी निष्ठा एवं लगन के साथ इस पावन विद्या-मन्दिर के यश में यथाशक्ति वृद्धि करते रहें।

युगानुरुप इस सर्वविद्या की राजधानी में प्राच्य एवं पाश्चत्य विद्या तथा अर्वाचीन एवं प्राचीन ज्ञान-विज्ञान के राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय कोटि के अनेक विद्वान हैं। इन सभी विद्वानों का दायित्व है कि ज्ञान-क्षेत्र में महामना का जो योगदान रहा है, उन सबका सम्यक मूल्यांकन करें और उनकी युगानुरुप व्याख्या एवं उनका सदुपयोग कर समाज एवं देश का कल्याण करें। इस प्रकार का कार्य करना महामना के प्रति सच्ची श्रद्धांजिल होगी। इस विशिष्ट कार्य द्वारा महामना की विराट उपलब्धियों का सम्यक आकलन हो सकेगा। इस दिशा में कुछ कार्य हुए हैं, लेकिन अभी भी बहुत सारे कार्य शेष हैं।

हम सभी को ज्ञात है कि विश्वविद्यालय परिवार द्वारा 25 दिसम्बर, 2010 से 25 दिसम्बर, 2011 तक **महामना** की 150वीं जयन्ती मनायी जा रही है। इस पावन वर्ष में अनेकानेक प्रकार के शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक आयोजन किये जाने का शुभ-संकल्प लिया गया है। इस क्रम में 'प्रज्ञा' परिवार ने त्वरित सिक्रयता दिखाते हुए महामना के 150वीं जयन्ती के प्रथम दिन (25 दिसम्बर, 2010) को ही उनके स्मृति में इस विशिष्ट अंक के प्रकाशन एवं लोकार्पण का निर्णय लिया है। इस अंक के सफल प्रकाशन में माननीय कुलपित प्रोफेसर धीरेन्द्र पाल सिंह की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन का विशेष योगदान रहा है, अतः हम सभी उनके प्रति कृतज्ञ हैं।

'प्रज्ञा' पत्रिका महामना के विचारों एवं संकल्पों का आरम्भ से ही सफल सम्वाहक रही है, अतः महामना के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विविध पक्षों से सम्बन्धित अनेक संस्मरण, विचार, लेख एवं रचनाएँ इसमें प्रकाशित होती रही हैं। महामना के उपलब्धियों से सम्बन्धित विपुल सामग्री 'प्रज्ञा' के पूर्व अंकों में संकलित है। उनमें से कई महान विभूतियों के विचार, लेख, रचनाएं एवं संस्मरण इस अंक के 'स्विणिम धरोहर' (Golden Heritage) नामक प्रथम खण्ड में संकलित हैं, जिनसे आज के पाठक सुपिरिचत हो सकें। इस खण्ड के आरम्भ में महाकिव पंडित श्री रामकुबेर मालवीय द्वारा 15 सर्गों में रचित 'श्रीमालवीयमहाकाव्यम् ' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसे सुव्यवस्थित रूप में उपलब्ध कराने के लिए उनके सुपुत्र डॉ. सुधाकर मालवीय साधुवाद के पात्र हैं। इस महाकाव्य का हिन्दी अनुवाद करने वाले प्रसिद्ध संस्कृत किव डॉ. शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी के प्रति भी हम आभारी हैं। 'अभिनव दृष्टि' (New Vision) नामक द्वितीय खण्ड में आज के मूर्धन्य विद्वानों एवं शोध-छात्रों के लेख, विचार एवं रचनाएँ संकलित हैं, जो वर्तमान परिवेश में महामना के कार्यों की अर्थवत्ता को रेखांकित करते हैं। आशा है यह विशिष्ट अंक महामना के प्रेमियों एवं उनके प्रशंसकों के लिए एक अविस्मरणीय ऐतिहासिक धरोहर सिद्ध होगा।

इस "150वीं महामना मालवीय जयन्ती विशेषांक" (अंक 56, भाग-2, वर्ष 2010-11) के प्रकाशन/लोकार्पण के पुनीत अवसर पर मैं भारत की राष्ट्रपति एवं इस महान विश्वविद्यालय की विजिटर महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, क्योंकि उनके शुभकामना संदेश से हम सबमें पर्याप्त उत्साह का संचार हुआ है। तदनन्तर मानव-संसाधन मंत्री माननीय श्री किपल सिब्बल के भी हम आभारी हैं, क्योंकि उनके शुभ-संदेश से हमें पर्याप्त प्रेरणाएं मिली हैं। इस विश्वविद्यालय के कुलाधिपति एवं भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद् के अध्यक्ष माननीय डॉ. कर्ण सिंह का आशीर्वाद हमें सदैव मिलता रहा है। उन्होंने इस अंक के लिए अपना बहुमूल्य शुभ-सन्देश दिया है, हम सब उनके प्रति कृतज्ञ हैं। रेक्टर प्रो. ब्रह्म देव सिंह, कुलसचिव डॉ. केशव प्रसाद उपाध्याय, वित्ताधिकारी श्री पराग प्रकाश एवं प्रेस के व्यवस्थापक आदि के सकारात्मक सहयोग के प्रति हम हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। 'प्रज्ञा' के परामर्श मण्डल एवं सम्पादक मण्डल के आदरणीय सदस्यों को भी उनके सहयोग के लिए शुक्रिया अदा करता हूँ। 'प्रज्ञा' कार्यालय के हमारे आत्मीय बन्धु प्रूफ रीडर श्री राजेश कुमार, वरिष्ठ सहायक श्री जय प्रकाश एवं चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी श्री अशोक कुमार को भी साधुवाद देता हूँ, जिन्होंने प्रतिपल हमारा साथ देकर इस अंक को मूर्तमान रूप दिया। अंत में मैं इस अंक के विद्वान लेखकों को प्रणाम करता हूँ, जिनकी रचनाओं से यह अंक समृद्ध हुआ है।

( प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय )

सम्पादक 'प्रज्ञा' जर्नल एवं प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

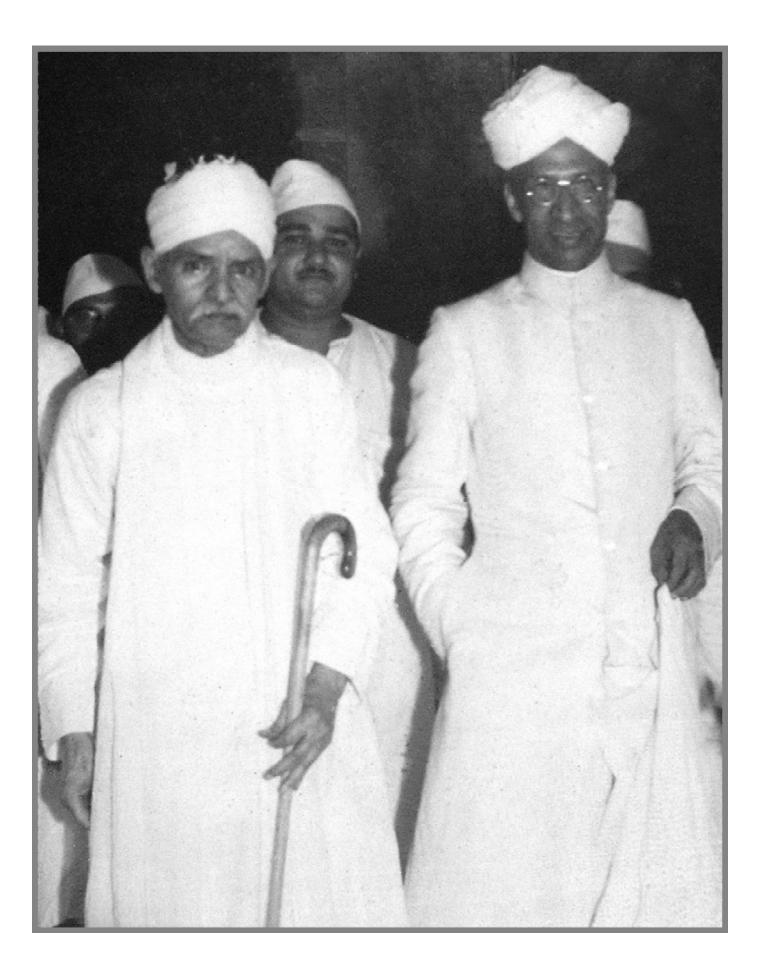
# प्रजा

'' 150वीं महामना मालवीय जयन्ती विशेषांक''



# अभिनय दृष्टि (NEW VISION)





विषय-सूची										
	स्वर्णिम धरोहर (GOLDEN HERITAGE)		20. मह	हामना मालवीय जी और श्रीमद्भगवद्गीता स्व0 आचार्य शिवपूजन सहाय	92					
1.	महाकविपण्डितश्रीरामकुबेरमालवीयप्रणीतं '' <b>श्रीमालवीयमहाकाव्यम्</b> ' <i>प्रोo शिवदत्तशर्मा चतुर्वेदः</i>	' 1	21. म	हामना पंडित मदन मोहन मालवीय	95					
2.	प्रशस्ति-पञ्चाशिका <i>रतिनाथ झा</i>	58	22. म	<i>श्री शिवनन्दन लाल दर</i> हामना पं0 मदनमोहन मालवीय जी (कुछ संस्मरण)	98					
3.	महामनाः श्रीमन्मदनमोहनलवीयो विजयताम् <i>डाॅ० गजाननशास्त्रिम्सलगाँवकरः</i>	61		त्रिलोचन पन्त	00					
4.	थ्री-काशी-हिन्दू-विश्व-विद्यालयः	61		डॉ0 शिव मंगल सिंह 'सुमन'						
5.	<i>डॉ० सीतारामशास्त्री</i> धर्मराजनीत्योः समन्वयभूमिर्महामना मालवीयः	62	24. मा	लवीयनगर <i>श्री एस० के० तिवारी</i>	02					
6	<i>प्रो० केदारनाथत्रिपाठी</i> कीर्तिर्यस्य स जीवति	63	25. म	ास्ते महदस्तु च	04					
	पं0 कपिलदेवपाण्डेयः	03	26. M	Tahamana Pandit Madan Mohan Malaviya Ji 1 Prof. S. Bhattacharya	111					
7.	महामना मालवीय जी का पुण्यस्मरण स्व० प्रो० वासुदेवशरण अग्रवाल	64	27. M	Tahamana Malaviya As A Man of Letters  Paramanand	114					
8.	महामना श्री मदनमोहन मालवीय (आरम्भिक जीवन और विश्वविद्यालय का निर्माण) <i>डॉ0 राय कृष्णदास</i>	65		eteriorating Work Ethics and Relevance of Iahamana's Ideal  Ayodhya Singh	119					
9.	महामना के दिव्य संस्मरण <i>आचार्य बलदेव उपाध्याय</i>	68	29. M	Iahamana Pt. M. M. Malaviyaji—Reminiscences Dr. Rajnath	121					
10.	गुरु मंत्र आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी	72	30. M	lahamana Madan Mohan Malviya 1 B. L. Sahney	23					
11.	पूज्य मालवीय जी के प्रति	73	31. M	lalaviyana 1 Jagadish Pandey	24					
12.	<i>मैथिलीशरण गुप्त</i> पुण्यश्लोक महामना मालवीयजाः	74	32. B	.H.U.: Opening Address of Malaviya Bhavan 1 <i>Shri. Karan Singh</i>	28					
	आचार्य सीताराम चतुर्वेदी कीर्तिर्यस्य स जीवति	7.	<b>ब</b> •	नारस हिन्दू विश्वविद्यालय, मालवीय-भवन 1 <i>प्रो-चाँसलर श्री कर्णसिंह</i>	30					
13.	कातिपस्य सं जापति सीता राम त्रिपाठी	76	ब. आं	भनव दृष्टि (NEW VISION)						
14.	महर्षि मदनमोहनजी मालवीय <i>आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र</i>	82	33. 7	ामन्ति काष्ठा ननु मालवीयम्	35					
15.	श्रद्धेय मालवीयजी <i>म0 म0 पं0 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी</i>	84	34. 8	भीमालवीयवन्दनशतकम् 1 <i>डॉ0 शिवदत्तशर्मा चतुर्वेदी</i>	37					
16.	मालवीय-प्रशस्तिः <i>शंकर देव अवतरे</i>	86	35. 5	ूर्ण स्वातंत्र्य हेतु महामना के यज्ञानुष्ठान 1 <i>डॉ० श्यामसुन्दर शुक्ल</i>	41					
17.	महामनाजी के कुछ संस्मरण: <i>राजमोहन उपाध्याय</i>	87	36. I	गहामना मदन मोहन मालवीय की लक्ष्य वेध-शैली 1 <i>डॉ0 महेन्द्र नाथ दूबे</i>	43					
18.	मन नमन नमन; मन नमन नमन स्व0 रूद्र काशिकेय	89	37. I		55					
19.	महामना <i>डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा</i>	90	38. T	io मदन मोहन मालवीय जी के चिन्तन की प्रासंगिकता का प्रश्न 1 <i>प्रोo कौशल किशोर मिश्र</i>	59					

39.	सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना के प्रतिमूर्ति : पं0 मदन मोहन मालवीय डॉ० ओंकार नाथ सिंह, डॉ० इन्द्रजीत सिंह	170 ह एवं	56.	महामना मदन मोहन मालवीय जी का जीवन-दर्शन विशिवद्वानों की दृष्टि में ऋषिका वर्मा	भेन्न 229
40	सुशील कुमार सिंह महामना का खेलों के प्रति दृष्टिकोण	174	57.	महर्षिकल्प एवं महती प्रतिभा के अधिपति : महामना मालवीय जी श्वेता सुमन	236
	डॉ० एन. बी. शुक्ला महामना मालवीय की शैक्षिक दृष्टि एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश		58.	महामना और असहयोग आन्दोलन सुशील कुमार सिंह	239
	डॉ0 सुनील कुमार सिंह एवं डॉ0 गौरव सिंह	र राठौर	59.		242
42.	महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय और हिन्दी न्यायमूर्ति गणेश दत्त दूबे	183	60.	महामना के स्वप्नों का भारत	245
43.	देवतुल्य विभूति महामना धर्मशील चतुर्वेदी	187	61.	<i>डाॅ० सञ्जय कुमार</i> महामना मालवीय : जीवन एवं चिंतन	249
44.	अवतारी पुरुष पं. मदन मोहन मालवीय <i>डॉ. शीतिकण्ठ मिश्र</i>	191	62.	सविता कुमारी महामना का महास्वप्न : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय	251
45.	स्मरण : महामना एवं भारतेन्दु के सान्निध्य का <i>प्रो. गिरीश चन्द्र चौधरी</i>	193	63.	अरूण कुमार यादव Mahamana Pandit Madan Mohan Malaviya Feonomia Vicion, Industrial Davalenment Thr	
46.	स्वावलम्बन के प्रति महामना के विचार <i>डाॅ0 सैयद अली नादिर</i>	194		Economic Vision–Industrial Development Thro Technical Education <i>Prof. D. P. Singh &amp;</i> <i>Dr. Padmini Ravindra Nath</i>	254
47.	हिन्दी, हिन्दू एवं मालवीय <i>डा० सुधा सिंह</i>	197	64.	A Dream of Pt. Madan Mohan Malaviya From a Super Knowledge Society to a Super	l
48.	महामना मालवीय जी की दृष्टि में उच्च-शिक्षा और नैतिकता <i>डॉ. अनीता यादव</i>	201		Knowledge Society Prof. K. N. Prudhvi Raju	261
49.	भारतीय राष्ट्रवाद के पुरोधा महामना मालवीय जी <i>डॉ. अखिलेश्वर शुक्ल एवं डॉ. सन्तोष कुमार</i>	206 पाण्डेय	65.	Mahamana Madan Mohan Malaviya Social Enterpreneur of the 20 <sup>th</sup> Century <i>Prof. H. C. Chaudhary</i>	266
50.	राष्ट्रीयता के सजग प्रहरी : महामना पंडित मदन मोहन मालवीय डॉ० महेन्दर सिंह यादव एवं डॉ० रुचि रि		66.	United India - Malaviya Ji's Dreams and Efforts  Dr. Vishwanath Pandey,  K. Chandramauli & Dr. S. K. Maini	
51.	पंडित मदनमोहन मालवीय—एक युगद्रष्टा <i>डॉ. भावना त्रिपाठी</i>	213	67.	Malaviyaji's Contribution to Higher Education S. Somaskandan	284
52.	मालवीय जी का राष्ट्र प्रेम <i>डॉ० नन्द बहादुर सिंह</i>	216	68.	Contribution of Mahamana in the field of Ind Economy  Dr. R. S. Meena	lian 289
53.	महामना के तेजस्वी व्यक्तित्व का परिचायक उनकी वाणी व वेशभूषा <i>मृदुला पाण्डेय</i>	219	69.	Malviya's Vision, Globalization and Higher Education: Concern for Social Science discipline	292
54.	महामना मालवीय जी की दृष्टि से धर्म एवं ईश्वर पर विचार कु <i>० मिथिलेश पाण्डेय</i>	223	70.	Dr. Anup K. Mishra Malaviya Ji's Values and his Relevance	298
55.		225	71.	K. Chandramauli Resurgence of India's Economy: Mahamana's Vision Shaivalini Singh	304

### नमन्ति काष्टा ननु मालवीयम्

म० म० रेवाप्रसादस्य द्विवेदिनः

श्रीमालवीयचरणो निजराष्ट्रविद्या-दीक्षा-विधान-¹ निपुणालयमासिसृक्षन्। काशीं चिकाय सुरसिन्धुतटे स्फुरन्तीं मोक्षप्रदां किल महेश्वरराजधानीम्।। 1 ।। अत्रान्नपूर्णा जननी स्वदर्वी विद्यार्थिवक्त्रेषु विरेचयन्ती। सान्तत्यतो व्याप्रियते समासां सरस्वतीनां कृपया सहैव।। 2 ।। ये शिल्पिनो विश्वविधानशिल्पनदीष्णतां बिभ्रति तेऽवकाशे। शिक्षितुमातुराश्चेदिहैव तत्रापि सुशिक्षयन्ते।। 3 ।। स्वशिल्पितां अस्यां 'किमर्थं क्रियते प्रयासः शास्त्रेष्विति प्रश्न उपप्रयाति'। सुभुक्तिक्रमतोऽर्जिजीषौ।। 4 ।। ज्ञातुमिमं स्वमेव मुक्तिं श्रीमालवीया अत एव पूर्वं पारायणं भागवतस्य चकुः। ततो मुहूर्तेऽतितरां शुभे वै चक्रे प्रयाणं प्रतिलब्धुमर्थम्।। 5 ।। धरित्रीं महतीं ययाचे स काशिराजानुपलब्धवांश्च। माघे सिते न्यासयितुं शिलां च प्रचक्रमे द्विर्व्यवहारविज्ञः।। 6 ।। एकां शिलां प्रतिपदि प्रथयाञ्चकार हार्डिंगनामकगवर्नररत्नहस्तात्। अन्याञ्च पञ्चमतिथौ निभृतं यतीन्द्र-वर्यस्य कस्ययन पाणितलारविन्दात्।। ७ ।। ब्रह्मास्त्रमन्यदपि चेच्चलति प्रहर्तुं शस्त्रं निवर्तत इति स्थितिमाश्रयाणः। श्रीमालवीयचरणो विचिकित्सितोऽत्र द्वैधे बभूव निह शोभनयोगतुष्टः।। 8 ।। काशीस्थिताः प्रवयसो विदुषां वरिष्ठा आरुह्य दिव्यशिविका उपतस्थिवांसः। तत्तन्महीपतिगणैरभिवन्द्यमानपादाः स्वमासनमलंकृतवन्त उच्चैः।। ९ ।। एतांस्तु पञ्च दिवसानतिथिव्रजेऽभूदुत्साहदर्शनपरोऽभ्युदितः प्रवाहः। वाचां परिष्कृततयोज्ज्वलयाऽऽङ्ग्लनाम्न्या तृप्तिं दधे बत यया नन् शारदाऽपि।। 10 ।। श्रीमालवीयचरणा मधुराभिरेव वाच्यार्थसन्ततिभिरुच्चतरं ब्रुवन्ति। लक्ष्मीश्वराश्च बिरलासदृशास्तदीये भाले विलोक्य तिलकं हि समाश्वसन्ति।। 11 ।। विधाय हस्ताक्षरमात्मनः स्वां ददौ स <sup>2</sup>पत्रीं द्रविणस्य तेभ्यः। महर्षिकल्पा बत तेऽपि चकुः स्वस्मै व्ययं नापि वराटिकायाः।। 12 ।। राजर्षयो जोधपुरस्य पूर्वं ददुर्महार्हं द्रविणस्य राशिम्। श्रीमालवीयेभ्य उपार्जितुं स्वं व्ययं गृहस्याऽथ पुनः प्रयातुम्।। 13 ।।

श्रीमालवीया अधरोत्तरेषु विवेकशौण्डा नन् राशिमेनम्। स्वविश्वविद्यालयकोष एव दधुर्न गेहे स्वक उच्चभालाः।। 14 ।। चक्रे प्रतिज्ञाञ्च कुलस्य तस्य नो कश्चनाप्यत्र नियोगमीप्सेत्। येनाद्य यावत् प्रथमानकीर्त्तिस्तत्पौत्रवर्योऽत्र न पाति तोयम्।। 15 ।। स्वधर्मनिष्ठा जननायकानामभूत् समेषां निजतन्त्रयुद्धे। राष्ट्रं परं दैवतमित्युपास्यं स्वातन्त्र्ययोगादिति मन्त्रभाजाम्।। 16 ।। विदामास्रम्ष्य मूलं 'धर्मो भवेदार्षमतिप्रदिष्टः'। द्वित्रा धर्मे निगमागमानामभ्यासयोगः प्रथमो बभूव।। 17 ।। श्रीमालवीया इह विश्वसन्ति घृणां विहायाऽपरजातिजाते। भाषाः समास्तस्य मतेऽभ्युपास्या मुख्यास्तु तास्वस्ति हि संस्कृतात्मा।। 18 ।। अन्ये तु हिन्दुत्वयुता भवन्तो एकत्वयोगाय बभूव्रुत्काः। न वर्णभेदो न च जातिभेदोऽप्यत्रास्त् राष्ट्रे क्वचनेति दृष्ट्या।। 19 ।। गान्धी महात्मा तु विपर्ययाय कृतप्रतिज्ञो बिभराम्बभूव—। समाजसेवाव्रतमेकमेव सर्वै: समानेन विधानकेन।। 20 ।। तस्मिन् विधाने निह कालसीमा बभूव काचिद् द्विजतायुतेभ्यः। यो ब्राह्मणस्तस्य कृते विधानं बभूव शौचालयशोधनं हि।। 21।। यश्चापि जत्या द्विजता-विहीनस्तस्मै तु देवालयपूजकत्वम्। विनिश्चितं यस्य विरोधमेष प्राणात्ययात्मानमसोढ हन्त।। 22 ।। श्रीमालवीयस्तु चरित्रवन्तं छात्रं विनिर्मातुमभूत् समुत्कः। चरित्रहीनेन कदापि रक्षा कर्तुं क्षमा नेति विभाव्य धीमान्।। 23 ।। विश्वविद्यालयमेतमार्षधर्माङ्गसम्पादनयोगदक्षम्। स भगीरथीतीरगतं विधाय प्राभ्यासयच्छिल्पकलाश्च कृत्स्नाः ।। 24 ।। ऐतिह्यमासां तु पुरातनं यत् सर्वं तदासीत् बत संस्कृतस्थम्। ततो महानेष ऋषिः प्रतिष्ठां सम्प्रापयत् संस्कृतमत्र सम्यक्।। 25 ।। स्वयञ्च यो भाषितुमाप शक्तिं शुद्धाञ्च मिष्टाञ्च पुरातानानाम्। भाषामिमां पण्डितमण्डली यां श्रुत्वां सभायां चिकता स्म भाति।। 26 ।।

<sup>\*</sup> इमेरिटस प्रोफेसर (संस्कृत), पूर्वसंस्कृतसंकायप्रमुखः साहित्यविभागाध्यक्षश्च, का०हि०वि०वि०।

<sup>1.</sup> आलयः विश्वविद्यालयः।

<sup>2.</sup> Cheque.

<sup>3.</sup> Arts and engineering etc.

गङ्गाधरो बाल इति प्रतीतो बभूव कश्चित्रितरां प्रतापी।
नेता, स वै ब्राह्मणजातिकोऽभूद् विदां वरेण्यो गणितेषु वाग्ग्मी।। 27 ।।
इमौ न हि द्वौ क्षपयाम्बभूवतुः स्वधर्मनिष्ठां परिशुद्धचेतसौ।
गान्धी महात्मा तु दधन् महात्मतां सुभाषचन्द्रं न विसोढुमीश्वरः।। 28 ।।
तं विश्वविद्यालयमेतमत्र भागीरथीतीर्थभुवि स्थितं यः।
प्रातिष्ठिपत् तं प्रणमन्ति सर्वाः काष्ठाः महर्षिं ननु मालवीयम्।। 29 ।।
अस्य प्रतिष्ठा तु कनिष्ठिकायामधिष्ठिता सम्प्रति शिल्पजाते।
साहित्यविद्यास्विप नास्य साम्यं बिभर्ति कश्चिद् भुवि लेशतोऽिप।। 30 ।।

सनातनाख्यो जरठस्तपस्वी छात्रोऽस्य कश्चिद् ध्वनिमस्तयित्वा। 'अलं परं ब्रह्म, तदेव मुख्यमि'—त्यागमं स्थापयतेऽद्य भूयः।। 31 ।। यः कालिदासं कृतवान् विशुद्धं व्यशोधयद् यो भरतं मुनीन्द्रम्। श्रीभोजदेवं समजीवयच्य साहित्यसंज्ञामुददीधरच्य।। 32 ।। स्वातन्त्र्यगाथामधिकृत्य यो वै व्यरीरचद् राजतरङ्गिणीं नु। महान्तमेकं कविताप्रबन्धं निर्वाचनं पञ्चदशं च यावत्।। 33 ।। कृतज्ञतां मूर्ध्नि महामहार्हां धृत्वास्य तीर्थस्य कृते महर्षेः। व्यधायि सेवेयमनेन, कृर्वे तस्मै प्रणामन् महते सहस्रम्।। 34 ।।

1

## श्रीमालवीयवन्दनशतकम्

### डॉ० शिवदत्तशर्मा चतुर्वेदी\*

श्रीमालवीय-गुण-रत्न-महासमुद्र-प्रोत्ताल-दिव्य-शुभ-वीचि-विभासनेषु। येषां मनःस्थितिरुदेति यदैव नित्यं धन्यास्त एव नन् तत्क्षणमाश् जाताः।। 1 ।। प्रातर्यदीय-ग्णरत्नविभाविभासै-रासाद्यते स्कमनीयतमैव कान्तिः। सर्वं दिनं ननु तदा शुभताप्रवाहे सुस्नानमाशु भजते विभवाधिराज्ये।। 2 ।। को वा गुणान्मदनमोहनमालवीय-दिव्यातिदिव्यविभवान्प्रकटान् सुकुर्यात्। कस्यास्ति सा च सविधे रुचिरा सुवाणी या तं चमत्क्रतिसमुद्रभिहाभिवन्द्यात्।। 3 ।। ये ते प्रा कृतय्गेष् महर्षयोऽत्र संवर्णिताः किल प्रातनसत्कथास्। तेषाभिह च्छविरियं स्तरां मदीये-चिन्मानसे मदनमोहनमूर्तिरास्ते।। ४ ।। संसार-संसरण-सिद्ध-महानुभाव-पूतात्मतापरिणतिः किल मालवीय-मूर्तिर्महामहिमतोपरि संप्रयान्ती सूर्यात्मतापरिणता प्रणताऽस्ति नित्यम्।। 5 ।। ज्ञानात्मनामिह हि काऽपि विभूतिरेषा विज्ञानभाभिरभितोऽपि विभासमाना। सर्वत्र संचरणशीलमवाप्य कायं जगर्ति वा मदनमोहनमालवीये।। 6 ।। श्रीमालवीयश्भसत्कथया समृद्धाः सर्वेऽपि लोकविदिताः प्रभवन्ति देशाः। के वा न सत्यकथयाऽत्र परिप्लुता स्युः केषां न चेतिस परिस्फुरणं भवेद्वा।। ७ ।। ये वा नितान्तविमता अभवँन्स्तदानीं तेऽपि प्रसन्नमनसा किल मालवीयम्। दृष्ट्रैवव सत्य-शिव-सुन्दर राजधान्यां स्वीयं प्रवेशमलभन्त विना प्रयासम्।। ८ ।। 'हिन्दू'-शब्दप्रयोगे सुविमलमितता मालवीये स्थिता या विश्वं हिन्दुं चिकीर्षत्यनुदिनमथ सा मालवीयस्य दिप्तिः। यद्यत्सश्रेष्ठरूपं जगति विलसितं भावनास् स्थितं वा तद्रै हिन्दुस्वरूपे परिगणितमथाम्नायसम्पोषितं च।। ९ ।। काशी श्रीविश्वनाथं निजहृदयगतं दर्शयन्ती समस्ते ब्रह्माण्डे श्रेष्ठतायाः परममहिमतामण्डिता दिव्यरूपा। वीक्ष्यैतद्रूपमरादथ च सुमनसां श्लाघनीये महत्त्वे काश्यां विज्ञान-विद्यालयमतिविदितं निर्ममे मालवीयः।। 10 ।। श्रीमालवीयस्य नितान्तदीप्तिं विद्योतयन्ती भुवि राजधानी। विद्यावरेण्या विज्ञानसत्काञ्चनमादिशन्ती।। 11 ।। निकषायमाणा श्रीमालवीयस्य नितान्तभव्यमृर्तिं समालोक्य जनाः समस्ताः। द्वारस्थितां तां निजतां वहन्तो लघुत्वमूलं प्रविदूरयन्ति।। 12 ।। श्रीमालवीये शार्दुलविक्रीडितमाविरासीत् नितरां प्रदीप्ते। देशस्य सुमहामनस्वी।। 13 ।। सत्कीर्ति मिहाभितन्वन्नजायतायं

देशस्यास्य गभीरतां सम्दितां वेदेष् शास्त्रेष् वा नीतिं तामथ चागमे निगदितां व्याहारहेवाकिनीम्। आचारेषु शश्वत्समाघोषयन् विचार-सारसराणिं स्पूज्यतां सुभजते विज्ञानसंदेशिकः।। 14 ।। मन्त्रेषु तन्त्रेष्वथ चागमेषु पुराणछन्दस्सु च धर्मशास्त्रे। यत्तत्त्वमूरीकृतमाविरास्ते श्रीमालवीयस्य मुखे तदासीत्।। 15 ।। महानसौ भारतवर्षदेशो यस्मिन्ननेके किल भूमिभागाः। जनाश्च नानाविधवर्णयुक्ता भाषाश्च नानाविधतां प्रयाताः।। 16 ।। श्रीमालवीयस्य मनो व्यचारयत्कथं पुनर्भारतदेश दीनोऽस्ति हीनोऽस्ति विरूपितोऽस्ति महामहिम्ना परिलोपितोऽस्ति।। 17 ।। इयं सकलवैभवोन्माथिनी परतन्त्रता अनेकशतवत्सरैरिह समागता राजते। चितिः स्फ्रित नो मनागपि गता च विज्ञान भा परिस्फ्रिरति सपदि लंदनस्य केवलं प्रभा।। 18।। विभूतिर्विभाविता श्रीमालवीये सत्यसमर्पितैव। महती ज्ञानस्य विज्ञानपदाभिलप्यस्यात्रैव देशे किल शिक्षणं स्यात्।। 19।। न्यायालयस्यापि तु शिक्षयाऽत्र विस्थापनीया किल सा प्रवृत्तिः। ययाऽन्विता यान्ति सुदूरदेशे समुन्नतीनां शिखरस्थिता अपि।। 20 ।। यस्यातिपावनचरित्रमिषेण गङ्गाधाराप्रवाहमसमं परिपूजयामः। तं सर्वमोहकवशीकरणैकमन्त्रं नौमि स्फुरन्मदनमोहनमालवीयम्।। 21 ।। यत्संकथासु विविधासु लसत्रिलोकीभव्यासु दिव्यतरकर्मठतां मनुष्यो। जानाति जन्मसफलत्वमथ स्वकीयं धन्योऽस्त्यसौ मदनमोहनमालवीय:।। 22 ।। धन्या वयं मदनमोहनमालवीयश्रद्धाप्रपूर्णहृदया भ्वि संचरामः। यन्नाम केवलमपि प्रथमं समस्तसौख्यप्रकर्षकरमात्मकलाभिनन्द्यम्।। 23 ।। यद्वाणी साक्षिरूपा सकलशुभतया संचरन्ती समस्ते देशे सर्वोच्चतायां नयति च निखिलारन्श्रोतवन्दान्वरेण्यान्। आर्यावर्ते स्वतन्त्रां स्थितिमथ नियतां धारयन्तीव नित्यं सत्संख्यायामनन्ता गुणगणमहिता राजते पुण्यपुञ्जे।। 24 ।। सत्याऽभ्यासैकधाराप्रवणसुमनसां मोदमेवातनोद्यः धर्माचारैः समृद्धो सुविपुलविभवं दूरितं संचिकीर्षुः। देशे विज्ञानधारामथ नवतरतां प्राप्तकायां वरेण्यां दिव्यां विस्तारयन्योऽप्रतिमसदृशतामाप्त एवाऽभिरेजे।। 25 ।।

पूर्व अध्यक्ष, साहित्यविभाग, संस्कृत विद्याधर्मविज्ञान सङ्काय, काशीहिन्दूविश्वविद्यालय, वाराणसी

दीप्तिः ब्रह्मर्षिमालवीया प्रीतिर्विधानानाम्। सर्वेऽप्यथ राजानो जानाना मालवीयं तम्। धनवैपुल्यैर्भरितं शोभां समानयति।। 26 ।। कृतवन्तो कल्याणानामसमां तां धन्यतां याताः।। 42 ।। श्रीमालवीयकरुणा भारतवर्षस्य दारिद्र्ये। आंग्ला ये देहल्यां सर्वोच्चाः शासका आसन्। सर्वोच्चं चक्रे।। 27 ।। श्रीमालवीयनिकटे शिक्षा-मैत्रीमया द्रतिमापन्ना जाताः।। 43 ।। सत्यं कल्पनं विज्ञाने दरिद्रताऽऽसीत्स्वदेशे काश्यामसमं शिक्षणसंस्थानं ज्ञाने वा या। वा समृद्घाट्य। हार्डिञ्जोऽपि लेभे।। 44 ।। स्वायत्तां कर्तुं लन्दनमासीत् नन्दनं काम्यम्।। 28 ।। त् लार्डः स्वीयां तां धन्यतां वाराणस्यामस्यां तद्वैनन्दनमथाऽनीय। श्रीमालवीयवर्यप्रभाव आसीन्महत्त्वे यः। मदनमोहनो प्रजापतिः संजात: श्रीमान् दिव्यः।। 29 ।। श्रीमन्तं सदयं सहसा मूर्धन्यतां नयति।। 45 ।। याऽसीत्केवलमांग्लानां शासनोद्देश्यम्। श्रीमालवीय-चरिताऽमृत-धारापायिनोऽथ शिक्षा वयम्। सम्पूरियतुं सर्वा साऽत्मोन्नत्यै समानीता।। 30 ।। तृषिता सदा स्थिताः स्मः समधिकभावेन संश्रोतुम्।। 46 ।। कर्त् ग्ण-गण-सम्द्रमखिलं परतन्त्रतां समाप्तां कांग्रेससंस्थायाः। कीदृशमाभासितं भाति। कृतं सदा मालवीयेन।। 31 ।। श्रीमालवीयगाथा विमला तत्रोत्तरं देयम्।। 47 ।। संचालन-सत्कार्यं सन्निध्ये देशः। संगाथाः संगीता लोकमान्यतिलकानां भारतं सहस्रशः मालवीयानाम्। तत्राऽस्तेऽनुभवोऽयं जन्मसिद्धमधिकारं स्घोषितवान्।। 32 ।। कथितम्।। 48 ।। स्वतन्त्रतायाः नतमामत्यल्पमपि तत्रैव मालवीयै: स्वीयं सर्वस्वमाहय। देश-स्वतन्त्रतायै सत्याऽहिंसात्मिका सरिणः। तूर्णम्।। 33 ।। दिव्यमनोवाक्कायैरैकात्म्यं साधितं प्राक्तन-ऋषि-सन्दर्शित-मध्वानं दर्शयन्त्यासीत्।। ४९ ।। तिलक-गान्धि-नेतृणामग्रेगामित्वमास्थाय आग्लायां भाषायां दिव्यास्। भाषणमालास् सर्वोत्थिता श्रीमालवीय-समतामांग्ला अपि नो विजानान्ति।। 34 ।। कोटिमिताऽपि तु जनतोङ्गितेङ्गितेषु जाता।। 50 ।। सत्साहित्य-प्रवृद्धये लोकमान्य-तिलकं मन्ते हिन्दी-भाषोत्थाने नूनम्। तं स्वीय-गुरुत्वेन स्म। नागरी-प्रचारिणिसभैव श्रीमोहनदासानामभिमतरूपेण ज्येष्ठ काचित एवाऽसीत्।। 51 ।। समारब्धा।। 35।। आसीत्सैषा हिन्दी-साहित्य-कल्प-वल्लीव। सर्वोच्चा संसद् संस्था या देहल्यां संगठितकाया। श्रीमालवीय-संवर्धितकाया सेयं शिरोमणिप्राया।। 36 ।। मालवीय: मनोनीतः।। 52 ।। तत्राऽपि सदस्यतायां दिव्ये प्रयाग-नगरे हिन्दी-साहित्यसम्मिलनम्। भारतीय-जनतायाः पक्षं तत्राऽपि विस्तार्य। संस्थापितमद्यत्वे प्रजागर्ति।। 37 ।। मालवीयेन।। 53 ।। संस्थानं तत् स्वीया भाषण-सरणिः प्रसारिता तास्मिन्काले निखिले भारतवर्षे च राजतन्त्रमेवाऽसीत्। श्रीकृष्णस्य भगवतश्चारित्रचर्चां सदा कृत्वा। नैकशता राजानो निजनिज राज्येष् सर्वोच्चाः।। 38 ।। श्रीकृष्णस्य स्वरूपमावेदयामास।। 54 ।। भगवतः सविधे सर्वोच्चशिक्षणे निखिले देशे राज्ञां गत्वा काश्यां संस्थाम्। गत्वा ज्ञान-स्वातन्त्र्य-सद्वाणीम्। शोभनरूपां निर्मातुं विस्तारितमाधुर्यां जने संप्रवेशितवान्।। 55 ।। धन्यां याचनां कृतवान्।। 39 ।। जने श्रीमालवीय-महिता शैली विज्ञान-ज्ञानानां या याचनायां काशीं प्रभया पुनस्तन्वन्। सा। सौभाग्यैर्मण्डितविभवैव विस्मापयन्परिकरानसमां संजाता।। 40।। लोकसंसेवाम्।। 56 ।। धन्यानां चक्रेऽथ गंगातटे विशालाभूमिर्विश्वं विभासायितुम्। काशी - हिन्दू - विश्वक - विद्यालय - दिव्य - संस्थाने। विद्योतितशालायै समर्पिता काशिराजेन।। 41 ।। सर्वस्मादपि देशाद् विज्ञा विद्वांस आहताः।। 57 ।।

श्रीमालवीय-वचनाऽह्वानैस्तूर्णं सुदुर्लभास्तेते। समवेतास्तांस्तान्विषयान्त्रशिक्षयितुम्।। 58 ।। विद्वांसः छात्राणामुत्साहोऽध्ययनार्थं यः प्रवृत्तोऽभूत। यन्त्रमयं काले प्रयातेऽपि।। 59 ।। अद्याऽप्यत्र स दृश्यो बहुशः काचित्तपोमयी भूमिरेवाऽस्ते। भारत काश्यां मालवीयेन।। 60 ।। प्रतिक्षणं पुनस्तपः सुतप्तं त् संसारे कस्तावद्देशः स्याद्यत्र विद्वांसः। विद्यावन्तो विद्यास्थानाद न संगता जाताः।। 61 ।। अस्माद श्रीमालवीय वैभवम्पश्र्त्य। विद्या मन्दिर किन्त् संसारे सर्वेषां मस्तकनम्रत्वामालोक्यम्।। 62 ।। संस्कृत इयमेव कल्पनाऽसीत्काचित् स्वीया श्रीमालवीयानाम्। देशेऽस्मिन्नेवंविध संस्थाः नाना स्युः।। 63 ।। प्रवृत्ताः तस्यां - मासीत्सदोच्चतमम्। जीवन -दर्शन यद्विस्मरणैरन्या दुर्घटना नो भवेन्नाम।। 64 ।। अद्यापि काशीहिन्दूसंसारोन्मेषिमालायाम्। अस्यां काचिच्चमत्कृतिर्नित्यमालोक्या।। 65 ।। अद्यत्वे सा स्वातन्त्र्यात्प्रागासीत्संस्थेयं दिव्यताभरिता। केन्द्रक्रोडीकृता निर्मलतां स्वातन्त्र्यानन्तरमथ जाता।। 66 ।। भारतराष्ट्रपतिर्यः सोऽत्राद्यत्वे प्रधानतां भजते। साहाय्यमातनुते।। 67 ।। शासनश्भसंचालनकार्ये भ्रामं सर्वे। श्रीमालवीय-पुण्य-स्मरण-सुत्तृप्ताः सदा कालेष्वत्राऽऽयाताः स्वीयं धन्यत्वमातेनुः।। ६८ ।। संख्या सत्पुण्यार्जिता भारत-राष्ट्रोत्थाने या शैली। नासीत्तदा शिक्षोत्थान-विशेषैरारचिता साऽत्र संग्राह्या।। 69 ।। यो न च येयं निखिला प्रवाहरूपा पतित धारा। मोहनदासो अद्य सत्कृतिपुञ्जैः समानीतः।। ७० ।। स्वीयं तस्याः स्वयमारम्भः येयं सन्तोषसंभारम्। विज्ञानामृतगङ्गा ते भगीरथस्तत्र संचारयति नितान्तं मालवीयोऽयम्।। ७१ ।। काठिन्यं मालवीयैः येऽपि दूरियत्ं भाषाणां सा। ते भारतीयभाषाणां समुन्नतिः काऽपि सन्दिष्टा।। 72 ।। तावद्विस्तारियतुं आंग्लां भाषां महान् यत्नः। संसाधित: पुरस्तादासीदांग्लैस्तृ विद्वद्भिः।। 73 ।। स्वातन्त्र्यानन्तरमथ

मैकालेति तु नाम्ना समागतो यो धुरन्धरः कश्चित। तेनैवाङ्गलभाषानवशिक्षासन्नतिः सृष्टा।। 74 ।। यद्वैतद्विज्ञानं सर्वतो व्याप्तम्। समायाता।। ७५ ।। तेनाधारितकाया साङ्गलभाषा शिक्षा वीरास्तस्यामप्यांग्लभाषायाम्। दर्शित-पूर्ण-परिश्रम-पराक्रमैश्चर्चिता जाताः।। 76 ।। श्रीमालवीय-बुद्धौ सेयं भाषा स्सिद्धाऽसीत्। आंगलशासक-धुर्यास्तत्राऽसन्साध् संन्तुष्टाः।। ७७ ।। सदैवायं किल भारत-भाषास् निखिलास्। हिन्दी प्रमुखास्वासीच्छिक्षाप्रवर्तनोद्युक्तः।। ७८ ।। भाषा सम्पूर्णा। तावत्सरला सरसा सुविस्तृतं पूर्णतां याति।। 79।। जातं ज्ञानं येयं श्रीमालवीय-रचना शिक्षामयी भव्या। स्वरूपं नित्यं प्रकाशयन्त्यास्ते।। 80 ।। सा सत्यं शिक्षा-जगति मलिनताऽपि येयं संप्रविष्टाऽभूत्। त् परतन्त्रता-विपरिणतिभूता स्वाभाविकी सैषा।। 81 ।। श्रीमालवीय-चरित-स्मृति-संसारेषु विचरन्तः। स्वीकर्तुं मालिन्यं दूरियतुमलम्।। 82 ।। सिन्धे अविभाजितेऽथ देशे पञ्चापसत्प्रान्ते। निखिलं सन्देशं भ्रामं श्रावयामास।। ८३ ।। यावत्संस्मरणानां श्रीमालवीय-चरितानाम्। विपुला वृद्धिं गच्छत्यधिकतरा सा पुनः समायाति।। 84 ।। भागे स्थितो त् सर्वोच्चतमे नेता। पादौ मालवीयानां हस्तेन गृण्हीयात्।। 85 ।। गान्धी यो हि महात्मेति विश्वविख्यातः। ज्येष्ठभ्रातरमेवाऽमनुते मालवीयं स्म तम्।। 86 ।। सर्वे देशे ये संप्रतिष्ठिता राजानः आसन्। श्रीमालवीय-निकटे सर्वैर्दृष्टाः प्रणतभावे।। ८७ ।। धर्माचार्यास्त्यागतपोमूर्तयश्चासन्। तु मालवीय-निकटे स्वात्मानं मोदयामासुः।। ८८ ।। ये श्रीमालवीय-निकटे ये संस्थिता वा आसन्। देशस्य कर्णधारास्ते।। 89 ।। जाता

भारतीय-संस्कारैरोतप्रोतं च व्यक्तित्वम्। मदनमोहनो बिभ्राणस्त् सदाऽसीन्मालव्यो दिव्यः।। 90 ।। संसारे यात्रास्वथ दिव्यं गंगाजलं गृण्हन्। सर्वेर्देशै: तिलकाङ्कित-सद्भालः प्रपूजितो दृष्टः।। 91 ।। ईश्वर-विश्वासाना-मसमां वृद्धिं समेधयन् सततम्। सर्वत्रैवाऽस्तिकतां संचारितवान्स्वदिव्यसन्देशैः।। 92 ।। एकादशीप्रवचनं भगवद्गीताप्रवचनं च। विश्वविदितसंस्थायां स्वीयायां स स्वयं कृतवान्।। 93 ।। लक्ष-कोटि-मित-छन्दोमालाभिर्वाऽपि गाथा। सा नैवेदमित्थमतया वर्णियतुं शक्यतां यायात्।। 94 ।। लालो ये बालो पालो गान्धी देशनेतारः। सर्वेषां मान्या अपि विमता अपि यत्र तत्राऽसन्।। 95 ।। मालवीयोऽयम्। किन्त्वेको ब्रह्मर्षिर्महामनो निखिल-जनानां हृदये स्वीयं साम्राज्यमातेने।। 96 ।।

प्राचीनाक्षरमालापठनेष्वासक्तमानसानां वा। नूतनभावाऽवलिमपि कालोल्लसितां समर्पितवान्।। 97 ।। भारतभूमाववतारास्ते पूर्णस्य। अस्यां परस्य सर्वकालेषु।। 98 ।। काले जातास्तावत्संजायन्ते च निखिलशक्तिसम्पन्नः-सर्वनियन्ता सदाशिवो भगवान्। विभृति रूपेष्वाविर्भावं प्रसादयति।। १९ ।। नाना दिव्यतमरूपे। श्रीविश्वनाथ एवाऽत्राध्यात्मे आसीन्महादेवः।। 100 ।। श्रीमालवीयकाये प्रकटित सर्वासां विद्यानां प्रवर्तिता राजधानीयम्। काश्यामेव स्वीये निकटे स्थाने समानीता।। 101 ।। काशी यथाऽस्तेऽखिल लोकवन्द्या सद्धक्तिनम्याऽस्त्यखिला तथैव। श्रीमालवीयस्य सुकीर्तिरूपः सद् विश्वविद्यालय एष वन्द्यः।। 102 ।।

# पूर्ण स्वातंत्र्य हेतु महामना के यज्ञानुष्ठान

डॉ० श्यामसुन्दर शुक्ल\*

महामना मालवीय जी देशानुराग को धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग मानते थे। उनके विचार से सच्चा तप और धर्माचरण वह है कि जिसमें अपने स्वार्थ की आहुति दी जाय। सच्चा दान वह है कि परमार्थ किया जाय और सच्ची ईश्वर-सेवा वह है कि जिससे दुःखी जीवों की सहायता की जाय। परमात्मा सबके हृदय में व्यापक है। इसलिए हम जितने प्राणियों को प्रसन्न करें उतने ही गुना ईश्वर प्रसन्न होंगे। यह सच्चा धर्म देशभित्त द्वारा प्राप्त है। देशभित्त का संचार हमारे हृदय से स्वार्थ को निकाल कर फेंक देगा। दूरदर्शी, परमार्थी, सत्यशील और दृहताप्रिय आत्माओं की भाँति असंख्य कष्ट उठाते हुए भी हम वही करेंगे, जिससे देश का भला हो, निर्धन धनवान, निर्बल बलवान और मूर्ख भी बुद्धिमान हो जाय। प्रत्येक प्रकार के सामाजिक दुःख मिटें और दुर्भिक्ष आदि विपत्तियाँ दूर होकर लाखों बिलबिलाती आत्माओं को सुख पहुँचे। देशभित्त द्वारा इतने धर्मों का सम्पादन होता हुआ देखकर भी कोई धर्म के आगे देशभित्त को कुछ नहीं समझता तो उस पुरुष को जान लीजिए कि वह धर्म के तत्त्व को कुछ नहीं समझता।

#### प्रथम अनुष्ठान

महामना की उपर्युक्त मान्यताओं और उनके तदनुकूल कार्यों का कितना मंगलमूलक परिणाम हुआ, वह सर्व विज्ञजन-विदित है। धर्माचरण को स्वदेशानुराग से जोड़कर देखना मालवीयजी के आचार-विचार संबंधी संचेतना के मूलतत्त्वों में सम्मिलित है। अपनी इन्हीं मान्यताओं को मूर्त करने के क्रम में विश्वशान्ति तथा देश की स्वतंत्रता-हेत् सन् 1940 से 1942 ई0 के बीच उन्होंने उद्योगक्षेत्र के अग्रगण्य, परमोदार और धर्मनिष्ठ बिरला परिवार के आर्थिक सहयोग से क्रमशः काशी, पाटलिपुत्र, ऋषिकेश, हरद्वार और मथुरा में यज्ञानुष्ठानों का आयोजन किया। इनमें से प्रथम का आयोजन सन् 1940 ई0 के श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी (दिनांक 8 अगस्त) से श्रावण शुक्ल 15 (17 अगस्त) तक के बीच संपन्न हुआ था। इस यज्ञ के यजमान वे स्वयं (भारद्वाजगोत्रीयः त्रिप्रवरः मदनमोहन शर्म मालवीयः) थे। 'सहस्रचण्डी सहित इस महारुद्रयाग' का आयोजन-स्थल काशीस्थ गोदौलिया में काशी नरेश द्वारा निर्मित मंदिर के विशाल एवं मनोहर प्रांगण में हुआ था। इस यज्ञ के लिये महामना द्वारा मनोनीत ऋत्विक् प्रयागवासी महामहोपाध्याय प्रमथनाथ जी 'तर्कभूषण' महाशय थे। उनके साथ अन्य कई प्रकाण्ड विद्वान भी थे, जिन्होंने अपने उच्च स्वर में मंत्र-घोष करके प्रचण्ड मेघ-गर्जन सा वातावरण निर्मित कर दिया था। भगवान् विश्वनाथ की कृपा से इस यज्ञ के द्वारा साम्ब शिव तथा चक्रपाणि भगवान् विष्ण् के समर्चन द्वारा जिस उद्देश्य की सिद्धि अभिप्रेत थी, वह निम्न श्लोक

में निहित है, जो द्रष्टव्य है— विधेहि स्वातंत्र्यं भुवन सुखदं भारतभुवो यतो हिन्दूधर्मो जयति जगतादप्रतिहतः। मिथः प्रीतिर्लोके भवतु नियता शान्ति सुखदा त्वयीशेऽस्मद्भक्तिः प्रसरतु भवभ्रान्ति भयहृत्।।

सन् 1940 ई0 के आस-पास भयावह द्वितीय महासमर से उत्पन्न विघ्नों तथा उपद्रवों की शान्ति हेतु और देश के स्वातंत्र्य, सुख, वैभव और सुभिक्ष आदि के साथ ही हिन्दुओं के मानवर्द्धन की कामना से यह 'हरिहरात्मक महारुद्रयाग' तत्कालीन काशीवासियों के लिए बड़े ही आकर्षण का विषय सिद्ध हुआ था।

#### द्वितीय अनुष्ठान

इस महारुद्रयाग का दूसरा अनुष्ठान उपर्युक्त विधि-विधान से ही ससमारोह दिनांक 17 मार्च 1942 ई0 चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से 4 अप्रैल तक देवभूमि ऋषिकेश के मायाकुंड में (जाह्नवी के पश्चिम तट पर स्थित) उत्तरायण सूर्य की स्थिति में, शुद्ध एवं शुभ नक्षत्र में, श्री युगल किशोर बिरला (गुप्ताख्य) के आर्थिक सहयोग से भगवान् रुद्र की कृपा से और उनकी कृपा हेतु सहस्रचण्डी-पाठ सहित आयोजित हुआ। इस आयोजन में सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा-पंजाब की भी सहभागिता रही। इस 'अतिरुद्र महायज्ञ' के अनुष्ठान से जिस फलश्रुति की कामना की गई थी, वह निम्न श्लोक द्वारा अभिव्यक्त की गई है—

शस्यैर्मेंदुर विग्रहा वसुमती श्रीभारतीयास्तु नः। धर्मः पूर्ण कलाभिरत्र सततं वेदोदितौ वर्धतां हर्यक्षास्तरुणा बसन्तु बलिनो दुष्टान् रिपून् हिन्दवः।।

देशेऽस्मिन् सुखिता बसन्तु परितो गावः पयस्सिवन्वयः

जैसा कि इस याग के इस संकल्प-श्लोक से विदित होता है, इसका भी उद्देश्य हिन्दू जाति के जन-धन की रक्षा तथा उनमें तेज एवं श्री की वृद्धि के उद्देश्य से अभिप्रेरित था। इसी प्रकार यज्ञान्त में देवाधिदेवों से माँग की गई थी कि इस देश में विभव सम्पन्नता व्याप्त हो, सभी जन धन-धान्य से समृद्ध हो, यहाँ की पृथ्वी हरी-भरी वनस्पतियों से सुशोभित बनी रहे, गायें प्रचुर मात्रा में दुग्ध-दान करें, धर्म अपनी पूर्ण कलाओं के साथ विकसित हो, वेद-ज्ञान अभिवर्द्धित हो, पुराणों में जिन पराक्रमी हर्यक्षों का वर्णन किया गया है, वैसे ही भारत के नवयुग के नवयुवक बली और संगठित होकर देश के शत्रुओं का दमन करें।

<sup>\*</sup> रोहित नगर, नरिया, वाराणसी-221005

<sup>1.</sup> मालवीय जी के लेख—संपा0 कृष्णकान्त मालवीय-पृ0 101 पर आधारित।

#### महारुद्रयाग का तृतीय चरण

महारुद्रयाग के आयोजन-क्रम का तीसरा चरण पूर्ण स्वातंत्र्य की प्राप्ति-हेतु (समस्त सुषमा-निधान, बंगभूमि से लेकर हिन्दूकुश पर्वतमाला के अन्तर्गत जिसका राज्य-विस्तार था, ऐसे चिरचर्चित) चन्द्रगुप्त की राजधानी पाटलिपुत्र में अनुष्ठित हुआ। भगवती भागीरथी के तट पर निर्मित हिन्दूसभाभवन की सुन्दर धर्मशाला के विशाल प्रांगण में, धनिकों में परम श्रेष्ठ श्रीयुगल किशोर बिरला के सहयोग से एवं प्रतिनिधित्व में यह आयोजन संपन्न हुआ। उस यज्ञस्थल के पास ही बिरला परिवार द्वारा शिवशंकरसहित श्रीलक्ष्मीनारायण का भव्य मंदिर निर्मित कराया गया था। इस यज्ञ में याज्ञिक श्रीयुगल किशोर बिरला थे (जिन्हें मालवीय जी द्वारा अनुमित प्रदान की गई थी) तथा तत्कालीन संस्कृत महाविद्यालय (का०हि०वि०वि०) के प्राचार्य पं० विश्वनाथ शास्त्री यज्ञ के आचार्य थे। इस यज्ञ के यजनीय थे—श्री श्रीपित भगवान् विष्णु। इसके माध्यम से जिस कामना की पूर्ति की प्रार्थना की गई थी, उसे निम्नलिखित श्लोक द्वारा अभिव्यक्त किया गया है—

देशेऽस्मिन् सर्वतोद्राग् दिशि विदिशिततो दुन्दुभिध्वानपूरो मङ्गल्यः पूर्णमास्तां समरविजयिनामार्ययूनां सुरेशाः। पूर्णं स्वातंत्र्यमिष्टं सकलजनिहतं सर्वसम्पत् समृद्धं सम्मानायैकबीजं वितर मध्रिपो इन्दिरावास भूमन्।।

इस श्लोक के भी माध्यम से वे ही कामनाएँ प्रतिध्वनित हैं जो इसके पूर्व के महायागों में प्रार्थित थीं। इसमें भी सर्वजन समृद्धि को प्राप्त हो, सबका मंगल हो, आर्य युवक विश्वविजेता हों, पूर्ण स्वातंत्र्य की प्राप्त हो और भगवान मधुसूदन इस भूमि को धन-धान्य से सम्पन्न करें, ऐसी इच्छा व्यक्त की गई थी। इसी भव्यता, शुचिता, विधि-विधान और फल-प्राप्ति की कामना से क्रमशः मथुरा और हरद्वार में भी ऐसे ही यज्ञों का अनुष्ठान एवं आयोजन महामना के निर्देशन में सम्पन्न हुए। फलतः सन् 1947 ई0 में भारत देश स्वतंत्र हो गया। परतंत्रता की बेड़ियाँ टूट गईं और देश सार्वभौम सुख-संपन्नता की ओर अग्रसर हुआ। महामना की यह मान्यता कि धर्म ही देशप्रेम का आधार है, सार्थक प्रमाणित हुई। यही शाश्वत सत्य इस देश में सनातन काल से प्रमाणसिद्ध रहा है और आगे भी रहेगा।

# महामना मदन मोहन मालवीय की लक्ष्य वेध-शैली

डाॅ० महेन्द्र नाथ दूबे\*

मदन मोहन अखाड़ा (मन्दिर) के गुआ (सुपाड़ी) नारियल, रजनी गंधा, शीतल पाटी, शमी, नारंगी, डाभ (चकोतरा) चम्पा, कहरी, चीनी-चम्पा, लाजवन्ती-लता, कोला (केला), अशोक (लाल फूलोंवाला) गन्धराज, नगेसर (नाग केशर) सेमल और नाग चम्पा के गाछों (वृक्षों) और शाल्मली लताओं के बेढ़े (चहारदीवारी) से घिरी अंगनैया में मौलश्री, शिउली (शेफाली-हरसिंगार) के भूरे फूलों पर बकेंया (घुटुरुन) खींचते चलने की वेला में ही—''मदन मोहन'' नाम का परिचय हो गया था।

(1) होश-सँभालने की उम्र होने लगी तो पारिवारिक-परम्परा के परिपालन में '**'पाँच मदन मोहन-परिक्रमा''** करवाए जाने से (1) इम्फाल (मणिपुर) (2) उदयपुर (आगरतला)-त्रिपुरा की पुरानी राजधानी (3) मदनमोहन कुञ्ज (जो बाद में करीमगंज नाम से प्रसिद्ध हुआ; देश-बँटवारे के समय कुछ महीने पूर्वी-पाकिस्तान का हिस्सा बनने के बाद फिर भारत का भाग बना। कुशियारा (बोराककी शाखा नदी) के बाएँ किनारे बसा नगर। दाहिने किनारे का तकीगंज अब ''बांगला देश'' का भाग है।) (4) **ब्राह्मण बाड़िया** और (5) ढाका गाँव जो महाप्रभु चैतन्य देव के पिता जी का गाँव है। ये दोनों स्थान ही तब शिलहट (श्री हट्ट जिले में थे) इन पाँचों स्थानों के मदन मोहन मन्दिरों के दर्शन के उपरान्त "मदन मोहन देउता" (देवता) के व्यापक-प्रताप (बतलाया गया कि ''श्री कृष्ण'' नाम के प्रचारक महाप्रभ् चैतन्य देव के भी पैतृक गाँव में श्री कृष्ण ''मदन मोहन'' नाम से ही विख्यात थे)। उससे भी उत्तर में मैमन सिंह, रंगपुर, कूचविहार से लेकर उपर्युक्त पाँचों स्थानों के अलावे और भी दक्षिण माण्डले, रंगून तक की, भारतीय उपमहाद्वीप की पूर्वी सीमा रेखा को मदन मोहन अखाड़ों (मन्दिरों) की शृंखला स्रक्षा-घेरा प्रदान करती रही है। देवता की महिमा से जब बाल-मन आश्चर्यचिकत हो रहा था, तभी बाबा (स्वर्गीय मारकण्डेय जी) ने यह कहकर और भी अचम्भित कर दिया कि— ''एक अति साधारण पुरुष आदमी, जिसका नाम ''मदन मोहन'' है, अपने क्रिया-कलापों से शीघ्र ही मदन मोहन देउता जैसी ही महिमा प्राप्त कर लेने वाला है।"

2. अचरज से चकराई आँखों को दिलासा देने के लिए उन्होंने समझाया था-जैसे तुम्हारे बंगाली साथी, अकसर एक छन्द गाते रहते हैं—

''देवतारे प्रिय करि प्रियरे देवता।''

मनुष्य अपने अतिशय प्रेम-भाव से देवता को भी अपना प्रियतम बना लेता है—( मीरा बाई की तरह) तथा अपने प्रिय को

ही देवता बना लेता है—(जैसे कि राधिका ने अपने बाल-सखा श्री कृष्ण को देवता बना दिया था;) उसी तरह मनुष्य-समाज के सुचिन्तक, साधारण मनुष्य द्वारा ही ऐसे-ऐसे काम कर गुजरने पर जो हजारों-हजारों मनुष्यों द्वारा एक जुट होकर ही करने पर ही संभव हों-जो वेद के-"**सहस्र शीर्षः पुरुषः**" की तरह एक से ही अनन्त की शक्ति-मत्ता का परिचय करवा दें, उन्हें देवता ही बना देते हैं। आज के जमाने में ऐसे अत्लित बलधामी क्रिया-कलाप कर गुजरने वाले जिस महापुरुष की मैंने बात की, "मदन मोहन" नाम के साथ उनकी ब्राह्मण-उपजाति—उपाधि को जोड़कर उनका पूरा नाम है—मदन मोहन मालवीय। मनुष्य का अपने कर्मों से देवता बनना कोई अचरज की बात नहीं है, जैसे कि अपने दुष्कर्मों से राक्षस बन जाना। जैसा कि कंस और रावण ने राक्षस बन दिखाया। नहीं तो कंस तो देवताओं में भी महा-देवता; अवतारों में भी श्रेष्ठ पूर्णावतार-स्वयं भगवान्:—''एते चांशु कला सर्वे, कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।" का सगा मामा था और रावण की तो अगली पीढ़ी ही मनुष्य जाति से ऊँचे उठकर "यक्स" जाति में पहुँच चुकी थी। ऋषि पुलस्त्य के सुपुत्र—विश्रवा-रावण के पिता तो श्रेष्ठ यक्ष थे ही, रावण का बड़ा भाई कुबेर तो यक्षराज और दिगपाल हो, देवताओं का भी धनाध्यक्ष बन चुका था। बड़े भाई द्वारा सहर्ष भेंटकर दी गई ''सोने की लंका'' का राजा बनकर भी अपने कुकर्मों से दशग्रीव रावण राक्षस कहलाया। तो अपने सुकर्मों से ये मदन मोहन मालवीय, अलावा इनके एक और मोहन, माने "**मोहन दास करमचन्द गांधी जी** तथा अभी जिनकी रची गई कविता की चर्चा की, वे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी शीघ्र ही देवता सदृश यशस्वी बनेंगे ही; बनेंगे।"

"अंग्रेज लोग किसी भारतीय आदमी को देवता मानने देंगे क्या?"—अबोध बाल-मुख से निकला मेरा प्रश्न था।

"अंग्रेज चाहे कितने भी आततायी हैं किन्तु अपने विद्वानों की बातों को सर झुकाकर सलाम करते हैं। उनका एक बड़ा नाटककार "बर्नाडशा"- सुपरमैन यानी महापुरुष की परिकल्पना का पैरोकार है। महान् वैज्ञानिक आईन्स्टीन ने तो महात्मा गांधी को "अविश्वसनीयता की सीमातक पहुँचा हुआ महान् पुरुष माना है, तो वर्टलैंड रसेल ने तो "क्रिश्चियानिटी" माने ईसाइयत को ही अस्वीकार कर दिया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को "टैगोर" बना योरोप का सबसे बड़ा पुरस्कार नोबुल प्राइज अंग्रेज दे ही चुके हैं। उनके विश्व भारती शान्ति निकेतन में अनेक अंग्रेज नौकरी करते हुए शिक्षण कार्य कर रहे हैं और मदन मोहन मालवीय जी के "काशी हिन्दू विश्वविद्यालय" के इंजीनियरिंग

भूतपूर्व सहायक सम्पादक, प्रज्ञा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (प्रोफेसर क्वाटर नं. 05, गोपाल कुंज, मुजफ्फर खान बाग, सेंट जॉन-रघुनाथ रोड, सेंट जॉन पी. जी.
 कालेज के पीछे, आगरा-282002)

कालेज के प्रिंसिपल डॉक्टर किंग तो खाँटी अंग्रेज हैं ही, उनके अलावे और भी कई विद्वान् अंग्रेज उनके यहाँ अध्यापन कार्य करते हैं ''सेंट्रल हिन्दू कालेज'' की संस्थापिका एनीबेसेन्ट जी तो विशुद्ध योरोपियन अंग्रेज हैं ही, उन्होंने तो अपनी सुप्रतिष्ठित पूरी संस्था को ही मालवीय जी के ''हिन्दू विश्व विद्यालय'' में मिलाकर मालवीय जी की महापुरुषीय प्रतिभा को और भी ऊँचाई प्रदान कर दी है। देखना ये मदन मोहन मालवीय जी, अपने विपक्षी के समक्ष प्रत्युत्तर या प्रतिक्रिया करने की अपनी सुचिन्तित-शौली के कारण उन्हें मात देते हुए जिस तरह अपनी लक्ष्यसिद्धि करते जा रहे हैं, उससे शीघ्र ही वे योरोप तो क्या समूचे विश्व के विश्वविद्यालयों में भी सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालयहिन्दूविश्वविद्यालय का मस्तक ऊँचा करके ही रहेंगे। तुम सौभाग्यशाली होगे पौत्र! यदि मैं जीता रहा तो तुम्हें ढाका या कलकत्ता विश्वविद्यालय न भेंज कर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ही भेंजूँगा।''

#### 3. कालेर कपोल तले

आजकल आगरा नगर के जिस छिलींईंट (घटिया आजम खाँ) के पास के बाग मुजफ्फर खाँ नामक मुहल्ले में मैं रह रहा हूँ; उसके उस छिलीं ईंट मुहल्ले के अधिवासी अपने एक सम्बन्धी लाहिड़ी मोशाय के यहाँ आगरा यात्रा के दौरान ठहरने की बेला में ही ''आगरे का ताजमहल''( ताज बीबी का रौजा) निहार कर ही महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उसे आख्या दी थी अथवा यूँ कहें कि उसे उपमा दी थी—

"कालेर कपोल तले एक बिन्दु नयनेर जल" "समय के गाल के गहवर पर ठहरा हुआ आँसू का एक बिन्दु उसके परिपार्श्व में रहते हुए प्रेम की स्मृति को चिरस्थायी कर दिखाने की एक सर्व समर्थ सम्राट् मनुष्य की असाधारण-शक्ति का एक जीवन्त नमूना—ताज-महल देखते-देखते प्रायः ही मदन मोहन मालवीय जी द्वारा वाराणसी नगर के दक्षिणी भाग में स्थित तत्कालीन नगवा गाँव (जो या तो पहले-नगा-गाँव-नगा साधुओं का निवास था या नव-गाँवों के समूह का मिलाकर दिया जाने वाला—"नव गाँव" नाम था। वैसे अब भी "नगवा" नामका मुहल्ला अस्सी घाट और लंका के गुप्ता घाट या सामने घाट के बीच सिमटा एक छोटा-सा मुहल्ला रह गया है। "तुलसी घाट राम लीला" की "लंकाकाण्ड" की लीलाएँ उसके जिस छोर पर होती थीं, ठीक वहीं हिन्दू विश्वविद्यालय की कोसों विस्तृत चहार-दिवारी का गोप्र (विशाल द्वार) बना है। वहाँ से नगवाँ-संकट मोचन जाने वाले चौराहे तक को अब लंका मुहल्ला ही कहा जाता है) तथा उसके ईर्द-गिर्द के दस और गाँवों (जो तत्कालीन काशी नरेश महाराजा प्रभु नारायण सिंह जी ने दान में दिए थे) जो लगभग 1300 एकड़ जमीन के विस्तार में फैले थे कि पवित्र धरती पर, काशी नरेश के रामनगर क्षेत्र और किले के सामने गंगा के इस पार, बायें किनारे पर, विश्व के सबसे बड़े क्षेत्र फल वाली यूनिवर्सिटी के रूप में स्थापित है। महाविद्यालयों-खेल-मैदानों-औषधीय और वानस्पतिक उद्यानों, छात्रावासों-शिक्षक-शिक्षिका आवास-भवनों, स्वास्थ-संवर्धक हालों (जिमनास्टिक हाल), कला-भवन

संग्रहालयों, आयुर्वेद एवं मेडिकल चिकित्सालयों सहित कई सैकड़ों विशाल भवनों की भव्य भारतीय वास्त् शास्त्रीय अनोखी-कलाराजि की याद स्वभावतः ही याद आ ही जाया करती है। विशेषतः इसलिए कि इसके निर्माण के पीछे प्रेमिका की पावन-स्मृति में मोती से चमकते इस अश्रु बिन्दु के विपरीत जहाँ सैकड़ों-सैकड़ों भवन आने वाली पीढ़ी के तन-मन-मस्तिष्क को स्वस्थ-सुशिक्षित और समुन्नत करने की भावना से एक दीन-हीन, सर्वथा संसाधन हीन व्यक्ति द्वारा, जिसमें अपने किसी प्रिया या प्रियतम की याद अथवा प्रिय को देवता बना चुकने के परमाराध्य मन्दिर के रूप में स्मृति-सौध या पूजा स्थल बनाने, अपने अथवा अपनी संततियों के निवास स्थान अथवा रोजी-रोजगार के उद्योग-भवन बनाने की कोई लालसा रंच-मात्र भी नहीं थी। सारा सम्प्रसार-सारा निर्माण केवल उस भावी-भारत के बालक-बालिकाओं, ऊँच-नीच, जाति-धर्म भावना का कोई विचार किए बिना;—सर्वथा सभी के हितार्थ समर्पित है। इसलिए और भी कि समय सरिता की लहरों की उडान-गिरान और फिर अचानक आई प्रबल प्रचण्ड बाढ़ के दारुण बहाव में असहाय हो बहते-बिललाते, अन्ततः उसी की कृपामय गोद में शिक्षा पाने का, पूज्य स्वर्गीय बाबा द्वारा की गई मनोकामना को पूरी करने का स्योग पाने का स्योग तथा फिर वहीं सम्पादन एवं शिक्षण कार्य कर गुरु-ऋण से (उऋण) होने का सौभाग्य भी मुझ जैसे अकिंचन को भी मिला था।

#### 4. आँसुओं के सैलाब के थपेड़ों की पटखनी

पवित्र-भारत भूमि में मनुष्य से देवता बनते महानुभावों की भावी -भव्य मूर्ति की परिकल्पना में बाबा के वृद्धमन के साथ मेरा अबोध बालमन अभी सुख-स्वप्न देखने में विभोर ही था कि एक सुबह अचानक ''अल्ला हो अकंबर'' और ''वन्देमारतम्'' के गगन-विदारक नारों से जो आतंक का सैलाब उठा; उसकी टकराहट में देश का मन हिन्दू-मुसलमान के दो फड़ों में बँटा प्रत्यक्ष हो उठा। जाते-जाते अंग्रेज शासकों ने देश के बँटवारे की जो सीमा-रेखा ब्रिटिश कानून वेता सर सिरिल रैडक्लिक ने खींच दी थी;—हालांकि उसके पहले के पूरे जीवन भर भारत तो क्या? योरोप के जिब्राल्टर शहर से एक कदम भी पूरब उन्होंने कभी नहीं रखा था, भारत की भौगोलिक या राजनैतिक स्थिति जानने की कभी चेष्टा नहीं की थी। बुलाए भी गए थे मात्र चालीस 40 दिनों के लिए। उनकी सहायता के लिए रैडक्लिफ कमीशन में चार भारतीय दिए गए थे, दो हिन्दू और दो मुसलमान। जो किसी भी सीमांकन पर सहमत नहीं होते थे, अतः रैडिक्लफ ही अपनी मन-मर्जी से सीमा-रेखा खींच देते थे। आधार बताते थे धर्मानुसार जनसंख्या का बहुमत और राजनैतिक दृष्टि से चुने गए एम0एल0ए0, एम0पी0 की संख्या तथा चुनी गई सरकारों का संगठन। किन्तु पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में खान अब्दुल गफ्फार खाँ के बड़े भाई डॉक्टर बादशाह खान की सरकार बहुमत के आधार पर संगठित थी और वे सभी भारत के साथ ही रहना चाहते थे। पंजाब के तत्कालीन मुख्य मंत्री मुसलमान होते हुए भी मुस्लिम लीग के साथ नहीं जाना चाहते थे, किन्तु पश्चिमी पंजाब और सिंध में मुस्लिम आबादी अधिक होना बतलाकर रैडिक्लफ ने नदी-धारा-सी लम्बी सीमा-रेखा खींच दी। बंगाल में जरूर सुहराबवर्दी की मुस्लिम-लीगी-सरकार थी किन्तु पूर्वी पश्चिमी बंगाल के कई मुस्लिम-हिन्दू नेता देश के बँटवारे पर तो तैयार थे, किन्तु 1905 ई0 के बंग-भंग के खिलाफ आन्दोलन में सफल होने के आदर्श पर बंगाल का बँटवारा न होने देकर "वृहत्तर-बंग" के नाम से एक अलग ही स्वतन्त्र राष्ट्र की माँग रह-रहकर उठा दे रहे थे जिसमें असम का शिलहट जिला ही क्या? समूचा असम क्षेत्र जब कि तब असम में आज के अरुणाचल, नगालैंड, मेघालय, मिजोरम, सभी असम के हिस्से थे, इस बिन्दु पर बांग्ला भाषा-भाषी हिन्दू-मुसलमान गलबहियाँ लेते हुए बंगला को ही भ्रष्ट करके बोली जाने वाली भाषा असमिया को मानते हुए असमिया को शुद्ध कर पुनः बंगला कर लेने; चाय बागानों को चलाने के लिए उड़ीसा, झारखण्ड, छोटा नागपुर, सन्थाल परगना, बिहार संयुक्त-प्रान्त से लाए गए सभी श्रमिकों को सातखोर कुली जाति का हिन्दुस्तानी बताकर बंग-माता की पवित्र भूमि से उखाड़ फेंकने पर भी समय-समय पर सहमत हो जाया करते थे। ऐसी दशा में पूर्वी-भारत की विभाजक सीमा-रेखा रैडिक्लफ ने मन-मर्जी मुताबिक खींच देने की स्विधा आसानी से पा ली थी; क्योंकि पूरबी भारत की जो मिली-जुली सामासिक संस्कृति बन गई थी उसका कोई एकजुट विरोधी-मंच नहीं था, सिवा इसके कि असम के मुख्य मंत्री नगा-मिजो-लक्षाई, खासी, गारों आदि पहाड़ी नेताओं को मिलाकर यदि दबाव बनाने में सफल हो गए थे कि असम के किसी हिस्से पर रैडक्लिफ की बँटवारे की लकीर न खींची जाय। अतः सर रैडक्लिफ द्वारा जो सीमा-रेखा खिंचवाई थी उसमें असम-प्रदेश के किसी भाग के बँटवारे की परिचर्चा न होने पर भी उसका दक्षिण-पश्चिमी जिला शिलहट किसके हिस्से में पड़े? इसके लिए व्यापक जोड़-तोड़ शुरू हो गई थी। जिसके चलते सुदूर चहगाँव, नोआखाली कोमिल्ला, ढाका, जैसोर, खुलना तक से जत्थे-के-जत्थे मुस्लिम युवक नारे लगाते हुए शिलहट जिले के विभिन्न भागों में डेरे डाल कर शिलहट को मुस्लिम बहुल जिला सिद्ध करने की कोशिशों में वहाँ बसे हिन्दुओं को खदेड़ने में जुट गए थे। मुस्लिम-लीग के कर्त्ता-धर्ता कायदे आजम मुहम्मद अली जिन्ना ने "डाइरेक्ट ऐक्शन डे" घोषित कर दिया था, जिससे कलकत्ते में हिन्दू-हत्या का कत्ले-आम शुरू होकर प्रतिक्रिया में मुस्लिम-बध की मुहिम छेड़ चुका था। हालात् को किसी तरह काबू में आते न देख अन्ततः महात्मा गांधी के रूप में "वन मैन फोर्स"-एकल व्यक्ति सेना-भेंजकर ब्रिटिश-सरकार ने जैसे-तैसे उसे शान्त किया। किन्तु वहीं आग जो बिहार में फैली तो गांधी उधर जायँ कि इधर नोआखाली में हिन्दूहत्या, हिन्दू नारी धर्षण, कुँआरी हिन्दू कन्याओं को बलात् व्याहने बलपूर्वक हिन्दू पुरुषों को मुसलमान बनाने अथवा अल्लाह को प्यारे होने का जो दुर्दान्त कष्ट शुरू हुआ, उसे शान्त करने के लिए गांधी ने नोआखाली की धरती की पैदल-पैदल बहुत खाकछानीं किन्तु हर हमेशा सफल होते

ही रहने वाले महात्मा गांधी को यहाँ पहली-पहली बार भारी असफलता झेलनी पड़ी। इसके प्रभाव में बंगाल-प्रान्त की पूर्वी सीमा पर स्थित असम प्रान्त के दो जिलों—शिलहट और शिलचर की जनता पर भयानक प्रभाव पड़ा। शिलहट असम में होते हुए भी बंगाल से सटा होने से बंगाली बहुल था। असम प्रदेश की राजधानी शिलांग शिलहट से ही सटी थी, इतने करीब कि शिलहट की सीमा से आधे घण्टे भी पैदल चलो तो शिलांग की सीमा में पहुँच जाओ। जबकि जिस असम प्रदेश की राजधानी शिलांग की यह पहाड़ी उपत्यका थी, उसका मैदानी आरम्भिक सीमा भाग-गुवाहाटी से सटा खानापाड़ा क्षेत्र भी इतनी दूर था, कि उस जमाने में बस से भी जानेपर छह घण्टे का रास्ता था। शिक्षा विशेषतः अंग्रेजी-शिक्षा से जुड़ने में अग्रणी होने के कारण असम की उस शिलांग राजधानी की सभी प्रमुख जगहों, सभी ऊँचे ओहदों पर "शिलेटी" अर्थात् शिलहट निवासी बंगाली ही जमे थे। असिमयों को दबाए रखने में उन्हें कभी कोई गुरेज भी नहीं होता था। अतः शिलहट को असम से अलग-विलग करने की उस मुहिम में असमी लोग तटस्थ ही बने रहे थे।

#### 5. पाँव तले से खिसकी जमीन की जगह वज्र-शिला का आश्रय

नोआखाली में सफल होने और शिलहट को लगभग दबोच लेने की विजयी-मुद्रा के कारण मुसलमानों का आतंक शिलहट के पार्श्ववर्ती हमारे शिलचर जिले में भी बढ़ता चला आ रहा था। स्थानीय बाङ्लाभाषी मुसलमानों में उनके नेता प्रायः ही ऐलान करते रहने लगे थे कि कलकत्ते के बगल के खुलना नोआखाली को जब हिन्दुओं से खाली करवा लिया गया, तब कछार-शिलचर को हिन्दू-रहित बनाने में कितना वक्त लगेगा? हिन्दुओं की कमजोर रग अब उनकी पकड़ में आ गई है। ज़बह कर मार दिये जाने से ये नहीं डरते, किन्तु अविवाहित जवान बेटी और विवाहित नई नवेली बहू को अगर जिस किसी तरह भी बेइज्जत कर उनकी अस्मत लूट लो, तो ये जिन्दा ही मुर्दे हो जाते हैं। कुछ कर न पाने की दशा में खुद ही मुँह छुपाकर भाग जाते हैं।

अपनी योजना के अनुसार जब उन्होंने यही अभियान चलाया, तब बड़े-बड़े जमींदार, रईस हिन्दू ही क्या? साधारण कुली मजदूर भी अपनी जवान बहू-बेटियों को अधिकाधिक सुरक्षित जगहों में छिपाने, अपेक्षाकृत बड़े-बूढ़ों, प्रौढ़ा-बहुओं और ऐसे छोटे बच्चों को, जिनको ज़बह करते जाते खूँखार कातिल को भी दया आ जाए, मौका देखकर बिहार संयुक्त प्रान्त (तब का उत्तर प्रदेश) उड़ीसा-मध्यप्रदेश पठाने लगे थे। अगरतला-अखौरा-ढाका-जैसोर होकर सियालदह कलकत्ता का मार्ग सबसे छोटा होने पर भी अत्यन्त असुरक्षित हो गया था। सैंतीस पहाड़ी सुरंगे पार कर लुमडिंग होते हुए गुवाहाटी-पाण्डू पहुँचाने वाली असम बंगाल रेलवे बन्द पड़ी थी। शिलांग के पहाड़ी इलाके से असम के मैदानी क्षेत्र में जाने का कोई साधन नहीं था। अतः विवश होकर उसी शिलहट के करीम गंज, भैरव बाजार मैमन सिंह, रंगपुर-कूच विहार की रेल लाइन के रास्ते अथवा ब्रह्मपुत्र कोगोआनन्द जहाज फेरी घाट से

पारकर सीमान्त स्थित पार्वतीपुर पारकर पं0 बंगाल के राधिकापुर, बारसोई होते हुए बिहार के किटहार पहुँचने के रास्ते पर लोगों को पठाया जाने लगा। उसी क्रम में अपने बूढ़े बाबा और अवस्था से अधिक बुढ़िया का वेश बनाए हुए माँ के साएँ की आड़ लेकर मैं भी राधिकापुर पहुँचने में सफल हुआ।

जो भीषण आघात सहकर हम आये थे और पड़ोसी चट्टगाँव-कोनिला-नोआखाली में हिन्दू परिवारों की जो दुर्गति देखी थी, उसे सहन करने की सबसे मजबूत आधार भित्ति जिनसे, हमें और पूर्वी-बंगाल में बेइज्जत होकर भी मरने से बच रहे हिन्दुओं को उससे भी अधिक उन हिन्दू नवयुवतियों को जो बेइज्जत होकर भी भाग आने में समर्थ हुई थीं, उन युवती-बध्ओं को जिन्हें बे आबरू करने के बाद मार देने की धमकी देने पर भी ''इस्लाम-कबूल'' नहीं करवाया जा सका था और जो फिर हिन्दू धर्म ग्रहण करना चाह रही थीं, उन नवयुवकों जो अपनी पीडिता-पत्नी को फिर से अपनी जीवन संगिनी बना लेने को दृढ़-प्रतिज्ञ थे मिली; वे थे—**पण्डित मदन मोहन मालवीय जी।** ऐसे हत भागों को वैसे तो पूर्वी-बंगाल में बसे रह गये प्रमुख न्याय-विदों, समाज सेवियों, राजनेताओं के साथ-साथ हिन्दू-धर्माचार्यों ने भी पुनः हिन्दू धर्म में ले लेने की मुहिम चला रखी थी किन्तु हिन्दू-धर्म द्वेषी तब उनके इस कार्य को हिन्दु-धर्म की महिमा गिराने वाला अधर्मी-कार्य घोषित किए जा रहे थे। ऐसी दारुण-घड़ी में वृद्धावस्था की असहनीय बीमारी की पीड़ा से अकुल-व्याकुल रहने पर भी महामना ने; जिन्हें कट्टर हिन्दू मानने वाले ब्राह्मण के रूप में प्रचारित किया जाता था, यद्यपि कि उन्होंने अछूतों को मन्दिरों के गर्भ-गृह में प्रवेश कर देव-दर्शन करने, काशी के घाटों पर अछूतों को सामूहिक रूप से जनेऊ पहनाकर संस्कारित कर द्विजत्व प्रदान करने का कई-कई बार आन्दोलन चलाया था, फिर भी जिन्हें छुआछूत बरतनेवाला शुद्धतावादी ब्राह्मण ही माना जाता था—उन्हीं मालवीय जी ने काशी में हिन्दू-धर्म वेत्ता विद्वानों की एक बहुत बड़ी सभा बुलाई; इस प्रस्ताव पर व्यवस्था देने के लिए कि ''नोआखाली तथा अन्य-अन्य जगहों पर जिन्हें बरबस बेदीनकर मुसलमान बना दिया गया था और अब जो वे फिर से हिन्दू-धर्म में आना चाहते हैं, तो क्या हिन्दू-धर्म शास्त्रों की व्यवस्था अनुसार उन्हें ऐसा करने की अनुमित दी जा सकती है?"

हिन्दू-धर्म के परम्परावादी, अनुष्ठानिक ब्राह्मण के रूप में विख्यात महामना ने स्वयं भी इसे स्वीकृति देने के पक्ष में जोरदार बहस की। सभी को आश्चर्यचिकत करते हुए काशी की उस धर्मशास्त्र वेत्ताओं की सभा ने सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया कि बलात् मुसलमान बनाए गए हिन्दुओं को फिर से हिन्दू-धर्म में शामिल कर लेना सर्वथा उचित तो है ही, इसके लिये उन्हें किसी भी प्रकार की शुद्धि-प्रक्रिया सम्पन्न करने की भी कोई जरूरत नहीं है। केवल गंगाजल का पवित्र छिड़काव, आचमन और अपने इष्ट-देव का स्मरण कर लेना मात्र ही पर्याप्त है।"

मालवीय जी के इस महान् कृत्य से जाने कितने टूटे दिल, बिखरे परिवार जुड़े। हालांकि नोआखाली के हिन्दुओं की दुर्दशा की पीड़ा ही उन्हें इतनी विद्वेलित कर गई कि वे शीघ्र इस धराधाम को छोड़ करुणामय प्रभु के लोक सिधार गए।

#### 6. शिखर की सीढी का सन्धान

स्वाभाविक था कि जब मुझे उन महामना मालवीय जी की पावन—कीर्ति ''काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का विद्यार्थी बनने का सुयोग मिला, तो मैं यह जानने की हर सम्भव कोशिश करता कि जिस मालवीय जी की छवि कट्टर ब्राह्मण की ऐसी थी कि वे जेल में भी अपने ब्राह्मण रसोइएँ का बना भोजन ही करते थे। महात्मा गांधी के कई-कई दिन अनशन करने पर भी जो अंग्रेज सरकार जल्दी हिलती नहीं थी, मालवीय की इसी ब्राह्मण छिव के चलते उन्हें जेल पठाते समय उनके साथ उनके रसोइयाँ चौका-बरतन करने वाले कँहार तेल मालिस करने वाले अखाड़िया पहलवान को भी उनके साथ जेल के अन्दर जाने देती थी, ताकि उन्हें एक दिन भी उदास न रहने पड़े जो गोलमेज कान्त्रेंस में हिस्सा लेने जाते समय साथ में गंगाजल ले जाना नहीं भूले थे, ताकि इंग्लैण्ड या किसी भी और ठौर के जल को गंगाजल की बूँदों से पवित्र कर लेने के बाद ही ग्रहण करें, उनमें ऐसी अकल्पनीय ताकत कहाँ से आ गई कि प्रचलित हिन्दू-परम्पराओं के खिलाफ जाकर ऐसे चमत्कारी निर्णय ले लिवा सकें? मन-मस्तिष्क की ऐसी ऊर्जा उनमें आखिर आई भी तो कैसे? जबिक बतलाया जाता रहा है कि कोई भी निर्णय लेने के पहले वे कई-कई दिनों तक धर्म-शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन करके उन्हीं में से सु-पुष्ट आधारों को ढूँढ़ निकाल कर सुव्यस्थित जाँच-परख करने के बाद हर अपने निष्कर्षों को प्रमाणों सहित पहले लिखकर तैयार कर लेते थे, तब धर्मवेत्ता पण्डित-वर्ग से उनकी चर्चा करते थे। चेतना की इतनी ऊँची छत पर शून्य धरातल से कदम-कदम चढ़ते हुए वे उस सर्वोच्च शिखर पर किन सीढ़ियों का सहारा ले चढ़ सके थे? उन्हें जानने में मैं जी-जान से जुट गया।"

निश्चय ही—''जहाँ चाह तहाँ राह''—के मुहावरे ने मुझे अवसर भी प्रदान किया। बिरला—छात्रावास में निवास करते हुए वहाँ के किंवदन्ती पुरुष कैन्टीन ठेकेदार अप्पा महाराज, रुइया छात्रावास के ऊपरी तल पर चलने वाले संगीत महाविद्यालय की कक्षाओं में पढ़ते समय वहाँ के शिक्षक-मालवीय जी की ही वेश-भूषा में हर-हमेशा रहने वाले पण्डित शिवप्रसाद जी, स्वनाम धन्य संगीताचार्य पण्डित ओंकार नाथ ठाकुर, हिन्दी विभाग के डाँ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रभुनारायण आचार्य, डाँ० राजपित दीक्षित, पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी, मेरे शोध निर्देशक पण्डित करुणापित जी त्रिपाठी, काशी विश्वविद्यालय में सेवा कार्य करने का सुअवसर सहायक-संपादक-प्रज्ञा मिलने, उसके संपादक डाँ० ए० बी० मिश्र, डाँ० वासुदेव शरण अग्रवाल, श्री राय कृष्ण दास जी, फिर राय साहेब की इच्छा के अनुपालन में उनके कलाभवन की पत्रिका ''छवि'' के चित्रों की छपाई

में रंगों का प्रुफ जाँचने जाते रहने पर उनके परममित्र और हिन्द्विश्वविद्यालय के कोषाध्यक्ष भैया जी, बाबू ज्योति प्रसाद गुप्त जी, बी-एच0 यू0 साइंटिफिक रिसर्च जरनल और का0 हि0 वि0 जनरल ''प्रज्ञा'' के युग्म सम्पादक डाँ० नन्दलाल सिंह जी, हिन्दी-विभाग में अध्यापक नियुक्त होने के बाद अस्सी मुहल्ले में निवास करते समय पड़ोस में रहने वाले पण्डित शान्ति प्रिय द्विवेदी जी, मालवीय जी के निकटवर्ती रहे बाबू शिवधनी सिंह, पंण्डित अम्बिका दत्त उपाध्याय जी, पण्डित बलदेव उपाध्याय जी, विश्वहिन्दू विक्रम परिषद् से जुड़ाव होने पर पण्डित सीताराम चतुर्वेदी जी, गुरुवर विश्वनाथ प्रसाद जी की कृपा से मानस-संपादन में उन्हें सहयोग देने के क्रम में काशी नरेश महाराज विभूति नारायण सिंह जी तथा ''आज'' अखबार के संरक्षक और संपादक बाबू सत्येन्द्र प्रसाद गुप्त जी के निकट सम्पर्क में आने का सुयोग मिला। काशी छोड़ने के बाद कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी विद्यापीठ में आने पर यहाँ प्राचीन हस्त लेखों---पाण्ड्लिपि-विज्ञान-पाठालोचन पढ़ाने के क्रम में ''हस्तलेखागार'' के इन्चार्ज पण्डित उदय शंकर शास्त्री जी जैसे राय साहब और मालवीय—दोनों की ही सेवा करने का सुअवसर पा चुके सहृदय विद्वान् का जो संसर्ग मिला, तो उपर्युक्त सभी तथा और भी अनेक सज्जनों से की गई जिज्ञासाओं से जो जानकारियाँ मिलीं, उन्हीं के भरोसे कुछ सीढ़ियों का संधान कर पाया हूँ, जो यथाशक्य क्रमशः निवेदित है—

6.1 परिस्थितिवश स्वयं वंचित रह जाने पर वैसी उच्चाभिलाषा पूरी कर सकने का अवसर दूसरे हजारों को सुलभ करवा देने का शुभ संकल्प-महामना के पिता श्री ब्रजनाथ व्यास जी, पुत्र स्व0 प्रेमधर चुतर्वेदी (जिनके पूर्व पुरुष राजपुताने के मालवा-क्षेत्र से प्रयाग में आ बसे थे, अतः मालवीय कहलाते थे।) कि अभिलाषा थी कि उनका सुपुत्र मदन मोहन संस्कृत भाषा में एम0 ए0 करें। कालचक्र में मदन मोहन संस्कृत में एम0 ए0 न करके बी0 ए0 के बाद ला (कानून) की डिग्री लेकर इलाहाबाद हाई कोर्ट में ऐडवोकेट बन प्रैक्टिस करने लगे। (जहाँ उनकी मित्रता उस समय के विख्यात ऐडवोकेट मोतीलाल नेहरू से हुई।) स्वयं संस्कृत एम0 ए0 न हो पाने की कमी भरने के लिये उन्होंने ऐसी संस्था खोलने का निर्णय तभी ले लिया था, जहाँ हजारों हजार लोग संस्कृत आचार्य—एम0ए0 हो सकें।

6.2 प्रश्न की जड़ में उत्तर की तलाश—हमारे असम-मणिपुर के जंगलों में निवास करने वाले लोगों में एक विश्वास प्रचलित है कि जिस विषैले काँटे के चुभ जाने से असहनीय वेदना हो रही है, उस काँटे के पौधे की जड़ का कुछ हिस्सा घिसकर लगा दो, तो विष-दंश-क्लेश की शान्ति हो जाती है। मालवीय जी इसी सिद्धान्त के सहारे का० हि0 वि0 के एक बड़े विवाद को शान्त करने में सफल हो गए थे, जबकि उसी जैसे विवाद को तब के कलकत्ता विश्वविद्यालय में सुलझाया न जा सका था। ढाका निवासी मुहम्मद शाहीदुल्लाह जब संस्कृत में एम० ए० करना चाह रहे थे, तो कलकत्ते वि० वि० संस्कृत विभाग

के कई अध्यापकों ने मुसलमान को संस्कृत जैसी देववाणी में एम0 ए0 पढ़ाना स्वीकार नहीं किया था, तब डाॅ0 सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने उन्हें फिलोलाजी भाषा विज्ञान विषय में एम0 ए0 करवाया था, जबिक जब हिन्दू वि0 वि0 में एक मुस्लिम छात्र ने संस्कृत में एम0 ए0 करना चाहा था, तब मालवीय जी ने बड़े समारोहपूर्वक उसका स्वागत-संवर्द्धन किया था।

धर्म-भेद की दीवाल तो मालवीय जी आसानी से फलांग गए थे, किन्तु जब कुछ छात्राओं ने वेद पढ़ने में रुचि दिखाई, तब वेद पढ़ाने वाले अध्यापकों के अतिरिक्त काशी के दूसरे-दूसरे संस्कृत महाविद्यालयों के आचार्यों ने भारी बखेड़ा खड़ा कर दिया कि स्त्रियों को वेद पढ़ाने की आज्ञा शास्त्र विहित नहीं है। तब कई दिनों तक वेद का अध्ययन करने के उपरान्त मालवीय जी ने पूरी तरह तैयार हो संस्कृत वेद विद्वानों का सम्मेलन बुलाया। जिसमें उन्हें क्रम-क्रम से बताना शुरू किया कि वेद की कौन-कौन सी ऋचा किस-किस स्त्री मन्त्र-द्रष्टा आचार्य की रची हुई है। फिर तर्क उपस्थित किया कि जब स्त्री वेद की मन्त्र द्रष्टा ऋषि हो सकती है, तब किसी स्त्री को वेद पढ़ने से कैसे रोका जा सकता है? परिणाम वही जो मालवीय ने चाहा था। कोई भी इस प्रश्न का प्रतिवाद नहीं कर सका। इस तरह लिंग-भेद-भावना का प्रदूषण भी मालवीय जी दूर करने में सफल हुए थे।

6.3 हल्की-सी पैंतरेबाजी से अभीष्ट उद्देश्य सिद्धि-महामना का यह एक अचूक दावा था। वे जहाँ देखते थे कि अपनी मूल-माँग पर जड़ी-भूत रहने पर उद्देश्य कत्तई पूरा होनेवाला नहीं; वहाँ ऊपर-ऊपर दिखाने वाली एक ऐसी पैंतरेबाजी चलते थे—आज की शब्दावली में जिसे तनिक सा दिवस्ट करना कहते हैं, कि सामनेवाले को लगता था कि मालवीय जी अपनी माँग को छोड़ पूर्ति कर्त्ता अधिकारी की मंशा के अनुरूप काम करवाने को तैयार हो गये हैं, अतः वह मालवीय की माँग सहर्ष मंजूर कर लेता था। जैसे कि अदालतों में हिन्दी को प्रवेश दिलाने में उन्होंने किया। मालवीय जी ने वकालत के अपने पेशे के दौरान महसूस किया कि संयुक्त प्रान्त (तब उत्तर प्रदेश का यही नाम था) की कोर्ट और कचहरियों में जो तथाकथित उर्दू भाषा और लिपि में—जबिक वस्तृतः नस्तालीक लिपि जिसमें अरबी के भी कुछ लिपि-चिह्न, फारसी, लिपि में शामिल कर लिए गए हैं, भाषा-फारसी-अरबी शब्दों से बोझिल होती है, चलती है, जिसे परिणाम भुगतने वाली भोली-भाली जनता पढ़ना-लिखना ही नहीं जानती, समझना तो बड़ी दूर की बात। मालवीय जी ने संयुक्त-प्रान्त में सामान्यतः प्रचलित हिन्दी भाषा, नागरी लिपि में चलवाने की मुहिम छेड़ी। तब तक लगभग छह सौ वर्षों से जो तबका जनता की समझ से दूर की भाषा के उपयोग का लाभ उठाता आ रहा था, उसने उसे साम्प्रदायिक रंग देते हुए मुस्लिमों और उनकी भाषा-लिपि का विरोध करने के नाम पर उग्र विरोध खड़ा कर दिया। अंग्रेज सरकार फिर कहाँ मानने वाली थी?

मालवीय जी ने तब वहीं तिनक सी पैंतरेबाजी की। संयुक्त प्रदेश (आगरा व अवध) के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर ऐनटनी पैट्रिक मैकडानेल को उन्होंने समझाया कि वे उर्दू-फारसी-अरबी किसी भी भाषा अथवा किसी भी लिपि को हटाए जाने की माँग कहाँ कर रहे हैं? वे तो बस प्रार्थना कर रहे हैं कि हजारों-हजार भुक्त-भोगी लोगों के हस्ताक्षरों के साथ दिए गए प्रार्थना पत्र को स्वीकार कर अदालतों में नागरिक लिपि में हिन्दी भाषा वाले फार्म भी भरे जाया करें, जिससे कि सम्मन आदि पढ़वाने जाने के लिए हिन्दी जानने वालों को व्यर्थ की दौड़-धूप न करनी पड़े। लेफ्टिनेन्ट गवर्नर को इसमें कोई खोट दिखाई न पड़ी और उन्होंने मालवीय जी का मेमोरैन्डम स्वीकार कर लिया। यह तो कुछ समय बाद जाना जा सका कि मालवीय जी ने बड़ी चतुराई से नागरी लिपि और हिन्दी भाषा को अदालतों में प्रवेश दिला दिया है। क्योंकि हिन्दी भाषा भाषी जनता फिर नस्तालीक लिपि की उर्दू-फारसी का व्यवहार करने जाती ही क्यों?

6.4 विरोधी-पक्ष को दुविधा-ग्रस्त बनाए रखने की कला महामना राजनैतिक दलों की दृष्टि से "अखिल भारतीय हिन्दू महासभा" के संस्थापक सदस्य थे। अंग्रेजी सरकार इसे "सनातन धर्म सभा और भारतीय विक्रम परिषद् के भी सस्थापक थे दृढ़तापूर्वक जानती थी। अतः जब वे कांग्रेस-दल के समारोहों में शिरकत करते तो सरकार असमंजस में ही पड़ी रहती। सामान्यतः उन्हें कांग्रेस के नरम-दल का नेता माना जाता। परन्तु नरम और गरम दल के द्वैत में पड़ी कांग्रेस का जब कोई तबका इतनी कमजोर स्थिति में पड़ जाता कि अपनी पार्टी का अधिवेशन भी न कर सके, तो मालवीय जी उसके अधिवेशन की अध्यक्षता बडी सहजता से कर देते थे।"

सन् 1908 ई0 में जब कांग्रेस से गरम-दल पूरी तरह बाहर निकल गया था, तब जो अधिवेशन लाहौर में नरम दलीय कांग्रेसियों ने बुलाया था, उसकी अध्यक्षता उन्होंने महामना से ही करवाई थी। परन्तु सन् 1918 में दिल्ली में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ, जिसमें नरम दल नदारत था, केवल गरम दल ही कांग्रेस अधिवेशन कर रहा था, तब उस अधिवेशन की अध्यक्षता भी महामना मदन मोहन मालवीय ने ही की थी।

कांग्रेस की ऐसी ही दो और संकट की घड़ियों में उन्होंने कांग्रेस अधिवेशनों की अध्यक्षता कर स्वतंत्रताप्राप्ति के लक्ष्य की ओर बढ़ाने में उसे आवश्यक शक्ति प्रदान की। महात्मा गांधी ने जब भारतीय नौजवानों से स्कूल-कालेजों का बहिष्कार कर कांग्रेस के स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद पड़ने का आह्वान किया; तो मालवीय ने उसका खुल्लम-खुल्ला विरोध यह कहते हुए किया कि स्वतन्त्रताप्राप्ति के बाद देश को सुचारु-रूप से चलाने के लिए हमें लाखों की संख्या में शिक्षित-प्रशिक्षित नौजवान चाहिए ही स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ने को भी शिक्षित जन-सेवकों की आवश्यकता है, अतः महात्मा गांधी की सभा में ही उन्होंने छात्रों द्वारा महाविद्यालयों का ''बाइकाट'' करने की उनकी

अपील का जो विरोध किया। तब अंग्रेजी सरकार खुश हो गई और विश्वविद्यालय की सहायता राशि को रोके रहने की जगह और भी बढ़ाकर अवमुक्त कर दिया। जबिक महात्मा गांधी ने अपने भाषण में जो एक वाक्य जोड़ा था कि ''स्कूल-कालेजों का बाइकाट'' चूँकि महामना को पसन्द नहीं है, अतः जो विद्यार्थी बाइकाट करना चाहेंगे, उन्हें जब तक मालवीय जी का आशीर्वाद प्राप्त नहीं होगा स्वयं कांग्रेस ही उन्हें अपने साथ नहीं लेगी। इसका दूसरा पक्ष यह था, कि स्वयं हिन्दू विश्वविद्यालय के जो भी विद्यार्थी स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने के लिए अंग्रेजी-शिक्षा का बहिष्कार करना चाहते थे, महामना का आशीर्वाद उन्हें सहजता से ही मिल जाता था। यही कारण है कि स्वतन्त्रता आन्दोलन में सबसे अधिक छात्र-काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ही कुदे थे।

#### 7. पारस्परिक गलत फहमी की टीस

मालवीय जी की इस चाणक्य नीति को सही ढंग से न ले पाने के कारण हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापना के समारम्भ के तीन विशिष्ट सूत्रधार—(1) लाला लाजपत राय, (2) महिमामयी एनीबेसेन्ट और (3) बाबू शिवप्रसाद गुप्त, आगे चलकर उनसे अलग हो गए।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापना के शुभारम्भ की पूर्ववेला में लाहौर में जो विशाल सभा हुई थी, उसमें लाला जी ने जब घोषणा की—''चार्टर आर नो चार्टर, हिन्दू यूनिवर्सिटी मस्ट इक्सिजट'' राज्यानुमित मिले या भले ही न मिले हिन्दू विश्वविद्यालय अस्तित्व में आना चाहिये। तब अपने भाषण में मालवीय जी ने जब कहा—''चार्टर एण्ड चार्टर हिन्दू यूनिवर्सिटी मस्ट इक्सिज्ट''—राज्याज्ञा तो मिली ही है, मिलती रहेगी। अतः हिन्दू विश्वविद्यालय तो अटल रहेगा। तब चूँकि स्वराष्ट्रवादी नेतृत्व अंग्रेजी सरकार द्वारा मान्यता दिये जाने, फिर उसके परिणाम स्वरूप आर्थिक सहायता प्रदान किये जाने के आधार पर हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना न चाहकर केवल भारतीय जनता के सहयोग से भारतीय शिक्षा पद्धति में भारतीय भाषा के माध्यम से ही शिक्षण देने वाले विश्वविद्यालय की स्थापना को कृत संकल्प था, मालवीय जी द्वारा विश्वविद्यालय को ''चार्टर'' प्रदान करवाने के लिए तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग से मिलने जाना और उनसे "चार्टर" ''राज्याज्ञा'' मंजूर करवा लेना, उन्हें पसन्द नहीं आया। विशेषकर इसलिए कि अंग्रेज सरकार उसी विश्वविद्यालय को चार्टर देती थी, जो अपने यहाँ शिक्षा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से देते थे। मालवीय जी द्वारा हिन्दू विश्वविद्यालय में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देना स्वीकार लेना उन्हें भारतीय आत्म सम्मान के विरुद्ध लगा था। स्वयं महात्मा गांधी भी उन लोगों की ओर ही ढले और काशी में ही बाबू शिव प्रसाद गुप्त जी द्वारा अपना अलग पूर्ण स्वदेशी विश्वविद्यालय, जो ''काशी विद्यापीठ'' के नाम से स्थापित किया गया, उसका शिलान्यास महात्मा गांधी जी ने स्वयं अपने कर-कमलों से किया था।

7.2 जबिक महामना की सोच थी कि नये विश्व की माँग के अनुरूप जब भारतीय नौजवानों को इंजीनियरिंग-टेक्नोलाजी-मेडिसिन, इंडस्ट्री आदि की शिक्षा अनिवार्य हो उठी है, जिसके सन्दर्भ ग्रन्थ विदेशी भाषाओं—जिन्हें भारतीय अपने यहाँ फैलाई जा चुकी अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ही समझना सरल है, अतः अंग्रेजी माध्यम को स्वीकार कर लेने में बुराई क्या है? विश्वविद्यालय चलाने के लिये, विश्व के कोने-कोने से संसाधन माँगाने के लिए हमें पग-पग पर सरकारी अनुमोदन की आवश्यकता पड़ेगी ही यदि वह अंग्रेज सरकार की इस छोटी-सी शर्त को स्वीकार कर लेने से मिलती है, तो फिर अड़ियल होने का मतलब क्या है? जब हम शीघ्र ही स्वतन्त्र होने ही जा रहे हैं, तब जब हमारी अपनी सरकार होगी, तो हम मनमाना परिवर्तन तो कर ही लेंगे।

जो राष्ट्रीयतावादी तब अंग्रेजी-माध्यम के कारण मालवीय से विलग हो गए थे, ''आज उन्हीं की भावी पीढ़ी अंग्रेजी-भाषा, अंग्रेजी रंग-ढंग की कैसी प्रबल पैरोकार बन चुकी है,'' इसे कोई भी देख सकता है।

#### 8. अलग, पर विलग नहीं, की खास मालवीय नीति

"विलग जिन मानहु ऊधो प्यारे"—सूरदास के स्वर में गोपियों ने ऊधो से कहा था। अलग तो आप हो ही, श्री कृष्ण भी अलग हो चुके हैं, किन्तु इतना तो रहम करो कि विलग या विलगाव, मन-मुटाव तो न मानो। ऊधो ने क्या प्रतिक्रिया की? सूरदास ने नहीं बतलाया। किन्तु मालवीय जी ने अपने चिरत्र से यह कर दिखाया कि अलग होकर भी विलग हुए बिना भी आजीवन जिया जा सकता है।

- (1) संस्था के पक्ष में, कांग्रेस पार्टी में महात्मा गांधी ही क्या गांधी से भी कई पुराने कांग्रेसियों से भी मालवीय जी पुराने कांग्रेसी सदस्य थे। यही नहीं अपनी उत्तरार्ध वेला में वे सबसे पुराने कांग्रेसी मेम्बर ही नहीं, इंपीरियल कौंसिल (आज की संसद जैसी संस्था) के सबसे पुराने सदस्य थे। गांधी जी के जमाने में लाल (लाला लाजपत राय) बाल (बाल गंगाधर तिलक) और पाल (विपिन चन्द्र पाल) के काल के वे सम्मानित सदस्य थे। तीनों से ही उनकी अन्तरंग-मैत्री थी। जो लाला लाजपत राय जी, हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापना समिति से अलग हो गए थे, उनकी मृत्यु पर फिर उसकी प्रतिक्रिया में भड़के जनाक्रोश पर जिलयानवाला बाग में अंग्रेज जनरल डायर द्वारा जनसभा पर गोली चलवाकर हजारों को मौत के घाट उतार देने पर उस अत्याचार के विरोध और लालाजी को श्रद्धांजिल देने को शिमला में जो काउन्सिल बुलाई गई थी, उसमें महामना ने लाला जी के सम्बन्ध में लगातार छह घण्टे तक अपने जीवन का सबसे लम्बा-हृदय-विदारक भाषण दिया था।
- (2) एनीबेसेन्ट जी को वे जीवन भर अपनी सम्माननीया बहन बताते रहे थे। हिन्दू विश्वविद्यालय की शिक्षा-व्यवस्था को अपने द्वारा स्थापित ''सेन्ट्रल हिन्दू कालेज'' को समस्त परिसम्पत्ति और

टीचिंग-नानटीचिंग स्टाफ सिहत हिन्दू विश्वविद्यालय को दानकर उन्होंने जो सचमुच विद्या के आधार की शिला रखी थी, मानवीय उसे मान देते हुए उनके प्रति सदा श्रद्धावनत रहे।

(3) सबसे अधिक असहनीय पीड़ा उन्हें हुई थी बाबू शिव प्रसाद गुप्त जी से अलग होने पर। अलगाव भी ऐसा कि काशी हिन्दू -विश्वविद्यालय के समानान्तर ही उन्होंने काशी में ही ''काशी विद्यापीठ'' स्थापित कर लिया था। दक्षिण भारत में पुणे आदि स्थानों पर विश्वविद्यालय की जगह ''विद्यापीठ'' शब्द ही चलता है, यदि भारतीयता की दृष्टि से सोचे, तो मात्र ''हिन्दू'' शब्द को निकाल देने पर वह भी ''काशी विश्वविद्यालय'' ही कहलाता। ऐसे प्रतिद्वन्द्वात्मक, चैलेन्जिंग-कर्म-पर भी महामना ने जो उनसे बिलगाव नहीं माना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि इस अलगाव के बाद जब मालवीय जी के घर पर चूल्हा कई दिनों तक नहीं जला तब सूचना मिलने पर बाबू जी ने उनके रसोइए को बुलाकर कारण पूछा; तो उसने बतलाया कि ''पकाने के लिये कोई राशन ही नहीं था। मालवीय जी के सुपुत्र काशी में हैं, वे गोविन्द मालवीय जी के साथ पहले से ही अलग रहते हैं। इलाहाबाद के टैगोर-टाउन में रहने वाले बेटों को कुछ पता ही नहीं और अपनी कमाई के पैसे पण्डित जी स्वयं खा ही नहीं सकते, क्योंकि अपना जीवन हिन्दू विश्वविद्यालय को दान कर देने के समय जगह-जगह चन्दा वसूलने जाने में आ रही अड़चन से अपनी वकालत उन्होंने छोड़ ही दी थी। फिर तो जो कुछ भी उनके पास आता है, वह हिन्दू विश्वविद्यालय का होता है। अतः वे कहते हैं कि उसके पैसे से अपने लिए मैं भला रासन-पानी कैसे मँगवा सकता हँ?''

"उसकी जरूरत ही क्या है?" बाबू जी बोले थे—"मेरे यहाँ से जो "सिद्धा" जाता है, क्या उसे खाना अब उन्हें स्वीकार नहीं?"

''स्वीकार क्यों नहीं है? मगर सिद्धा जाए तब न?'' रसोइए का जवाब सुन बाबू शिव प्रसाद गुप्त को जैसे काठ मार गया था। पता करने पर मालूम हुआ कि उनके भंडारी ने यह सोचकर कि अब तो मालवीय जी से बाबू जी की ''छुट्टा-छुट्टी'' हो गई है, तीन दिन पहले से ही सिद्धा भेजना बन्द कर दिया था। बाबू जी ने तुरन्त ही पिछले तीन दिनों का सिद्धा रसोइए को दिया; किन्तु उसने यह कहकर लेने से इंकार कर दिया कि बाबू जी एक दिन से ज्यादा का सिद्धा नहीं रखते अन्यथा दूसरे दिन का सिद्धा फिर क्यों आएगा?'' रसोइएँ को एक दिन का सिद्धा देकर बाबू जी ने विदा किया था, किन्तु फिर अगले तीन दिनों तक स्वयं उपवास किया था।

उसके बाद फिर पहले ही की तरह "सेवा उपवन नगवा कोठी"—बाबू शिव प्रसाद गुप्त के निवास स्थान से पहले जहाँ बहुत दिनों तक मालवीय स्वयं रहा करते थे—मालवीय भवन को नित्य प्रति सिद्धा जाता रहा। वाराणसी के बाहर कहीं भी आने-जाने के खर्च की भी सारी व्यवस्था उन्हीं की ओर से मालवीय जी की होती रही। महामना ने कभी भी उसे स्वीकार करने से मना नहीं किया।

9. स्वाभूभूत-सूचना (फर्स्ट हैण्ड इन फारमेशन) सी उक्ति-बाङ्ला-भाषा और असमीया भाषा को आधार बनाकर असम में जो "बंगाली-खेदा" आन्दोलन शुरू हुआ फिर प्रतिक्रिया में "अखोमिया बहिष्कार" बंगाली क्षेत्रों में शुरू हुआ, तब संचार व्यवस्था और डाक व्यवस्था के ठप्प पड़ जाने से घर से रुपए आने जो बन्द हो गए, तब जो मैं पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी की शरण में गया कि कुछ दिनों के लिए मुझे कहीं काम दिला दें। तब कृपाकर उन्होंने जो दैनिक आज के सम्पादक बाबू सत्येन्द्रनाथ गुप्त जी की सेवा में भेजा, उनके कुछ व्यक्तिगत नोट्स लेते रहने के लिए; तब "एक ही पूर्व-पुरुष भींटी-अजमतगढ़-आजमगढ़" (फिलहाल मेरी पितृ-भूमि मऊ जिले में जा पड़ी है।) वे कारण उनका जो स्नेह मिला, उसके बल पर मैं उपर्युक्त विवरण जान पाया था।

इसी प्रकार के कुछ विवरण मुझे (1) पूज्य गुर्टू जी माननीय श्री इकबाल नारायण गुर्टू जी, जिनके नाम पर विश्वनाथ मन्दिर के पास ''गुर्टू-छात्रावास'' बना है। जिनके निकट जाने का सुयोग तब मिला, जब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में से एक—''हिन्दी-कहानी प्रतियोगिता में प्रथम आने का पुरस्कार'' मुझे दिया जाने वाला पुरस्कार, प्रदाता पण्डित हजारी प्रसाद जी, प्रस्कार देने के पहले मेरी कहानी—जो विद्रोही नगा नेता फिजो के खास गाँव की एक नगा-किशोरी के भारतीय राष्ट्र को अपना राष्ट्र मानने वाले नगा-गुट के एक किशोर से सम्बन्ध बनाने और विद्रोही नगा गुट को भारतीयता की उनकी जड़ें समझते पृष्ठ भूमि पर आधारित थी, का, महत्त्व समझाते हुए एक संक्षिप्त-सा परिचय दे ही चुके थे कि पुरस्कार वितरण समारोह की अध्यक्षता करते हुए मंच पर आसीन वयोवृद्ध गुर्टू जी यह कहते हुए उठ खड़े हुए कि—"द्विवेदी जी! आप तनिक रुकिए! इतना कम उम्र बच्चा इतनी विशाल पृष्ठ भूमि की कहानी लिख गया है, तो मैं स्वयं अपने हाथ से इसे पुरस्कृत करूँगा।"-द्विवेदी जी ने तब भाव गद्गद स्वर से कहा था—''बड़े सौभाग्यशाली हो वत्स! जो महामना की प्रतिमूर्ति पण्डित इकबाल नारायण गुर्टू जी के हाथ से तुम्हें प्रस्कार मिल रहा है। प्रस्कार तो मामूली चीज है किन्तु देने वाले हाथ महान् ऋषि के हाथ हैं। पूज्य मालवीय जी अपने सदृश ही दो ऋषि हमें दे गए हैं। जिनमें से एक ये गुर्टू जी हैं और दूसरे डे बाबा।"

(2) महर्षि श्यामा चरण डे-जिन्होंने पूर्वी-बंगाल की अपनी समस्त जमींदारी बेंचकर विश्वविद्यालय को दान किया ही, विश्वविद्यालय में गणित के अध्यापक, विभागाध्यक्ष, रिजस्ट्रार मालवीय जी के सचिव, प्रोवाइस चांसलर जैसे पदों पर विश्वविद्यालय की सेवा की। कभी एक पैसे भी वेतन नहीं लिया। इंजीनियरिंग कालेज के छात्रों के लिये ''डेन्टोस्टेल'' बनवाया और मालवीय जी के सानिध्य के लिए मालवीय भवन से सटे हुए परिसर में ही ''डे-निवास'' बनवाया। हमारे शिक्षण-काल में जब तत्कालीन वाइस चांसलर डाॅ० वेणी शंकर झा (वी०एस० झा) के विरुद्ध छात्रों का इतना उग्र-आन्दोलन हुआ कि छात्रों ने तीन

महीनों तक उन्हें किसी भी तरह विश्वविद्यालय में घुसने नहीं दिया और विश्वविद्यालय का प्राशासनिक कार्य न रूके, इसके लिए "डे बाबा" से कार्यवाहक कुलपित का कार्य सँभालने को कहा तो उतनी जर्जर वृद्धावस्था में भी विश्वविद्यालय का कार्य करने को वे मना नहीं कर सके थे। सरकार से नियुक्त कुलपित चाहे भले ही उन दिनों विश्वविद्यालय में नहीं आ सके थे, किन्तु "डे बाबा" के सहयोग से विश्वविद्यालय का और कोई भी काम रुका नहीं था।

उनकी शरण में पहुँचने का सौभाग्य भी मुझे पण्डित ह0प्र0 द्विवेदी की कृपा से ही मिला था। रवीन्द्रनाथ की कुछ अतिशय विवादित-अस्पष्ट-अर्थगर्भी किवताओं को समझने के लिए मैं प्रायः पण्डित जी के विश्वविद्यालय डाकखाने के पास स्थित क्वार्टर पर जाया करता था। उनमें से ''सोनारतरी'' जैसी कुछ किवताओं के अर्थ तो उन्होंने खोले किन्तु ''देवतार ग्रास'' (देवता के जबड़े में दबोचकर चबवा जाने को विवश) नामक किवता का मर्म जानने पहुँचने पर उन्होंने कहा था—''देवताओं को लेकर ऐसी टिप्पणियाँ माइकेल मधुसूदन दत्त जी तो करते थे, किन्तु गुरुदेव के किव का ऐसा स्वभाव नहीं था। मुझे लगता है कि किसी ऋषि-कल्प अवस्था में पहुँच कर ही उन्होंने ऐसी किवता लिखी होगी। अतः तुम्हारे लिए अच्छा होगा कि उन्हों जैसे महिष श्यामा चरण डे जी से इसका मर्म समझो। मैं उनके नाम एक चिट्ठी लिख दे रहा हूँ।''

(3) रायकृष्ण दास-काशी हिन्दू विश्वविद्यालय परिसर में मालवीय भवन के निकट (1) कोचीन हाउस-कुलपित निवास (2) होल्कर हाउस—प्रतिकुलपित-प्रोबाइस चांसलर/रेक्टर निवास के अतिरिक्त "डे भवन" और "सीता निवास" ही ऐसे भवन थे जिनको मालवीय जी ने अपने अति करीब रखा था। अलावा इसके जैसे तत्कालीन प्रिंसिपल इंजीनियरिंग कालेज, डॉक्टर किंग की इच्छानुसार उनके बंगले के शेष समूचे विश्वविद्यालय के बंगलों, छात्रावासों, कालेजों, आफिसों पर चढ़े केशरिया रंग या रामरज मिट्टी के रंग में न रंग कर भकाभक उज्जवल सफेद रंग ही चढ़वाया था, उसी तरह रायकृष्ण दास की इच्छानुसार उनके बंगले का नाम—"सीता निवास" विशेष रूप से मान्य किया था। अन्यथा किसी प्रोफेसर या रिजस्ट्रार अथवा प्रिंसिपल के बंगले का भी अलग से नाम नहीं है।

इलाहाबाद में वकालत की प्रैक्टिस करते समय दारागंज के सेठ लाला अमरनाथ के ऐडवोकेट रूप में उनके मुकदमें लड़ते रहने समय ही लाला पटनीमल के परिवार से मालवीय जी की निकटता हुई थी। काशी आने पर रायकृष्ण दास ने उनसे निकट सम्पर्क तो साधा किन्तु वे उन दिनों बहुत विकल थे। विशेष कारण था अनेक सालों से मथुरा की उनकी जमीन का मुकदमा सारे सच्चे पुस्ट दस्तावेजों के रहते हुए भी जीत के लिये वांछित सभी शत-प्रतिशत आधारों के होते हुए भी फैसले के मुकाम पर पहुँच ही नहीं रहा था। वाराणसी से मथुरा कचहरी फिर दिल्ली की सर्वोच्च अदालत तक की दौड-धप से वे आजिज आ चुके थे। निर्णय न सुनाये जाने के पीछे उनका अनुमान था कि चूँकि उस जमीन पर स्थित पुराने केशवदेव के मन्दिर को तोड़कर औरंगजेब ने फिर शाही मस्जिद बनवा दी थी, अतः इसे मजहबी आधार देकर मुस्लिम-समाज जो इसे साम्प्रदायिक रंग देता जा रहा था, कोर्ट जज इसी डर से फैसला टालते जा रहे हैं। एक नामी-गरामी बैरिस्टर ऐडवोकेट रह चुके मालवीय जी से इस संबंध में उपयोगी सुझाव पाने की वे आशा करते हैं।"

"अंग्रेज जज मुस्लिम-हिन्दू से कहाँ डरते हैं?"—मालवीय जी का उत्तर था— "फैसला इसलिए नहीं सुनाया जा रहा है, कि आप सच्चे "लोकस स्टैंडी" मूल-प्रभावित पक्ष-वादी हैं ही नहीं। आप ऐसा करें कि वह सारी जगह-जमीन-सम्पत्ति मुझे दान दे दीजिए; क्योंकि असली वादी का प्रतिनिधि मैं ही हूँगा। फैसला तुरन्त हो जाएगा।"

''जो परिसम्पत्ति अभी मुझे मिली ही नहीं उसका दान कैसे कर सकता हूँ?''

''इस तरह कर सकते हैं कि अगर डिग्री हो जाएगी, तब आप उसे मुझे दान कर देंगे। ऐसी शर्त स्वीकार करें। इस शुभ संकल्प से ही आप को डिग्री मिल जाएगी।''

राय साहब तो तैयार हो गए किन्तु बाधा फिर तीर्थ गुरुओं ने खड़ी कर दी।—''जो सम्पत्ति आपकी है ही नहीं, उसका दान कौन स्वीकार करेगा भला?'' ''फिर रास्ता क्या है?''

धर्म-गुरुओं ने सुझाया कि—''विवादित सम्पत्ति इस आधार पर किसी को बेंची जा सकती है कि उसका मुकदमा आगे लड़ने की शक्ति वादी में नहीं है। अतः जो व्यक्ति उसे आगे लड़ सकता है, उसे उस सम्पत्ति को पूरे देना+पावना के सिहत बेंचा जा सकता है। अतः राय साहब उसे मालवीय जी को बेंच दे।''

इस सुझाव पर राय साहब ने उस अत्यन्त बहुमूल्य सम्पत्ति को बस नाम मात्र के मूल्य तेरह हजार रुपए में बेंच दिया। जो कि वस्तुतः जमींन का मूल्य न होकर वह खर्च था जो राय कृष्णदास ने मुकदमें की पैरवी में अपनी ओर से खर्च किए थे। सम्पत्ति पर जो कर्ज लिए गये थे वे कुल दस हजार रुपए राय साहब ने स्वयं वहन किया।

बाद में जुगुल किशोर बिरला जी को पता चला कि हिन्दू-धर्म-मर्यादा रक्षा के इस महान् कार्य में मालवीय जी के 13000 तेरह हजार रुपए खर्च हुए हैं, तब उन्होंने ये रुपए मालवीय जी को दान कर दिए। मालवीय जी की ओर से फिर स्वर्गीय कैलाश नाथ काटजू ने पैरवी की और जीत हो जाने पर भूमि पर काबिज अवैध कब्जेदारों को हटाने में मथुरा के पं0 मदनमोहन चतुर्वेदी ने सहायता की।

नैष्ठिक ब्रह्म-मुख से निकली वाणी तुरन्त फलित हो गई। मुकदमें में जीत होने के बाद रायकृष्ण दास ने वह सारी सम्पत्ति मालवीय महाराज को दान कर दी; जिसे अत्यन्त शीघ्र ही उन्होंने—"श्री कृष्ण जन्म भूमि मन्दिर न्यास" बनवा कर उसे दान कर दिया। फिर जुगुल किशोर जी बिरला, घनश्याम दास जी बिरला से कहकर वहाँ इतना विशाल भागवत—श्री कृष्ण जन्म भूमि—भवन बनवाने का कार्यरम्भ करवाया कि कोर्ट के फैसले के मुताबिक मसजिद को तोड़े-फोड़े बिना ही भागवत मन्दिर की ऊँचाई में वह ऐसी छिप जाए कि उसके होने-न-होने से हिन्दू-श्रद्धालु जनता के मन में अपने पुराने केशव देव मन्दिर के तोड़े जाने का कभी कोई गम ही न हो। रायकृष्ण दास जी ने मालवीय जी से उस रहस्य को बतलाने को कहा जिससे यह असंभव कार्य, संभव हो सका था। पूज्य मालवीय जी ने तब गीता का श्लोक—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

बाँचते हुए कहा कि व्रज भूमि की मान्यतानुसार—"सबै भूमि गोपाल की।" है, फिर तो "केशव देव मन्दिर" की वह भूमि जिसे आपके पितृ पुरुषों ने नीलामी में खरीदी थी, दरअसल श्रीकृष्ण ही की तो थी अतएव वे ही असली वादी "लोकस स्टैंडी" थे। जैसे ही आपने मुझे दान करने का वचन दिया, मैंने गोपाल की भूमि गोपाल को सौंप देने का व्रत किया। इस तरह उनके लोकस स्टैंडी होते ही उनकी सम्पत्ति उन्हें मिल गई। सच्चा न्याय तो यही हो सकता था। राजा पटनीमल था आप तो उस धरोहर के ट्रस्टी या रखवारे भर बनाए गए थे जो कि उन्हीं की कृपा से नीलामी में पा सके थे। उस लीलाधर की लीला से।

रायकृष्ण दास ने फिर प्रार्थना की कि जब आपने मेरी जगह ले लेने की कृपा की, तो फिर मुझे क्यों अलग रहने दे रहे हैं। मुझे भी अपनी शरण में ले लें। तब मालवीय जी ने उन्हें अपने मालवीय भवन के ठीक सामने, कुलपित निवास के ठीक पीछे, रहने के लिए प्रदान कर दिया। अर्दली बाजार की अपनी जमींदारी की हवेली छोड़कर राय साहब स्वयं सपरिवार तो विश्वविद्यालय में आए ही अपने निकट रिश्तेदार भारतेन्दु हरिश्चन्द जी के संग्रहालय की अनेक अमूल्य धरोहरे भी विश्वविद्यालय में ले आए, जिन्हें बाबू शिव प्रसाद जी के भतीजे बाबू ज्योति भूषण गुप्त-भैय्या जी अवैतनिक कोषाध्यक्ष काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सहयोग से पुरतत्त्व वेत्ता डाँ० वासुदेव शरण जी अग्रवाल, जिन्हें मथुरा संग्रहालय के-क्यूरेटर-संग्रहालयाध्यक्ष पद से त्यागपत्र पत्र देकर विश्वविद्यालय में चले आने का आमन्त्रण मालवीय जी ने दे रखा था, किन्तु संभवतः वे दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय पद पर पदोन्नत हो चुकने के बाद वहाँ से पदत्यागकर विश्वविद्यालय में पधारे थे, जिन्हें मालवीय जी ने आजीवन सेवा कार्य करते रहने का अद्भुत नियुक्ति पत्र दिया था; कि निर्देशन में वि०वि० के ''कला भवन संग्रहालय'' में सुव्यवस्थित के किया गया था।

### 10. दान न देने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञों से भी दान करवा लेने की महामना की वचन कुशलता

"प्रज्ञा" काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका (जरनल) के संपादक डॉक्टर वासुदेव शरण जी के सहायक के रूप में कार्य करते हुए और उपर्युक्त अन्य विद्वानों—महर्षियों से प्राप्त जानकारी के आधार पर मैं केवल दो ही ऐसे प्रसंगों की चर्चा-पहले ही विस्तार हो चुके को अतिविस्तार से बचाने के लिए कर रहा हूँ—

- (1) संयोग कुछ ऐसा बना था कि बड़े और छोटे; "दोनों भाई" जो भारत के सबसे बड़े भिखारियों के जोड़े के रूप में प्रसिद्ध थे। महात्मा गांधी अंग्रेजी भाषा में मालवीय जी को "दि ग्रेटेस्ट बेगर ऑव इंडिया'' भारत का सबसे बड़ा भिखारी कहते थे और अपनी गुजराती भाषा में ''बड़ील बन्धु'' आदरणीय बड़े भैया, उस दिन बड़े भैया हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए भीख माँगते थे, किन्तु प्रायः बड़े रईसों राजाओं महाराजाओं से ही माँगने के कारण प्रायः ही काफी बड़ी धन राशि या भू-सम्पत्ति माँग लेते थे। इसी से गांधी जी उन्हें सबसे बड़ा भिखारी कहते थे। किन्तु जाननेवाले जानते हैं कि जन साधारण से रुपए दो रुपए की कम राशि की भी भीख कांग्रेस पार्टी और देश की स्वतन्त्रता के लिए महात्मा गांधी भी बहुत माँगते थे। इस तरह उन्होंने मालवीय जी से कई गुना अधिक भीख माँग ली थी। निर्णायक रूप से ''को बड़ छोट कहत अपराधू।''—ही है, किन्तु इन दोनों ही घटनाओं में दोनों भाइयों की जो मुठ-भेंड़ हुई, उसमें गांधी जी की असफलता संभवतः मालवीय जी को उनसे बड़ा भिखारी मानने का आधार प्रस्त्त कर देती है।
- (अ) अपनी-अपनी संस्थाओं के लिए चन्दा पाने की आश में महात्मा गांधी और मालवीय जी "रामपुर स्टेट" के नवाब के दरबार में प्रस्तुत होने को थे। कांग्रेस पार्टी की अधिक महानता और छोटे भाई के प्रति सहज-स्नेह के चलते गांधी को ही उनके "बड़ील बन्धु" मालवीय जी ने पहले जाने का मौका दिया। सामने पहुँचने पर ईस्लामी आला तहजीब के अनुसार नवाब साहब ने पहले खैर-मकदमी (सुस्वागतम्) करते हुए पूछा—"जनाब मेरे मोमिन (इस्लाम के पवित्र समर्थक) हाथों से क्या कुछ खाना गँवारा (स्वीकार) करेंगे?"

"मैं विशुद्ध शाकाहारी हूँ।" गांधी जी का उत्तर था—"इसका ध्यान रखते हुए, जनाब! कच्चा अथवा पकाया हुआ, जो कुछ भी अपने हाथों से देंगे, मुझे सहर्ष स्वीकार होगा। आप तो जानते ही है कि मैं छूआछूत नहीं मानता।"

हुक्म हुआ कि महात्मा जी की पसन्द का जलपान करवाकर फिर हाजिर करवाया जाय।

हुक्म की तामील बड़े आदरपूर्वक सम्पन्न कर गांधी जी को जब फिर पेश किया गया, तब नवाब का दूसरा प्रश्न हुआ—''कांग्रेस पार्टी के लिए आप हमसे चन्दा क्यों चाहते हैं?''

"तािक मुल्क को अंग्रेजों से अत्याचारी शासन से निजात (मुक्ति) दिलाकर देश की जनता को निडर होकर जीने का अवसर दिला सकें।"

"अंग्रेज सुरक्षा वगैरह देने के बदले हमसे कुछ टैक्स तो जरूर वसूलते हैं, लेकिन हम पर या हमारी जनता पर अत्याचार करने की हिमाकत वे कत्तई न करते हैं, न कर सकते हैं। अतः हमारी रियासत की रियाया (जनता) तो अभी भी निडर होकर ही जीती है। खैर, पूरे मुल्क के सन्दर्भ में आपकी कोशिश ठीक है। अब जरा यह बतलाने की तकलीफ उठाएँ कि आजादी मिल जाने पर आप की कांग्रेस पार्टी हम रियासतदारों, देशी राजाओं नवाबों के साथ कैसा रसूख (व्यवहार) करेगी?"

"इस बात का फैसला तो हमारी पार्टी स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद स्वीकार किए गए संविधान के अनुसार ही करेगी।"

"तो ठीक है, फिर आप तभी हमारे यहाँ आने की तकलीफ कीजिएगा। तब जो मुनासिब होगा, आप को वह सारा कुछ दिया जाएगा। फिलहाल जनाब अपनी तशरीफ ले जायँ।"

बड़ील बन्धु मालवीय जी ने जब गांधी जी को इस तरह खाली हाथ लौटते देखा तो भी निरुत्साहित नहीं हुए। अपना उज्ज्वल उत्तरीय सँभालते हुए वे नवाब रामपुर के सामने जा खड़े हुए। तभी स्वर गूँजा—

"तशरीफ रखिए न त्रिपुण्डधारी बाभन महाराज जी! आप तो जानते ही हैं कि जैसे हम अपने मजहब के मुल्लामौलवी को कोई हुक्म नहीं देते, उसी तरह दूसरे मजहब के पूजनीय व्यक्तियों को भी कोई हुक्म नहीं देते, आप बिना कहे ही उचित आसन ग्रहण कर लें।"

पास में पड़ी बिना गद्दी वाली एक काठ की कुर्सी पर मालवीय जी के बैठते ही नवाब की ऊँची हँसी से हाल गूँज उठा। फिर वही प्रश्न प्रथम प्रश्न के रूप में उनके सामने भी पूछा—''मुझ मोमिन मुसलमान के हाथों से मालवीय मदन मोहन क्या कुछ खाने-पीने को ग्रहण कर सकते हैं?''

''इस वेला में तो कुछ भी ग्रहण करने का मेरा रोजमर्रा का कोई नियम नहीं है। किन्तु हुजूर की यदि ऐसी इच्छा है, तो आपके सामने जो इलायची दान पड़ा हुआ है, उसमें से कुछ इलायचियाँ दे दें, तो उसी में मैं अपना सम्पूर्ण स्वागत सत्कार मान लूँगा।''

''मुझसे क्या उम्मीद लेकर आप आए हैंं?''

''मानना न मानना आप की मर्जी है। लेकिन मैं साफ-साफ बतला दूँ कि मेरे यहाँ जब गांधी जी की दाल नहीं गली तो फिर आपकी भी दाल नहीं गलेगी।''

"हुजूर! हिन्दू धर्म में ब्राह्मण केवल पढ़ाने-लिखाने, धर्म कृत्य करवाने का ही काम नहीं करते। अधिकांश गरीब ब्राह्मण तो भीख माँगकर ही परिवार पालते हैं। उनमें से जो कुछ अधिक शर्मीले होते हैं, भीख नहीं माँगते, उन्हें लोग अपने यहाँ रसोई पकाने वाले के रूप में ही रखते हैं भले ही, उन्हें कहते हैं महाराज। तो रसोई पकाने का हुनर हर एक ब्राह्मण में जन्मजात आ ही जाता है। इस हुनर के मुताबिक इस गरीब रसोइया बाभन का अनुभव है कि दाल न तो दाल के कड़ी या मुलायम होने से गलती है, न किसी छोटे या बड़े आदमी की होने अथवा उसके लाये जाने वाले की पद मर्यादा से गलती है दरअसल वह गलती है पानी से। उसमें अगर किसी पानीदार आदमी का पानी पड़े तो दाल की क्या मजाल जो न गले। सो हुजूर के इतने इज्जत दार खानदान में अगर पानी होगा तो मेरी दाल तो उसके पड़ते ही गल जाएगी क्योंकि यहाँ तक मुझे पता है राजा-रईसों-नवाबों में भी रामपुर के नबाब का सा पानी तो और कहीं नहीं है। पूरे मुल्के मशहूर ऐसे पानी वाले....।"

"अब बस भी करो।" नवाब रामपुर बोल पड़े—"नानी के आगे निनअउरे का बखान छोड़ो। एक पानी की मर्यादा ही तो है जिसे बचाने के लिए हम कुछ भी कुर्बान कर सकते हैं। साफ-साफ बतालाएँ कि मुझसे क्या उम्मीद लेकर आये हैं।"

"हमारे इंजीनियरिंग और टेक्नोलाजी कालेज" में इतने सारे विषय हो गए हैं कि उन सबकी सारी जगहों पर जब दाखिले पूरे हुए, तो पढ़ाई करनेवालों की संख्या इतनी अधिक हो गई है, कि उन सभी की कभी कोई सभा एक साथ ही बुलाई जाए, तो उन्हें एक जगह बैठाने लायक कोई बड़ा हाल ही नहीं है। जबिक अपना हाथ खाली है और विद्यार्थियों में मेल-जोल बढ़ाने के लिए उन्हें एक स्थान पर एक साथ बैठाना बहुत जरूरी है। इतना बड़ा हाल कोई और....।

"बनाने को तैयार नहीं" नवाब की आवाज गूँजी। "आप यही तो कहना चाहते हैं। मगर जो काम मेरे हाथों होना है, उसे कोई दूसरा करेगा ही भला क्यों? जाइए फिलहाल दो लाख रुपए का चेक हमारे खजांची साहब आपको दे देंगे। बाकी पूरी लागत का हिसाब आप उन्हें भेंज दीजिएगा। तुरन्त अदायगी हो जाएगी। मगर हाल कालेज के ठीक बीचो-बीच, सदर दरवाजे के सामने ही बनवाना होगा और आप जो दान देने वालों का विरला, रुइया, ब्रोचा बगैरह सा नाम बिल्डिंगों का रख देते हैं, वह मेरे साथ नहीं चलेगा। हाल मेरे नाम पर नहीं होगा।"

''ठीक है हुजूर! मगर यदि हम—''रामपुर हाल'' नाम रखें तब तो कोई शिकायत नहीं रहेगी न।''

"हाँ! मेरी स्टेट का नाम जरूर रोशन होना चाहिए हिन्दू विश्वविद्यालय में।" नवाब ने खड़े होकर अपने हाथों से दूसरी इलायची मालवीय जी को देते हुए गद्गद भाव से कहा।

मगर महात्मा गांधी को जब पता चला, तो वे गद़द नहीं हो सके। सीधे नवाब के सामने जा पहुँचे। अर्ज किया—''यह कैसा इंसाफ हुआ हुजूर! मैंने जो हिन्दू मुसलमान का भेद-भाव न मानकर हुजूर के सामने देश को आजाद करवाने के लिए लड़ रही कांग्रेस को चन्दा देने की गुजारिश की, उसे तो हुजूर ने मंजूर नहीं किया और कट्टर धार्मिक हिन्दू महामना जी को तुरन्त ही नकद अदायगी का फरमान दे दिया।''

''सो इसलिए महात्मा जी!'' नवाब की गंभीर आवाज गूँजी। ''कि मेरा और आपका संबंध मुनासिब नहीं लगा। जबकि महामना की और मेरी जोड़ी जम सकती है। पक्के घड़े के पास पक्का घड़ा रखने में कोई हर्ज नहीं, मगर कच्चा रखा गया और भूल से भी कभी टकराहट हो गई तो कच्चा फूट जाएगा। मैं ठहरा मोमिन, इस्लाम का पक्का समर्थक मुसलमान और मालवीय जी है पक्के सनातनी हिन्दू। सो पक्के को पक्के पर पूरा ऐतबार है। लेकिन आजादी के बाद कच्चा अपना कौल निभाएगा? इसकी गारन्टी कौन देगा? उम्मीद है मुझे अब बात और साफ न करनी पड़ेगी।"

(ब) संयोग से दूसरी घटना भी एक मुसलमान नवाब हैदराबाद रियासत से संबंधित है। नवाब हैदराबाद ने गांधी जी से मिलने से मना कर दिया था। वहीं मालवीय जी की भेंट तो हुई किन्तु उसमें उनकी सरासर तौहीन हो गई थी कि ''हिन्दू-यूनिवर्सिटी'' सो भी उत्तर भारत में बनाने के लिए एक मुसलमान नवाब से मदद माँगने की जुर्रत ही आपने कैसे की? दरबार से बड़े बेआबरू होकर वे बाहर आए थे। मगर उन्होंने हैदराबाद शहर छोड़ा नहीं था। शहर के छोटे-बड़े व्यापारियों से चन्दा उगाहने के चक्कर में कई दिन तक हैदराबाद में ही ठहरे रह गए थे। अचानक एक दिन देखा कि नवाब हैदराबाद एक जनाजे के पीछे-पीछे चल रहे हाथी पर बैठे मुट्ठी-मुट्ठी करके सिक्के पीछे फेंकते जा रहे हैं। जिस पर गरीब-गुरबा रियाया और बच्चों की भीड़ टूटी पड़ रही है—लूटने के लिए, पता चला कि "नवाब के घराने के कोई बड़े बुजुर्ग सदस्य काफी उम्र हो जाने और बीमारी का काफी कष्ट उठा लेने के बाद ''अल्लाह को प्यारे'' हो गए हैं। सो खुशी और जश्न के माहौल में उनका जनाजा निकाला जा रहा है। उसी के सिलसिले में नवाब साहब प्रजा पर सिक्के लुटा रहे हैं।"

मालवीय जी ने झट अपना दुपट्टा अपने रसोइएँ महाराज और कहार खिदमतगार को दोनों छोरों से तान कर फैलाकर पीछे-पीछे चलने को कहा और खुद उस भीड़ में शामिल हो सिक्के बीन-बीन फैले दुपट्टे पर रखने लगे। नवाब साहब की जब नजर पड़ी तो उन्होंने अपने रक्षकों को हुक्म दिया कि पगड़ी बाँधे हुए उस त्रिपुण्ड धारी आदमी को पकड़ लिया जाए और शाम को दरबार में उनके सामने पेश किया जाय।

जब पेशी हुई, तब मालवीय जी को पहचान चुकने के कारण बड़ी कड़क आवाज में नवाब ने पूछा—''जब आपको साफ-साफ बतला दिया गया था कि हमारी रियासत से एक धेला भी आपके ''हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए नहीं दिया जाएगा, तब आप अभी तक गए क्यों नहीं?

फिर आज जो खैरात के रुपए सड़क पर फेंके जा रहे थे, उन्हें बीन-बीन इतनी हिफाजत से अपने गमछे में क्यों सहेजे जा रहे थे?"

"हुजूर! हमारे देश की सबसे बड़ी रियासत के शहंशाह ही नहीं, सबसे दौलतमन्द नवाब हैं; जिनके दौलत खाने का सानी पूरी दुनियाँ में कोई और है? इसका भी किसी को पता नहीं। मेरे हिन्दू विश्वविद्यालय को हिन्दू-मुसलमान-ईसाई सभी धर्मों के अमीर-गरीब सभी से चन्दे मिलते रहे हैं। मजहब का फर्क देखे बिना ही कई मुसलमान नवाबों ने दिल खोलकर मदद दी है। ऐसे में अगर देश की सबसे बड़ी, सबसे दौलतमन्द रियासत से लौटकर, मैं यह बतलाता कि वहाँ से "हिन्दू विश्वविद्यालय" को कुछ नहीं मिला है। मामूली रियासतों के सामने इतनी महान् रियासत की कितनी तौहीन होती। अतः आप के शहर के बाशिन्दों से कुछ चन्दे इकट्ठा करता रहा था। मगर वह तो आखिर दूसरों का कहा जाता। आज जब जनाब खुद ही न्यौछावर करते जा रहे थे, तो खुद किस्मती से ऐसा संयोग बना गए कि आपके हाथों लुटाए पैसों को इकट्ठा कर ले जाऊँ तािक फ़क्र के साथ वहाँ बतला सकूँ कि नवाब हैदराबाद ने खुद अपने हाथ से "हिन्दू विश्वविद्यालय" के लिए यह सौगात दी है।"—मालवीय जी ने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया।

"इस छोटी-सी खैरात को आप इतनी बड़ी रियासत द्वारा दिया गया दान बताकर हमारी बदनामी करवाना चाह रहे हैं। लाइए सौंपिए उन सारे सिक्कों की गँठरी।"—नवाब की रोबदार आवाज से उपस्थित सभी की घिग्घी बँध गई।

बँधे दुपट्टे को खोल सिक्के सामने रखे गए। तभी सबकी आशा के विपरीत हक्म सुनाई दिया—"इन सिक्कों में इतने और सिक्के डाले जायँ कि कुल राशि एक लाख रुपयों की हो जाए। तब इसे पण्डित को ले जाने दिया जाए।

पण्डित जी! आप ने जो हमारी रियासत को सबसे बड़ी रियासत कहा तो हमारी दौलत का इस्तेमाल विश्वविद्यालय के सबसे बड़े क्षेत्र-विस्तार में होना चाहिये। कोई कालेज या होस्टेल थोड़ी-सी जगह में बनाकर मुदर्रिसों (अध्यापकों) के रहने के लिए एक मंजिले क्वार्टर्स इस चौहद्दी के साथ बनने चाहिए कि हिन्दू विश्वविद्यालय की सीमा में कोई भी और चीज उससे अधिक क्षेत्र में फैली न हो।

बनारस जाकर आप काम शुरू करवाएँ। जितना भी खर्च आएगा, हमारी रियासत तुरन्त ही अदा कर देगी। मगर शर्त यह रहेगी, लागत पर लगा सारा धन उन क्वार्टरों में रहने वाले अध्यापकों से मकान किराए के रूप में वसूल लिया जाएगा। तब वे रेंट फ्री कर दिए जाएँगे।" फिर तो महामना मदन मोहन मालवीय ने स्वयं अपने हाथों से दुपट्टे को गँठरी की शक्ल में बाँधा और नवाब को वैदिक मन्त्रों में आशीष देने लगे, इस बात की चिन्ता किए बिना कि उनके पल्ले कुछ पड भी रहा है या नहीं।"

इति शुभम्! श्रीरस्तु! शुभम् भवतु!

# महामना मालवीय का ईश्वर विषयक चिन्तन

प्रोफेसर देवव्रत चौबे \*

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय परम आस्तिक थे। ईश्वर पर उनकी अपार श्रद्धा एवं आस्था थी। उनके ईश्वर-चिन्तन पर वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण आदि का प्रभाव दिखता है। गाँधी जी उन्हें धार्मिक शास्त्रों का महान् ज्ञाता मानते थे। वे कहते थे कि मालवीय जी को यह संस्कार परम्परा से ही प्राप्त है। मालवीय जी के पितामह और पिता दोनों भागवत के प्रकाण्ड पंडित तथा कथावाचक थे। इसलिए महामना की भी भागवत पर दृढ़ निष्ठा थी। गाँधी जी के शब्दों में—''इक्कीस दिन के अपने उपवास-काल में भारतभूषण पण्डित मदनमोहन मालवीय जी के शुभ मुख से मूल संस्कृत के कुछ अंश जब सुने, तो खयाल हुआ कि बचपन में उनके समान भगवद्-भक्त के मुँह से भागवत सुनी होती, तो उस पर उसी उमर में मेरा गाढ़ प्रेम हो जाता।''' भागवत के तत्वों से ही मालवीय जी के विचारों का निर्माण हुआ था। उनका मानना था कि हिन्दू धर्म के सभी शास्त्रों का सार तत्व ईश्वर है।

महामना मालवीय को ईश्वर की सत्ता में पूर्ण विश्वास था क्योंकि वे धार्मिक व्यक्ति थे। धार्मिक व्यक्ति श्रद्धा एवं आस्था द्वारा ईश्वर के अस्तित्व का ज्ञान प्राप्त करता है, तर्क द्वारा नहीं। मालवीय जी ईश्वर के अस्तित्व के लिए वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण आदि से प्रबल प्रमाण दुसरा कोई नहीं मानते। उनका कहना है कि सभी शास्त्रों का निचोड़ यही है कि ईश्वर है। ''ऋग्वेद स्पष्ट रूप से कहता है कि सृष्टि के पहले जगत् अन्धकारमय था। उस तम के बीच में और उससे परे केवल एक ज्ञानस्वरूप स्वयम्भू भगवान् विराजमान थे।"⁴ इसी प्रकार से उन्होंने कई उदाहरण शास्त्रों से उद्धृत किया है। वे कहते हैं कि उस भगवान् की सत्ता बृद्ध ने भी मानी है और उसे पाने के लिए नियम बताए हैं।⁵ मालवीय जी यद्यपि शास्त्र एवं आप्त वचनों को ही ईश्वर सत्ता के लिए पर्याप्त मानते हैं, फिर भी वे उन लोगों के लिए अन्य प्रमाणों को प्रस्तुत करते हैं जिन्हें ईश्वर की सत्ता में संदेह है। उन्हीं के शब्दों में—''जब कभी आपको इस शक्ति के अस्तित्व में संदेह पैदा हो तो आप अपनी दृष्टि उस आकाश की ओर फेरिए, जो उन ताराओं और ग्रहों से विचित्र प्रकार से सुशोभित है, जो असंख्य युगों से मनोहारी ढंग से भ्रमण करते आए हैं। उस आकाश की ओर ध्यान दो, जो अत्यन्त दूरस्थ सूर्य से पृथ्वी पर के जीवों की रक्षा के लिए आश्चर्यकारी वेग से यात्रा करके आता है। अपनी दृष्टि तथा अपने मस्तिष्क को अपनी शरीर रूपी अद्भुत मशीन की ओर झुकाओ, जिसे परमात्मा ने आपको दिया है, और इस कल की अद्भुत बनावट और शक्ति पर गम्भीरतापूर्वक विचार करो।"6 इस प्रकार की विचित्र सृष्टि का निर्माता एवं नियंता ससीम मानव नहीं हो सकता। ऐसी सृष्टि की रचना सर्वशक्तिमान ईश्वर ही कर सकता है। ईश्वर ही सब लोकों को एक व्यवस्था-सूत्र में बाँधे हुए है। सूर्यादि ग्रह ईश्वर के अधीन होकर ही ठहर सकते हैं।

कुछ विद्वानों का कहना है कि ईश्वर का यदि अस्तित्व होता तो उसे चक्षु आदि इन्द्रियों से देखा जा सकता। परन्तु चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा उसका दर्शन नहीं हो सकता क्योंकि स्थूल इन्द्रियों के द्वारा स्थूल विषयों का ज्ञान होता है। ऐसे अनेक सूक्ष्म पदार्थ हैं जिनको हम इन चक्षुओं द्वारा नहीं देख सकते। कुछ ऐसे कृत्रिम यन्त्र हैं जिनकी सहायता से सूक्ष्म पदार्थों को देखा जा सकता है। परन्तु ये यन्त्र भी उस ईश्वर का दर्शन नहीं करा सकते जो समस्त जगत् में विद्यमान है। मालवीय जी कहते हैं कि उसका प्रत्यक्ष दर्शन आँखों के द्वारा नहीं हो सकता। लेकिन विमल बुद्धि द्वारा उसका प्रत्यक्ष किया जा सकता है। उन्हीं के शब्दों में—''जो लोग ईश्वर को मन की आँखों (बुद्धि) से देखना चाहते हैं, उनको उचित है कि वे अपने शरीर और मन को पवित्र कर और बुद्धि को विमल कर ईश्वर की खोज करें।''' दिव्य चक्षु द्वारा ईश्वर का दर्शन किया जा सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यही दिव्य चक्षु दिए थे जिसके कारण वह विश्वरूप देश सका था।

मालवीय जी के अनुसार आत्मा अविनाशी है क्योंकि वह ईश्वर का अंश है। उसके देह से निकल जाने पर शरीर मृत हो जाता है। शरीर का मृत हो जाना यह सिद्ध करता है कि ईश्वर है। महामना के शब्दों में—''मनुष्य के मुख से जो शब्द निकलता है वही इस बात की घोषणा करता है कि ईश्वर है। लोग कहते हैं कि नाक सुँघती है, त्वचा स्पर्श करती है। किन्तु कौन सूँघता है, कौन स्पर्श करता है, कौन देखता है, कौन सुनता है? जब तक देह में प्राण है तभी तक ये इन्द्रियाँ काम करती हैं। प्राण निकल जाने पर ये इन्द्रियाँ एक छिन भी अपना काम नहीं कर सकती हैं। जिस मुख को देखने के लिए पुरुष, स्त्री, माता, पिता, भाई, बन्धु, मित्र सम्बन्धी आकुल रहते थे, प्राण के निकलते ही उस मुख से लोग मुँह फेर लेते हैं। मरते ही अपने प्रिय प्राणी उस मुख को ढाँक देते हैं। क्यों? इसलिए कि प्राण ही आत्मा था, वह निकल गया तो शरीर निःसत्त्व हो गया। वही प्राण, वही आत्मा ईश्वर का अंश है, वह अविनाशी है।" ईश्वर के अस्तित्व नहीं मानने पर दो संभावनाएँ हो सकती हैं- या तो जीवन सर्वदा बना रहे अथवा जीवन का अस्तित्व ही न रहे। किन्तु यहाँ दोनों सम्भावनाएँ नहीं दिखती। यहाँ यह दिखता है कि जीवन है किन्तु नाशवान् है। इससे यह सिद्ध होता है कि कोई ऐसी नित्य वस्तु है जिसके रहने पर जीवन रहता है और न रहने पर नहीं रहता। वह नित्य वस्तु आत्मा है जो ईश्वर का ही अंश है।

मालवीय जी कहते हैं कि हमारा अपना जीवन सिद्ध करता है कि ईश्वर की सत्ता है। उसके अस्तित्व के समर्थन में वे एक विलक्षण तर्क प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि यदि ईश्वर नहीं होता तो मनुष्य और पशु में हम अन्तर नहीं कर पाते। उनके अनुसार "यदि हमको ईश्वर का ज्ञान नहीं हुआ, यदि हमने ईश्वर की महिमा नहीं समझी, यदि उनके चरणों में भक्ति न की, तो पशु में और हममें क्या भेद रहा?"'10

मालवीय जी इस धारणा को स्वीकार करते थे कि ऐतिहासिक घटनाओं में निरन्तर दैवी प्रकाश अभिव्यक्त होता है। उन्हें गाँधी और अरविन्द की तरह विश्वास था कि इतिहास में ईश्वर हमेशा न्याय, सत्य और नैतिकता के पक्ष में ही हस्तक्षेप करता है। उन्हें यह विश्वास था कि प्रथम विश्वयुद्ध में ईश्वर का हाथ था इसलिए मित्र राष्ट्रों की विजय हुई थी। अपने अध्यक्षीय भाषण में महामना ने कहा था: ''ईश्वर का यह स्पष्ट उद्देश्य था कि विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों का नैतिक पुनर्जन्म हो। उसका उद्देश्य इस युद्ध के द्वारा केवल इस सिद्धान्त की स्थापना करना नहीं था कि न्याय ही शक्ति है, बल्कि वह यह भी चाहता था कि अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता का अन्त हो और विश्व के युद्धरत राष्ट्र एक नैतिक व्यवस्था की स्थापना करें तथा ऐसा स्थायी प्रबंध करें जिससे यह स्निश्चित हो सके कि भविष्य में वे पारस्परिक व्यवहार में तथा शेष मानव परिवार के साथ वर्ताव में न्यायपूर्ण तथा सम्यक् आचरण करेंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक था कि युद्ध का तब तक अंत न हो जब तक कि अमेरिका युद्ध में सिम्मिलित न हो जाय और जब तक राष्ट्र उन शान्ति प्रस्तावों से सहमत न हो जायँ जो इस व्यवस्था का आधार बनने वाले थे। इसलिए जब वे इस पर राजी हो गए तभी निर्णायक घड़ी में ईश्वर ने अमेरिका को युद्ध में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया जिससे वह आकर मित्र राष्ट्रों की सहायता करे और जर्मनी के विरुद्ध युद्ध पासा पलट दे।" मालवीय जी को विश्वास था कि राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में भी नैतिक शासन का नियम काम करता है और न्याय तथा सत्य के पक्ष की विजय होती है। इतिहास नैतिक निर्णय एवं संघर्ष का रंगमंच है जो एक नैतिक और न्यायप्रिय ईश्वर की ओर संकेत करता है।

महामना मालवीय के अनुसार ईश्वर एक है। वे परमात्मा और ब्रह्म को उसी का पर्याय मानते हैं। 12 वे ऋग्वेद के 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदिन्त' के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि हम एक ही ब्रह्म को ईश्वर, परमेश्वर, परब्रह्म, नारायण, भगवान्, वासुदेव, शिव, राम, कृष्ण, विष्णु, जिहोवा, गाड, खुदा आदि सहस्रों नामों से पुकारते हैं। 13 उनके अनुसार ईश्वर सिच्चिदानन्द है। वह सत्य, ज्ञानस्वरूप एवं अनन्त है। वह नित्य और अद्वितीय है। उसका न आदि है न अन्त। एक होने पर भी अनेक रूपों में दिखायी देता है। वे ईश्वर को वस्तुपरक सत्ता मानते हुए भी उसे कोई भौतिक वस्तु नहीं मानते। उन्हीं के शब्दों में- ''उसका स्वयं शरीर नहीं है, किन्तु विनाशमान शरीर में पैठकर वह संसार की लीला कर रहा है।'' ''परमात्मा इस शरीर के अन्दर बैठा

है, जैसे कोई मोटर में सवार हो।"14 महामना शरीर को परमात्मा का मिन्दर मानते हैं। इसिलए इस मिन्दर को पिवत्र रखने की शिक्षा देते हैं। उनका कहना है कि इस पिवत्र मिन्दर का रक्षक ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य से आत्मबल मिलता है। "हम ब्रह्मचर्य के द्वारा अपने भीतर वह विद्युत शक्ति भर सकते हैं, जिसे प्राप्त कर हम विश्व विजयी बन सकते हैं।"15 वे ईश्वर को सत्य का प्रेमी मानते हैं इसिलए कहते हैं कि व्यक्ति को कभी भी असत्य नहीं बोलना चाहिए।

मालवीय जी कहते हैं कि एक ही ईश्वर में कार्यभेद के कारण नामभेद पाया जाता है। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश एक ही परमात्मा के तीन नाम हैं। एक ही ईश्वर सृष्टिकर्ता के रूप में ब्रह्मा, पालनकर्ता के रूप में विष्णु तथा संहारकर्ता के रूप में शिव कहा जाता है। वे अपने इस मत के पक्ष में कई पुराणों के कथनों को प्रस्तुत करते हैं। जैसे—''एक ही जनार्दन भगवान् सृष्टि, पालन और संहार करने वाली ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नाम की तीन संज्ञा प्राप्त करते हैं।''<sup>16</sup> शिवपुराण में स्वयं महेश्वर कहते हैं—''हे विष्णु! सृष्टि, पालन तथा संहार- इन तीन गुणों के कारण में ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक तीन भेद से युक्त हूँ।''<sup>17</sup> परमात्मा में जो एक अद्वैत तत्त्व है, वही विश्वगत व्यवहार के लिए तीन रूपों में प्रकट हो रहा है। इनके एकत्व की आस्था परमार्थ है, भेद की कल्पना व्यवहार है। इन तीनों में कोई छोटा-बड़ा नहीं है।<sup>18</sup>

मालवीय जी के अनुसार ईश्वर विश्व का रचयिता है। इस विश्व का अस्तित्व पूर्ण रूप से ईश्वर पर आश्रित है क्योंकि उसी ने इसकी रचना की है। वह संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। ''वह सच्चिदानन्द सर्वव्यापक होते हुए एक-एक जीवन में विद्यमान है।''19 ईश्वर असीम और सर्वव्यापक है। ईश्वर ही इस सृष्टि का नियन्ता तथा व्यवस्थापक है।20 ईसाई, मुसलमान, बौद्ध, जैन सब उसके नियमों के अनुकूल चलते हैं। वह अनादि, सनातन, पुराण-पुरुष सारी सृष्टि को चलाता रहता है।<sup>21</sup> महामना ईश्वर की तुलना पावर-हाउस से करते हुए कहते हैं कि ''आप लोग जानते हैं कि हिन्दू यूनिवर्सिटी के इंजीनियरिंग कालेज में जो पावर-हाउस है, और इस पवित्र नगरी के एक तरफ बना हुआ है, उसका सम्बन्ध सब विशाल भवनों, कालेजों, छात्रावासों और बंगलों से है। इससे सब कमरों में प्रकाश जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के बल्ब लगे हैं, पंखे चलते हैं, कुओं से पानी खिंचता है और साइंस विभाग में अनेक कार्य होते रहते हैं। इन सबको कराने वाला वही एक पावर-हाउस है। उसी तरह इस विचित्र सृष्टि का वैभव एक परमात्मा दिखा रहा है। वह सब करता हुआ द्रष्टा है, खुद ही सब देखता है। हिमालय की सबसे ऊँची चोटी कैलास पर और समुद्र के गम्भीर तल में उसकी लीला का नृत्य होता रहता है।''22 उसका जगत् के प्राणियों के साथ वही संबंध है जो पिता का अपनी संतान के साथ होता है।

महामना मालवीय ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानते हुए भी उसे सभी प्राणियों के हृदय में अवस्थित मानते हैं। वे वेदव्यास के इस कथन को स्वीकार करते हैं कि ब्रह्म की ज्योति अपने भीतर ही है, अन्यत्र नहीं है और सब जीवधारियों में एक समान है।<sup>23</sup> मालवीय जी को यह दृढ़ विश्वास है कि सबका ईश्वर एक ही है और वह अंश रूप में सबमें समान रूप से विद्यमान है।<sup>24</sup> उनका ईश्वर लोक से सम्बन्धित है। वे ईश्वर को प्राणिमात्र में विद्यमान मानकर सबमें मित्रता, प्रेम एवं भाईपन का भाव भरना चाहते हैं जिससे सबका कल्याण हो। उनके शब्दों में—"जब परमात्मा सबमें है तो कौन किसे मारे, किसे कष्ट दे। कोई अपने को कष्ट नहीं देता। वैसे ही एक परमात्मा का सब वैभव है। वही हममें और तुममें है—अब हों कासों बैर करों।"<sup>25</sup> जब हमें यह भान हो जाता है कि सब हमारे हैं तो ऐसी स्थिति में हम दूसरों का हित ही करेंगे क्योंकि दूसरे भी तो अपने ही हो जाते हैं। यह संसार जो पराया दिखता है, वह एपराया नहीं है, वह हमारा ही है।

मालवीय जी को ईश्वर के अवतार-सिद्धान्त में विश्वास है। यद्यपि कुछ लोग यह मानते हैं कि ईश्वर अवतार नहीं ले सकते। परन्तु ऐसा कहना ईश्वर की सर्वशक्तिमता में कमी करना है। महामना कहते हैं कि अवतार में परमात्मा का विशेष तेज विद्यमान रहता है। 26 भगवान् जब जहाँ पर आवश्यकता समझ्ते हैं, वहीं अपने दिव्य रूप को प्रकट करते हैं। वे नर रूप में अवतार लेकर अपने चिरत्र के द्वारा मानव जाति के लिए आदर्श प्रस्तुत करते हैं। राम, कृष्ण भारतीय जनता के नैतिक गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। भीष्म पितामह ने कृष्ण के अनेकों गुणों का वर्णन किया है। 27 अवतारी पुरुष में अनन्त गुण विद्यमान रहते हैं। भगवान् के अवतारों में कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। उनमें समस्त सद्गुण असीमित मात्रा में विद्यमान रहता है। मालवीय जी का मत है कि ऐसा व्यक्तित्व सम्पन्न ईश्वर ही भक्तों का उपास्य हो सकता है और उनकी स्तुति सुनकर उनके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित कर सकता है।

महामना का ईश्वर सगुण एवं निर्गुण दोनों है लेकिन उनका झुकाव सगुण की ओर ही विशेष है क्योंकि सगुण की उपासना में सहजता, सरलता है। यह सबके लिए सुलभ है। मालवीय जी मूर्तिपूजा के प्रबल समर्थक हैं क्योंकि यह सग्ण ईश्वर का ही एक रूप है। उनका कहना है कि मूर्तिपूजा के द्वारा हम उस भगवान् की ही पूजा करते हैं जो घट-घट में व्याप्त है। हिन्दू सम्प्रदाय में भाव की प्रधानता होती है। भक्त मिट्टी या पत्थर की पूजा नहीं करता, वह तो केवल अपने प्रभु की पूजा करता है। उसकी दृष्टि में वह मिट्टी या पत्थर नहीं है, वही सच्चिदानन्दघन सर्वव्यापी भगवान् हैं। मालवीय जी के शब्दों में— ''लोग कहते हैं कि वे मूर्ख हैं जो मिट्टी की मूर्ति का पूजन करते हैं, चन्दन चढ़ाते हैं। सुनो! हम तो इसके द्वारा उस भगवान् की ही पूजा करते हैं। हम कहते हैं, ''भगवान् मैं तुम्हें वस्त्र अर्पण करता हूँ। तुम्हारे शरीर का कोई पता नहीं। जहाँ तुम्हारा शरीर हो वहाँ ही इस वस्त्र को ले लो। यह धूप अर्पण करता हूँ। हे भगवन् आप की महिमा का देवता भी पार नहीं पाते।" बतलाओ, वह मिट्टी को कहता है या भगवान् को? यह मूर्ति तो निमित्त मात्र है। क्योंकि इस तरह ध्यान नहीं लगता इसलिए अपनी भावना बनाता है।''28 महामना प्रतिमा की पूजा में सहजता पाते

हैं इसिलए इसे लोक से जोड़ना चाहते हैं। सभी वर्ण, जाित के लोग इस पूजा के अधिकारी हैं। वे कहते हैं—''मेरी इच्छा है कि प्रतिमा के रूप में भगवान् को सबके घर पहुँचा दूँ, तािक वह पूजन करें।''<sup>29</sup> ऐसा करके मालवीय जी सबको परमात्मा की ओर ले जाना चाहते हैं जिससे सबका जीवन प्रकाशमय और सुखमय हो जाय।

महामना को दीनहीन, दबे-कुचले लोगों से विशेष लगाव है इसिलए उन्हें उनके उद्धार की विशेष चिन्ता है। उनका कल्याण भिक्तमार्ग से ही संभव है क्योंकि यह मार्ग बहुत ही सहज और सरल है। नाम स्मरण तथा भगवान् की मूर्ति दर्शन से सामान्य जन भी अपना कल्याण कर सकता है। मालवीय जी के शब्दों में- ''नाम का स्मरण सामान्य से सामान्य प्राणी के लिए भी सरल बात है, किन्तु बड़े फल का देने वाला है। नाम स्मरण की मिहमा इसिलए है कि ''यतस्तद्विषया मितः'' नाम के स्मरण से मनुष्य की मित ईश्वर की ओर जाती है। उनके गुणों के स्मरण से मनुष्य के दोष और पाप छूट जाते हैं। मन पवित्र तथा प्रकाशमान होता है।''³० देव दर्शन से भी ये उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं।

महामना मालवीय के दर्शन में ईश्वर स्मरण, स्तुति, जप आदि का विशेष महत्व है। ईश्वर का स्मरण केवल मनुष्य के प्रति ही नहीं अपितु सभी जीवधारियों के प्रति दया तथा सहानुभूति का संचार करता है। <sup>31</sup> उनका कहना है कि परमात्मा को प्राणिमात्र में व्याप्त समझकर भिक्त करनी चाहिए। ऐसी भिक्त सभी प्राणियों तथा जीवधारियों के प्रति प्रेम तथा प्रीति उत्पन्न करती है। वे अपने इस मत के समर्थन में श्रीमद्भागवत से भक्त शिरोमणि प्रह्लाद के कथन को उद्भृत करते हैं। "गोविन्द भगवान् के प्रति एकान्त भिक्त करना और चराचर प्राणियों में भगवान् है, ऐसी भावना करना ही इस लोक में सबसे उत्तम स्वार्थ है।" मालवीय जी ईश्वर की सबसे उत्तम पूजा यही मानते हैं कि हम प्राणिमात्र में ईश्वर का भाव देखें, सबसे मित्रता का भाव रखें और सबका हित चाहें।

मालवीय जी ईश्वर को सर्वव्यापी मानते थे इसलिए उनका कहना था कि भारत में सर्वत्र स्वतंत्रता, समानता तथा न्याय के सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाना चाहिए। 1918 में दिल्ली कांग्रेस के अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा था : "मेरा निवेदन है कि आप अपनी पूरी शक्ति के साथ इस बात की माँग करने का संकल्प कर लें कि अपने देश में आपको भी अपने विकास की वे ही सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए जो इंग्लैंड में अंग्रेजों को मिली हुई है। यदि आप इतना संकल्प कर लें और अपनी जनता में स्वतंत्रता, समानता तथा भातृत्व के सिद्धान्तों को फैलाने का प्रयत्न करें तथा हर भाई को, चाहे उसकी स्थिति कितनी ही अकिंचन और निम्न क्यों न हो, यह अनुभव करने दें कि उसमें भी वही ईश्वरीय प्रकाश की किरण विद्यमान है जो उच्च से उच्च स्थिति के व्यक्ति में विराजमान है और यदि आप हर भाई को इस बात की अनुभूति करा दें कि उसे भी अपने साथी प्रजाजनों के समान ही व्यवहार पाने का अधिकार है तो निश्चय समझिए कि आपने

अपने भविष्य का निर्णय स्वयं कर लिया है, और जिनके हाथों में आज देश की शक्ति है वे आपकी उचित माँगों का विरोध करने में कभी स्कल नहीं होंगे।'' उनका मानना है कि संसार की वेदना से संतरण का यही मार्ग है कि समदर्शी की सत्ता में विश्वास कर उसी का अंश प्राणिमात्र को माना जाय।

महामना को लोक की जितनी चिन्ता थी उतनी परलोक की नहीं। इसी कारण उन्होंने न कभी स्वर्ग की कामना की, न मोक्ष की। उनका स्पष्ट उद्घोष था—

## न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दु:ख तप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

वे दुःखीजनों के कल्याण के लिए निरन्तर इसी पृथ्वी पर जन्म लेने के आकांक्षी थे। उनके चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जीवन से विमुख नहीं है, वह लोकोन्मुख है, वह जीवन को सार्थक बनाने के लिए है। उन्हें मानव-जीवन पर गर्व है, अपने देश पर गर्व है। भारत में मानव जन्म पाने की सार्थकता उनके लिए भगवद्भभिक्त में है। उनका दर्शन जीवन की स्वीकृति का दर्शन है। जीवन के मूल्य पर विनाश करके मोक्ष लाभ करने का दर्शन नहीं है।

मालवीय जी ईश्वर-भक्ति द्वारा सभी जातियों एवं वर्णों को एकता के सूत्र में बाँधना चाहते हैं। देश एवं समाज को वैभवशाली बनाना चाहते हैं। उनका ईश्वर उनकी आशाओं का केन्द्र है।

## संदर्भ-सूची

- मुकुट बिहारी लाल, महामना मदन मोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व, पृ0
   574, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1978
- 2. वी. ए. सुन्दरम, (संपादक), होमेज टू मालवीय जी, पृ० ४, बनारस, 1949
- 3. मोहनदास करमचंद गाँधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पृ० 28, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 2009
- 4. वासुदेवशरण (संकलनकर्ता), महामना श्री पण्डित मदनमोहन जी मालवीय के लेख और भाषण (भाग एक-धार्मिक), पृ० २०, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1962

- अवधेश प्रधान (संपादक), महामना के विचार : एक चयन, पृ० 35, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 2007।
- 6. वही, पृ0 87
- 7. मालवीय के लेख और भाषण, पृ0 22-23
- 8. वही, पृ0 176
- 9. आज, मई 17, 1929
- 10. मालवीय के लेख और भाषण, पृ0 176
- 11. 1918 की दिल्ली काँग्रेस में मालवीय जी का अध्यक्षीय भाषण
- 12. महामना के विचार : एक चयन, पृ० 87
- 13. मालवीय के लेख और भाषण, पृ0 26
- 14. महामना के विचार : एक चयन, पृ० 35
- 15. वही, पृ0 37
- 16. विष्णु पुराण 1:2:66
- 17. शिवपुराण 2:1:9:28,38
- 18. मालवीय के लेख और भाषण, भूमिका, पृ0 6-7
- 19. महामना के विचार : एक चयन, पृ0 30
- 20. वही, पृ0 87
- 21. वही, पृ0 32
- 22. वही, पृ0 30
- 23. ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत्सर्वजन्तुषु।
- 24. मालवीय के लेख और भाषण, पृ0 41
- 25. महामना के विचार : एक चयन, पृ0 35
- 26. मालवीय के लेख और भाषण, पृ0 165
- 27. वही, पृ0 48-50
- 28. वही, पृ0 193
- 29. वही, पृ0 193
- 30. वही, पृ0 195-196
- 31. महामना के विचार : एक चयन, पृ० 89

# पं0 मदन मोहन मालवीय जी के चिन्तन की प्रासंगिकता का प्रश्न

पं0 मदन मोहन मालवीय जी ने भारत की धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चिन्तन परम्परा के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण योग दिया है। वस्तुतः वे महापुरुष ही नहीं श्रेष्ठ आत्मा थे। वर्तमान भारत का जनमानस, मूल रूप से प्रबुद्ध वर्ग ने जब अपनी निडरता छोड़ दी हो, प्रलोभनों के प्रति लगातार आकर्षित हो रहे हों, अन्याय सह ही नहीं रहे हों, अन्याय कर रहे हों, राज्य, सत्ता, प्रशासन, सभी क्रूर और अमानवीय हो रहे हों, देश और समाज में साहस की कमी हो रही हो, दृढ़ता पूर्वक उद्देश्य को प्राप्त करने की क्षमता चुक रही हो, नैतिकता का स्थान अनैतिकता ने ले लिया हो, सामूहिक हित की जगह व्यक्तिगत हित सर्वोपरि बन गया हो, भारत के मूल से कट पश्चिमी अपसंस्कृति के मूल से जुड़ने की होड़ मची हो, शुद्ध भरतीय रक्त के कहे जाने की अपेक्षा, 'दो-गले' रक्त का कहा जाना ज्यादे पसन्द किया जा रहा हों, जब शुद्ध भारतीयता की जगह 'फ्यूजन' की भारतीयता फैली हो, राष्ट्र में, समाज में, आध्यात्मिकता, सद्गुण, नैतिक मूल्य और सांस्कृतिक उत्कर्ष का 'सिंथिसिंस' (संश्लेषण) समाप्त हो रहा हो, ऐसी स्थिति में महामना के चिन्तन की प्रासंगिकता क्या है ? क्या महामना अपनी असाधारण रचना काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही तो नहीं चुक रहे? भू-मण्डलीकरण के वर्तमान युग में क्या महामना का व्यक्तित्व अजातशत्र् रह गया है? वस्तृतः महामना धमिकयों से निडर, प्रलोभनों से अनाकर्षित, अन्याय और क्रूरताओं के विरूद्ध संघर्ष, साहस और दृढ़ता की प्रतिमूर्ति, साधन और साध्य की एकता के समर्थक, देशवासियों के सामूहिक हित के प्रति चिंतित, सांस्कृतिक उत्कर्ष के लिये कार्य करने वाले व्यक्तित्व के धनी थे। ऐसा ही व्यक्तित्व वे भारत के प्रत्येक नागरिक में देखना चाहते थे। खास तौर पर, भारत के प्रबृद्ध वर्ग में ऐसा व्यक्तित्व अनिवार्य मानते थे।

भारत के वर्तमान युग और महामना के युग में कोई विशेष अन्तर नहीं है। अन्तर यह है कि तब भारत परतंत्र था और आज स्वतंत्र। स्वतंत्रता प्राप्ति के छः दशक भारत ने पूरे भी कर लिये। लेकिन स्वतंत्र होने का सुख, 'स्वतंत्रता के जन्म सिद्ध अधिकार' के प्रति आसक्ति, का भाव दिखाई नहीं पड़ता । तब भी हम दास मनोवृत्ति में जी रहे थे आज भी दास मनोवृत्ति में जी रहे हैं। पश्चिमी चकाचौध, पश्चिमी मूल्यों का अन्धानुकरण, पश्चिमी भाषाओं के प्रति अत्यधिक लगाव, पश्चिमी, रहन-सहन, खान-पान, पहिनावा, पश्चिमी अपसंस्कृति को देश में जायज ठहराने की होड़, बौद्धिक दिवालियापन को पश्चिमी चिन्तन से भरने की वकालत, विचारधाराओं के संघर्ष में भारतीय विचार धारा को रूढ़िवादी अथवा कूपमण्डूक संस्कृति का पर्याय मानने में सुख का अनुभव, 'खायं

भारत का', जीये भारत भूमि में, 'मरे भारत की पवित्र माटी में, और गुण गायें विदेशी मुल्यों का', अपने परिवार का स्वस्वार्थ में विखण्डन, विदेशी परिवारों को धन और पैसे की लालच में पालने की होड़, हमारे दास होने का पर्याप्त उदाहरण है। भारतीयों की इस प्रवृत्ति के कारण भारत की विकासमान चिन्तन परम्परा रूद्ध (स्टेगनेट)हो चुकी है। भारतीयता अधोगित में है। मानसिक, शारिरिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक दृष्टि से तब भी हम दरिद्र थे, आज भी। क्या ऐसी स्थिति में महामना प्रासंगिक हैं ? महामना मानते थे कि जब तक भारत किसी भी तरह की विदेशी दासता के चंगुल में रहेगा, तब तक भारतीय जनता ब्राइयों से छुटकारा नहीं पा सकती। भारत में पश्चिमी दासता का भाव जितनी तेजी से बढ़ेगा, ब्राईयाँ उतनी तेजी से जड़ें जमाती जायेंगी। भारत की परतंत्रता का कारण भारतीयों में दास मनोवृत्ति का विकास था। वर्तमान में भी भारत में उभरती, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, पारिवारिक बुराइयों का एक मात्र कारण पश्चिम कें प्रति दास मनोवृत्ति का विस्तार ही है। महामना मानते थे कि राष्ट्र, समाज, व्यक्ति का स्वस्थ विकास स्वतंत्रता का वातावरण मॉगता है। महामना किसी भी तरह के पश्चिमी आधिपत्य और शोषण से, पश्चिमी प्रजातीय दम्भ से, और पश्चिमी मॉडल की नौकरशाही निरंकुशता से घृणा करते थे। महामना मानते थे कि पश्चिमी राजनीतिक चिन्तन सदैव राज्य को पुलिस राज्य मानती रही हैं । भारतीय राजनीतिक चिन्तन, चाहे, मनु हो, कौटल्य, कामन्दक, शुक्र, भीष्म, सोमदेव, वातव्याधि, घोटकमुख, बहुदन्तीपुत्र, रामायण, आदि कोई हो कल्याण-राज्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मानते थे। महामना भारतीय राजनीतिक चिन्तन की परम्परा मानते थे, और चाहते थे कि स्वतंत्र भारत में राज्य कल्याण राज्य में बदल जाये। क्या भारत का वर्तमान राज्य कल्याण राज्य है? भारत ने राज्य व्यवस्था पश्चिम की परम्परा से उधार लिया। भारतीय संविधान खिचड़ी संविधान है। रही सही कसर भूमण्डलीकरण ने पूरा कर दिया। क्या हम आज अपने को शुद्ध भारतीय मान सकते हैं? शुद्ध भारतीयता हम स्थापित न कर सके, और अन्तर्राष्ट्रीय होने का पाखण्ड क्यों खड़ा कर रहे हैं? होना यह चाहिये कि पहले भारतीय बने तब भारतीयता का अन्तराष्ट्रीयकरण करें। महामना की दृष्टि का आधार यही था।

स्वतंत्र भारत ने जिस नौकरशाही के ढाँचे को स्वीकार किया वह पूर्णतः पश्चिमी संस्करण का है। इसी संस्करण से भारत गुलाम हुआ था। महामना चाहते थे कि इस नौकारशाही के ढाँचे के स्थान पर लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना हों। नौकरशाही में सर्व कल्याण का भाव हो,

मानवीय संवेदना हो, नौकरशाह स्व आधिपत्य स्थापित करने के रोग से ग्रस्त न हों, वे जन सेवक के रूप में लोकतांत्रिक ढंग से कार्य करें। भारत में नौकरशाही पश्चिमी ढंग की आधिपत्य की भावना पर आधारित है। शोषण, दम्भ, क्रूरता, संवेदनहीनता, अपवित्रता, निस्पक्षता का अभाव, समाज और राष्ट्र के प्रति समर्पण के स्थान पर व्यक्तिगत स्वार्थों की प्रतिस्पर्धा, नौकरशाही की मौलिक विशेषता बन गयी है। नौकरशाही में स्वतंत्र निर्णय की क्षमता नहीं है। ऐसी स्थिति में नौकरशाह न्याय नहीं कर पाते। समस्याओं का निराकरण नहीं कर पाते। वे अधिकार और 'पोजीशन' की 'इजारादारी' का उपभोग व्यक्तिगत स्वार्थ में, या समाज में अपनी दबंगई बढ़ाने में करते हैं। नौकरशाहों को सुख भोगने और अतिभौतिकतावाद में लिप्त होने से परहेज करना चाहिये। महामना मानते थे कि नौकरशाही सेवा, तपस्या, कर्तव्यपारायणता, निस्पक्षता, निस्वार्थता और न्याय देने का सशक्त माध्यम है। महामना मानते थे कि श्रम और मानव व्यक्तित्व को यथोचित मान्यता और सम्मान प्राप्त होना चाहिये। वे मानव में अन्तर्निहित गुणों के विकास के पक्षधर थे। महामना ने मानवीय मूल्यों को स्थापित करने पर जोर दिया। फलतः उन्होंने मॉग की थी कि हिन्दुस्तानी रियासतों में संवैधानिक सरकारें स्थापित की जाय. सभी भारतीयों को स्वशासन का अधिकार मिले, वयस्क मताधिकार पर आधारित लोकतंत्र की स्थापना हो. विधि का शासन स्थापित हो. विधि द्वारा नागरिक स्वतंत्रतायें सबके लिये स्निश्चित की जाय, आर्थिक कल्याण की वृद्धि के निमित्त किसानों के लिये स्थायी काश्तकारी बन्दोवस्त किया जाय और लगान में 25 प्रतिशत की कमी की जाय। शोषण और अत्याचारों से मजदूरों की रक्षा की जाय और सबको अच्छी शिक्षा और जीवन के अच्छे साधन मुहैय्या किये जाय। महामना ने उक्त मॉर्गे साम्राज्यवादी सरकार से की थी। आज भी उनकी मॉर्गे उतनी ही आवश्यक है, जितनी तब थीं। महामना किसान, मजदुर, विद्यार्थी, के हितों के बारे में सदैव चिंतित रहा करते थे। राष्ट्र की उन्नति के लिये इन तीनों का हित संरक्षित होना अनिवार्य है। क्या स्वतंत्र भारत में इनके हित उतने सुरक्षित हैं, जितनी महामना ने कल्पना की थी?

स्वशासन महामना मालवीय जी के चिन्तन का केन्द्रीय पक्ष है। केन्द्रीय विधायिका में उन्होंने स्वशासन की राष्ट्रीय माँग के लिये बार-बार आग्रह किया। उन्होंने अध्यादेशों, के आरोपण की निन्दा तथा प्रेस विधेयक, राजविद्रोह सभा विधेयक, रोलेक्ट और पब्लिक सुरक्षा, प्रेस विधेयक, जैसे दमनकारी विधानों का विराधे ही नहीं किया, बल्कि यह भी माँग की कि सबके लिये नागरिक स्वतंत्रतायें पुनः प्रतिष्ठित की जाय तथा सरकार द्वारा अपने सब कार्यों में उनका ध्यान रखा जाय। उन्होंने सेना के खर्चे को कम करने का तथा सेना और लोकसेवाओं के भारतीयकरण करने का आग्रह किया था, और बार-बार वित्त विधेयक को रद्द करने के लिये वोट किया, तथा सरकार की नीतियों और उसके साम्राज्यिक व्यवहार के विरूद्ध प्रोटेस्ट के रूप में सेना विभाग तथा शासन-परिषद के बजट के प्रस्तावों का समर्थन किया। महामना के उक्त

कार्य इस बात के संकेत हैं कि वे मानवतावादी थे और उनके सम्पूर्ण चिन्तन का केन्द्र मानव था। मानव का सर्वोत्कृष्ट विकास और प्रकृति के साथ उसका सामान्जस्य महामना के चिंतन का मूल उद्देश्य है। उन्होंने शासन का उद्देश्य व्यक्ति की गरिमा की स्थापना स्वीकार किया। व्यक्तिकी गरिमा के साथ स्वतंत्रता, समानता और न्याय की स्थापना को वे अनिवार्य मानते थे। उनके लिये स्वतंत्रता, समानता और न्याय कीई दिखावटी अथवा पाखण्डपूर्ण तत्व नहीं है। व्यवस्था के आदर्श हैं, और सभी कुछ उसी हेतु पल्लिवत होता है। वे कौटल्य के उस वाक्य को स्वीकार करते हैं, जिसमें कहा गया कि "अलब्धलाभार्थी, लब्ध परिरक्षिणी, रिक्षत विवर्धनी, बृद्धेसु तीर्थेषु प्रतिपादिनी"। अर्थात जो प्राप्त न हों उसे प्राप्त करना, जो प्राप्त हो गया हो उसका संरक्षण करना, जो रिक्षत हो गया हो उसका विवर्धन करना, तथा जिसकी वृद्धि हो गयी हों उसको समानता से बॅटवारा करना। राज्य और उसके शासन का यही सीधा और सपाट उद्देश्य है। शासन-व्यवस्था इसी उद्देश्य की पूर्ति में पलता है।

मालवीय जी के चिंतन का आदर्श महाभारत में बतायी गयी शिवि की प्रार्थना है। जिसमें कहा गया कि –

## नत्वऽहंकामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

अर्थात ''मुझे राज्य, स्वर्ग और मोक्ष की कामना नहीं है। मैं तो दृःखों से तप्त प्राणियों के दुःख का निवारण करना चाहता हूँ ।" महामना के चिन्तन का मूल है "दुखों से तप्त प्राणियों के दुःख का निवारण करना"। महामना के चिंतन की प्रासंगिकता का रहस्य भी इसी में छिपा है। इसका अर्थ यह है कि देश, समाज का नेतृत्व करने वाले व्यक्ति में यही भाव होना अनिवार्य है। दुःखों में तप्त प्राणियों के दुःख का हरण करना उद्देश्य है। यहाँ प्राणि का अर्थ मात्र व्यक्ति नहीं है। सृष्टि में पलने वाले सभी चर-अचर जीवों का इससे सम्बन्ध है। एक पश् पक्षी कष्ट में रहता है, या एक व्यक्ति कष्ट में रहता हैं, अथवा एक वृक्ष या एक नदी कष्ट में रहती है तो यह प्राणी का कष्ट है। इन सभी के कष्ट का निवारण करना नेतृत्व का मौलिक दायित्व है। समन्वित विकास और सामाजिक न्याय का व्यापक निहितार्थ भी यही है। विकास और न्याय केवल व्यक्ति के लिये नहीं होता, सम्पूर्ण पर्यावरण के लिये होता है, जिसमें सभी चर-अचर पलते हैं। महामना 'लगड़े विकास' अथवा 'लगड़े न्याय' के पक्षपाती कभी नहीं थे। महामना ने पिता की मृत्यु पर जो दोहा लिखा था, उसमें भी यही भाव निहित था -

## मन पिरात धीरज छुटत, समुझि चूक अरू पाप। सब प्राणिन के प्राण प्रभु, छमहु मिटे संताप॥

सभी प्राणियों का सन्ताप मिटाना ही व्यक्ति का उद्देश्य होना चाहिये।

महामना जिस युग में कार्य कर रहे थे। वह प्राणियों के सन्ताप का युग था। आज जिस युग में हम जी रहे हैं, वह भी प्राणियों के सन्ताप का युग है। उस युग में महामना थे और सन्ताप हरने वाले समाजिक नेतृत्व की महान ऋंखला थी। स्वतंत्र भारत में नेतृत्व की ऐसी ऋंखला दिखाई नहीं पड़ती । सभी व्यक्तिगत संताप हरने की होड़ में लगे हैं। सामूहिक संताप या दुःखी प्राणियों के कष्ट को हरने की कोई कल्पना भी करता । वर्तमान युग स्वार्थी, अमानवीय, पाखंडी, अन्यायी, अत्यन्त भौतिकवादी, सुविधा भोगी, लूट से अर्थ संचय करने वाले, देश, समाज और संस्कार को अर्थहीन समझने वाले, प्रकृति का दोहन कर उसे नष्ट करने का उपक्रम करने वाले, विदेशी मूल्यों का अन्धानुकरण कर उसे सर्वोत्कृष्ट मानने वालें, दासत्व भाव से युक्त, और कायर मानसिकता वाले लोगों का युग है। इस कठिन युग में महामना के चिंतन से प्राप्त आदर्शों को कहाँ तक लागृ किया जा सकता है?

महामना के चिंतन के विकास में उनके परिवार और देश की दशा का प्रभाव पडा था। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में परिवार का योगदान महत्वपूर्ण होता है। कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का निर्माण अकेले नहीं करता। उसके निर्माण में परिवार और समाज की सीधी सहभागिता होती है। भारत में 1857 के प्रथम विप्लव के चार वर्ष बाद महामना का जन्म होता है। 25 दिसम्बर 1861, (पौष कृष्ण 8 संवत् 1918), दिन बुधवार को प्रयाग के लालडिग्गी मुहल्ले में महामना पं0 मदन मोहन मालवीय का जन्म हुआ। 1861 का भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इसी वर्ष ब्रिटिश पार्लियामेंन्ट ने एक ओर अपनी मर्यादाओं के अनुकुल हाई कोर्टों के संगठन की व्यवस्था की, और दूसरी ओर अपनी लोकतांत्रिक मर्यादाओं की उपेक्षा करते हुये ऐसी कौंसिलों के संगठन की व्यवस्था की, जिनके अधिकार बहुत सीमित और जिनके सब सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत होते थे। अर्थात् लोकतांत्रिक ब्रिटिश संसद ने भारत में निरंकुशतावादी शासन के स्थापना की नींव डाली। इसी वर्ष महारानी विक्टोरिया के घोषणा की सर्वथा उपेक्षा करते हुये सेना के बहुत से विभागों में भारतीयों की भरती बिलकुल बन्द कर दी गयी। अर्थात भारतीयों को 'जीवन जीने के अधिकार' से पूर्णतः वंचित करने का प्रयास प्रारम्भ किया। ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासकों को भारतीयों पर एक दम विश्वास नहीं था, यह इससे स्पष्ट हो गया। देश में 'फूट-डालों और राज करो' की नीति का सूत्रपात इसी काल में हुआ। जब भारत की सेना में ब्रिटिश सिपाहियों का अनुपात बढ़ा दिया गया तथा भारतीय सैनिकों को जाति, सम्प्रदाय, क्षेत्र और भाषा के आधार पर इस तरह विभिन्न कम्पनियों में विभाजित कर दिया गया कि उनमें राष्ट्रीय एकता की भावना जागृत और पुष्ट न हो सके। अंग्रेजों की यह नीति सदैव कामयाब रही। स्वतंत्र भारत में इसी नीति का अवलम्बन आज तक भारत का नेतृत्व वर्ग करता रहा है। आरक्षण, अल्पसंख्यकवाद, बहुसंख्यकवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकता स्वतंत्र भारत में राजनीति का सुविधाजनक हथियार बना हुआ है। भारत में 'वोट बैक' की राजनीति का आधार अंग्रेजों की कृटिलता है। इसी काल में भारत में पहले रवीन्द्र नाथ ठाक्र और

मोतीलाल नेहरू का भी जन्म हुआ। और आगे चल कर प्रफुल्ल चन्द्र राय और मदन मोहन मालवीय का जन्म हुआ। इन चारों ने अपनी प्रतिभा से भारत का मस्तक ऊँचा किया। इन्हीं ने अंग्रेजों की राजनीतिक कृटिलता के प्रति देश के लोगों को सतर्क रहने की चेतावनी दी। इन्हें ही इस बात का श्रेय जाता है कि साम्राज्यशाही, और पश्चिमी मूल्यों की भावना से अनुप्राणित भारतीय राजनीतिज्ञों और अधिकारियों को भारत के सम्बन्ध में अपनी धारणायें और नीति-रीति बदलने पर मजबूर किया। स्वतंत्र भारत में भी उच्च और उच्चमध्यम वर्ग साम्राज्यवादी और पश्चिमी मूल्यों से अनुप्राणित है। इससे भारत में प्रच्छन्न दासत्व और परतंत्रता का भाव जड़ें जमा रहा है। देश के शिक्षित और बौद्धिक वर्ग ने तो पश्चिमी मुल्यों और संस्कार को लगभग स्वीकार ही कर लिया है। इसे अपनी प्रतिभा से बदलने को मजबूर करने वाला नेतृत्व या राष्ट्रीय व्यक्तित्व स्वतंत्र भारत में कहीं नहीं दिखाई पड़ता। क्या कारण है कि महामना जैसा व्यक्तित्व स्वतंत्र भारत में फिर नहीं पनपा? महामना की दुहाई दे कर पाखण्ड खड़ा करने वाले हजारों, लाखों मिल जायेंगें, लेकिन उनके आदशों से अनुप्राणित हो कर अपनी आदत को बदलने के लिये मजब्र होने वाले कम ही होंगे। ऐसी स्थिति में महामना की प्रासंगिकता का प्रश्न उठना स्वाभाविक है।

महामना के चिंतन पर उनके पूर्वजों के संस्कारों का प्रभाव था। भारत की विशाल संस्कृत चिंतन की परम्परा का उन पर सीधा प्रभाव था। महामना को पूर्वज धर्मनिष्ठ, शील सम्पन्न, आस्थावान, संस्कारयुक्त, थे। पिता सन्तोषी, सदाचारी, आचार-नियम के पक्के थे। भगवद्गीता के आदर्शों से अनुप्राणित थे। उनकी माता सरल हृदय, कोमल, विदुषी, कार्यकुशल और उदार थीं। यह बात सत्य है कि जैसे माता, पिता होतें हैं, सन्तान का व्यक्तित्व भी उसी आभामण्डल में तप कर विकसित होता है। महामना जैसा व्यक्तित्व इसलिये फिर नहीं उभरा कि आधुनिक भारत के सन्तानों को उनके जैसे मातृत्व और पितृत्व का लाभ नहीं मिल पा रहा। आधुनिक माता-पिता केवल 'मम्मी' और 'डैडी' अथवा 'माम्' और 'पा' हैं। उनकी सन्तानें पीढीगत परम्पराओं और संस्कारों का वाहक नहीं, मात्र काम-वासना की पिपासा की उपलब्धि हैं। फलतः 'माम्', 'पा' और सन्तान के रास्ते अलग-अलग भटक जाते हैं। सन्तान के सुख की जो कल्पना भारतीय परम्परा में की गयी है, उससे 'माम्' और 'पा' वंचित रह जाते हैं। हर माता और पिता अपने जीवन का अन्तिम संस्कार अपने संतान के हाथों होने का सपना सँजोयें रहता है। लेकिन आधुनिक सन्तानें वृद्धावस्था में माता-पिता को न केवल सड़ने को छोड़ देती हैं, बल्कि अपने एकाकी परिवार से उन्हें बाहर ढकेलने का भी उपक्रम करती हैं। हद तो तब होती है जब धन, सम्पत्ति, और रोजगार की लालच में सन्तानें अपने माता-पिता की हत्या करने में भी संकोच नहीं करतीं। इस तरह की बढ़ती प्रवृतियों पर महामना का संवेदनशील पारिवारिक संस्कार कितना प्रभाव डाल सकता है, इसी में उनकें चिंतन की प्रासंगिकता का गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है। महामना ने

स्वयं इसे स्पष्ट करते हुये अपने 75वीं वर्षगाँठ पर कहा था—''मेरे पितामह, पितामही, पिता और माता बड़े धर्मात्मा, ईश्वर भक्त, सदाचारी और निःस्वार्थ ब्राह्मण थे, उन्हीं के प्रसाद से मैं अपने जीवन में इतना काम कर सका हूँ।'' अपने पूर्वजों के प्रति इतना विनम्र आभार उनके चिंतन की पृष्ठभूमि है।

महामना के चिंतन पर 1857 के विप्लव की असफलता, और मध्यमवर्ग के राष्ट्र के प्रति चेतना के भाव क्षीण हो जाने का भी प्रभाव पड़ा था। किसी देश के उत्थान और सुदृढ़ता में विशाल मध्यम वर्ग की शक्ति और उसकी मनोवृत्ति का विशेष योग होता है। 1857 की असफलता ने भारत के मध्यम वर्ग को हताश, निराश, कायर बना दिया। उनमें ऐसी शक्ति ही नहीं बची कि वे राष्ट्र के उत्थान के बारे में सोच सकें। उस समय समाज धार्मिक था। मध्यमयुगीय धारणाओं और मर्यादाओं के प्रति निष्ठावान, पंडितों और मौलवियों के लिये समाज के लिये सार्थक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक राष्ट्रवादी, के साथ प्रगतिशील नेतृत्व समाज को प्रदान करना और नवीन एवं उदार धारणाओं के आधार पर राष्ट्र के निर्माण करने की सोच समाप्त हो गयी। लगभग वही स्थिति स्वतंत्र भारत के माध्यम एवं शिक्षित वर्ग की है। आज का मध्यम और शिक्षित वर्ग स्वार्थी है। समाज और राष्ट्र से उसे कुछ लेना देना नहीं । व्यापक राष्ट्रीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मुद्दों को उठाने में वह कतराता है। राष्ट्रवाद की संकल्पना उसमें कमजोर पड़ी है। सत्ता, भौतिकता एवं धन के लोभ में अपनी संघर्षशीलता, तर्कशक्ति, और विरोध का भाव भूल बैठा है। वह भारत को 'बहु-संस्कृतिवाद' के पश्चिमी चश्मे से देखता है। उसने स्वीकार कर लिया है कि भारत के लोग गॅवार, रूढ़िवादी, कर्मकाण्डवादी, चिंतनाशक्ति से शून्य, नये दर्शन की स्थापना में असफल आधुनिक विकासवादी मॉडल को स्वीकार करने में अक्षम, सार्थक प्रगतिशीलता के भाव को समझने की क्षमता से च्युत, और आधुनिक भौतिकवाद की सुविधा को भोगने लायक नहीं है। उनके लिये परिवार, संस्कार, संस्कृति, परम्परा, मूल्य, नैतिकता, सामूहिकता, उदारता, विनम्रता, दान, दया, साधना, तपस्या जैसे तत्व कोई मायने नहीं रखते। इसलिये वे 'सभ्य-समाज' (Civil Society), सुशासन (Good Governence), 'नेटवर्किंग सोसाइटी', 'महिलावाद' (Feminism), 'समावेशी-बहिर्वेशी' (Inclusive-Exclusive), जैसे पश्चिमी सिद्धान्तों के पाखण्डवादी मॉडल की वकालत करते हैं। वस्तृतः इस तरह के सिद्धान्तों को शिक्षा से या विचार के माध्यम से भारत में थोपना भारत के मूल जड़ों के साथ विश्वासघात है। इससे भारत का शक्तिशाली मध्यमवर्ग, नपुंसक, अन्धानुकरण करने वाला, समस्याओं के निदान हेतु भारतीय दृष्टि से विचार करने में अक्षम, और भारतीयता की अपनी पहचान से पूर्णतः च्यत हो जाता है। वर्तमान भारत में हिंसा, तनाव, अलगाव, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकृतियाँ, राष्ट्र को विखण्डित करने वाले तत्वों को समर्थन देने की मनोवृत्ति, आदि का कारण मध्यम और शिक्षित वर्ग की पश्चिमी सोच है। इस स्थिति में

क्या महामना का चिंतन भारत में एक नयी भारतीय चेतना और राष्ट्रवाद की नयी जागृति पैदा करने में सक्षम है ?

उस समय का अभिजात वर्ग भी, जो समाज का स्वाभाविक नेता होने का दावा करता था, सार्थक नेतृत्व करने में असमर्थ था। राजे, नबाब इतने शक्तिहीन थे कि वे अपने परेशानियों और कठिनाइयों को भी सामूहिक रूप से भारत सरकार के सामने प्रस्तुत नहीं कर सकते थे। एक स्थान पर इकट्ठे होकर अपनी निजी समस्याओं पर विचार-विमर्श नहीं कर सकते थे। जमींदारों तथा तालुकेदारों पर इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं था। बंगाल, बिहार, और उड़ीसा के जमींदारों ने विप्लव से पहले ही सन् 1851 में ''ब्रिटिश इंडियन एसोशिएसन'' के नाम से एक संस्था गठित कर ली थी। उसने 1852 में संयुक्त संसदीय समिति के सामने एक बहुत ही विस्तृत परिपत्र प्रस्तृत किया था, जिसमें उसने शासन की व्यवस्था और नीति की आलोचना करते हुये माँग की थी कि उन्हें सुधारा जाय और प्रतिनिधि विधान सभा स्थापित की जाय। 'ब्रिटिश इंडियन एसोशिएसन' के सदस्य बहुत ही सुसांस्कृतिक थे और सांस्कृतिक क्षेत्र में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। परन्तु इन संस्थाओं के लिये भी युग के अनुकूल राजनीतिक नेतृत्व प्रदान करना सम्भव नहीं था। ब्रिटिश राजभक्ति उनका मूल मन्त्र था। सरकार के कर्मचारियों और अफसरों का विरोध करना उनके लिये कठिन था। इन जैसी संस्था का दृष्टिकोण मूलतः सामन्तवादी था, जब कि उदारवादी लोकतंत्र युग की पुकार थी। ऐसी स्थिति में युगानुकूल नेतृत्व का समर्थन करने के बजाय अपने वर्ग के हितों और मान की पृष्टि ही उनका मुख्य कार्य था।

स्वतंत्र भारत के अभिजात वर्ग की भी स्थिति कमोवेश ऐसी ही है। राजे, नबाब, जमींदार, तालुकेदार अब नहीं है। राजे और नबाब के रूप में राजनीतिज्ञों के 'नये घराने' देश में विकसित हुये हैं। ये 'राजनीतिक घराने' राजनीतिक दल चलाते हैं। देश में अनेक ऐसे राष्ट्रीय और क्षेत्रीय राजनीतिक दल हैं जो 'परिवारवाद' और 'राजनीतिक घरानों' के रूप में क्रियाशील हैं। इनका स्वरूप सामन्तवादी और निरंकुशवादी है। उनकी आज्ञा को स्वीकार करने वाला ही उनके दल में रह सकता है। घरानों के आधार पर संचालित राजनीतिक दलों का उदार लोकतंत्र में विश्वास, या उनकी लोकतांत्रिक कार्यशैली छलावा है, दिखावटी है, और युगानुकूल राजनीतिक नेतृत्व का छद्म रूप प्रस्तुत करता है। वस्तुतः ऐसा नेतृत्व परिवार हित, वर्ग हित् और स्वमान की पृष्टि में ही संलग्न है। देश या सामान्य जनता के हितों से उनका कोई लेना देना नहीं। सत्ता प्राप्ति, स्वयं के लिये शक्ति का अर्जन, स्वयं का महिमामंडन, अकृत सम्पत्ति का एकत्रीकरण उनका उद्देश्य है। सामन्तवादी निर्दयता, शोषण, संवेदनहीनता, संवादहीनता उनकी कार्यशैली का मूल मंत्र है। जमींदारों और तालुकेदारों के रूप में नये औद्योगिक घरानें, नये धनाढ्य वर्ग का जन्म हुआ है। उनके पास इतना साहस नहीं कि वे देश और समाज की कठिनाइयों को भारत सरकार के समक्ष एकजुट होकर पेश कर सकें। वे सत्ताभक्ति करते हैं। सरकार के कर्मचारियों और अधिकारियों

के समाज और राष्ट्रविरोधी कार्यों का विरोध उनके लिये कठिन है। अपना हित साधने, स्वयं के लिये अधिकाधिक लाभ कमाने, और सरकार से सुविधा प्राप्त करने में वे भ्रष्टाचार, अनैतिकता, अपराध और समाज विरोधी कार्यों को प्रश्रय देते रहते हैं। इससे देश में अनुशासन के स्थान पर अराजकता का बोलबाला होता है।

महामना के जन्म के समय का भारत हो, या आज का भारत दोनों युगों में आध्निक शिक्षा प्राप्त मध्यमर्गीय शिक्षितों का प्रयास होता है, देश के राजनीतिक नेतृत्व का भार वहन करने की इच्छा रखना। सदैव यह वर्ग छोटा और असंगठित पर क्रमशः विकासशील होता है। इसके सदस्य पश्चिमी उदार विचारों तथा पश्चिमी लोकतांत्रिक भावनाओं को अंगीकार करते हुयें भारतीय विचारों की तुलना में उसे श्रेष्ठ मानते हैं। वे गतिशीलता, प्रगतिशीलता आधुनिकता, और विकास के नाम पर पश्चिमी ढंग के शासन भारत में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। परतंत्र भारत में इस विचार प्रक्रिया के समर्थक ब्रिटिश सरकार के राजभक्त थे, और भारत की प्रगति में ब्रिटेन के योगदान को स्वीकार करते थे। साथ ही ब्रिटिश शासन से रियायतें प्राप्त करते हुये उसे बनाये रखना चाहते थें आध्निक समय में यह वर्ग सत्ता प्राप्त करने के लिये तमाम देशी हथकण्डों को अपनाते हैं, और जब सत्ता प्राप्त होती है तो पश्चिमी मॉडल की राजनीतिक व्यवस्था और राजनीतिक मान्यताओं को भारत पर थोपने का प्रयास करते हैं। वस्तृतः स्वतंत्र भारत में वैचारिक साम्राज्यवाद आज भी कायम है। आध्निक उदारवादी, आध्निक विदेशी शिक्षा प्राप्त मध्यवर्गीय चिन्तन का सूत्र पात 1857 के विद्रोह के 30-35 वर्ष पूर्व राजा राम मोहन राय ने किया था। गोपाल कृष्ण गोखले ने जिन्हें 'आधुनिक उदारवाद का पिता' कहा।

राजा राम मोहन राय महामना की चिंतन यात्रा प्रारम्भ होने से पूर्व हुये। उन्होंने देश में जन जागृति आन्दोलन चलाया जिसका मूल स्वर मध्यवर्गीय था। उनका उद्देश्य था कि भारत ये ऐसे मध्यवर्गीय समाज का निर्माण हो जो प्राचीन भारतीय संस्कृति और धर्म, तथा भारतीय सामाजिक संस्कारों और मुल्यों में आस्था रखते हुये रूढ़िवाद का विरोधी हो। अन्य धर्मीं और संस्कृतियों के सजीव नैतिक तथ्यों को ग्रहण करते हुये व्यापक मानवीय भावना से भारतीय समाज का नवनिर्माण करे। राजा राम मोहन राय की जन जागृति मुख्य रूप से धार्मिक और सांस्कृतिक थी। पर आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी उनका मार्गदर्शन महत्वपूर्ण था। वे रहस्यवाद, रूढ़िवाद, तथा जटिल कर्मकाण्ड के विरोधी तथा एकेश्वरवाद, नैतिकता और सांस्कृतिक संश्लेषण के समर्थक थे । वे चाहते थे कि हिन्दू समाज पाखण्ड को छोड़ कर केवल एक परमेश्वर की पूजा करने लगे। वे यह भी चाहते थे कि भारतीय नवयुवक भारतीय दर्शन और पाश्चात्य विज्ञान का साथ-साथ अध्ययन करें, अपने चरित्र का निर्माण कर सामाजिक कुरीतियों और अन्याय का विरोध करें, तथा सिहष्णुता, न्याय और पारस्परिक सौहार्द के आधार पर सामाजिक जीवन गठित करें। भारतीय समाज की उन्नति

के लिये निर्धनों, स्त्रियों, पिछडे वर्गों का उत्थान वे नितान्त आवश्यक माते थे। वे सती प्रथा और बहुविवाह के कट्टर विरोधी तथा विधवा विवाह के समर्थक थे। वे चाहते थे कि समाज में स्त्रियों का सम्चित आदर हो, उन्हें आत्मोत्कर्ष का साधन उपलब्ध हो, पति-पिता की सम्पत्ति में उनका हिस्सा हो। राजा राम मोहन राय के उदारवादी चिंतन की सीमायें भी हैं। भारत में एकेश्वरवाद न मानने के कारण हैं। भारतीय रक्त से लोकतांत्रिक हैं। वे धार्मिक लोकतंत्रवाद में विश्वास करते हैं। एकेश्वरवाद से निरंकुशता का भाव पैदा होता है। बहुदेवत्ववाद का स्वर लोकतांत्रिक है। भारतीय विभिन्न देवताओं की अपने धार्मिक मन की स्वतंत्रता के आधार पर पूजा करते हैं, यह उनका धार्मिक लोकतंत्रवाद है। इसी में उनकी धार्मिक स्वतंत्रता और स्वायत्तता, तथा किसी के प्रति आस्था रखने, या किसी की पूजा करने का मौलिक अधिकार छिपा हुआ है। राजा राम मोहन राय मानवतावादी थे, लेकिन क्या उनके मानवतावाद को हिन्दू, म्स्लिम, सिक्ख, ईसाई, या अन्य धर्म के चश्में से देखा जा सकता है ? राय ने केवल हिन्दू धर्म में सुधार की बात की, पाखण्ड, अन्धविश्वास, और कर्मकाण्ड तो भारत के अन्य धर्मीं में भी है, उसके सुधार की बात उन्होंने नहीं की। ईसाई और मुस्लिम धर्म में भी हिन्दू धर्म से कम अन्धविश्वास और कर्मकाण्ड नहीं है? राजा राम मोहन राय उनके सुधार की बात करने का साहस क्यों नहीं उठा सकें? क्या वे हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई को पृथक भारतीयता के रूप में मानते है? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। रहस्यवाद भारतीय संस्कृति में एक संकल्पना है। भारतीय सनातन काल से रहस्य की खोज में लगे रहे। इसी खोज में अनेक चिन्तन का निर्माण हुआ। दर्शन की अनेक विधायें फली फूलीं। रहस्यवाद को पाखण्ड मान लेने से चिंतन के क्षेत्र में भारतीयों की खोज करने, और उसमें निरन्तरता बनाये रखने की प्रक्रिया पर ग्रहण लग गया।

दादा भाई नौरोजी ने मध्यवर्गीय व्यक्ति के रूप में आधुनिक पद्धित से शिक्षा प्राप्त कर सामाजिक सेवा को प्रोत्साहित किया और राष्ट्रीय भावनाओं को अभिव्यक्त किया। नौरोजी का योगदान धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में सीमित था। आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में व्यापक था। उनके चिंतन ने समाज और देश के सभी धर्म और क्षेत्र के युवकों को प्रभावित किया। उन्हें "धर्म निरपेक्ष राष्ट्रीयता तथा मध्यवर्गीय राष्ट्रीय आन्दोलन के पिता" के रूप में स्वीकार किया गया। उन्होंने प्रजातिवाद का विरोध किया और हिंसात्मक विद्रोह या सशस्त्र क्रान्ति के बजाय शान्तिमय संवैधानिक ढंग से लोकतंत्र को प्रतिष्ठित करने का पक्ष लिया। राजा राम मोहन राय के चिन्तन का प्रभाव महामना पर कितना पड़ा, इसका ऑकलन कठिन है, लेकिन नौरोजी के आर्थिक चिंतन का प्रभाव उनके उपर स्पष्ट रूप से पड़ा।

1857 के विप्लव के कुछ वर्षों के बाद महाराष्ट्र में 'प्रार्थना-सभा' के नाम से सामाजिक जागृति का प्रदुर्भाव हुआ। यह जागृति राजा राम मोहन राय की जन जागृति से प्रभावित थी। पर प्राचीन भागवत

धर्म और महाराष्ट्र के सन्तों की धारणाओं की भी इस पर गहरी छाप थी। ईश्वर पर अटल निष्ठा और मानव प्रेम इसके मुल मंत्र थे। 'प्रार्थना-सभा' म्ख्यतः उदार मानवीय भावनाओं से अनुप्राणित मध्यवर्गीय शिक्षितों की संस्था थी। जिन विद्वानों ने इसकी प्रगति और प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण योगदान दिया, उनमें महादेव गोविन्द रानडे प्रमुख थे। वे स्वयं में एक व्यापक संस्था थे। उन्होंने बहुत से नवयुवकों को समाज सेवा में दीक्षित किया, तथा विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्रों में स्वयं प्रशंसनीय नेतृत्व प्रदान किया। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम दशक में उन्होंने भारत के राष्ट्रीय अर्थतन्त्र के कुछ मुख्य सिद्धान्तों को प्रतिपादित करते हुये उसकी बुनियाद डाली। उन्होंने देश की औद्यौगिक उन्नति के लिये ''औद्यौगिक कान्फ्रेंस'' की स्थापना की. और समाज-सुधार के लिये 'सोशल कान्फ्रेंस' कायम की। सम्पूर्ण समाज का समन्वित विकास ही उनके समाजिक नेतृत्व का लक्ष्य था। देश के सम्चित आर्थिक विकास के लिये, नवीन वैज्ञानिक तकनीकी का बुद्धिसंगत प्रयोग, नये-नये उद्योग धन्धों की स्थापना, पुराने कुटीर-उद्योगों का पुनरूत्थान और विस्तार तथा कृषीय व्यवसाय और व्यवस्था का समुचित सुधार वे आवश्यक मानते थे। वे उदारवादी थे। पर उनका उदारवाद सामाजिक न्याय और समाज कल्याण की भावना से अनुप्राणित था। महामना के चिन्तन पर रानडे के समाजिक कल्याण और सामजिक न्याय की संकल्पना, तथा देश के आर्थिक और औद्योगिक विकास की आवश्यकता का प्रभाव पड़ा। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, वाणिज्य और कृषि विभागों की स्थापना इसका उदाहरण है।

महामना की वेदों पर अट्ट आस्था थी। महामना के मन में यह भाव सदैव था कि सब मध्ययुगीन और अर्वाचीन प्रथाओं का परित्याग करके अतिप्राचीन वैदिक प्रथाओं, सिद्धान्तों तथा कर्मकाण्ड का अनुसरण होना चाहिये। इससे हिन्दू जाति का उत्कर्ष हो सकता है। वैदिक संस्कृति का पुनरूज्जीवन हो तो भारत में राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय चेतना का भाव और तीव्र हो सकता है। इस सन्दर्भ में वे दयानन्द सरस्वती से प्रभावित लगते हैं। दयानन्द वेद को औपरूष्य मानते थे, उसे चार ऋषियों के माध्यम से अवतरित ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार करते थे। वे वेदों को सम्पूर्ण विश्व ज्ञान का भण्डार मानते थे और उनकी सत्यता और प्रामाणिकता पर उन्हें पूर्ण विश्वास था। उन्होंने प्रचलित मूर्ति पूजा तथा पौराणिक आचार-विचार और कर्मकाण्ड की आलोचना करते हुये विशुद्ध वैदिक कर्मकाण्ड उपासना पद्धति तथा अचार-व्यवहार का समर्थन किया और उनका अनुसरण आवश्यक बताया। उन्होंने अन्य धर्मीं एवं सम्प्रदायों का भी खण्डन करते हुये उनके अनुयायियों को शुद्धि द्वारा वैदिक धर्म में प्रवेश कराने का हिन्दुओं को परामर्श दिया। वे पुरानी गुरूकुल पद्धति को आधुनिक शिक्षा पद्धति से अधिक उपादेय समझते थे। विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों के पालन की आवश्यकता पर जोर देते थे। यद्यपि वे वर्ण व्यवस्था को स्वीकार करते थे, पर वे प्रचलित जाति प्रथा के विरोधी थे। दयानन्द ने निम्न मध्यवर्ग के नवयुवकों को

विशेष रूप से प्रभावित किया। उन्होंने जाति प्रथा के बन्धनों को ढीला किया, शद्र समझी जाने वाली जातियों में नयी आशा और जागृति पैदा की। उन्हें आत्मशुद्धि की ओर प्रेरित किया। दयानन्द के आर्य समाज के जबाब में 'सनातन धर्म सभा' स्थापित हुई। दोनों ही संस्थायें वेदों पर आस्था रखती थी, उन्हें धर्म का मूलाधार मानती थीं और संस्कृति साहित्य के अध्ययन पर जोर देती थी। प्राचीन भारतीय संस्कृति को संसार की सर्वोत्तम संस्कृति समझती थीं। दोनों ही अपने पूर्वजों और ऋषियों के गुणगान से नहीं थकती थी। धार्मिक नित्य नैमित्तिक कार्यों और संस्कारों को विधिवत करने पर जोर देती थी। फिर भी अवतारवाद, प्राणों की प्रामाणिकता, मूर्तिपूजा, समाज सुधार आदि विषयों पर दोनों में पर्याप्त मतभेद था। विचारों के मतभेद, शास्त्रार्थ और विचार मंथन से बौद्धिक जागृति पैदा होती है। चिंतन के नये क्षितिज खुलते हैं। राष्ट्रवाद को ऊर्जा प्राप्त होती है। 'सनातन धर्म-सभा' और ' आर्य समाज' के मध्य जो विवाद और वैचारिक संघर्ष उस युग में हुआ, उससे समाज की चेतना लौट आयी। स्वतंत्र होने की आकांक्षा पलने लगी। और भारतीय मूल को समझने का आकर्षण नयी पीढ़ी में पैदा हुआ।

महामना जिस समय 39 वर्ष के हो रहे थे और उनके मन में राष्ट्र के प्रति कुछ कर गुजरने की हलचल पैदा हो रही थी, उस समय दो महापुरूषों ने राष्ट्रीय चिंतन धारा को गहरे अर्थों में प्रभावित किया। वे थे रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द। इन दोनों के व्यक्तित्व में बच्चों जैसी सरलता और कोमलता के साथ-साथ सिद्धों जैसी आध्यात्मिकता का अदभुत समन्वय था। वे बच्चों जैसा व्यवहार करते-करते समाधिस्थ हो जाते थे। वे प्रत्येक स्त्री में, अपनी धर्म पत्नी में भी, माता. पिता का दर्शन करते थे। वे उच्च कोटि के योगी और भक्त थे। उन्होंने जिन नवयुवकों को अपनी ओर आकृष्ट किया, उनमें अनेक उनके सम्पर्क में आने से पहले अनीश्वरवादी या अज्ञेयवादी थे और आध्यात्मवाद को कोरी कल्पना मानते थे। इन सब में प्रमुख नरेन्द्र नाथ दत्त थे, जो आगे चलकर विवेकानन्द के नाम से विख्यात हुये। उन्होंने अपनी सब पुरानी भौतिकवादी कल्पनाओं का त्याग कर एक सन्यासी के भेष में देश-विदेश में भारतीय आध्यात्मवाद का प्रचार किया। 1893 में शिकागों के 'विश्व धर्म सम्मेलन' में अपने भव्य व्यक्तित्व तथा अपनी धार्मिक और आध्यात्मिक निष्ठाओं के बल पर भारतीय जीवन पद्धति तथा भारतीय संस्कृति की भव्यता का अनुभव पूरी दुनिया को कराया। इन सभी का उद्देश्य था भारतीय हितों की रक्षा और वृद्धि, देश की समस्याओं का भारतीय दृष्टिकोण से विश्लेषण, जनता के कष्टों के निवारण पर आग्रह, जनता की आकांक्षाओं का समर्थन, तथा लोकतांत्रिक विचारों का प्रसार उद्देश्य था। प्रजातीय अहंकार से निर्मुक्त व्यवहार, पक्षपात रहित न्याय, जनहितकारी नीतियों का अनुसरण, प्रतिनिधि संस्थाओं का विकास तथा भारत के शासन में समता और क्षमता के आधार पर भारतीय जनता की साझादारी इस युग का मूल स्वर था।

25 वर्ष की उम्र में महामना ने 1886 में कलकत्ता कांग्रेस के दसरे अधिवेशन में अपना पहला भाषण किया। यहीं से उनकी चिंतन धारा का प्रवाह प्रारम्भ होता है। उन्होंने पहले ही भाषण में भारत में निरंकुश संस्थाओं का विरोध किया। उन्होंने कहा कि ''प्रतिनिधि संस्थायें अंग्रेजों के जीवन का महत्वपूर्ण अंग हैं, और संसार के सभी सभ्य समाजों की प्रगति के लिये आवश्यक है। इसलिये भारत में निरंकुश संस्थाओं को बनाये रखने के प्रयत्न करने की अपेक्षा प्रतिनिधि संस्थायें प्रतिष्ठित करना अंग्रेजों का कर्तव्य है।''2 सरकार और जनता के पारस्परिक सम्बन्ध लोकतंत्र के आधार हैं। लोकतंत्र में जनता के बिना सरकार नहीं, सरकार के बिना जनता नहीं। इसलिये उन्होंने स्पष्ट विचार व्यक्त करते हुये, 1892 में कहा कि ''सरकार जनता के बगैर जीवित नहीं रह सकती", "यदि जनता की गरीबी बढ़ती जाती है, तब सरकार कहीं भी नहीं है, कम से कम 'सरकार' कहलाने योग्य तो वह नहीं ही है।''3 जनता के कष्ट के लिये वे सदैव सरकार को जिम्मेदार मानते हैं। इसी लिये उन्होंने स्पष्ट किया कि ''वर्तमान में जनता के कप्ट के लिये निश्चय ही इंगलैण्ड जिम्मेदार है। क्योंकि वह जो दमन होने देता है, अपराध में शरीक होता है।''4 उन्हें भारतीयों की क्षमता, पर सदैव विश्वास था। वे भारतीयों को ब्रिटिशों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ मानते थे। उनके अनुसार यदि पब्लिक सर्विस में भारतीयों की क्षमता का पूर्ण उपयोग किया जाय तो देश की दशा सुधर सकती है। 1892 में उन्होंने कहा कि ''जिस निर्लज्जता से भारतीयों के दावों की अवहेलना की जाती है, और परिश्रमिक के उन स्थानों पर जिन्हें, भरने की, अपनी योग्यता और चरित्र से, भारतीय पूरी क्षमता रखते हैं, यूरोपियन नियुक्त कर दिये जाते हैं, सरासर अन्याय हैं।⁵ उस समय कांग्रेस के अन्य नेता ब्रिटिश सरकार की चाटुकारिता में व्यस्त थे, महामना जनता के हित में निर्भीकता का परिचय दे रहे थे। वस्तृतः नेतृत्व में निर्भीकता का भाव भी राष्ट्र के अस्तित्व के लिये आवश्यक है। वर्तमान में कांग्रेस सहित सभी राजनीतिक दलों, संस्थाओं, शैक्षणिक एवं बौद्धिक केन्द्रों में भी चाट्कारिता, चरण-बन्दन, गणेश परिक्रमा, विधवा-क्रन्दन, जैसी स्थिति का ही बोल बाला है। इसमें योग्यता, कर्मठता, साधना, तपस्या अर्थहीन हो जाता है।

1903 में सर हर्बर्ट रिसले ने बंगाल विभाजन की घोषणा की। महामना भारत की अखण्डता और एकता के सदैव समर्थक थे। लार्ड कर्जन ने बंगाल विभाजन को साम्प्रदायिक रूप दिया। उसने घोषणा की कि वह ऐसे प्रान्त का निर्माण करना चाहता है जहाँ मुसलमान बहुसंख्यक हो। कर्जन की यह चाल थी, जो सफल हुई। इससे वे मुसलमान जो पहले विभाजन का विरोध करते थे वे इसका समर्थन करने लगे। वस्तुतः बंगाल विभाजन ही पाकिस्तान निर्माण की पृष्ठभूमि है। कांग्रेस का तत्कालीन शीर्ष नेतृत्व इस चाल को न समझ सका। यदि कांग्रेस का उदार नेतृत्व बंगाल-विभाजन का तीब्र विरोध करती (1) तो देश में गरम दल का विकास नहीं होता, (2) स्वतंत्रता संग्राम

की लड़ाई उसी समय से तीब्र हो जाती (3) अल्पसंख्यकवाद का जन्म नहीं होता, (4) गाँधी के नेतृत्व के पहले ही भारत के स्वतंत्रता आधार बन जाता, (5) भारत और पहले स्वतंत्र हो जाता (6) भारत का विभाजन नहीं होता और पाकिस्तान नहीं बनता, (7) और आज भारत पाकिस्तानी आतंकवाद का शिकार नहीं होता। लेकिन महामना को छोड़ तत्कालीन कांग्रेसी नेतृत्व इतने क्रूर और विघटनकारी निर्णय का संवैधानिक हल खोज रहे थे। वस्तुतः वे संवैधानिकता के नाम पर महारानी विक्टोरिया की प्रच्छन्न चाटुकारिता कर रहे थे। उनकी चाटुकारिता का परिणाम था कि अंग्रेजी सरकार का मन बढ़ा और भारत मुस्लिम अलगाववाद की ओर बढ़ा।7

सन् 1905 में बनारस के वार्षिक अधिवेशन में, जिसकी अध्यक्षता गोपाल कृष्ण गोखले ने की थी, महामना ने नरम दल के कांग्रेसी नेताओं पर हमला बोला था। वे बंगाल-विभाजन पर एक तरह से गरमदल के लोगों के साथ खड़े थे। उन्होंने कहा "हमारे आवेदन पत्र का कोई फल नहीं निकला। हमने शान्ति बनाये रखी, यह कोई आपत्तिजनक नहीं है। लेकिन सरकार ने ध्यान नहीं दिया। इस पर बंगाल की जनता को दोषी ठहराना, उनकी बात न स्नना, उनकी परेशानियों पर ध्यान न देना 'घोर अन्याय' है। इस अन्याय का विरोध करना सारे देश का कर्तव्य है। बंगाल की मुसीबत के प्रति उदासीन रहना अन्चित है।''8 महामना ने कहा कि "हिन्द्स्तानियों में और अंग्रेजों तथा हिन्दुस्तानियों में निरर्थक तनाव पैदा करना, कोई अच्छी बात नहीं है। इसके दुरगामी परिणाम होंगे।" 1906 में अंग्रेजों ने 'बंदे मातरम्' नारे को गैर कानूनी घोषित किया। बंगाल के युवकों पर अत्याचार किये । नवयुवकों ने आतंक का उत्तर आतंक से देने का मन बना लिया। जब संवैधानिक आवेदनों पर विचार न किया जाय. उदारता और विनम्रता का कोई परिणाम न निकले, सरकारी दमन और अत्याचार क्ररता की सीमा लॉघ जायें, समाज गहरे नैराश्यभाव में हो जाय, राष्ट्र का अस्तित्व संकट में आ जाये तो देश और समाज के लिये आत्मबलिदान, और प्रतिक्रिया की भाषा का संस्कार स्वयमेव पैदा होने लगता है। गरम दल के उदय के पीछे यही कारण था। महामना प्रतिक्रियावादी नहीं थे, लेकिन समाज, संस्कृति और राष्ट्र की रक्षा में 'गरम विचार' व्यक्त करने में परहेज नहीं करते। बंगाल-विभाजन के समय कांग्रेस के तत्कालीन नेताओं की मनस्थिति भॉपते हुये उन्होंने 'गरमदल' के नवयुवकों की आलोचना नहीं की। क्योंकि विभाजन और अंग्रेजों की साम्प्रदायिक कुटिल चाल से वे क्षुब्ध और व्यथित थे। कलकत्ता अधिवेशन में इसी लिये उन्होंने कहा कि "स्वराज्य के साथ देशभक्ति और मानवता दोनों जुड़नी चाहिये। स्वराज्य और स्वदेशी देश की निर्धनता दुर करने का साधन है और देश की जनता के प्रति हमारा 'धार्मिक कर्तव्य' है।''<sup>10</sup> वह निःसन्देह 'मानवता का धर्म है''।<sup>11</sup> उन्होंने कहा कि ''त्याग और आत्म बलिदान पवित्र शब्द है, यह वास्तव में स्वदेशी और स्वराज्य की अवधारणा में शामिल है।"12

महामना मानते थे कि 'भारत, भारतीयों के लिये' है। इसमें विदेशी सिम्मिश्रण भारत की शुद्धता और पिवत्रता को 'खिचड़ी' का रूप दे देगा। भारतीयों में यह पूरी क्षमता है कि वे अपने देश को मूल भारतीयता के आधार पर 'परम वैभव' के उच्च शिखर तक पहुँचा सकते हैं। महामना की धारणा थी कि ''किसी मनुष्य अथवा किसी जाति की तब तक उन्नति नहीं हो सकती, जब तक वह अपनी वर्तमान दशा से असन्तुष्ट हो कर उसे सुधारने का यत्न न करें।''¹³ मालवीय जी मानते थे कि ''प्रत्येक देश या जाति का अभ्युदय मूल रूप से उसकी प्रजा के आत्मपौरूष पर निर्भर है''¹⁴ और ''दृढ़ विश्वास से जब हम अच्छे कामों में उद्योग करेंगे, तब फिर हमारे दिन फिरेंगे और हमारे देश का वैभव और गौरव बढ़ेगा।''¹⁵ वे चाहते थे कि ''हम अपने अधिकारों के लिये मर्यादानुसार आन्दोलन करें।''¹⁶ महामना संघर्षजयी थे, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संघर्षशील क्षमता का उपयोग करना चाहिये। निकम्मे और कायर व्यक्ति अपने अधिकारों को प्राप्त नहीं कर सकते।

महामना सर्वांगीण उन्नति और सामाजिक एकता के पक्षधर थे। ''देश और जाति का उद्धार करने के लिये, इसके सुख, सम्पत्ति और प्रतिष्ठा पाने के लिये सब प्रकार की उन्नति - धर्म सम्बन्धी, सामाजिक, व्यापार सम्बन्धी और राजनीतिक उन्नति जरूरी है। उन्नति के लिये हिन्दुस्तान की सब जातियों में परस्पर प्रीति और एकता अनिवार्य है।"" एकता के सन्दर्भ में महामना हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच समभाव और साम्प्रदायिक सौहार्द अनिवार्य मानते थे। "हिन्द्स्तान में अब केवल हिन्दू ही नहीं बसते हैं। हिन्दुस्तान अब केवल हिन्दुओं का देश नहीं हैं। मुसलमानों का भी है। ये दोनों सम्प्रदाय यहाँ सदैव बसी रहेंगी। जितना इन दोनों में परस्पर मेल और एकता बढ़ेगी, उतनी ही देश की उन्नति करने में हमारी शक्ति बढ़ेगी, और इनमें जितना ही बैर या विरोध या अनेकता रहेगी, उतना ही हम दुर्बल होंगे।"18 मालवीय जी के अनुसार साम्प्रदायिक वैमनस्य का कारण धर्म के बजाय हमारी हठधर्मी है।'' क्या धर्मों के भेद से हिन्दुओं, आर्यों, मुसलमानों और ईसाइयों का आपस में झगड़ा करना कोई धर्म कहा जा सकता है ? सनातनी मूर्ति पूजक हैं, आर्यसमाजी नहीं। इसलिये इन दोनों में सदैव तनातनी रहे, यह कोई धर्म है ? हिन्दू-मुसलमान के मन अलग-अलग हैं, तो इस विचार से यदि कोई मुसलमान हिन्दुओं के सदैव विरूद्ध रहे, यहाँ तक कि सरकार की दृष्टि में उनको बागी साबित करने का झूठा-सच्चा प्रयत्न करें, तो क्या वे अपने धर्म में लगे हुये हैं ? कदापि नहीं। यदि वे ऐसा करते हैं तो हिन्दू और आर्य अपने वेदों से, ईसाई ईंजील से, और मुसलमान अपने कुरान शरीफ के विरूद्ध चल रहे हैं। धर्म यह है कि प्राणी की प्राणी के साथ सहानुभूति हो। एक दूसरे को अच्छी अवस्था में देख प्रसन्न हों और गिरी हुई अवस्था में सहायता दें।""

महामना कई बार उग्र राष्ट्रवादी की तरह भाषा बोलते थे। राष्ट्रवाद और देश भक्ति उनके खून में था। बिना देशभक्ति भाव के कोई राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। उनका स्पष्ट मत था कि ''गाढ़ देश भक्ति

से एकता उत्पन्न होती है, एकता से राष्ट्रीयता का भाव और राष्ट्रीयता के भाव से देश की उन्नति होती है।''20 महामना के अनुसार सच्चे देशभक्त वे हैं, जो, "जो कुछ करें, धरें, सब कुछ देश के लिये हो, और देश के कार्य के प्रति क्षण तत्पर रहें, और एकाकी लगन से देश के ही ध्यान और उपासना में लगे रहें।"21 देशभक्ति अपने आप में धर्म है।" सच्चा तप यह है कि अपने भाइयों के ताप से तपा जाय, सच्चा यज्ञ यह है जिसमें अपने स्वार्थ की आहुति दी जाय। सच्चा दान यह है कि परमार्थ किया जाय। परमात्मा सबके हृदय में व्यापक है। इसलिये हम जितने प्राणियों को प्रसन्न करें, उतने ही गुना ईश्वर को प्रसन्न करेंगे। यह सच्चा धर्म देशभक्ति द्वारा प्राप्त है। देश-भक्ति का संचार हमारे हृदय से स्वार्थ को निकाल कर फेंक देगा। हम अदूरदर्शी, स्वार्थी और खुशामदियों, चाटुकारों, की तरह ऐसे काम कदापि न करें, जिससे देश और देशवासियों को हानि पहुँचे, बल्कि दूरदर्शी, परमार्थी, सत्यशील और दृढ़ताप्रिय आत्माओं की भाँति, असंख्य कष्ट उठाते हुये वही करेंगे जिससे देश का भला हो, निर्धन धनवान, निर्बल बलवान और मूर्ख भी बुद्धिमान हो जॉय। प्रत्येक प्रकार के सामाजिक दुःख मिटे, भूख, गरीबी, लाचारी, कुशिक्षा आदि मिटे। विपत्तियाँ दूर हो, लाखों बिलबिलाती हुई आत्माओं को सुख पहुँचे। देशभिक्त द्वारा इतने धर्मों का सम्पादन होता हुआ देखकर भी यदि कोई धर्म के आगे देशभिक्त को कुछ नहीं समझता, उस पुरूष को जान लीजिये कि वह धर्म तत्त्व को नहीं पहचानता। वह 'धर्म' 'धर्म' गा रहा है, परन्तु यह नहीं जानता कि धर्म क्या वस्तु है।"22 महामना चाहते थे कि देश के प्रत्येक नागरिक के मन में यह भाव जग जाय कि "देश की उन्नति में अपनी उन्नति, देश के जीवन में अपना जीवन और देश की मृत्यु में अपनी मृत्यु समझें।"23

'स्वदेशी' के प्रति महामना की अटूट आस्था थी। उनका मत था कि ''गहरा, गाढ़ा, उत्कृष्ट, अन्य सब भावों को दबा देने वाला अपने देश का प्रेम ही स्वदेशी है।''<sup>24</sup> स्वदेशी में सच्ची राजभिक्त का भाव होता है। ''सच्ची देशभिक्त ही राजभिक्त है।''<sup>25</sup> ''प्रजा भिक्त ही सच्ची राजभिक्त है।''<sup>26</sup> महामना कौटल्य के उस वाक्य को इतस्ततः स्वीकार करते हैं, जिसमें कहा गया है कि ''प्रजा के सुख में राजा का सुख, प्रजा के दुःख में राजा का दुःख, प्रजा की उन्नति में राजा की उन्नति और प्रजा की अवनति में राजा की अवनित है।''<sup>27</sup> अर्थात

## प्रजा हिते हितं राज्ञः प्रजानां च प्रियं हितं। नात्मप्रियं हितं राज्ञः, प्रजानां च हिते हितम्॥

साम्राज्यवादी ब्रिटिश नेतृत्व भी तब यह भाव नहीं स्वीकार करता था, आधुनिक भारत का लोकतांत्रिक नेतृत्व भी यह भाव नहीं स्वीकार करता। जबिक यही सच्चा 'सुशासन' (Good Governence) है। यही भाव लोकतंत्र का प्राण है। यही गाँधी का 'रामराज्य' है। इसी भाव से 'सभ्य समाज' (Civil Society) का उदय होता है। भारत का वर्तमान नेतृत्व स्वयं का सुख तो चाहता है, जनता के सुख की उसे चिन्ता नहीं। 'राजनीतिक परिवार' को सुख मिलता रहे, देश का अन्य परिवार ट्ट

जाय, विखर जाय, नष्ट हो जाय कोई मतलब नहीं। देश का नेतृत्व करने वाले अभिजात्य वर्ग की उन्नति होती रहे, प्रजा की अवनति और कल्याण हो, न हो, इसकी चिन्ता नहीं । महामना की प्रासंगिकता कौटल्य के आदर्श को समझने में उसे व्यावहारिक रूप से धरातल पर उतारने में निहित है।

महामना 'स्वराज्य' के निहितार्थ को अच्छी तरह समझते थे। 'स्वराज्य' का अर्थ है- ''प्रजा के चुने हुये प्रतिनिधियों द्वारा प्रजा की सम्मति से राज्य के प्रबन्ध का अधिकार''।28 'स्वराज्य' में समानता, स्वतंत्रता, न्याय और भातृत्व का भाव निहित है।" इसमें एक जाति का दूसरे जाति पर आक्रमण या अधिकार''29 नहीं होता। स्वराज्य में न्याय और धर्म की बात यही है कि प्रत्येक देश और जाति के लोग अपने देश में स्वाधीन हों और अपने ऊपर स्वयं राज्य करे।''<sup>30</sup> महामना ने कहा कि ''अंग्रेज जाति, जो स्वयं स्वतंत्रता प्रेमी है, हिन्दुस्तान को सभ्यता के नाम पर सदा अपने अधीन नहीं रख सकती। जब तक देश में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, वैचारिक, सांस्कृतिक, सांस्कारिक पूर्ण स्वतंत्रता नहीं होगी, या प्रजा में स्वतंत्रता का भाव नहीं जगेगा, तब तक हिन्दुस्तान की दुर्दशा का उद्धार नहीं हो सकता।"31 महामना के अनुसार ''स्वराज्य मानव जाति के लिये सबसे बड़ा बरदान है, सबसे बड़ी नियामत है।''32 "यह केवल मनोरथ करने से नहीं मिलेगा, वरन उसके लिये तपस्या करते रहनी होगी।''<sup>33</sup> इसके लिये हमें अपने में ''शान्ति और सहयोग, धीरज और उत्साह, प्रज्ञा और पौरूष, तेज और सहनशीलता, प्रेम और स्वार्थ त्याग, तथा इसके लिये अनेक उत्तम गुणों का संग्रह करना होगा।''34 मालवीय जी ने जहाँ इन गुणों को भारतीय नागरिकों, में आरोपित करने हेत् शिक्षा संस्थाओं, लोकतांत्रिक संस्थाओं, देश के नेतृत्व को उसी तरह का वातावरण पैदा करने की सलाह दी, वही, आतंकवाद, हिंसा, अराजकता, स्वार्थ और ईर्घ्या की आलोचना की। इन भावों से ''देश को कभी लाभ नहीं होगा। वरन वे देश की जड़ों को लगातार कमजोर करेंगी। भारतीय शास्त्रों ने भी इसकी निन्दा की है। और वे हमारी श्रेष्ठ, उच्च सभ्य परम्पराओं के विरूद्ध है।"35 उन्होंने इन प्रवृत्तियों को राष्ट्र की एकता के लिये खतरा बताया। महामना वेद व्यास की वाणी को बार-बार उद्धृत करते हैं, और "देश के सभी धार्मिक और देशभक्त कार्यकर्ताओं को इसे श्रेष्ठ आदर्श मानते है'', जिसमें कहा गया है –

# ''सर्वे भवन्ति सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत॥''

"अर्थात सब सुखी हों, सब दूसरों के लिये सुख का स्रोत बने, सबका कल्याण हो, किसी को कोई दुःख न हो।"<sup>36</sup> मालवीय जी इस बात को बार-बार रेखांकित करते है कि "पक्षपातपूर्ण व्यवहार, और स्वार्थ पूर्ण अड़चनों से"<sup>37</sup> साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, अलगाववाद हिंसा, विद्रोह, जातिवाद, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, और वैमनस्यता का जन्म होता है।

महामना ने भारत के औद्योगिक विकास के लिये कुछ बुनियादी रूप रेखा प्रस्तुत की। यह उनके आर्थिक चिन्तन का महत्वपूर्ण भाग है। वे रूढ़िवादी नहीं थे। उन्होंने आर्थिक महाशक्ति के रूप में भारत को विश्व के साथ खड़े होने का सपना संजोया। "इंडियन इंडस्ट्रियल कमीशन'' की संस्तुतियों को पुष्ट करते हुए उसे भारत के आर्थिक इतिहास के अध्ययन के लिये बहुत ही लाभप्रद बताया।38 महामना ने जिन संस्तुतियों का समर्थन किया वे देश के लिये आज भी महत्वपूर्ण है। वह संस्तृतियाँ थी कि, प्रारम्भिक शिक्षा को व्यापक बनाया जाय, तथा जिन क्षेत्रों में सम्भव हो वहाँ उसे अनिवार्य बनाया जाय।<sup>39</sup> स्वतंत्र भारत में शिक्षा के जिस मौलिक अधिकार को मान्यता दी गयी. उसके बीज इसी में निहित हैं। महामना ने इसमें जोड़ा कि प्रारम्भिक शिक्षा में वैज्ञानिकता, व्यावहारिकता, के साथ-साथ भारतीयता का समावेश होना आवश्यक है। औद्योगिक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाय। शिल्प विज्ञान की शिक्षा को अधिक प्रयोगात्मक बनाया जाय।40 यांत्रिक इंजीनियरी की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाय।41 श्रमिकों के आवास, स्वास्थ्य, तथा कल्याण की वृद्धि पर समुचित ध्यान दिया जाय।42 और अधिक औद्योगिक बैंक खोले जॉय।43 कुटीर उद्योगों की वृद्धि के लिये औद्योगिक सहकारिता को प्रोत्साहित किया जाय।44 रेलवे की भाड़ा नीति में आवश्यक तब्दीली किया जाय। 45 जल मार्गो को ठीक किया जाय,46 खेती के आध्निक तरीकों को प्रोत्साहित किया जाय,47 वैज्ञानिक और प्राविधिक सेवाओं को प्रोत्साहित किया जाय, तथा भारत में शोध, अनुसंधान को अत्यधिक बढ़ावा मिले। 48 व्यापारिक और औद्योगिक ऑकड़े तैयार करने का प्रयत्न किया जाय।49 यथा सम्भव रेलवे और सरकार अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये सामान भारत से खरीदें.50 तथा सरकार उद्योगों को प्राविधिक एवं आर्थिक सहायता दे।51

महामना धर्माधृत चिंतन के प्रयोगकर्ता थे। सनातन धर्म पर उनकी अटूट आस्था थी। वे मूर्ति पूजक थे। तुलसी के रामचिरत मानस को वे 'पंचमवेद' मानते थे। उन्होंने स्वीकार किया है कि यदि रामचिरत मानस की रचना न हुई होती तो भारत से धर्म ही मिट जाता। तुलसी के चिंतन और राम के आदर्श की छाप उनकी सोच में दिखाई पड़ता है। वे हनुमद्भक्त थे। शिव के उपासक थे। तुलसी ने काशी में 108 हनुमान मन्दिरों की स्थापना की। महामना ने उसकी परिक्रमा की थी। उर्व काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के निर्माण के समय वे बग्गी से संकटमोचन हनुमान जी के दर्शन किया करते, और विश्वविद्यालय के पूर्ण होने की कामना करते थे। वे दुर्गाकुण्ड स्थित 'बनकटी हनुमान' जी के यहाँ प्रार्थना करने जाते थे। उन्होंने हनुमान जी को शिव का रूप माना। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में विश्वनाथ जी के मन्दिर निर्माण की उनकी इच्छा इसी का प्रतिफल है। वे मानते थे कि विश्वविद्यालय परिसर में विश्वनाथ की उपस्थिति से विश्व का कल्याण होगा, और विश्वविद्यालय विश्व-शिक्षा का सिरमौर बनेगा। महामना ने तुलसी के जिस रामचिरत

मानस को अपनी आस्था और श्रद्धा का केन्द्र बनाया उसके मूल स्वर भागवत् में भी सुनाई पड़ते हैं। वस्तुतः मानस का आधार भगवद्गीता भी है। महामना मानस और भगवद्गीता दोनों के प्रति श्रद्धानत दिखाई पड़ते हैं। कष्ट इस बात का है कि महामना के विश्वविद्यालय में 'तथाकथित प्रगतिवादी आलोचक' और उनके 'चाटुकार चेले' 'तुलसी के रामचिरत मानस को 'कूड़ा-करकट' कहने में नहीं हिचकते। इससे न केवल महामना का अपमान होता है, बिल्क भारत की सनातन परम्परा के साथ विश्वासघात भी किया जाता है। विश्वविद्यालय में इस तरह के घिनौने प्रतिक्रियावादी वक्तव्यों के विरूद्ध आवाज नहीं उठती क्या यह महामना के प्रति न्याय है? महामना के विचारों के साथ अन्याय करने वाले बुद्धिजिवी वर्ग को भी विश्वविद्यालय में पलने का मौका मिलता है। यह इस माटी की महान उदारता है। 'मानस को कूड़ा-करकट' कहना पश्चिम के प्रति दासत्व भाव को ही उद्घाटित करता है। ऐसे लोगों का काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में रखना पाप है, अपराध है।

धर्म उनके लिये लोकसंग्रहकारी शक्ति उत्पन्न करने का सशक्त माध्यम है। धर्म के मूल सिद्धान्तों का विश्लेषण करते हुये उन्होंने बताया "वस्तृतः धर्म उन व्यवस्थाओं, उन नियमों का नाम है, जो समाज को, राज्य के विभिन्न अंगों को धारण किये रहती है।"53 धर्म के जो मूल सिद्धान्त हैं उन सबका उद्देश्य देश में शान्ति, समृद्धि और सुख उत्पन्न करना, तथा मनुष्य को पारलौकिक गहन विषयों के रहस्यवाद का चिंतन करने योग्य बनाना है।54 उन्होंने मन्स्मृति द्वारा प्रतिपादित धर्म के लक्षणों को धर्म के मूल सिद्धान्त स्वीकार करते हुये कहा कि "धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य, और अक्रोध - में वे सब गुण आ गये हैं, जिनसे लोगों में सदाचार की पवित्रता हो, एकता हो, बल आवे, और वे सुखी हों।"55 महामना की प्रासंगिकता इसी रूप को स्वीकार करने में है। क्या धर्म के उक्त लक्षणों से निरपेक्ष रहा जा सकता है ? जो लोग धर्म निरपेक्षता के नाम पर धर्म के उक्त लक्षणों से निरपेक्ष, रहते हैं या रहने का दिखावा करते है. वे क्या 'सभ्य-मानव' माने जा सकते हैं ? आदर्श राजनीति की स्थापना, 'स्शासन', और 'सभ्य समाज' के लिये क्या धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध की आवश्यकता नहीं है ? वस्तृतः ये लक्षण 'देवत्व' के है, इसके इतर सब 'राक्षसत्व' है। जिन व्यक्तियों में धर्म के उक्त लक्षण होते है वही 'देवता' है, और वहीं सच्चा सुख भोग सकता है - ''सच्चे सुख का अन्भव वही मनुष्य करता है, जिसके चित्त में उत्कृष्ट अभिलाषायें और उद्देश्य हो और जो उनकी पूर्ति के लिये दृढ़तापूर्वक यत्न करता है।"56 परोपकार और देशोपकार धर्म के स्वरूप है। महामना के अनुसार ''अपनी जाति को संसार की सभ्य जातियों के समान बलवान बनाना, उसके बीच 'आदरणीय' पद प्राप्त करना, इससे अधिक बड़ा और पुण्य का कार्य क्या हो सकता है? मनुष्य और पश् में क्या भेद रहा, यदि वह अपने असंख्य भाई-बहनों को अत्यन्त क्लेश की दशा में देख कर

भी स्वयं सुख भोग करता है? चाहे हम कुछ काल तक वज्र-सा हृदय बना कर अपने पीड़ित भाइयों के बीच में आनन्द और सुख भोग कर लें, पर सदा हम ऐसा नहीं कर सकेंगे। जो दशा हमारे भइयों की हो रही है, उसका कभी न कभी हमें भी भागी बनना पड़ेगा। यदि भाग्यवश हमें न भी बनना पड़े तो हमारी सन्तानों को अवश्य बनना पड़ेगा।"57 धर्म में सेवा का मार्ग सिन्निहित है। 'सेवा धर्म' के लिये तप, सत्याचरण, निष्काम भावना, आत्मोपम्य व्यवहार, स्वार्थ त्याग, तथा ईश्वर की आराधाना नितान्त आवश्यक है। 58 धर्म में निष्काम कर्म का भाव है। " जो निष्काम कर्म करते हैं, वे ईश्वर का कार्य करते है।"59 "किसी विघ्न या बाधा से पीछे नहीं हटते"।60 गो सेवा महमाना के अनुसार धर्म कार्य है। गौ में सभी देवताओं का वास है। गो सेवा से देश का बड़ा भला हो सकता है। उन्होंने हिन्दू जनता से अपील की कि—(1) जिसको सामर्थ्य हो एक गौ पाले, (2) जहाँ उचित जान पड़े एक गौ शाला खोली जाय, (3) वे गौशालाओं और पिंजरापोलों को दुग्धालय के रूप में परिणित करें, और अपने सॉड़ों द्वारा गौओं का नस्त सुधारें और खूब दूध बढ़ावे, (4) योग्य पात्र को ही जो गो पालन करे सकें, वे गो दान दें, गोदान योग्य गौओं का ही दान करें, (5) वृषोत्सर्ग में वे केवल उत्तम जाति के साड़ छोड़े, और वहीं छोड़े जहाँ उनकी आवश्यकता हो, और छोड़ने से पहले इस बात का पक्का प्रबन्ध कर ले कि छोड़े गये साड़ का ठीक ढंग से पालन-पोषण हो।61 वस्तृतः वे धर्माधृत मानवता के पक्षधर थे। उनके लिये वेद व्यास की वाणी ही उनके लिये धर्म का मुल है -

> श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत॥ (विष्णुधर्मोत्तर, 3/255/44)

न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः। एष समाषिको धर्मः कामादन्य प्रवर्तते॥

(महाभारत, अन्0 पर्व 113/8/)

''सुनो धर्म का सर्वस्व और सुनकर इसके अनुसार आचरण करों, जो अपने को प्रतिकूल जान पड़े, जिससे अपने को पीड़ा पहुँचे, उसको दूसरों के प्रति न करो।''

मालवीय जी के व्यापक चिंतन ने उन्हें 'महामना' बनाया। सम्पूर्ण विश्व में वे एक मात्र 'महामना' हैं। 'महामना' बनना कोई हँसी खेल नहीं, उसके लिये तप, साधना, त्याग, विनम्रता, और परोपकार की आवश्यकता है। मालवीय जी में ये आवश्यक तत्व-गुण उनके रक्त की कणिकाओं में प्रवाहित होती रही। लेकिन दुर्भाग्य से उनके द्वारा निर्मित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ऐसे अध्यापकों की जमात आ गयी, जो 'महामना' का महान् अलंकरण रेवड़ी की तरह बॉटने लगे, वह भी विदेशी प्रधानमंत्री को। टुच्चापन, चाटुकारिता, स्व-स्वार्थ, छद्म व्यक्तित्व, पाखण्ड, मानसिक दिवालियेपन, नीचता और षंडक भाव से दिया गया

'महामना' का अलंकरण, किसी को 'महामना' नहीं बना पायेगा। समाज और विश्व, यहाँ तक कि भावी पीढ़ी भी उसे कभी स्वीकार नहीं करेगी। ऐसे अध्यापक जो 'महामना' के साथ खिलवाड़ करते हैं, वे भी विश्वविद्यालय में 'शूकर संस्कृति' के आधार पर अपना पेट पाल रहे हैं। 'महामना' के पवित्र भूमि, की विशालता और 'उदार धर्म' का इससे बड़ा और क्या उदाहरण हो सकता है ? यदि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय महामना के रूप में ''मानव शरीर'' की प्रतिकृति है, तो ऐसे लोग 'विष्टा' से अधिक नहीं है, जो शरीर में ही रहते हैं लेकिन आवश्यकता पड़ने पर उसका त्याग भी होना चाहिये, तािक शरीर स्वस्थ रहे।

#### सन्दर्भ

- 1. सीताराम चतुर्वेदी, महामना मालवीय, पृ० 192 ।
- 2. दी आनरेबल पंडित मदन मोहन मालवीय, लाइफ एण्ड स्पीचेज, सेकेण्ड एडीशन, 1918, गनेशन, मद्रास, पृ० 6-7 ।
- 3. दी आनरेबल पंडित मदन मोहन मालवीय, वही, पृ० 218।
- 4. दी आनरेबल पंडित मदन मोहन मालवीय, वही, पृ० 261-262 ।
- 5. दी आनरेबल पंडित मदन मोहन मालवीय, वही, पृ० 486।
- प्रो0 मुकुट बिहारी लाल, महामना मदन मोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व, मालवीय अध्ययन संस्थान, का० हि० वि० वि०, वाराणसी, 1978, प्र0 69।
- 7. देखे, प्रो0 मुकुट बिहारी लाल, वही, पृ0 70-71 ।
- 8. आनरेबल पंडित मदन मोहन मालवीय, वही, पृ० 533-535।
- 9. आनरेबल पंडित मदन मोहन मालवीय, वही, पृ० 535 ।
- 10. वही, पृ0 549।
- 11. वही, पृ0 549।
- 12. वही, पृ0 550।
- 13. मालवीय जी के लेख, सम्पादक, पद्मकान्त मालवीय, पृ० 51।
- 14. पद्मकान्त मालवीय, वही, पृ० ६।
- 15. वही, पृ0 13।
- 16. वही, पृ0 15।
- 17. वही, पृ0 18।
- 18. वही, पृ0 24-25 ।
- 19. वही, पृ0 101।
- 20. वही, पृ0 100।
- 21. वहीं, पृ0 108।
- 22. वही, पृ0 101-102।
- 23. वही, पृ0 108।
- 24. वही, पृ0 30।

- 25. वही, पृ0 111।
- 26. वही, पृ0 111।
- 27. वही, पृ0 111।
- 28. वही, पृ0 74।
- 29. वही, पृ0 61।
- 30. वही, पृ0 61 ।
- 31. वही, पृ0 61 ।
- 32. वही, पृ0 78।
- 33. वही, पृ0 78।
- 34. वही, पृ0 78 ।
- 35. वही, पृ0 39।
- 36. वही, पृ0 44 ।
- 37. वही, पृ0 129।
- 38. इंडियन इण्डस्ट्रियल कमीशन रिपोर्ट नोट-, पृ० 292-355।
- 39. इंडियन इण्डस्ट्रियल कमीशन रिपोर्ट, पृ० 282 ।
- 40. वही, पृ0 276-278 ।
- 41. वही, पृ0 277।
- 42. वही, पृ0 282 ।
- 43. वही, पृ0 286 ।
- 44. वही, पृ0 284 ।
- 45. वही, पृ0 285 ।
- 46. वही, पृ0 286।
- 47. वही, पृ0 58-60।
- 48. वही, पृ0 275।
- 49. वही, पृ0 278।
- 50. वही, पृ0 279 ।
- 51. वही, पृ0 284-286।
- 52. हंस, प्रेमचन्द सम्पादित, काशी अंक, 1932, काशी।
- 53. अभ्युदय, 2 मई, सन् 1908 ।
- 54. 'अभ्युदय', 2 मई 1908 ।
- 55. 'अभ्युदय', 2 मई, 1908 ।
- 56. 'अभ्युदय', ७ अगस्त, सन् १९०८ ।
- 57. 'अभ्युदय', 26 मार्च, 1909 ।
- 58. 'अभ्युदय', 26 मार्च, 1909 ।
- 59. 'अभ्युदय', 26 मार्च, 1909 ।
- 60. 'अभ्युदय', 26 मार्च, 1909 ।
- 61. प्रो0 मुकुट बिहारी लाल, वही, पृ0 133-137 ।

# सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना के प्रतिमूर्ति : पं0 मदन मोहन मालवीय

डाँ० ओंकार नाथ सिंह\*, डाँ० इन्द्रजीत सिंह\*\* एवं सुशील कुमार सिंह\*\*\*

महान देशभक्त, भारतीय संस्कृति के वाहक युग चेता आधुनिक भारत के श्लेष्ठ चिन्तनकर्ता एवं भावी भारत के सुन्दर सुदृढ़ स्वरूप के मसीहा भारतीय आन्दोलन और जनतान्त्रिक समाज के संवाहक महामना पं0 मदन मोहन मालवीय के जीवन और चिन्तन के बहुआयामी स्वरूप को प्रस्तुत करना इस प्रपत्र का मुख्य विषय है। हमारे विचार से पंडित जी के प्रति सच्ची श्रद्धांजिल यही होगी कि हम उनके अमर विचारों पर चलकर राष्ट्रीय जीवन में नवजागरण लाने, राष्ट्रीय क्षितिज में छाये अन्धकार को मिटाकर आभा का नया आलोक बिखेरने, समूचे हिन्दुस्तान को पीड़ित मानवता तथा गौतम बुद्ध की करुणा के सहारे आम आदमी के दुःख, दर्द को मिटाने के लिए संघर्ष से दृढ़ संकल्प का बीड़ा उठायें। हमें ऐसी ही समाज व्यवस्था की सर्जना के लिए आगे बढ़ना है। मात्र सत्ता की वासना से प्रेरित राजनीति के बजाय निर्बल, असहाय, करोड़ों लोगों के दुख, दर्द को मिटाने का ही लक्ष्य सर्वोच्च होगा। जैसा कि महामना के उच्च विचारों से यह बात उभरकर सामने आती है।

# न त्वं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

स्पष्ट है कि मानव समाज के आर्त को समाप्त करने का एक माध्यम उन्होंने मानव के सात्विक चेतना का जागरण करना अपना परम धर्म माना। इसमें उन्होंने विद्या को सात्विक चेतना के जागरण का मूल मन्त्र माना। इसलिए विद्यातीर्थ श्री विश्वनाथ की नगरी में पवित्र गंगा तट पर विश्वविद्यालय स्थापना का संकल्प लिया।

तीर्थराज प्रयाग में उत्पन्न महामना जी द्वारा काशी नगरी में विश्वविद्यालय स्थापना का उद्देश्य कुछ गूढ़ अर्थों से प्रभावित है। वस्तुतः विद्या के तीर्थ बाबा विश्वनाथ माने जाते हैं। युग-युगान्तर से काशी विद्या का केन्द्र रहा है। अतएव बाबा विश्वनाथ, काशी नगरी, गंगा तट इन तीन महत्वपूर्ण संगम पर विद्या केन्द्र की स्थापना भूतल पर स्वर्ग के समान है ऐसा महामना का विचार था। स्वयं उन्हीं के शब्दों में-

# प्रसादात् विश्वनाथस्य काश्यां भगीरथ तटे। विश्वविद्यालयो सृष्टः हिन्दूनांमानवर्धनः॥

सनातन धर्म सम्पूर्ण विश्व का मानवधर्म कहा जाता है और उसके अनुयायी हिन्दू जाति के लोग विश्व में अपनी श्रेष्ठता के लिए विख्यात हैं। अतएव उन्होंने हिन्दू शब्द का महत्व विश्वविद्यालय के साथ जोड़ना आवश्यक माना। वस्तुतः पुनर्जन्म का सिद्धान्त, वेद प्रतिपादित सिद्धान्त है और पुनर्जन्म मानने पर ही भविष्य के लिए पुनीत कर्मों की आवश्यकता होती है। 'छात्राणां अध्ययन तपः' इस सिद्धान्त के अनुसार विश्वविद्यालय विद्या क्षेत्र की तपोस्थली है। धर्म के मूर्त स्वरूपों में यज्ञ, दान, तप स्वाध्याय ऋजुता ये मुख्य कर्म हैं। उनके अनुसार अध्ययन से व्यक्ति ज्ञानी होता है। ज्ञान के समान पवित्र संसार में अन्य कोई वस्तु नहीं है। इसीलिए महामना मालवीय जी इस युग के महामानव, योगी, तपस्वी, उदारचेतना और धर्म के साक्षात प्रतिमूर्ति थे। उनकी वेश-भूषा, क्रिया-कलाप मानव समाज के लिए अनुकरणीय विषय थे।

महामना जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का संकल्प सन् 1905 में लिया था। सन् 1915 ई0 में इसका एक्ट बना और 1916 ई0 में माघ शुक्ल वसंत पंचमी के दिन इसका शिलान्यास सम्पन्न हुआ। सत्य संकल्प का यह कल्पवृक्ष दिन-प्रतिदिन विशाल होता रहा। अब तक लाखों लोग इसकी पवित्रता एवं सम्पर्क से सुखी सम्पन्न हो चुके हैं।

सर्वांगसुन्दर भव्य शरीर एवं धवल परिधान, मधुर वाणी, सहानुभूतिपूर्वक वचन, उत्साहवर्धक क्रिया-कलाप के धनी महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय अनायास ही किसी को अपनी तरफ आकर्षित कर लेते थे। व्यस्त कार्यक्रमों में रहते हुए भी सन्ध्या वंदन, जप, पूजा, पाठ के लिए समय निकाल लेना तथा उनका धर्म एवं संस्कृति के प्रति प्रेम अनुकरणीय था। मानव मात्र के प्रति दया का भाव सबके उत्कर्ष में निष्ठा उनकी विशेषता थी। महामना जी ने परतन्त्र भारत में इस स्वतन्त्र विश्वविद्यालय की नींव मानव जाति के सेवा के रूप में रखने का संकल्प लिया। 11 वर्षों के अथक प्रयास के बाद सन् 1916 ई0 के वसंत पंचमी के दिन लार्ड हार्डिंग्स द्वारा महामना जी ने इसका शिलान्यास सम्पन्न कराकर अपना संकल्प सिद्ध किया और सर सुन्दर लाल जी को इस विश्वविद्यालय का प्रथम वाइसचांसलर नियुक्त किया। प्राची एवं प्रतीचि के मेल को स्थापित करना उनका मुख्य लक्ष्य था। इसीलिए विश्वविद्यालय में प्राच्य विद्या एवं पाश्चात्य विद्याओं के अनेक विभागों की स्थापना हुई। 1925 ई0 में महामना ने सनातन धर्म के प्रचार और प्रसार तथा समाज सेवा हेत् विश्वपंचांग का प्रकाशन प्रारम्भ किया। महामना जी ने दशाश्वमेध घाट पर यज्ञ का आयोजन कराया और अछ्तों को मन्त्र दीक्षा देकर सम्मानित किया। उनका यह कार्य उस समय बड़ा ही महत्वपूर्ण था। क्योंकि काशी के रूढ़िवादी पण्डितों ने उनका घोर विरोध किया। किन्तु विरोध का सामना करते हुए उन्होंने पिछड़े समाज के उत्थान का शुभारम्भ करके बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया।

एसोशिएट प्रोफेसर, प्रा० भा० इति०, सं० एवं पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

<sup>\*\*</sup> पोस्ट डॉक्टर फेलो, प्रा0 भा0 इति0, सं0 एवं पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

<sup>\*\*\*</sup> शोध छात्र, प्रा0 भा0 इति0, सं0 एवं पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

1891 ई0 में महामना पंडित मदन मोहन मालवीय ने वकालत की परीक्षा पास की तत्पश्चात् उन्होंने पण्डित बेनीराम कान्यकुन्ज के साथ जिला अदालत में कार्य करना शुरू किया। दो वर्षों के पश्चात् वे हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। हाईकोर्ट की वकालत निश्चय ही कीर्ति और धन कमाने का अच्छा साधन था। पर लक्ष्मी उन्हों अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकी। राष्ट्र एवं समाज सेवा को सर्वोपिर मानते हुए सन् 1908 ई0 में उन्होंने वकालत कम करते हुए सन् 1910 ई0 में वकालत छोड़ देने का निश्चय किया और सन् 1913 ई0 में उन्होंने वकालत करना बिल्कुल छोड़ दिया।

वकालत छोड़कर सारा जीवन राष्ट्र एवं समाज की उन्नति में लगा देने का निर्णय अवश्य ही मालवीय जी के त्याग का उच्चतम उदाहरण है। श्री गोपालकृष्ण गोखले ने इस महामानव के विषय में कहा था कि-''त्याग तो मालवीय जी महाराज का है। वे निर्धन परिवार में उत्पन्न हुए और बढ़ते-बढ़ते प्रसिद्ध वकील होकर सहस्रों रुपया मासिक कमाने लगे। उन्होंने वैभव का स्वाद लिया और जब दृश्य से मातृभूमि की सेवा की पुकार उठी, तो उन्होंने सब कुछ त्याग कर पुनः निर्धनता स्वीकार कर ली।" अपने परिवार के हित का त्याग कर वकालत छोड़ने के पश्चात् सर्वप्रथम काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के स्थापना में समय लगाया। शिक्षा स्वतन्त्रता की प्रथम कड़ी है, ऐसी उनकी मान्यता थी। शिक्षित किसी का दास नहीं होता। यह तथ्य वे समय-समय पर प्रकट किया करते थे? व्यक्ति क्या कहलाता है? व्यक्तित्व क्या कर सकता है? चरित्र में कितना बल होता है? सनातन धर्म और संस्कृति कितनी पुरातन और पवित्र है? इन सबका एक साथ प्रत्यक्ष दर्शन महामना के चरित्र में दिखाई देता है। यह विश्वविद्यालय उनके सत्य संकल्प का मूर्त रूप है। जो व्यक्ति के शक्ति अपरिमित शक्ति को सिद्ध करने का ज्वलंत प्रमाण है।

सनातन धर्म के प्रति उनका अगाध प्रेम था। क्योंकि यही एक ऐसा धर्म है जिसमें मानवता सदा जीवित रहती है। पुनर्जन्म को उन्होंने सनातन धर्म का मौलिक आधार माना है और सनातन धर्म का मूल पुनर्जन्म की व्यवस्था को धार्मिक एवं वैज्ञानिक तथ्य के रूप में स्वीकार करते हुए धर्म कार्य में उपयोगी विश्वपंचांग का निर्माण अपने संपादकत्व में कराया। पंचांग के मुख्य पृष्ठ पर यह श्लोक अंकित है–

> शास्त्रोक्त स्नानदानेज्या व्रतकालादिसूचकम्। पंचांग सत्कथोपेतं भूय्यात् धर्माभिवृद्धये॥ जयति जयति काशी काशिका विश्वनाथो। जयति जयति काशी विश्वविद्यालयोयम्।

समाज सेवा से ओत-प्रोत महामना पंडित मदन मोहन मालवीय ने सन् 1912 ई0 में प्रयाग के अर्द्धकुम्भ में अपने पुत्र रमाकान्त मालवीय को यात्रियों की सेवा हेतु स्वयंसेवक के दल को गठन करने के लिए प्रेरित किया। सन् 1914 ई0 में माघ मेले के अवसर पर उसका नाम 'दीनरक्षक समिति' पड़ा। यही समिति कुछ समय बाद मालवीय जी की अध्यक्षता में 1915 ई0 में 'प्रयाग सेवा समिति' के रूप में संगठित हुई। इस समिति के प्रधानमंत्री पंडित हृदयनाथ कुंजरु थे। मालवीय जी के प्रोत्साहन एवं पंडित हृदयनाथ कुंजरु की लगन, क्षमता और सेवा भावना के कारण 'प्रयाग सेवा समिति' ने प्रयाग के बाहर भी जनता की सेवा करते हुए सन् 1918 ई0 में अखिल भारतीय संस्था का स्वरूप धारण कर लिया। बहुत से स्थानों पर 'प्रयाग सेवा समिति' के अनुरूप सेवा समितियाँ बनायी गईं और उन्होंने 'अखिल भारतीय सेवा समिति' के जेनुरूप सेवा समितियाँ बनायी गईं और उन्होंने 'अखिल भारतीय सेवा समिति' के नेतृत्व में जनता की सेवा की। सेवा समिति ने हरिद्वार और कुम्भ मेलों के अतिरिक्त, बाढ़, भूकम्प, अकाल आदि आपदाओं के अवसर पर भी जनता की सेवा की।

सन् 1903 ई0 से 1912 ई0 तक प्रान्तीय कौंसिल में निर्वाचित सदस्य की हैसियत से काम करते हुए मालवीय जी ने 'अज्ञानता में फँसी, निर्धनता में दबी, अस्वास्थ्यकर परिवेश में रहने वाली तथा रोगों से ग्रसित जनता की दयनीय दशा की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए उनको सुधारने के लिए आवश्यक प्रयत्न करने की सरकार पर दबाव डाला। उन्होंने कहा कि जनता की स्थिति में सुधार ही अच्छी सरकार की कसौटी है, और इस कर्तव्य का समुचित निर्वाह करके ही भारत सरकार सभ्य सरकार होने का दावा कर सकती है। उन्होंने जनोपयोगी सेवाओं पर सरकार द्वारा खर्च को कम बताते हुए यह सुझाव दिया कि प्रशासन और फौज पर खर्चा कम करके जिला बोर्डों, नगर पालिकाओं तथा प्रान्तीय सरकारों द्वारा जनोपयोगी सेवाओं विशेषतः शिक्षा और स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं पर अधिक धन खर्च किया जाय, तांकि जनता सुखी जीवन व्यतीत कर सके।

गरीबों के सुख एवं शान्ति में शिक्षा की सर्वोच्चता की वकालत करते हुए मालवीय जी का यह विचार था कि शिक्षा के जिरये गरीब जनता अपने विवेक और आत्म सम्मान के वे स्वभाव प्राप्त कर सकते हैं जिनसे सब गुण विकिसत होते हैं। वे चाहते थे कि सरकार बड़े पैमाने पर शिक्षा का व्यापक प्रसार करे। उनकी माँग थी कि प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क दी जाय तथा सब बच्चों के लिए उसका प्रबन्ध किया जाय। उनका सरकार से अनुरोध था कि वह ऊँचे पैमाने पर वैज्ञानिक पद्धित द्वारा कृषि शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा, चिकित्साशास्त्र की शिक्षा तथा उच्चस्तरीय ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का प्रबन्ध करे। उनकी माँग थी कि सर्वसाधारण स्कूलों में बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ हस्त कला की शिक्षा भी दी जाय। विज्ञान

मालवीय जी को दुःख था कि स्वास्थ्य रक्षा का समुचित प्रबन्ध न होने के कारण प्रतिवर्ष हजारों बच्चे, नवयुवक, माताएँ और बहनें मौत का शिकार हो रही हैं। उनका सरकार से अनुरोध था कि वह स्वास्थ्य रक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए उसका समुचित प्रबन्ध करे। वे चाहते थे कि ब्रिटेन की तरह यहाँ भी कानून द्वारा गन्दगी से निदयों के स्वच्छ जल की रक्षा की जाये, नगरों की गन्दगी को निदयों में न डाला जाय। उनके समापन का दूसरा प्रबन्ध किया जाय। नगरों

के अपवाह तन्त्र (ड्रेनेज) प्रणाली को ठीक किया जाय, बस्तियों की स्वच्छता को सुधारा जाय।

परोपकार के महत्व की मिहमा का वर्णन करते हुए मालवीय जी कहते हैं कि- "अपनी जाित को संसार की सभ्य जाितयों के समान बलवान बनाना, उसके बीच आदरणीय पद पाना, इससे अधिक बड़ा एवं पुण्य का कार्य और क्या हो सकता है? मनुष्य और पशु में क्या भेद रहा, यिद वह अपने असंख्य भाई-बहनों को अत्यंत क्लेश की दशा में देखकर भी स्वयं सुख भोग करता है? चाहे हम कुछ काल तक वज्र सा हृदय बनाकर अपने पीड़ित भाइयों के बीच में आनन्द और सुख भोग कर लें, पर सदा हम ऐसा नहीं कर सकेंगे। जो दशा हमारे भाइयों की हो रही है, उसका कभी न कभी हमें भी भागी बनना पड़ेगा।"6

सन् 1910 ई0 में प्रान्तीय कौंसिल के गैर सरकारी सदस्यों द्वारा केन्द्रीय कोंसिल के सदस्य निर्वाचित हुए, जहाँ 1920 तक कार्य करते रहे। सन् 1912 ई0 में भूपेन्द्रनाथ वसु द्वारा प्रस्तावित 'विशेष विवाह विधेयक' का विरोध किया। उनका यह विरोध सनातनधर्मियों की परम्परागत भावनाओं पर आधारित था। इसी वर्ष उन्होंने श्री मानक जी दादा भाई के 'स्त्रियों और लड़िकयों के संरक्षण विधेयक' का समर्थन करते हुए देवदासी प्रथा का विरोध किया। उन्होंने कहा कि मंदिरों में लड़िकयों को समर्पण किया जाय, इसके पक्ष में कोई व्यक्ति शास्त्रीय प्रमाण पेश नहीं कर सकता। पापमय अपमान का जीवन बिताने के लिए किसी लड़की को समर्पण करने का किसी संरक्षक, माता या पिता का कोई अधिकार नहीं है। विधेयक की दूसरी धाराओं का समर्थन करते हुए मालवीय जी ने कहा कि नाबालिंग लड़िकयों में अनैतिक व्यापार बन्द होना चाहिए। श्री मानक जी दादा भाई ने जो प्रस्ताव दलित वर्गों की दशा सुधारने के लिए प्रस्तुत किया उस पर अपने विचार व्यक्त करते हुए मालवीय जी ने उनकी शिक्षा पर समुचित ध्यान देने का सरकार से आग्रह किया। उन्होंने कहा कि ''दलित वर्गों के उत्थान का प्रश्न शिक्षा पर निर्भर है। उन वर्गों में शिक्षा के प्रसार हेत् जो कुछ सरकार कर सकती है वह उसे करे। सरकार और समाज के स्कूल दलित वर्गीं के लिए उतने ही खुले हों जितने दूसरे बच्चों के लिए।"9

1923 ई0 में मालवीय जी की अध्यक्षता में हिन्दू महासभा के लक्ष्य और नया संविधान निश्चित हुआ। "हिन्दू समाज के सभी पन्थवालों में तथा सभी वर्ग वालों में पारस्परिक प्रेम की वृद्धि करके एकीकरण द्वारा इस अपने महान समाज को सुसंगठित, प्रबल व उत्कर्षोन्मुख बनाना और उसकी सर्वांगीण प्रगित करना" हिन्दू महासभा का मुख्य उद्देश्य था। संघटित हिन्दू जाति व भारत की अन्य धार्मिक जातियों के साथ परस्पर सद्भाव उत्पन्न करके भारत को स्वयंशासित स्वराज्ययुक्त एवं महान राष्ट्र बनाने का प्रयत्न करने के लिए उनसे मित्रता बढ़ाना, मालवीय जी के नेतृत्व में संघटित हिन्दू महासभा का दूसरा महत्वपूर्ण लक्ष्य था। सन् 1924 ई0 में हिन्दू महासभा के विशेष अधिवेशन पर पारस्परिक सौहार्द की वृद्धि की आवश्यकता पर जोर देते हुए

मालवीय जी ने कहा- ''ब्राह्मण अब्राह्मण दोनों ही एक सभ्यता के अन्तर्गत हैं। दोनों को भाई-भाई की तरह रहना चाहिए। ब्राह्मणों को चाहिए कि गुण और योग्यता जहाँ कहीं भी मिले उसका आदर करें। ब्राह्मणों का राम, कृष्ण और बुद्ध की, जो ब्राह्मण नहीं थे, भिक्त करना इस बात का प्रमाण है कि गुण कहीं भी मिले उन्हें उसका आदर करने में संकोच नहीं होता था। दुःख की बात है कि सरकारी नौकरियों तथा दो एक मन्त्री पदों के लालच से, जो हिन्दू मात्र की एकता के सामने तुच्छ वस्तुएँ हैं, हम आपस में झगड़ते हैं। हमें दूसरों का सुख और शक्ति देखकर खुश होना चाहिए। जब तक हमारी बुद्धि में विकार न आ जाये, हमारे लड़ने का कोई कारण नहीं। क्या महात्मा गाँधी अब्राह्मण नहीं हैं और क्या यह सत्य नहीं कि आज देश में जितनी उनकी प्रतिष्ठा है उतनी और किसी की नहीं है? मैं अपने ब्राह्मण तथा अब्राह्मण भाइयों से आपस का भ्रम दूर करने का अनुरोध करता हूँ।

मालवीय जी अपने ढंग पर सनातन धर्म महासभा के माध्यम से धर्म-प्रचार करते हुए सवर्ण हिन्दुओं को सनातन धर्म के सार्वजनिक सिद्धान्तों का, तथा हरिजनों को सदाचार का उपदेश देते हुए अन्त्यजोद्धार का काम करते रहे। जुलाई 1934 ई0 में मालवीय जी ने वाराणसी में हरिजनों के उद्धार हेत् एक सभा का आयोजन किया जिसमें मालवीय जी ने अपने भाषण में शास्त्रों का प्रमाण देते हुए कहा कि हमारे सनातन धर्म की महिमा है कि मनुष्य चाहे किसी जाति में रहे, किन्तु धर्म से चले तो उसका उद्धार हो सकता है। उन्होंने धर्म ग्रन्थों का हवाला देते हुए हरिजनों को भी देवदर्शन के लाभ को व्याख्यायित किया। स्कन्दपुराण का उद्धरण देते हुए मालवीय जी ने कहा कि यदि चाण्डाल सदाचारी हो, तो वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के समान आदर पाने योग्य हो जाता है। यदि ऐसा हो सकता है तो फिर हम अपने अछूत भाइयों को सदाचारी क्यों न बनायें? हम उनको सदाचारी बनाकर दिखा दें कि जो भाई छोटे से छोटा हो उसे भी हिन्दू धर्म ऊँचा उठा सकता है।12 उन्होंने कहा कि सदाचार ऐसी वस्तु है जिससे नीच कुल में उत्पन्न होकर भी मनुष्य ऊँचा सम्मान पा सकता है। इस प्रकार का उपदेश महात्मा गाँधी भी देते हैं। वे चाहते हैं कि इन लोगों की तकलीफ दूर हो। यदि कुएँ पर हमारा एक अछूत भाई रामदास जाता है, जिसके सिर पर चुटिया है, जो एकादशी व्रत रखता है, सत्यनारायण की कथा सुनता है, गंगा स्नान करता है, यदि वह प्यासा रह गया तो समझ लो कि हमारे पूर्वज सब प्यासे रह गये। चाण्डाल भी हमारा अंग है। हमारा धर्म है कि स्मृति में उनके लिए जो मार्ग दिखाया गया है उसका उन्हें उपदेश दें। 13 उन्होंने कहा कि ''आज चार पाँच करोड़ हिन्दू अछूत कहे जाते हैं। इनमें अछूता वे ही लोग हैं जो मैले काम करने वाले हैं। वे मानव जाति की सेवा करते हैं, जो अन्य कोई नहीं कर सकता है। यदि वे एक दिन भी अपना काम बन्द कर दें, तो हमारी क्या दुर्गति होगी, भगवान ने कहा है कि-'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः'- अपने-अपने काम में लगे हुए लोग मेरा पद पा सकते हैं। ये भंगी चमार अपना काम करें, फिर जब स्नान करके सूर्यनारायण को अर्घ्य दें, मन्त्र जपें तो बोलो

उनका मंगल होगा कि नहीं? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्त्यज सबके लिए भगवान के दर्शन का अधिकार है। अन्त में मालवीय जी ने कहा "हमें इन अछूतों को जल देना है, रहने को स्थान देना है और इन्हें शिक्षा देनी है। मैं तो चाहता हूँ कि उनके चार करोड़ घरों में भगवान की मूर्तियाँ रखी हों, उस भगवान का भजन हो, तभी तो मंगल होगा।""

मालवीय जी के नेतृत्व में सनातन धर्म महासभा ने अन्त्यजोद्धार का समर्थन करते हुए निर्णय किया कि अस्पृश्य कही जाने वाली जातियों सर्वसाधारण, कुएँ, तालाब, बावली, सड़क, सराय, श्मशान तथा सर्वसाधारण स्कूलों और सभाओं में जाने के लिए कोई रोक नहीं होना चाहिए। उसने यह भी निर्णय किया कि "जो जातियाँ अस्पृश्य मानी गयी हैं; वे भी सनातन धर्म को मानने वाली हैं और सनातन धर्मी होने के कारण उनको देवदर्शन का अधिकार है।

मालवीय जी ने हरिजनों के उद्धार हेतु 'अन्त्यजोद्धार विधि' नाम से एक पुस्तक भी प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने बहुत सी पौराणिक कथाओं का उल्लेख करते हुए बताया कि देवदर्शन का उन सबको अधिकार है, जिनका उस पर विश्वास हो और उसके द्वारा निकृष्ट भी उत्कृष्ट हो जाता है।

मालवीय जी की धार्मिक धारणायें मानव कल्याण की भावना से अनुप्राणित थी। कल्याण की वृद्धि में वे सब वर्णों और आश्रमों का लक्ष्य स्वीकार करते थे। उनके विचार में निष्काम भाव से समाज की सेवा ही परम तप और परम धर्म है। निष्काम भाव के महत्व को प्रतिपादित करते हुए वे कहते थे कि ''जो लोग निष्काम भाव से काम नहीं करते- उन लोगों में परस्पर ईर्ष्या व द्वेष उत्पन्न हो जाते हैं और कार्य सफल नहीं होने पाता। किन्तु जहाँ निष्काम भाव से कार्य होता है, वहाँ लोग दूसरों की सफलता को देखकर प्रसन्न होते हैं, और एक दूसरे के प्रति प्रेम और सहानुभूति का भाव उत्पन्न होता है, और कार्य में शीघ्र ही सफलता प्राप्त होती है। सकाम भाव से काम करने वालों को विपत्तियाँ काम करने से विमुख कर देती हैं, किन्तु निष्काम भाव से काम करने वालों को मकरने वाले लोग यह समझकर कि जो काम हम कर रहे हैं, वह ईश्वर का काम ही है, और इसमें ईश्वर हमारा सहायक है, किसी विघ्न या बाधा से पीछे नहीं हटते।''¹5

आज समय आ गया है कि हम महामना के पद-चिन्हों पर चलकर एक नूतन समाज का निर्माण करें। इसके लिए हमें उनकी दृष्टि परखनी होगी। महामना दृष्टि के विशाल और व्यापक होते हुए संकल्प शक्ति के सुदृढ़ एवं धनी व्यक्ति थे। उनके सात्विक जीवन उनके चिरत्र को निखारने में सहायक था। आपने न केवल भारतीय प्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया था, अपितु पाश्चात्य विचारधाराओं का भी बड़ी तन्मयता से मनन किया। आपके विचारों से ध्वनित होता है कि हमारी संस्कृति विभिन्न जीवन प्रणालियों में एकता और जीवन के हर क्षेत्र में समन्वय स्थापित करने के साथ नैतिक व्यवस्था की स्थापना और आचरण की शुद्धता, 'आत्मनः प्रतिकुलानि परेषां न समाचरेत' विश्व भावना 'आत्मौपम्येन' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से आप्लावित राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय जागरूकता और नागरिक ज्ञान तथा सांस्कृतिक एकता को समेटे हुए है।

#### संदर्भ ग्रंथ

- 1. चतुर्वेदी सीताराम, महामना मालवीय जी, पृ० 42
- दी आनरेबिल पण्डित मदन मोहन मालवीय : लाइफ एण्ड स्पीचेज, 1907,
   द्वितीय संस्करण, पृ० 417-418
- 3. वहीं, सन् 1908, पृ0 465-466
- 4. *वही*, सन् 1907, पृ0 426-42
- 5. *वही*, सन् 1904, पृ0 350-351
- 6. *अभ्युदय*, 26 मार्च, सन् 1909
- 7. *प्रोसिडिंग गवर्नर जनरल की कौंसिल (विधायिका),* सन् 1912, जि0-50, पृ0 170-175
- 8. *वही*, सन् 1912, जिल्द-51, पृ0 90
- 9. वहीं, सन् 1916, जिल्द-54, पृ0 377-379
- 10. चतुर्वेदी सीताराम*, पूर्वोद्धृत,* पृ0 88-89
- 11. *वही*, खण्ड-2, पृ0 12
- 12. चतुर्वेदी सीताराम, पूर्वोद्धृत, पृ० 65
- 13. *वही,* पृ0 66
- 14. *वही*, पृ0 67
- 15. अभ्युदय, 26 मार्च, 1909

# महामना का खेलों के प्रति दृष्टिकोण

डॉ0 एन. बी. शुक्ला

महामना जी का खेलों के प्रति बड़ा लगाव था। बात अगस्त 1929 की है जब मालवीय जी स्वामी कुवल्यानन्द के आश्रम कैवल्यधाम लोनावाला गए वहाँ उन्होंने स्वामी कुवल्यानन्द जी की योग के दार्शनिक एवं वैज्ञानिक प्रयोगशाला को देखकर अपने वि० वि० का० हि० वि० वि० में उस तरह कार्य हेतु मालवीय भवन में से योग की शुरूआत की जो आज भी मालवीय भवन द्वारा प्रमाण पत्रीय, डिप्लोमा पाठ्यक्रम के साथ ही साथ गीता समिति एवं योग साधना केन्द्र उसी का रूप है। शारिरिक शिक्षा एवं खेलों को बढावा देने हेतु महामना जी स्वयं हनुमान व्यायाम प्रसारक मंडल अमरावती डाँ० पी० ए० वैद्य जी के बुलाने पर गए वहां के परिसर को देखकर मालवीय जी अभिभूति हुए और उन्होंने उसी तरह के खेल परिसर एवं व्यायाम मंडल का० हि० वि० वि० में भी बनाने की बात कही (संलग्नक) यह बात अगस्त 1929 की है।

1929 में महामना जी वाराणसी आते ही नवम्बर में उन्होंने अमरावती की तर्ज पर व्यायाम मंडप शिवाजी हाल भी स्थापना की कला(आर्टस) कालेज में पवैलियन भी स्थापना के लिए उन्होंने प्रो0 त्रिलोचन पंत को कहा कि वे इसे साकार रूप दे। उस समय आर्टस कालेज द्वारा वि० वि० एथेलेटिक एसोसियशन (अब स्पोर्टस बोर्ड) महिला कालेज, मेडिकल कालेज सहित अन्य जगह भी खेल गतिविधियों एवं ट्रेनिंग भी दी जाती रही थी। सी एच सी क्रीडा परिषद जो 1916 से कार्यरत है। मालवीय जी ने इसके संविधान को कार्यकारिणी द्वारा पास कराया। 1939 -40 में यह वि० वि० के खेल संविधान वि०वि० में लागू हुआ उसी के बाद वि० वि० एथलेटिक एसोसियशन (अब स्पोर्ट बोर्ड) का संविधान भी अक्टूबर 1942 में सी एच सी क्रीड़ा परिषद संविधान के आधार पर तैयार किया गया। वि० वि० एथलेटिक एसोसिशन में कोच नियुक्त करने की पहल मालवीय जी ने ही शुरू की थी मौनी राय अजिनदास गुप्त, आदि लोग मालवीय जी द्वारा 15 रूपये मासिक पर नियुक्त हुए थे। महामना की दूर दृष्टि का परिणाम था कि इंजीनियरिंग कालेज (बेंको कालेज) में जिमनेजियम, मेंडिकल कालेज जिमनेजियम की स्थापना को मूर्तरूप दिया। भारत ही नही पूरे विश्व में कही भी किसी वि0 वि0 में ऐसा नही है कि हर छात्रावास के सामने खेल मैदान हो । मालवीय जी की दृष्टि इतनी व्यापक थी कि उसका हर छात्र छात्रा सुबह उठकर व्यायाम करे मैदान में जाकर खेल कूद गतिविधियों को अपनाए जिससे उसका स्वास्थ्य ठीक रहे और वह खूब पढ लिख कर बडा आदमी बन सके । हनुमान व्यायाम प्रचारक मंडल में गायों की गोशाला भी महामना ने देखी थी और महां का हि0 वि0 वि0 में भी गोशाला कमेटी बनाई (जो आज डेयरी विभाग) में जाना जा रहा है उनका विजन और मिशन दोनों था कि

हमारे यहा का हर छात्र छात्रा दूध का सेवन कर खेल की गतिविधियों में लगकर खूब अच्छा प्रर्दशन करे। मालवीय जी स्वयं अमरावती, लोनावाला व मद्रास के वाई एम सी ए कालेज तथा लखनउ क्रिश्चियन शारीरिक शिक्षा कालेज में प्रो0 हावर्ड से बरावर सम्पर्क में रहते थे। शिवाजी हाल में मल्ल युद्ध कुश्ती के अखाडा बनवा कर मालवीय जी स्वयं त्रिलोचन पंत सहित आस पास के तमाम पहलवाना को ब्लाकर दंगल एवं स्पर्धा कराया करते थे। मालवीय जी के दृष्टि कोण का परिणाम था कि पूरे वि0 वि0 के सारे मैदानों में एक टेनिस कोर्ट, वालीवाल कोर्ट, बैडिमिन्टन कोर्ट के अलावा अखाडा एवं ट्रेक रहे। आर्टस कालेज मैदान पर शुरू से ही - टर्फ पिच बनवायी गयी। मालवीय जी क संरक्षकत्व में आर्टस संकाय संविधान के पहले अध्यक्ष प्रो0 एस सी डे बनाए गए थे उसके बाद कालेज के प्राचार्य प्रो0 य0 सी नाग और प्रो0 बी0 वी0 नरलीकर ने क्रीडा परिषद को आगे बढाया इसमें तात्कालीन वि० वि० के कुल सचिव डाँ० एस एल दर जो सी एच सी के सचिव थे उन्होंने सीएच सी पैवेयियन बनाने की आधार शिला रखी। सीएच सी पैवेलियन मालवीय जी के समय में तो पूरा नहीं हो पाया। हाँ सन् 1952 में महाराजा विभूति नारायण सिंह द्वारा उद्घाटन किया। ये पैवेलियन बिल्कुल मुंबई के ब्रेबोर्न स्टेडियम की तर्ज पर बना हैं इसमें उपर हाल टेविल टेनिस का है। सामने उपर गैलरी में विशिष्ट अतिथियों को बैठने की 200 लोगों की व्यवस्था है। उपर स्टोर रूम व नीचे हाल में ग्रीन रूम (ड्रेसिंग रूम भी स्थित है।) इसके अलावा 4 रूम खिलाड़ियों अधिकारियो एवं स्टोर रूम है। इसी तरह आई टी जिम खाना, मेडिकल जिमखाना व वि० वि० क्रीडा परिषद का पैवेलियन रूम है। का0 हि0 वि0 वि0 मालवीय जी के समय से ही 18 खेल एथेलेटिक, कुश्ती, जिम्नास्टिक मलखम्व, योग, क्रिकेट, हाकी, फुटवाल, स्विमिंग, वास्केटवाल, हैन्डवाल, टेनिस, टेविल टेनिस, वेडमिन्टन कब्बडी, खो खो, स्क्वैश और भारोत्तोलन की स्पर्धाए होती रही है। मालवीय जी ने जिस तरह की खेलों के प्रति मैदान एवं स्विधाओं की आधार शिला रखी गयी थी वैसे आज विश्व के न तो किसी संस्थान न विश्व विद्यालय और न ही किसी प्राइवेट संस्थान ने ऐसी व्यवस्था की है। मालवीय जी स्वयं कहा भी करते थे कि एक दिन का0 हि0 वि0 वि0 को विश्व का खेल विश्व विद्यालय के रूप में मान्यता मिलेगी पर इसके साथ ही साथ यहां सभी लोगों को एक होना पड़ेगा। और अध्यापकों छात्रों एवं खेल से जुड़े सभी लोग अपना योगदान देंगे तो कोई समय दूर नहीं जब इसे विश्व खेल में अनूठा एवं आदर्श विश्व विद्यालय की मान्यता न मिल जाए पर आज दुखद पहलू है कि इतनी तमाम व्यवस्थाओं और स्विधाओं के होते हए विश्वविद्यालय खेल में इतना उँचा नहीं उठ पाया है। आज का युग विज्ञान एवं स्पेस का युग है और जरूरत है कि हर खेलों पर नए अनुसंधान किए जाये और बदलते खेलों के परिवेश व नियम के साथ का0 हि0 वि0 वि0 के सभी लोगों को भूमिका निभाकर इसे विश्व में उचाई पर पहुचाया जाय और गौरव के साथ कहना पड रहा है कि हि0 वि0 वि0 को पूर्व कुलपित प्रो0 पंजाब सिंह जहाँ टेनिस के स्वयं खिलाड़ी रहे हैं वहीं वर्तमान कुलपित प्रो0 डी0 पी0 सिंह जी स्वयं वैडिमिन्टन और योग के अच्छे खिलाड़ी निश्चित समय में ही का0 हि0 वि0 वि0 खेलों में अपनी गौरव शाली शान बढायेगा। हम सभी लोग जी जान से प्रयासरत भी है नये शोध एवं खोज की जरूरत के साथ।

#### मालवीय जी की दृष्टि में योग दर्शन

योग दर्शन दार्शनिक अथवा सैद्धान्तिक रूप को लेकर भी यह समस्या उठती हैं कि उसकी व्याहारिक उपयोगिता क्या है।

दूसरे शब्दों में, योग के बाह्य अंगों अर्थात आसन आदि की उपयोगिता को स्पष्ट ही है किन्तु इसके दार्शनिक सिद्धान्तों का व्यावहारिक जीवन से क्या सम्बन्ध है योग का उद्देश्य तो? स्वरूपे अवस्थानम्" अर्थात मोक्ष की प्रप्ति है। योगांगों के प्रतिपादन का मूल लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति ही हैं सामान्यतः मोक्ष से तात्पर्य आध्यात्मिक जीवन अथवा विदेहमुक्ति से ही लिया जाता हैं। उस दृष्टि से योग की व्यावहारिक उपयोगिता का प्रतिपादन कैसे किया जाय। वास्तव में यह समस्या इस बात को लेकर उठती हैं कि मोक्ष एवं संसार मुक्ति एवं भिक्त श्रेय एवं प्रेम में विरोध अद्वेत वेदान्त आदि जैसे कुछ भारतीय दार्शतिक सम्प्रदाय ऐसे भी हैं (तंत्र आदि) जो मोक्ष एवं संसार में कोई विरोध नहीं मानते। उनके अनुसार यह विरोध पात्र दृष्टि भेद के कारण हैं इस प्रकार योग के दार्शनिक एवं सैद्धन्तिक पक्ष को भी खेल में उपयोगिता के संदर्भ में प्रायोगिक अध्ययन के लिए चयन करना अनुचित प्रतीत नहीं होता।

योगशास्त्र का साहित्य अत्यन्त विलुप है तथा योग के अनेक दार्शनिक सम्प्रदाय है। भारतीय परम्परा में इन सभी सम्प्रदायों का समान महत्व है। अतः यह समस्या भी उठती है कि योग के किस दार्शनिक सम्प्रदाय को अध्ययन के लिए लिया जाय। वहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भारतीय परम्परा में योग के मुख्य रूप चार सम्प्रदाय है यथा पातंजलि योग, जैन योग, बौद्धयोग एवं तान्त्रिक योग। इनमें आधार रूप में पातंजलि योग को माना जा सकता है। योग के अन्य सभी सम्प्रदाय पातंजिल योग की मूलभूत बातों को स्वीकार करते हैं। उदाहरण के लिए—अष्टांग योग (यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा समाधि) को सभी सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं। उनमें योग को लेकर मतभेद अथवा विभिन्नताएँ पाई जाती है वे उनकी दार्शनिक अथवा तत्व शास्त्रीय सिद्धान्तों की विभिन्नता के कारण पाई जानी हैं उनके दार्शनिक सिद्धान्तों अथवा मूल उद्देश्य पर यदि विचार

किया जाय तो कुछ आधार भूत समानताएँ भी पाई जा सकती हैं विशेष रूप से योगांगों के प्रयोग के सन्दर्भ में यह बात पाई जा सकती हैं योगांगो के प्रयोग का लक्ष्य मोक्ष ही है। भारतीय परम्परा के प्रायः सभी योग सम्प्रदाय मोक्ष को आत्म स्वरूप की प्रप्ति ही मानते हैं तथा जीवन मुक्ति की अवधारणा को स्वीकार करते हैं कहने का तात्पर्य यह है कि मोक्ष कोई ऐसी अवस्था नहीं है जो इस संसार से परे जाकर अथवा मृत्योपरान्त ही पाई जा सकती है। प्रायः सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय यह मानते हैं कि आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में पूर्ण है। इस अवस्था को सामान्य अर्थों में ऐसा समझा जा सकता है कि यह पूर्णस्वरूप से तनावमुक्त, चिन्ता से परे, सुख दुख की अनुभूतियों से परे की अवस्था है। गीता में इसी अवस्था की स्थित प्रज्ञ की अवस्था कहा गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसी अवस्था को प्राप्त कराने वाले दार्शनिक सिद्धान्तों का खेल में उपयोगिता की दृष्टि से उपयोग किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में एक मौलिक समस्या यह उठ सकती है कि यदि मनुष्य पूर्णावस्था अथवा जीवन मुक्ति की अवस्थ्सास में होगी तो क्या वह कोई कम करना चाहेगा? उसी प्रकार ,खेलों के सन्दर्भ में भी यह प्रश्न उठ सकता है कि पूर्णावस्था प्राप्त व्यक्ति खेलों में अभिरूचि क्यों लेगा? उससे सम्बन्धित यह प्रश्न उठ सकता है। कि क्या खेल सोद्देश्य होते हैं अथवा निरूद्देश्य? यदि ये सोद्देश्य होंगे तो उनका व्यक्ति की पूर्णावस्था की अवधारणा से विराध होगा यदि ये निरूद्देश्य होंगे तो भी कोई इनमें रूचि लेगा।? कुछ दार्शनिक सम्प्रदाय यथा अद्वैतवेदान्त की ऐसी मान्यता है पूर्णावस्था में व्यक्ति किसी काम में प्रवृत्ति नहीं होता, किन्तु तंत्र आदि कुछ ऐसे दार्शनिक सम्प्रदाय भी है जो यह मानते हैं कि पूर्णावस्था का व्यक्ति के कर्म से कोई विरोध नहीं है उनके अनुसार पूर्णावस्था में व्यक्ति खूब कर्म करता है तथा यह कर्म वह सहज रूप में करता है उसके लिए उनके सामने किसी लक्ष्य की प्राप्ति करना आवश्यक नहीं होता। उनकी ऐसी मान्यता है कि पूर्णावस्था में किया गया कर्म उत्कृष्ट होता है। उनकी शब्दावली में इस प्रकार के कर्म को ''स्पन्द'' कहा जाता है। सामान्य अर्थो में यह समझा जा सकता है कि व्यक्ति जब पूर्ण रूपेण तनाव मुक्त होता है तो उसके द्वारा जो कार्य किया जाता है। उसकी उत्कृष्टता में कोई सन्देश नहीं किया जा सकता है। सार रूप में व्यावहारिक दृष्टि से खेलों के सन्दर्भे में इस बात को लिया जा सकता हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि खेल को दार्शनिक अर्थ में न लेकर व्यावहारिक अर्थ में भी लेते हुए योग के दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक पक्षों का उनमें प्रयोग करने का प्रयास किया जा सकता है।

खेलों के सन्दर्भ में योग की उपयोगिता का अध्ययन करने के लिए योग के क्रिया पक्ष को लिया गया हैं योग के क्रिया पक्ष से तात्पर्य योग के उस पक्ष अथवा योगांग से है, जिनका प्रयोग खेलों में किया जा सकता हैं उस दृष्टि से यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तभ ध्यान को योग के क्रिया पक्ष विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक महत्व है। खेलों की दृष्टि से उनका प्रयोग आवश्यक नहीं है। खेलों के सन्दर्भ

में यम नियम को अनुशासन के रूप में, आसन तथा प्राणायाम को शरीरिक एवं आत्मिक क्षमता के संवर्द्धन के रूप में प्रत्याहार है ध्यान को मानसिक क्षमता की अभिवृद्धि के अर्थ में लिया जा सकता है। इस रूप में इनके प्रयोग कर उपयोगिता का अध्ययन करना प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है।

शारीरिक क्षमता की आवृत्ति के लिए तथा खेलों में कुशलता प्राप्त करने के लिए आसन प्राणायाम आदि के प्रयोग की बात सामानय रूप से स्वीकार की जाती है। उसकी उपयोगिता भी सर्वमान्य रूप से स्वीकार की जाती है। किन्तु योग के विषय में जो सामान्य अवधारणा प्रचलित है उसके अनुसार योग शारीरिक व्यायाम के अतिरिक्त कुछ नहीं है। उसे सामान्यतः शारीरिक व्यायाम के अर्थ में ही लिया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि समान्यतया खेलों के सन्दर्भ में योग के दार्शनिक अथवा सैद्धान्तिक पक्ष की उपेक्षा की जाती है। उसके फलस्वरूप योगासन आदि यान्त्रिक क्रिया की तरह प्रयुक्त किये ताते हैं। उस कारण योगासन आदि यान्त्रिक क्रिया की तरह प्रयुक्त किये ताते हैं। उस कारण योगासन आदि के प्रयोग का पूर्ण लोभ नहीं मिल पाता अतः योग के क्रिया पक्ष का खेलों में प्रयोग का पूर्ण रूपेण फल प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इसका प्रयोग समग्र रूप से किया जाय । कहने का तात्पर्य यह कि योग के क्रिया पक्ष के दार्शनिक एवं व्यावहारिक पक्षो में सामंजस्य किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है।

योग के दार्शनिक पक्ष को व्यावहारिक दृष्टि से उपयोग करने के लिए उसके सार रूप को अपनी आवश्यकता के अनुरूप ग्रहण या जा सकता है। और इस प्रकार योग के दार्शनिक एवं व्यावहारिक पक्ष में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। योग के दार्शनिक पक्ष का सार आत्मोपिलिब्ध अथवा आत्माभिव्यक्ति भी माना जा सकता हैं जिसे व्यावहारिक दृष्टि से आत्मिक शिक्त की पूर्ण तथा सहज अभिव्यक्ति माना जा सकता है। आत्माभिव्यक्ति के लिए योग दर्शन माना जा सकता है। आत्माभिव्यक्ति के लिए योग दर्शन माना जा सकता है। आत्माभिव्यक्ति के लिए योग दर्शन में चित्रवृतियों का निरोध होना आवश्यक माना गया है। इसे व्यावहारिक दृष्टि से पूर्णतया तनाव मुक्त की अवस्था माना जा सकता है। इस प्रकार योग के दार्शनिक पक्ष का भी खेलों में प्रयोग करने का प्रयास किया जा सकता है इस दृष्टि से खेलों के सन्दर्भ में योग के क्रिया पक्ष अर्थात योगासन आदि के प्रयोग के साथ साथ खेलों के प्रति कुछ भवनाएँ विकसित करनी आवश्यक है। मालवीय जी के प्रायोगिक अध्ययन में निर्मलिखत बातो अथवा भावनाओं का प्रयोग किया गया है:-

- 1. तनाव मुक्त होकर खेलना
- 2. खेल को खेल की भावना से खेलना

- 3. खेल में कोई उद्देश्य न हो
- 4. हार एवं जीत से परे होकर खेलना
- 5. स्तर को सुधारने के लिए खेलना
- 6. चरम उत्कर्ष कर प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होकर खेलना
- 7. पूरी क्षमता का सहज भाव से प्रयोग कर खेलना
- 8. खेल को व्यवसाय न बनाना
- 9. खेल में क्रम बद्धता का होना आवश्यक है।
- 10. खेल के द्वारा सामंजस्य स्थापित करना
- 11. खेल एक प्रयोगात्मक प्रणाली है।
- 12. शारीरिक व मानसिक विकास के लिए सहायक होता है।
- 13. खेल का कोई निश्चित मापदण्ड नहीं होता है।
- 14. व्यवहारगत रूप में खेल से सीख प्राप्त होती है।
- 15. स्वभावगत रूप में खेल के द्वारा नई सीख का सूत्रपात होता है, जैसे—आपसी प्रेम जातिगत भवना का त्याग, द्वन्द्वता का न होना, मैत्रीभाव स्थापित करना, प्रणाली का विकास करना इत्यादि।

श्री हनुमान व्यायाम प्रसारक मंडल

# राष्ट्रीय नेताओं की दृष्टि में

- राष्ट्रिपिता महात्मा गांधी ने सन् 1926 में इस संस्था को भेटं दी और अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा—''मुझे यह देखकर अति प्रसन्नता होती है कि यह संस्था जातिवाद से पूर्णतः मुक्त है।''
- नेताजी सुभाषचन्द्र ने इस संस्था के प्रति आत्मीयता दर्शाते हुए सन् 1928 में यह उद्गार निकाले—"इस संस्था को मै हमेशा अपनी संस्था समझता रहा हूँ और मुझे यह कहने में गौरव अनुभव होता है कि यह संस्था मेरी है।"
- पंडित मदनमोहन मालवीय ने सन् 1929 में कहा—''मै हनुमान व्यायाम प्रसारक मंडल को हमेशा से जानते हुए आया हूँ, मेरी कामना है कि इसी ढंग की एक आदर्श संस्था बनारस हिन्दु विश्व विद्यालय में भी स्थापित होनी चाहिए. मैभगवान से प्रार्थना करता हूँ कि इस संस्था की उत्तरोतर प्रगति हो।''
- डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने सन् 1936 में बम्बई में प्रदर्शित प्रदर्शन के समारोह के अध्यक्षीय के भाषण में कहा—''मंडल द्वारा प्रदर्शित शारीरिक क्रियाओं के विविधतापूर्ण प्रदर्शन को देखकर मुझे अत्याधिक हर्ष हुआ है। मै प्रत्येक भारतीय नवयुवक से मंडल द्वारा दिखाये गये मार्ग के अनुकरण की अपेक्षा करता हूँ"।

# महामना मालवीय की शैक्षिक दृष्टि एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश

डॉ0 सुनील कुमार सिंह\* एवं डॉ0 गौरव सिंह राठौर\*\*

पंडित मदन मोहन मालवीय का जन्म 25 दिसम्बर 1861 को हुआ था। उनके पूर्वज मालवा से आकर प्रयाग में बस गये थे। मेधावी मदन मोहन का पालन पोषण धार्मिक परिवेश में सम्पन्न हुआ था। सात वर्ष की अवस्था में ही वह सभा के समक्ष भाषण देने में सक्षम थे। नौ वर्ष की अवस्था में उनका उपनयन संस्कार सम्पन्न हुआ। सामान्य परिवार के युवक की तरह संघर्ष करते हुए शिक्षा प्राप्त की। बाद में एक विद्यालयी शिक्षक, वकील, पत्रकार, राजनेता, समाज सेवक जिस रूप में भी उन्होंने कार्य किया, वहीं एक अमिट छाप छोड़ी। अपने अनुभवों, मेधा, दृढ़ इच्छाशिक्त, सत्संकल्प, धार्मिकता एवं राष्ट्रभिक्त की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करने का संकल्प लिया। वर्तमान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उनके संकल्प की व्यवहारिक परिणित है। उनकी जीवनयात्रा उनके शैक्षिक दृष्टि की अमिट छाप है। प्रस्तुत लेख में कुछ द्वितीयक श्रोतों का उपयोग करके महामना मालवीय की शैक्षिक दृष्टि को एक व्यवस्थित रूप देने का प्रयास किया गया है।

महामना मालवीय आधुनिक विश्व में एक महान शिक्षा शास्त्री के रूप में स्थापित हैं क्योंकि उन्होंने तत्कालीन समाज की वस्तुस्थिति पर विस्तारपूर्वक विचार किया, आवश्यकताओं को पहचाना, शिक्षा सिद्धान्तों का पुनः विश्लेषण किया एवं उनको सामियक संदर्भ में नवीन रूप प्रदान किया। अतः मानव प्रकृति की मूल संकल्पना को पहचानकर उसे व्यवहारिक रूप दिया। उनके कार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में प्रभावशाली रूप से प्रकट हुए। यहाँ के परिवेश में, कक्षा-कक्ष परिस्थितियों में, शिक्षक -शिक्षार्थी व्यक्तित्व में, भिन्न-भिन्न विषयों के द्वारा समाज में उनके मौलिक विचार प्रकट हुए एवं आज भी प्रवाहमान है। अतः निःसंदेह महामना मालवीय एक महान शिक्षाशास्त्री हैं। उनकी शैक्षिक दृष्टि निम्नवत् है।

## शिक्षा एवं उसके उद्देश्य

मालवीय जी के अनुसार, जीवन का सर्वांगीण विकास शिक्षा का मूलमन्त्र हो। शिक्षा की ऐसी व्यवस्था हो कि विद्यार्थी अपनी शारीरिक, मानिसक, भावात्मक शिक्ततयों का विकास कर आगे चलकर किसी व्यवसाय द्वारा सच्चाई और ईमानदारी से अपना जीवन निर्वाह कर सके, कलापूर्ण सौन्दर्यमय जीवन व्यतीत कर सके, समाज में आदरणीय और विश्वासपात्र बन सकें तथा देशभिक्त से जो मनुष्य को उच्च कोटि की सेवा करने को प्रेरित करती है अपने जीवन को अलंकृत कर राष्ट्र की सेवा कर सकें।

शिक्षा की इस सकल्पना को उन्होंने प्राचीन भारत के शिक्षा केन्द्रों जैसे तक्षशिला तथा नालन्दा के साथ ही वर्तमान पश्चिमी विश्वविद्यालयों की श्रेष्ठतम संस्कृति तथा प्रणाली के अनुकरण द्वारा प्राप्त करने की योजना बनायी। अतः इस सुन्दर संयोग द्वारा उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय हेतु निम्नांकित ध्येयों को तय किया। इन्हें वर्तमान/समसामयिक संदर्भ में शिक्षा के उद्देश्यों के रूप में भी देखा जा सकता है।

- 1. हिन्दू शास्त्र तथा संस्कृत भाषा के अध्ययन की वृद्धि, जिसके द्वारा भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता में जो कुछ भी श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण था उसकी तथा हिन्दुओं की प्राचीन संस्कृति तथा भावनाओं की रक्षा, और मुख्यतः हिन्दुओं में और सार्वजनिक रूप से सर्वसाधारण में उसका प्रचार हो सके।
- 2. कला और विज्ञान की सर्वतोन्मुखी शिक्षा तथा अन्वेषण की वृद्धि।
- आवश्यक प्रयोगात्मक ज्ञान के साथ-साथ विज्ञान, शिल्पादि कला-कौशल तथा व्यवसाय सम्बन्धी ऐसे ज्ञान की वृद्धि जिससे देशीय व्यवसाय तथा धन्धों की उन्नित हो।
- 4. धर्म और नीति को शिक्षा का आवश्यक या अभिन्न अंग मानकर युवकों में सदाचार का संघटन या चरित्र निर्माण का विकास करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महामना के अनुसार शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्यों के अन्तर्गत व्यक्ति का शारीरिक विकास, मानसिक विकास, चिरत्र निर्माण, जीविकोपार्जन की क्षमता का विकास, आध्यात्मिक विकास कर उसके व्यक्तित्व के सभी पक्षों का संतुलित विकास सुनिश्चित करना है। साथ ही शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यों के अंतर्गत व्यक्ति के अन्दर एकता, देशभिक्त, आत्मत्याग एवं सेवाभाव उत्पन्न करना है। इन उद्देश्यों का प्रकटीकरण उनके निम्नलिखित स्वनिर्मित श्लोक द्वारा स्पष्ट होता है:

#### सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथविद्यया। देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानर्हः सदा भवा।

अर्थात् सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभिक्त और आत्मत्याग द्वारा सदा ही सम्मान पाने योग्य बनो।

<sup>\*</sup> एसोसियेट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

<sup>\*\*</sup> वरिष्ठ रेजीडेन्ट, शल्यतंत्र विभाग, आयुर्वेद संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

#### शिक्षा का पाठ्यक्रम

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ध्येयों में स्पष्ट रूप से शिक्षा के पाठ्यक्रम की झलक मिलती है। समग्र रूप में कला, विज्ञान, व्यवसाय, धर्म और नीति, हिन्दू -शास्त्र तथा संस्कृत भाषा के अध्ययन पर उन्होंने विशेष बल दिया है। परन्तु सिद्धान्त एवं व्यवहार के समन्वित स्वरूप के अध्ययन व अवलोकन से स्पष्ट होता है कि महामना एक महान द्रष्टा थे। उन्होंने भूत, वर्तमान एवं भविष्य का एक त्रिकालदर्शी के रूप में दर्शन किया था। उनका मानना था कि हमारी पैतृक सम्पत्तियों में से सबसे बहुमूल्य रत्न हमारी संस्कृत भाषा है । इस भाषा में इसका पूर्ण विवेचन मिलता है कि किस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपना व्यक्तिगत, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा चरित्र सम्बन्धी उन्नति कर सकता है तथा फिर कैसे अपने को एक राक्तिशाली समाज में संघटित कर सकता है। इसके अध्ययन से अतुलनीय मानसिक क्षमता प्राप्त होती है। अतः इसका अध्ययन आवश्यक है। अंग्रेजी के व्यापक प्रयोग से हमारी राष्ट्रीय भाषाएँ एकदम भुला दी गई हैं। अतएव हिन्दी अथवा अन्य किसी राष्ट्रभाषा को अंग्रेजी का स्थान ग्रहण करने में कुछ समय लगेगा। इस प्रकार के परिवर्तन के लिए उन्होंने कुछ उपाय भी सुझाये थे। इन उपायों में पाठ्यपुस्तकों की रचना हिन्दी में करना, अनुवाद करना, हिन्दी को स्वतंत्र विषय के रूप में विकसित करना प्रमुख थे।

इसी प्रकार कला और विज्ञान में शिक्षा के लिए प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति, साधारण इतिहास तथा समाजशास्त्र, तत्वज्ञान तथा मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र तथा राजनीति, अंग्रेजी, संस्कृत, अरबी, फारसी, हिन्दी, उर्दू, मराठी, बंगाली, गणित तथा ज्योतिष, भौतिक तथा रसायन विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, जीवविज्ञान तथा भूगर्भशास्त्र जैसे विषयों के अध्ययन एवं अन्वेषण के प्रबन्ध पर बल दिया। इसी प्रकार शिक्षकों कानुनविदों, डॉक्टरों, इन्जीनियरों, कृषि वैज्ञानिकों को तैयार करने के लिए संबंधित विधाओं के अध्ययन एवं विकास पर बल दिया। महिलाओं की शिक्षा को अति आवश्यक माना एवं महिला महाविद्यालय को स्थापित किया। कला-कौशल एवं व्यावसायिक शिक्षा को उन्होंने व्यावहारिक शिक्षा का स्थान दिया, अतः प्रयोगात्मक ज्ञान के विकास के लिए ही कानून के विद्यालय, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, आयुर्वेद विद्यालय इंजीनियरिंग कालेज की स्थापना की। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि भारत के भविष्य निर्माण के प्रति उनकी जो सैद्धान्तिक दृष्टि थी, उसको उन्होंने विभिन्न विषयों के अध्ययन की व्यवस्था द्वारा व्यावहारिक रूप दिया।

महामना का यह भी मानना था कि विद्यार्थियों के चिरत्र निर्माण हेतु बहुविध प्रयास किये जाने चाहिए। मात्र शिक्षा की औपचारिक व्यवस्था पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए। विभिन्न प्रकार की गतिविधियों द्वारा उनमें भावात्मक संचार भी किया जाना चाहिए। जैसे धार्मिक विषयों पर नियमानुकुल व्याख्यान का आयोजन, धर्म सम्बन्धी कथाओं का पाठ, धार्मिक सम्भाषण आदि के द्वारा धार्मिक तथा आध्यात्मिक भावों

का संचार किया जाय। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों की सामाजिक तथा साहित्यिक सभा, नाटक-मण्डली, खेल-सिमिति, राज्य परिषद के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर बहस करायी जानी चाहिए। सुन्दर चरित्र निर्माण हेतु धार्मिक विषयों के साथ-साथ शारीरिक व्यायाम अत्यन्त आवश्यक है। उन्होंने विद्यार्थियों के लिए उपदेश किया है कि:

# दूध पियो, कसरत करो, नित्य जपो हरि नाम। हिम्मत से कारज करो, पूरेंगे सब काम॥

इसी प्रकार शिक्षक और विद्यार्थी एवं विद्यार्थी-विद्यार्थी सम्पर्क को भी उन्होंने विशेष महत्व दिया है। इसी के अनुरूप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एक आवासीय विश्वविद्यालय के रूप में उपर्युक्त विषयों के पठन-पाठन हेतु विकसित किया गया है।

#### शैक्षणिक संस्था

आधुनिक विश्व के संदर्भ में किसी महान शिक्षाशास्त्री के विचारों के अनुरूप एक शैक्षणिक संस्था के रूप में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना एक अनूठी एवं अद्भूत घटना है। संभवतः महामना के माध्यम से किसी आध्यात्मिक शिक्त का प्रकटीकरण था। वरना इतना विशाल जनसमर्थन, राजा, रंक, फकीर, ज्ञानी, अज्ञानी, धार्मिक, सांसारिक, स्थानीय, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय, महिला, पुरुष आदि ने सभी प्रकार से पूर्ण रूप से समर्थन दिया। सभी प्रकार की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर एवं एकमत होकर एक सर्वस्वीकृत आवासीय शैक्षणिक संस्थान की स्थापना की गई। एक ऐसी संस्था जहाँ शिक्षक-शिक्षार्थी एवं विश्वविद्यालय के अन्य सहयोगी कर्मचारी परस्पर सौहार्द के वातावरण में रहते हुए राष्ट्र निर्माण में योगदान दें। प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाँ० शांति स्वरूप भटनागर के शब्दों में यह मधुर मनोहर अतीव सुन्दर है। महामना की कल्पना के अनुकुल प्राचीन गुरूकुलों की भाँति यहाँ का प्राकृतिक वातावरण अति मनोरम है।

यहाँ का प्रथम स्थापना दिवस सन 1916 में हुआ। यहाँ के रजतजयंती पर महामना मालवीय जी ने महात्मा गांधी का स्वागत करते हुए कहा था कि हमारा देश महान है। उसमें 'महतांच महच्चयत्' का सौन्दर्य छिपा है। उसी महत्ता और सौन्दर्य को सीखने-सिखाने के लिए विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। उपर्युक्त भागों में वर्णित शिक्षा के घ्येयों एवं पाठ्यक्रम को यहाँ पूर्णरूपेण अपनाकर भारतभूमि की विरासत के अनुरूप ही शिक्षा देने की व्यवस्था की गई है।

वर्तमान में यहाँ 16 संकाय (आयुर्वेद, दंत विज्ञान, मेडिसिन, कृषि विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला, वाणिज्य, विधि, शिक्षा, प्रबंधन, दृश्यकला,धर्म विज्ञान, सामाजिक विज्ञान एवं मंचकला आदि) एवं लगभग 140 विभाग हैं। इसके साथ ही कृषि, मेडिकल एवं प्रौद्योगिकि नामक तीन संस्थान हैं। विश्वविद्यालय का दक्षिणी परिसर मिर्जापुर जिले के बरकच्छा नामक स्थान पर स्थापित है। यह विश्वविद्यालय तीन

विद्यालयों—सेन्ट्रल हिन्दू ब्वायज स्कूल, सेन्ट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूल एवं रणवीर संस्कृत विद्यालय के साथ अनूठा रूप लिये हुए है। 1898 से माता एनी बेसेन्ट की देखरेख में प्रारंभ किये गये विद्यालय बाद में हिन्दू विश्वविद्यालय की आधारिशला बने। इस प्रकार महामना के शैक्षिक विचारों से ओतप्रोत यह सभी शिक्षण संस्थान राष्ट्रसेवा में अर्पित हैं। इनके अतिरिक्त डी०ए०वी० कालेज, आर्य महिला पी०जी०कालेज, बसन्त कन्या महाविद्यालय, बसन्त महिला महाविद्यालय राजघाट अन्य शिक्षण संस्थान हैं जो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हैं।

सन् 1929 के दीक्षान्त भाषण में महामना ने कहा था कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के रूप में हुई थी। सन् 1929 में इसमें देश के दो सौ बाइस जिलों के विद्यार्थी थे। आज सन 2010 में हम पाते हैं कि इसका राष्ट्रीय स्वरूप तो कायम ही है साथ ही विश्व के अनेक देशों जैसे-नेपाल, श्रीलंका, थाइलैंड, किनिया आदि के विद्यार्थी इसे एक अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप देते हैं।

रिक्षण संस्थाओं के रूप में स्कूलों एवं विश्वविद्यालयों के सन्दर्भ में महामना का कहना था कि—स्कूलों का यह धर्म है कि उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों को केवल उपयुक्त शिक्षा देना ही अपना कर्तव्य न समझें, बल्कि उनको यह भी चाहिए कि वे उनके माता-पिताओं को इस बात की सम्मित दें कि उन बच्चों की भविष्य में जिविका वृत्ति क्या होनी चाहिए। उन्होंने एक फ्रांसिसी विद्वान को उद्धृत करते हुए लिखा है कि

''स्कूल केवल स्कूल ही के लिए नहीं बना है बल्कि जीवन के लिए। इसे भावी समाज को जिविका उपार्जन करने योग्य व्यक्तियों से भरना चाहिए। यह एक प्रकार की हास्यास्पद निर्दयता है कि वह तेरह वर्षीय बालकों को अचानक छोड़ दें, जब वे जीवन-संग्राम में निराधार फेंक दिये जाते हैं। यह एक प्रकार की मूर्खतापूर्ण बरबादी है। यह कितनी मूर्खता है कि जिस विद्यार्थी के लिए इतना किया जाय, उसको काम दिलाने के लिए कुछ भी न हो।... स्कूलों के सामाजिक उत्सव अत्यन्त विस्तृत हों। स्कूल को और भी बहुत से कार्य करने चाहिए। इनमें से प्रथम तो यह है कि पाठशाला के कमरे से कारखानों तक विद्यार्थियों को पहुँचाने का प्रबन्ध करें।''

इसी प्रकार विश्वविद्यालयों के संदर्भ में उनका कहना था कि "प्रत्येक सभ्य देश में विश्वविद्यालय की शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा का प्रधान अंग मानी जाती है और यदि पाश्चात्य देशों के शिक्षा व्यय की तुलना हमारे देश के विश्वविद्यालयों से की जाय तो ज्ञात हो जाएगा कि इस विषय में अन्य सभ्य देशों की अपेक्षा हम कितने पीछे हैं और हमें इस कमी की पूर्ति के लिए कितने उत्साह की आवश्यकता है। हमारे जितने भी विश्वविद्यालय हैं वे मानो दिद्वता तथा आपित्तयों से आक्रान्त भारत भूमि के अज्ञान रूप अन्धकार के विनाशार्थ उतने ही बिजली घर हैं। ये विश्वविद्यालय जितनी ही अधिक संख्या में उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुवकों को देशसेवा के लिए भेजेंगे उतनी ही अधिक अविद्या रूपी

शत्रु से संग्राम करने वाली राष्ट्रीय सेना की शक्ति बढ़ेगी और उतना ही देश में ज्ञानरूपी बाल-रिव का प्रकाश फैलेगा। अतएव प्रत्येक भारतप्रेमी को देश में विश्वविद्यालय की शिक्षा की वृद्धि देखकर प्रसन्न होना चाहिए।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षण संस्थानों के विकास को उन्होंने व्यक्तिगत एवं सामाजिक उत्थान का माध्यम माना। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को विशेष रूप से वह इस प्रकार विकसित करना चाहते थे जैसे सरस्वती की अमरावती।

#### शिक्षा का माध्यम

महामना मालवीय के अनुसार भारतीय विद्यार्थियों के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों में सबसे बड़ी कठिनता शिक्षा का माध्यम हमारी मातृभाषा न होकर एक अत्यन्त दुरूह विदेशी भाषा का होना है। बच्चे को शिक्षा प्रारंभ करने से लेकर स्कूल छोड़ने तक उसके बहुमूल्य समय का अधिकांश एकमात्र शिक्षा की माध्यम अंग्रेजी भाषा से परिचय प्राप्त करने में ही लग जाता है। उनके अनुसार इस बात का हिसाब लगाना बहुत कठिन है कि भारतीय जनता को इसके लिए बाध्य होकर किस परिमाण में अपने अमूल्य समय, परिश्रम तथा धन की तिलांजली देनी पड़ती है। फिर भी वह अंग्रेजी के महत्व को 'संसार की भाषा' राज्य प्रबन्ध में एवं राष्ट्रीय भाव को पुष्ट करने में सहायक व्यापारिक भाषा के रूप में स्वीकार करते थे। इसे पढ़ने के लिए हमारे अन्दर उत्साह तो होना चाहिए पर इसे मुख्य स्थान कभी नहीं देना चाहिए। संभव हो तो हम फ्रान्सीसी या जर्मन भी सीख लें।

महामना का कहना था कि "भारतवर्ष की मुख्य मातृभाषा हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी को अवश्य स्थापित करना पड़ेगा। हमारे विद्यार्थियों को किसी भी विषय में उतना अच्छा ज्ञान नहीं हो सकता जितना उसी विषय का अपनी मातृभाषा के द्वारा अध्ययन करके एक अंग्रेज बालक ज्ञान प्राप्त करता है। राष्ट्रीय-शिक्षा अपनी उत्तमता के उच्च शिखर पर तब तक नहीं पहुँच सकती जब तक जनता की मातृभाषा अपने उचित स्थान पर शिक्षा के माध्यम तथा सर्वसाधारण के व्यवहार के रूप में न स्थापित की जाय।"

# राष्ट्रीय शिक्षा की नीति

मालवीय जी पूरे भारत के लिए राष्ट्रीय शिक्षा की नीति के पक्षधर थे। इसका निर्माण आचार्यों की सभा एवं दूसरे राष्ट्रों के अनुभवों के आधार पर किया जाना चाहिए। वह अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा, स्त्रियों की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम एवं सार्वजनिक एवं जिविकोपार्जन सुनिश्चित कराने वाली शिक्षा प्रणाली के पक्षधर थे।

#### शिक्षक

शिक्षकों के संदर्भ में महामना का मानना था कि वे सदाचारी रहेंगे, देशसेवा के साथ-साथ धार्मिक जीवन व्यतीत करेंगे। प्राचीन गुरूकुलों की भाँति कुलपित विद्यार्थियों के शारीरिक पोषण के साथ-साथ मानसिक पोषण करें एवं सदाचार और शिक्षा देकर जीवन उज्जवल करें। महामना चाहते थे कि धार्मिक विषयों पर नियमानुकूल व्याख्यान एवं धर्म सम्बन्धी कथाओं के पाठ के अवसर पर अध्यापक उपस्थित रहें जिससे उनमें धार्मिक तथा आध्यात्मिक भावों का संचार हो।

#### विद्यार्थी

महामना मालवीय चाहते थे कि सदाचारी, देशसेवा व धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाले अध्यापकों की तरह हमारे छात्र और छात्राएँ जीवन उज्जवल करने की प्रतिज्ञा करें। विश्वविद्यालयों में निवास करते हुए व्यायाम करके शरीर को दृढ़ बनावें । पहले स्वास्थ्य सुधारें फिर विद्या पढ़ें । स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन करें तो जीवन का लाभ उठा सकते हैं । नित्य सबेरे-शाम नियम से व्यायाम करें एवं शाम को खेलें। मैदान में विचरें, जल्दी भोजन करें और नियम से नित्य अध्ययन करें। धार्मिक उत्सवों, एकादशी कथा, गीता प्रवचन आदि में उपस्थित रहें और विद्वानों का उपदेश लें। अपनी रक्षा आप करें। समय की पाबन्दी रखें। व्यर्थ समय नष्ट न करें।

उनका यह भी मानना था कि पुरूषों की शिक्षा से स्त्रियों की शिक्षा अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि वे ही भारत की भावी सन्तानों की माता हैं एवं माता के समान कोई शिक्षक नहीं है। उनमें प्राचीन व नवीन सभ्यता के सभी सद्गुणों का सुन्दर संयोग होना चाहिए। उन्हें प्राचीन साहित्य तथा संस्कृति, वर्तमान साहित्य, विज्ञान के साथ ही निर्भिकता की शिक्षा दी जानी चाहिए।

सभी स्नातकों के लिए उनका कहना था कि, सत्य बोलो, शुद्धता से रहो तथा सत्य ही सोचो। जीवनपर्यन्त विद्याभ्यास करते रहो। सदाचरण करो तथा किसी से भी न डरो। केवल उन्हीं कार्यों से डरो जो निकृष्ट और त्याज्य हैं। सत्य तथा न्याय के लिए सदैव प्रस्तुत रहो। अपने भाइयों की सेवा प्रेम से करो। जहाँ कहीं भी तुम्हें सुअवसर मिले, भलाई करो। जो कुछ तुमसे हो सके वह दान करो। वह कहते थे कि ''चरित्र में अजेय बनो''। उनका यह भी मानना था कि जिस दिव्य सत्य की शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बार बार दी गई है उसे स्मरण रखें। ईश्वर को सदैव स्मरण रखना चाहिए। उसे कभी न भुलाओ। यदि आप यह याद रखेंगे कि परमात्मा विद्यमान है और वही सभी जीवधारियों में विद्यमान है तो ईश्वर तथा अपने अन्य जीवधारी भाईयों से आपका सच्चा सम्बन्ध सदा बना रहेगा। इसी प्रकार मनुष्यमात्र के लिए दो पूर्ण आचरणीय आदेशों का पालन करें:

## 1. आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत।

दूसरों के प्रति कोई भी ऐसा आचरण न करो जिसे तुम अपने प्रति किए जाने पर अप्रिय समझते हो।

#### 2. यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्।

जो कुछ तुम अपने प्रति चाहते हो, वैसा ही तुम्हें दूसरों के प्रति भी करना आवश्यक है ऐसा समझना चाहिए।

महामना का मानना था कि विद्यार्थी देशवासियों से प्रेम करें तथा उनमें एकता का विकास करें। उनमें सहनशीलता, क्षमा तथा निःस्वार्थ सेवा के महान भाव के विकास की आवश्यकता है। उन्होंने नवयुवकों एवं नवयुवितयों को आदेश किया है कि वे इस बात का प्रण कर लें कि वे निरक्षरता को हटाने के लिए सत्याग्रह करेंगे और करोड़ों भारतीयों में ज्ञान तथा प्रकाश के प्रचार के लिए संग्राम करेंगे। विद्यार्थियों से उन्होंने कहा है कि अपने अवकाश तथा छुट्टियों में वे एक नियम बना लें कि गाँवों में जाकर गाँव वालों के साथ काम करे। इस बात पर दृढ़ हो जाएँ कि अविद्यारूपी अन्धकार को हटा दें। पाठशालाएँ खोलें और जनता को पढ़ने लिखने तथा गणित की शिक्षा दें। इसमें धर्म को भी जोड़े लें। धर्म अर्थात् सहनशीलता, क्षमा तथा प्रेमयुक्त सेवा का धर्म। इस प्रकार सभी विद्यार्थियों के लिए उन्होंने इन चार बातों की शिक्षा सभी को देने की अपेक्षा की है:

- 1. धर्म का त्याग मत कीजिए।
- 2. सुचारू रूप से पढ़ने और पढ़ाने से मनुष्यमात्र में सुख तथा एकता का संचार होगा।
  - 3. शिक्षा का प्रचार अत्यन्त व्यापक ढंग से कीजिए।
- 4. अपनी शिक्षा द्वारा अपने भाइयों की स्वच्छता, स्वास्थ्य तथा व्यायाम की उन्नित में सहायता कीजिए एवं यह कार्य स्वयं अपने सहयोगी संघटन द्वारा करें।

लोक शिक्षा समिति बनाये। निरक्षरता व अज्ञान के विरूद्ध अभियान छेड़ दें । देश के सभी शिक्षित नवयुवकों को इस महान कार्य में हाथ बंटाने के लिए निमंत्रित कीजिए। मिलकर कार्य प्रारंभ करने से उद्योग में सफलता अवश्य प्राप्त होगी। इस प्रकार महामना की अपेक्षा थी कि यहाँ के विद्यार्थी आदर्श मनुष्य का उदाहरण संसार के सामने प्रस्तुत करें।

# समावर्तन एवं गुरूदक्षिणा

प्राचीन भारत की गुरूकुल पद्धित में प्रचिलत एवं तैतिरीयोपनिषद में विर्णित समावर्तन संदेश में उनकी आस्था थी। उन्होंने उसमें विशेष रूप से देशभिक्त की भावना विकसित करने पर बल दिया है। साथ ही उन्होंने समावर्तन संदेश के कुछ चुने हुए पदों की नवीन व्याख्या की थी। वे सत्य बोलने के सन्दर्भ मे राजा हरिश्चन्द्र का उदाहरण देते थे। वे प्रत्येक स्नातक को आजीवन स्वाध्याय करने का उपदेश देते थे। वह स्नातमकों से बहुत जोर देकर कहा करते थे कि जब वे धन का उपार्जन करने लगें तब मातृ संस्था के रूप में विश्वविद्यालय को न भूलें। यदि विश्वविद्यालय के प्रति किसी के हृदय में श्रद्धा का अभाव हो तो भी इसके लिए दान देना चाहिए क्योंकि यह भारतीय शिक्षा और

संस्कृति की रक्षा में तत्पर है। उन्होंने कहा है कि लोक लज्जा के कारण भी दान देना चाहिए।

गुरूदक्षिणा के संदर्भ में 25 जुलाई 1932, (रिववार) को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में गीता प्रवचन करते हुए मालवीय जी ने कहा था कि जो विद्यार्थी और अध्यापक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संबद्ध हों उनके लिए आवश्यक है कि वे गीता प्रवचन में सिम्मिलित होकर इसका पूण्यफल पावें। उन्होंने कहा है कि "आप लोग सांसारिक कार्य करते हो, नित्य करो, किन्तु प्रत्येक सप्ताह में डेढ़ घण्टा धर्म के लिए छोड़ दो। मैं यही गुरूदक्षिणा माँगता हूँ।"

इस प्रकार हम पाते हैं कि पं0 मदन मोहन मालवीय जी ने व्यक्ति, राष्ट्र एवं जगत कल्याण की भावना से आजीवन चिंतन किया एवं अपनी अनूठी कृति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के द्वारा उसे साकार करने का प्रयास किया। यहाँ उनके शैक्षिक विचारों को छूने मात्र का प्रयास किया गया है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की झलक स्वयं ही उनके शैक्षिक विचारों की गाथा प्रस्तुत करती है। भारत की एवं विशेष रूप से पूर्वी उत्तरप्रदेश की अनेकों पीढ़ियाँ उनके इस कृति के लिए ऋणी रहेगीं।

## पूर्वी उत्तरप्रदेश एवं महामना की शैक्षिक दृष्टि

उत्तर प्रदेश भारतवर्ष में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें भारत की लगभग साढ़े सोलह प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है जबकि देश का मात्र 9 प्रतिशत भू-भाग इसके अंतर्गत आता है। इसमें कुल 83 जिले, 901 विकास खंड एवं 112804 गाँव हैं। जनसंख्या का घनत्व 473 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। जबकि राष्ट्रीय स्तर पर घनत्व मात्र 274 व्यक्ति प्रति किलोमीटर है। यहाँ प्रति व्यक्ति आय उड़ीसा एवं बिहार राज्य को छोड़कर सबसे कम है। शहरीकरण की गति धीमी है। गरीबी तो घटी है, परन्तु इसकी तीक्ष्णता बढ़ी है। जन्म दर सर्वाधिक है। स्त्री मृत्यु दर अधिक होने से उनकी औसत आयु मात्र 55 वर्ष है। 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्यु दर 141 प्रति 1000 है। इस प्रकार सामाजिक विकास की स्थिति संतोषजनक नही है। उत्तरप्रदेश का एक महत्वपूर्ण भाग पूर्वी उत्तरपद्रेश है। इसमें सम्मिलित 17 जिले इस प्रकार हैं- सोनभद्र, मिर्जापुर, चन्दौली, वाराणसी, गाजीपुर, ज्ञानपुर (सन्त रविदास नगर), जौनप्र, आजमगढ़, मऊनाथ भंजन, बिलया, देवरिया, गोरखपुर, बस्ती, संत कबीर नगर, महराजगंज, पडरौना (कुशीनगर) एवं सिद्धार्थनगर। यह सभी जिले जनसंख्या की दृष्टि से उत्तरप्रदेश में काफी बड़े हैं। परन्तु शिक्षा, गरीबी, स्त्रियों की समानता एवं सञ्चक्तीकरण, सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा, बाल मृत्यु दर, स्वास्थ्य, पर्यावरिणय धारिता एवं विकास के अन्य मानकों की दृष्टि से काफी पिछड़े हैं। यदि इन क्षेत्रों मे सरकारी प्रयासों के साथ-साथ जनप्रयास एवं सामुदायिक सहभागिता का विकास नहीं होता है तो स्थिति और चिंताजनक हो सकती है।

इस संदर्भ में यह कहना उचित ही है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यलय विशेष रूप में पूर्वी उत्तर प्रदेश के लिए एक प्रकाश स्तम्भ के समान है। बीसवीं शताब्दी में सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने शिक्षा के प्रसार में चमत्कारिक योगदान दिया। आज इन संस्थाओं से निकले हुए विद्यार्थी पूरे भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सराहनीय योगदान कर रहे हैं। परन्तु महामना की शैक्षिक दृष्टि की झलक मात्र से ज्ञात होता है कि मात्र यही उपलब्धि पर्याप्त नहीं है। यही कारण है कि अभी भी पूर्वी उत्तरप्रदेश में बहुत कुछ करने की संभावना है एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं इससे संबंधित संस्थाओं के विद्यार्थी महामना के निम्न सपनों को साकार कर सकते हैं।

- 1. लोक शिक्षा समिति की स्थापना करके निरक्षरता को दूर करना एवं सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करना : इस महान विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या लगभग 25,000 है। प्रतिवर्ष यदि इन विद्यार्थियों को ''लोक शिक्षा अभियान'' से जोड़ा जाय एवं यहाँ के पूर्व स्नातक इस कार्य में सहयोग करें तो पूर्वी उत्तरप्रदेश के लिए 'सभी के लिए शिक्षा का लक्ष्य' सरलता से प्राप्त किया जा सकता है।
- 2. स्त्रियों के लिए शिक्षा अभियान को यहाँ के पूर्व विद्यार्थी विशेषकर छात्राएं विशेष गति प्रदान कर सकती हैं।
- 3. वर्तमान आवश्यकताओं के संदर्भ में शैक्षिक प्रसार के लिए जिस प्रकार मिर्जापुर के बरकच्छा प्रांगण में शिक्षण संस्था का विकास हो रहा है, इसी प्रकार पूर्वी उत्तरप्रदेश के अन्य जिलों में यहाँ के स्नातकों के प्रयास द्वारा सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल के समान एवं आधुनिक आवश्यकताओं के संदर्भ में विद्यालय प्रारंभ किये जा सकते हैं।
- 4. रोजगारपरक शिक्षा के विकास के लिए उद्यमशीलता के सिद्धान्त पर आधारित शैक्षिक कार्यक्रमों को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रारंभ किया जा सकता है, एवं इसे पूर्वी उत्तरप्रदेश के जिलों से जोड़ा जा सकता है।
- 5. अपनी संस्कृति के केन्द्र के रूप में वाराणसी को एक प्राचीन ज्ञान केन्द्र, स्वच्छ, हरित एवं सुन्दर शहर के रूप में विकसित करने में विश्वविद्यालय के स्नातक योगदान दे सकते हैं।

इस प्रकार महामना के आदर्शों को आत्मसात करके पूर्वी उत्तरप्रदेश में साक्षरता, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोजगार का प्रसार किया जा सकता है एवं गरीबी, अशिक्षा, बीमारी की स्थित में पर्याप्त सुधार किया जा सकता है। इसके लिए महामना के आदर्शों और उनके व्यक्तित्व को याद रखकर यहाँ के सभी स्नातकों को प्रयास प्रारंभ करने की आवश्यकता है।

निम्नलिखित साहित्य के आधार पर यह पत्र तैयार किया गया है:

- प्रधान, अवधेश एवं अन्य (2007) "महामना के विचार एक चयन" काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, काबरा प्रेस।
- 2. दर. एस. एल एवं सोमस्कंदन (2007) "हिस्ट्री आफ द बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी" (रो प्रिंटेड) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, तारा प्रिटिंग वर्क्स।
- प्रेमचन्द (2007) "एक महान शिक्षाशास्त्री के रूप में महामना मालवीय के विचारों का अध्ययन" सिंह, सुनील कुमार निर्देशित लघु शोध प्रबंध, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- 4. सिंह, सुनील कुमार, नरेन्द्रशेखर एवं कुमार मनीष (2007), "काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में समावर्तन एवं गुरूदक्षिणा वर्तमान प्रासंगिकता" तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय समागम 6-7 जनवरी 2007 में प्रस्तुत पत्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

- 5. तिवारी, उमेश दत्त (1988) ''भारत-भूषण महामना पं० मदन मोहन मालवीय (जीवन एवं व्यक्तित्व)'' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- 6. ''प्रज्ञा'' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, स्वर्ण जयन्ती विशेषांक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- 7. लाल, मुकुट बिहारी, ''महामना मालवीय के सदुपदेश'' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- 8. ''काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक पं० मदन मोहन मालवीय जी का धर्मोपदेश'' जन सम्पर्क अधिकारी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- 9. **'Profile of Uttar Pradesh'** at upgov. nic. in / up info/ up-eco.html-21K. retrieved on 11th Feb. 2008.
- 'Banaras Hindu University' Wikipedia the free encyclopedia, retrieved on 11th Feb. 2008.
- 11. www.bhu.ac.in retrieved in April 2010.

# महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय और हिन्दी

# न्यायमूर्ति गणेश दत्त दूबे\*

जब मैं एल.एल.बी. पास करके 1951 ईस्वी में वकील बनने हेत् प्रशिक्षण के लिए एक वरिष्ठ वकील के कक्ष में गया तो आश्चर्य चिकत रह गया। कुछ मिनट बैठने के बाद, पता चल गया कि न्यायालयों की भाषा अभी भी उर्दू थी। गनीमत यही थी कि भाषा भले ही उर्दू थी, परन्तु लिपि देवनागरी थी। हमारे प्रशिक्षक दीवानी (civil) मामलों के विशेषज्ञ थे। वे अपने मुविक्कलों के दावों आदि को, बोल कर अपने मुन्शी को लिखवाते थे।वे वादी को मुद्दई और प्रतिवादी को मुद्दालेह कहते थे। इनका बहुवचन मुद्दईयान और मुद्दलेहुम क्रमशः होता था। वाद प्रारम्भ होता था—''मुद्दई हस्ब जैल अर्जपरदाज़ है।''अनुतोष मांगने हेतु कहा जाता था।—''बसदूर डिग्री बहक मुद्दई (मुद्दईयान) खिलाफ मदालेह (मुदालेहुम) बजरिए हुक्म इन्तानाई दवामी मुदालेह को ममन् किया जावे कि वे हस्ब जैल आराजी निज़ाई पर मुद्दईयान के कब्जा दख़ल में किसी किस्म की मुजाहिमत, मुखालिफत न करे, पहले वाक्य का अर्थ था कि, वादी लिखित निवेदन करता है।" दूसरे का अर्थ था कि वादी (गण) के पक्ष में प्रतिवादी (गण) को स्थायी निषेधाज्ञा द्वारा वर्जित किया जावे कि वे निम्नलिखित विवादित भूमि पर वादी के कब्जा दखल में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे"

कचहरी में सर्वत्र यही माहौल था, कि सारी कार्यवाही उर्दू में होती थी। विक्रय आदि के दस्तावेज़ भी उर्दू भाषा में लिखे जाते थे। सारे वकील और उनके कार्यालय के कर्मचारी गण इसी भाषा में कार्य करने के अभ्यस्त थे। कचहरियों में काम करने वाले इसी भाषा को समझते थे। मैंने भी इन उर्दू के शब्दों को समझा और आत्मसात् किया।

जब मुन्सिफ बनने के लिए परीक्षा में बैठा, तो एक पर्चा होता था जिसमें फारसी लिपि में लिखे गद्यांश को देवनागरी में लिखना पड़ता था,या देवनागरी लिपि में लिखे गद्यांश को फारसी लिपि में लिखना पड़ता था। मैने अपने स्कूल जीवन में उर्दू भाषा को पढ़ा था। मैंने परीक्षा देने के पहले,कुछ न्यायिक अधिकारीगण से पूछा था कि यह उर्दू की परीक्षा क्यों होती है? उन लोगों ने बताया था कि न्यायाधीश को कभी—कभी फारसी लिपि में लिखे उर्दू के दस्तावेज जो मुकदमों में प्रस्तुत होते है, को पढ़ना पड़ता है। अतएव यह परीक्षा आवश्यक होती है। इससे अभ्यर्थी के उर्दू ज्ञान का पता चलता था। मेरा उर्दू ज्ञान, बाद में मेरे न्यायालय के कार्यों में बहुत मददगार साबित हुआ।

जब बाद में मुन्सिफ होने के बाद, अवसर मिला तो इस बात की पड़ताल करने लगा, कि आखिर ऐसा क्यों है कि भाषा तो उर्दू है, और लिपि देवनागरी है? इस पर पता चला कि अंग्रेजों के आदेशानुसार बंगाल, बिहार आदि प्रान्तों में वहाँ की स्थानीय भाषाएँ न्यायालयों की कार्यवाही में प्रयोग आती थीं। संयुक्त प्रान्त (तब उत्तर प्रदेश तथा उत्तरांचल को मिला कर बने क्षेत्र का यही नाम था।) में उर्दू भाषा प्रयोग में आती थी। महामना की दृष्टि इस पर पड़ी। महामना पं0 मदन मोहन मालवीय ने अंग्रेजों से आग्रह कर यह आदेश पारित कराया था, कि संयुक्त प्रान्त के न्यायालयों की भाषा हिन्दी हो। इस कारण एक जनवरी 1900ई0 से न्यायालयों में हिन्दी में कार्य करने का आदेश हुआ। इस आदेश से दीवानी व सेशन न्यायालयों तथा राजस्व न्यायालयों में देवनागरी लिखित हिन्दी में कार्य तो होने लगा परन्तु वादों आदि की शब्दावली वही रही, जो 01 जनवरी 1900 ई0 के पहले थी। अर्थात् भाषा वही फारसी बोझिल उर्दू रह गयी। ऐसा लगता है कि न्यायालयों से सम्बद्ध व्यक्तियों के मस्तिष्क में उर्दू के वाक्य रच-बस गये थे और उसी प्रयोग को वे हिन्दी के सम्बन्ध में आदेश होने के बाद भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तक करते रहे। महामना के इस प्रयास की, कि न्यायालयों की भाषा देवनागरी में लिखित हिन्दी हो, आदेश की शताब्दी 01 जनवरी 2000 को मनायी गयी थी।

महामना ने अंग्रेज शासकों को, हिन्दी में कचहरियों में कार्य के आदेश के प्रति, अपने एक भाषण में इन शब्दों में धन्यवाद दिया था— "अन्त में सर एण्टनी मेकडानल का भला हो, उन्होंने यह आज्ञा दी कि कचहरियों में जो दरख्वास्तें दी जावें हिन्दी उर्दू दोनों में लिखी जावें। उस समय से हम लोग हिन्दी भाषा की विशेष उन्नति करने लगे हैं। जब रोगी दुर्बल हो सिन्नपात की दशा को पहुँच जाता है, तब पहले उसका ज्वर छुड़ाया जाता है। फिर उसका आहार आदि ठीक किया जाता है। अन्त में यह पहाड़ हट गया। किन्तु बड़े धिक्कार और बड़े लज्जा की बात है कि यद्यपि यह हमारे मार्ग से काट कर हटा दिया गया तो भी, हम लोगों ने आज तक इस से पूरा लाभ नहीं उठाया है, हम वकील, हम मुख्तार, हम व्यवहार करने वाले महाजन और वह लोग जो कचहरी में वकालत करते हैं और अपने हिन्दू भाइयों के मुकद्दमें में उनका धन व्यय कराते हैं, वे लोग भी हिन्दी भाषा के प्रति उदासीन हैं।"

महामना दुखी थे कि कचहरियों में हिन्दी का प्रयोग होने के आदेश के बावजूद हिन्दी का प्रयोग नहीं हो रहा था। कारण था हिन्दी के प्रित लगाव का अभाव। आक्रोश भरे शब्दों में महामना ने कहा था—'हिन्दी भाषा के कितने लोग हैं जिनको इस बात से दुःख और लज्जा होती है कि यह आर्यावर्त देश, जहाँ कि आप देखेंगे कि लाखों लोग ऐसे हैं, जो अपनी माँ की बोली से परिचय नहीं रखते। सब आशा उन्नति की छोड़ दीजिये। उन्नति करने वालों के सामने खड़ा होना छोड़ दीजिये।'

महामना हिन्दी के प्रति समर्पित थे। उनका यह दृष्टिकोण था, कि हिन्दी राष्ट्रभाषा हो और यह राजभाषा के रूप में भी स्वीकार्य हो। वो चाहते थे कि शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी हो। सन् 1882 ई0 में अंग्रेजों ने एक शिक्षा कमीशन बैठाया। इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि यह निर्धारित हो कि शिक्षा का माध्यम क्या हो और शिक्षा कैसे दिया जाय? इस आयोग में साक्ष्य के लिए महामना पं0 मदन मोहन मालवीय तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र चुने गए थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अस्वस्थता के कारण आयोग के सम्मुख उपस्थित नहीं हो पाये। उन्होंने अपना लिखित बयान आयोग को भेजा था। परन्तु महामना आयोग के सामने उपस्थित हुए थे। उन्होंने अपने बयान में इस बात पर जोर दिया था कि शिक्षा समस्त क्षेत्रों में दी जाए और वह हिन्दी भाषा में हो।

बाबू श्यामसुन्दर दास के प्रयत्नों से काशी में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई थी। एक मई 1910 ई0 को, काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के कुछ महानुभावों ने, इस विषय का प्रस्ताव प्रस्तुत किया था, कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन को जन्म देकर, अपनी मातृभाषा की महत्वपूर्ण सेवा किया जाय। देश भर से आए हिन्दी हितैषियों ने सभा के इस आयोजन का समर्थन मुक्त कंठ से किया था। इस प्रकार इस हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन, आश्विन नवरात्र में, सोमवार सप्तमी को (10 अक्टूबर 1910) को, जगज्जननी जान्हवी के तट पर स्थित, विश्वनाथपुरी काशी में सम्पन्न हुआ। इसके अध्यक्ष महामना पंडित मदन मोहन मालवीय थे। अपने प्रथम सम्बोधन में महामना ने इस प्रश्न का उत्तर दिया था कि हिन्दी क्या है? उन्होंने हिन्दी की व्युत्पित के सम्बन्ध में बहुत से तथ्य दिए थे और यह भी सिद्ध किया था कि हिन्दी विक्रमी संवत 700 के पहले से भारतवर्ष में विद्यमान् थी। इसमें महामना ने हिन्दी शब्द के व्युत्पित्त के सम्बन्ध में अपने विचार रखे थे। उन्होंने कहा था—

"हिन्दी के विषय में बहुत-सा विवाद है। हिन्दी के सम्बन्ध में हमारे देश के लिखने वालों में जो हुए तो हुए ही हैं, हमारे यूरोपियन लिखनेवालों में विलायत के डॉक्टर प्रियर्सन एक बड़े शिरोमणि हैं। आपने हिन्दी की बड़ी सेवा की है और हिन्दी की उन्नति में बड़ा यत्न किया है। आपने एक स्थान पर लिखा है कि हिन्दी सन् 1903 ई0 के लगभग, लल्लूलाल जी से लिखवायी गयी और भी लोगों ने इसी प्रकार की बात कही है। जो विदेशी हिन्दी के विद्वान हैं, वे तो यही कहते आये हैं कि हिन्दी कोई भाषा नहीं है। इस भाषा का नाम उर्दू है। इसी का नाम हिन्दुस्तानी है। ये लोग यह सब कहेंगे, किन्तु यह न कहेंगे कि यह भाषा हिन्दी है। विचार की बात है। सज्जनों! ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित कितने ही अंग्रेज अफसरों ने मुझसे पूछा था कि हिन्दी क्या है? इस प्रान्त की भाषा तो हिन्दुस्तानी है। मैं यह प्रश्न सुनकर दंग रह गया। समझाने से जब उन्होंने स्वीकार नहीं किया तब मैंने कहा

कि जिस भाषा को आप हिन्दुस्तानी कहते हैं, वही हिन्दी है। अब आप कहेंगे कि इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ यह है कि न हमारी कही आप मानें, न उनकी कही हम। इसमें न्यायपूर्वक विचार कीजिये। डॉक्टर ग्रियर्सन का क्या कहना है। मैं उनका सम्मान करता हूँ। किन्तु उनकी बात पर न जाकर हमें यह देखना चाहिए कि यथार्थ तत्व क्या है। यहाँ इस मण्डली में बड़े-बड़े विद्वान और विचारवान पुरुष हैं। वे इसे अच्छी रीति से कह सकेंगे। इसके विचारने में हमको अपने विचारों का दिग्दर्शन करना चाहिए। इसमें बहुत-कुछ अन्तर हो सकता है। किन्तु मूल में कोई अन्तर हो नहीं सकता। हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में विचार करते हुए सबसे पहले संस्कृत की आकृति एक बार ध्यान में लाइये, इसके हिन्दी भाषा की आकृति को ध्यान में लाइये। पीछे आप विचारिये कि हिन्दी कौन भाषा है और उसकी उत्पत्ति कहाँ से है? संस्कृत की जितनी बेटियाँ हैं उनमें कौन-सी बड़ी बेटी है। संस्कृत की बेटियों में हिन्दी का कौन-सा पद है। इसका संस्कृत से क्या सम्बन्ध है? संस्कृत, जैसा कि शब्द कहता है, नियमों से बाँध दी गयी है। जो व्यर्थ बातें थीं, वे निकाली गयी, अच्छी-अच्छी बातें रख गयी, नियमों और सूत्रों से बँधे शब्द रखे गये। जो शब्द नियम-विरुद्ध थे उनके लिए कह दिया गया कि वे नियम से बाहर है। नियमबद्ध शब्दों का व्याकरण में उल्लेख हो गया। आप जानते हैं कि संस्कृत से प्राकृत हुई। जो लोग यह कहते हैं कि संस्कृत कभी बोली नहीं जाती थी, वे संस्कृत को नहीं जानते। वे थोड़ी प्राकृत पढ़ें तो उनको मालूम हो जायेगा कि प्राकृत तो बोली जा नहीं सकती। संस्कृत के बोले जाने में कोई सन्देह नहीं। संस्कृत से प्राकृत हुई उसके पीछे शौरसेनी, मागधी और महाराष्ट्री। कदाचित आप के ध्यान में होगा कि दण्डी आठवीं शताब्दी में थे। अपने समय में उन्होंने लिखा था कि भारत में चार भाषाएँ हैं---महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और भाषा। ये ही चार भाषाएँ चली आयी हैं।"

अब आपको मालूम हो गया होगा कि जो महाराष्ट्री भाषा थी, मागधी भाषा थी उनके बीच में बहुत भेद था। मेरे शब्दों पर ध्यान दीजिए। इन भाषाओं में संस्कृत भाषा के शब्दों के रूप का अनुरूप आपको मिलता है। यह जितना हिन्दी भाषा में मिलता है, उतना दूसरी किसी भाषा में नहीं मिलता। संस्कृत के शब्दों को ले लीजिये। अब देखिये कि हिन्दी में यह बात कहाँ से आयी। संस्कृत से इन भाषाओं का क्या सम्बन्ध था? शकुन्तला में 'तुक मिण दबे वलीयममणाणी'' कहां से आया होगा। एक शब्द को आप लीजिये। उसको देखिये कि प्राकृत में उसका क्या रूप है और भाषा में क्या हुआ? इस प्राकृत को देखने से आपको मालूम होगा कि संस्कृत शब्दों का प्राकृत रूप क्या-से-क्या हो गया। भाषा के कितने ही रूप आपको मिल सकते हैं। परन्तु यह बात मेरे कहने से न मानिये। मेरे सामने इस समय चन्द कि क रासों में बहुत से रूप ऐसे हैं जिनको इस मण्डली में पंडित सुधाकर जी और दो-तीन को छोड़ कर बहुत कम लोग जानते हैं। मैं तो उसका चौथाई भी समझ नहीं सकता। मैं जो देखता हूँ वह आपके सामने

उपस्थित करता हूँ। आप ही देख कर यह कहें कि कौन ठीक है। संस्कृत से पालि, पालि से प्राकृत और प्राकृत से तीसरा रूप हिन्दी दिखायी दिया। अब आप थोड़े से शब्दों पर विचार करें। अग्ग का आग और याग का योग हो गया। चन्द के काव्य में तुलसीदास की एक चौपाई को बीच में यदि मैं रख दूँ तो बहुत सज्जनों को यह न मालूम होगा कि दोनों के बीच कितना अन्तर है। संवत 1125 में चन्द किव ने इसको लिखा। उनकी भाषा में जितने रूप देखते हैं वे रूप इस भारत-वर्ष की किसी दूसरी भाषा के रूप से नहीं मिलते। मिलते हैं, हिन्दी से और उतने ही जितनी आज की अंग्रेजी चौसर की अंग्रेजी से मिलती है। ऐसी दशा में हिन्दी भाषा क्या है? इसका उत्तर यह है कि हिन्दी भाषा वह है जिसमें चन्द किव से लेकर आज तक हिन्दी भाषा या शूरसेनी। यह सही है कि पहले इसका नाम भाषा था, हिन्दी भाषा या शूरसेनी।

क्या आप भाषा की उत्पत्ति पूछते हैं? कितने ही लोगों को अपनी माँ का नाम नहीं मालूम। बहुत—सी औरतें ऐसी हैं जिनको अपने लड़कों का नाम नहीं मालूम। प्रयाग और बनारस के कितने ही बालकों का नाम सिर्फ बच्चा है। पिता और दादा के नाम का पता लगाना और भी कठिन है। नाम रखते हैं, किन्तु उसको याद नहीं रखते। अस्तु देखना चाहिये कि चन्द के समय से जो भाषा लिखी जाती है वह एक है, उसी को हम हिन्दी भाषा कहते हैं। कभी—कभी लोग उसका नाम बदल देते हैं। भीष्म को लीजिये देवब्रत उनका नाम था। जब उन्होंने पिता की प्रसन्नता के लिए राज्य त्याग किया, तो ब्रह्मचर्य अंगीकार कर कहा कि हम विवाह न करेंगे, केवल इसलिये कि पिता प्रसन्न होंगे। उस दिन से उनका नाम भीष्म हुआ, छठी के समय नहीं हुआ था। इसी तरह भाषा का भी नाम बदलता है। पहले कुछ था, अब कुछ है। भाषा का नाम पहले और था अब तो हिन्दी कह के इसे पूजते हैं, प्रेम करते हैं।

इस हिन्दी भाषा का दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होगा कि हिन्दी भाषा की और भाषाओं के साथ तुलना करने से क्या पता लगता है। इसमें भी इतना कहुँगा, कि हिन्दी सब बहनों में मां की बड़ी और स्पर बेटी है। संस्कृत के वंश बेटियों के 22 करोड़ बोलने वाले हैं। उनमें पाँच या छह करोड़ **मन्द्राज**¹ में तमिल और तेलुगु बोलते हैं। उनकी भाषा में संस्कृत का भण्डार भरा हुआ है। उनके वाक्यों में संस्कृत की लड़ी-की-लड़ी आती है। फलतः संस्कृत की महिमा इस देश में **गाज**² रही है और बहुत दिन तक गाजेगी। अब रहा कि इन बहुनों में कौन बड़ी और कौन छोटी है। यह पक्षपात हो कि हमारी भाषा हिन्दी है और हम हिन्दी का पक्ष करें या हमारा यह विचार है कि (छोटे मुँह बड़ी बात होती है, मगर चित्त में जो कुछ है कह देंगे) दण्डी कवि ने भी इसमें पक्षपात किया है। किन्तु हिन्दी भाषा को यदि मैं आपके सामने यह कहूँ कि यही सब बहनों में माँ की अच्छी पहली पुत्री है,अपने-अपने पिता और माता की होनहार मूर्ति है, तो अत्युक्ति न होगी। शौरसेनी में शब्द बँधे हुए हैं, महाराष्ट्री में उखड़ते-पुखड़ते नाचते-कूदते जाते हैं। आपको उनके शब्द हिन्दी भाषा में मिलते हैं जिनके सात-सात रूप हैं।

भारतीय सभी भाषाओं में हिन्दी शब्दों की न्यूनाधिक झोली— की—झोली भरी पड़ी है। हाँ, यह मानना पड़ेगा कि इनके रूप में बड़ा परिवर्तन है। जैसे कि बनारस से नीचे बंगाल में चिलये तो आगे चलकर बिहार में बिहारी मिलेगी, बंगाल में जाइये तो लकारों का संगीत पाया जाता है, हरिद्वार से जब गंगा चलीं और उनके संग में जो पत्थर के टुकड़े बहते हुए चलें तो हरिद्वार से काशी आते-आते रंगड़ते—झगड़ते कोमल और चिकने हो गये। इसी प्रकार यह बिहार में गाजीपुर और बनारस से नीचे रगड़ कर प्रिय कोमल स्वरों के हो गये। जब आप बंगाल में पहुँचे तब आपको कोमलता का घर मिला। वहाँ आपकी भाषा भी अधिक कोमल दिखायी दी। यहाँ की भाषा का रूप देख हमारे यूरोपियन विद्वान और देशी विद्वान भी भ्रम में पड़ गये हैं कि क्या हिन्दी महाराष्ट्री ओर शौरसेनी, पंजाबी और बंगला, सब वस्तुतः एक हैं। इसे भी स्वीकार कर लेना चाहिये कि इनके बीच बड़ा अन्तर हो गया है।

संस्कृत शब्दों का हिन्दी ही में कितना परिवर्तन हो गया है। जो कर्ण था वह कान, नासिका थी वह नाक है, जो हस्त था वह हाथ है, पानीय का पानी है। यह परिवर्तन सभी जगह दिखायी देता है। लक्ष्मी को भाषा वालों ने लिखा लच्छमी या लक्खी। लच्छमी कहने में जो प्रेम आया वह लक्ष्मी कहने में नहीं। जैसे-जैसे भाषा बंगाल की ओर बढ़ी वैसे-वैसे कहा गया कि, इसमें जितना कर्कशपन है उसे काट दो। अब बेटियों में बड़ा रूपान्तर हुआ। यहाँ तक यह कह दिया, कि भाषा की उत्पत्ति क्या है। सिवाय इसके यह निवेदन करता हूँ कि जितने और प्रमाण हैं जिनसे भाषा की अवस्था को जान सकते हैं, अब उसको जाँचना चाहिये। भाषा के रूप की शब्दमाला क है? इन दोनों के विचार से हिन्दी भाषा ही प्राचीन है। डॉक्टर ग्रियर्सन ने अपनी प्स्तक में लिखा है कि हिन्दी संस्कृत की बेटियों में सबसे अच्छी और शिरोमणि है। आप कहेंगे कि इसमें कौन फूहड़ मालूम होती है। यह मेरा कहना आवश्यक भी नहीं है। यह समझा जा सकता है कि हिन्दू हूँ और पक्षपात से कहता हूँ। आज मैं अपने बंगाली, हिन्दूस्तानी, गुजराती भाइयों से पुकार कर कहता हूँ कि भाषा एक चली आयी और संस्कृत भी एक है। जब प्राकृत हुई तब अंग की प्राकृत हो गयी किन्तु मूल में एक ही रही। जितनी भाषाएँ हैं, हमारी हैं। बंगाली हमारी भाषा, पंजाबी हमारी भाषा और गुजराती हमारी भाषा है। अब इसके विचार से कौन किसको कहें कि कौन बुरी है।"

महामना मदन मोहन मालवीय दूसरी बार सम्मेलन के नवम् (बम्बई) अधिवेशन के सभापित चुने गए। हमने देखा कि प्रथम अधिवेशन में ही हिन्दी भाषा तथा उसके साहित्य के सम्बन्ध में स्पष्ट विचार रखे थे। बम्बई अधिवेशन में महामना ने पूरी दृढ़ता तथा विश्वास के साथ अपना विचार रखा था कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा और राज भाषा हो सकती है। आपने कहा—''हिन्दी भाषा एक ऐसी सार्वजनिक भाषा है जिसे सब भेदभाव छोड़कर प्रत्येक भारतीय ग्रहण कर सकता है।

आपने कहा था जब से अंग्रेजी राज्य हुआ है तब से ऊँची शिक्षा अंग्रेजी में होने लगी। इसका परिणाम देश के लिए अच्छा नहीं हुआ है। अंग्रेजी के अधिक प्रभाव के कारण देशी भाषाएँ उन्नति नहीं कर पायीं। आपने कहा था—जिस देश की जो भाषा है, उसी भाषा में वास्तव में उस देश के न्याय, कानून, राजकाज, कौंसिल इत्यादि का कार्य होना चाहिए। हमारे देश में अभी, ऐसा नहीं हो रहा है। हमारे यहाँ की परिस्थिति बिल्कुल इससे विपरीत है। जिस भाषा का हमारे भाइयों को कुछ भी परिचय नहीं है, उस भाषा में हमारे यहाँ के सब राज-काज होते हैं। हमारे देश के भाइयों के मरने-जीने का न्याय हो, पर हो वह दूसरी भाषा में—यह कैसे आश्चर्य की बात है, वास्तव में न्याय उस भाषा में होना चाहिए, जिसका एक-एक शब्द उसकी समझ में आता हो, जिसका कि न्याय हो रहा है।"

महामना ने हिन्दी के सार्वदेशिक रूप को दर्शित करते हुए उसे राष्ट्रभाषा बनाने का दृढ़ आधार घोषित किया। संविधान सभा ने हिन्दी को राजभाषा बनाने का जो ऐतिहासिक निर्णय किया उसकी पूर्व घोषणा महामना मालवीय ने स्वतंत्रता प्राप्ति के 30 वर्ष पूर्व ही अपने सभापित उद्घोधन में कर दिया था।

पं0 मदन मोहन मालवीय की हिन्दी के प्रति अनन्य निष्ठा तथा दूरदर्शिता का कारण है कि आज उत्तर प्रदेश के अधीनस्थ न्यायालयों में हिन्दी में कार्य हो रहा है। आपकी सरलता का यही उदाहरण है कि आपने अपने भाषण को प्रारम्भ करने के पूर्व ही कहा था कि—"मुझको दुःख है कि मैं न संस्कृत का ऐसा विद्वान हूँ कि इस विषय में प्रमाण के साथ कह सकूँ, न भाषा का ऐसा विद्वान हूँ कि इस विषय की चर्चा चलाऊँ।" ये शब्द महामना के विनय की पराकाष्ठा दिखलाते हैं। इसी प्रकार का विनयकर महाकवि कालिदास और गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने विनय की पराकाष्ठा दिखलायी थी और प्राचीन कवियों के सम्मुख अपने को मंद और मूढ़ कहा था। परन्तु संस्कृत में और हिन्दी में इससे अधिक किस आत्मश्लाघी कवि का आदर है?

महामना पं0 मदन मोहन मालवीय के हिन्दी प्रेम और उसको विश्वस्तरीय बनाने के लिए जो प्रयत्न उन्होंने किये वह श्लाघनीय हैं। उनके मन का कण-कण हिन्दी में ही रमता था। उसी की अभिवृद्धि के लिए उन्होंने जीवन भर प्रयास किया।

# देवतुल्य विभूति महामना

## धर्मशील चतुर्वेदी \*

ऋषि मुनियों से सेवित भारतभूमि में ही परमपूज्य महामना मदन मोहन मालवीय जैसी विभूति को जन्म देने की सामर्थ्य है। मेरे अनंत जन्मों के संचित पुण्य का ही यह फल है कि मुझे उनके चरणरज की धूलि से मस्तक को पवित्र करने, उनकी कृपापूर्ण हथेलियों से आशीर्वाद प्राप्त करने और उनके चरणों में बैठकर एक समूहचित्र में चित्र खिंचवाने का सौभाग्य मिला। बिना किसी संकोच के मुझे यह कहने का अधिकार भी परमात्मा ने प्रदान किया कि मेरे वंश की तीन पीढ़ियों को ऐसी देवतुल्य आत्मा का सानिध्य मिला।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के काल में मेरे पितामह पूज्य पं. भीमसेन वेदपाठी उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर नगर जनपद में रहा करते थे। 1916 की वसंत पंचमी को शिलान्यास का वैदिक कर्मकाण्ड जिन महान वैदिकों के सानिध्य में सम्पन्न हुआ उनमें मेरे पितामह भी थे। उस अवसर पर मेरे पिता आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी मात्र 9 वर्ष की अल्पायु में पितामह के साथ आये थे। कालान्तर में महामना मालवीय ने मेरे पितामह को कॉलेज ऑफ ओरियंटल लर्निंग जिसे बाद में संस्कृत महाविद्यालय कहा जाता था उसमें अवैतनिक प्राध्यापक बना दिया। जहाँ वे जीवन की अन्तिम साँस तक कार्यरत रहे। यह भी संयोग की ही बात थी कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित काशी विश्वनाथ मन्दिर के शिलान्यास के अवसर पर सम्पन्न कर्मकाण्ड में पितामह के साथ मैं भी छः या सात वर्ष की वय में शामिल हुआ था। मेरे पिता पर महामना के दर्शन की ऐसी छाप पड़ी कि मुजफ्फरनगर से दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इस पर अड़ गये कि केवल हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ना है।

मेरे पिता आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी की पूरी शिक्षा-दीक्षा हिन्दू विश्वविद्यालय में ही हुई और उसी समय सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल में अध्यापन करने लगे तो परिवार काशी के पैतृक आवास में रहने लगा। मेरा जन्म काशी में ही हुआ। 1937 में मैं तीन वर्ष का था। उसी वर्ष महामना की 75वीं वर्षगांठ के अवसर पर महामना मालवीय का प्रथम जीवन चरित अभिनन्दन समिति द्वारा भेंट किया गया। इस विशाल, भव्य और रंगारंग महाग्रंथ का सम्पादन मेरे पिता ने किया था। इसका विवरण मुझे महामना के दौहित्र पं. शिवकुमार शास्त्री की पुस्तिका से मिला जो इस प्रकार है—

''प्रो. वाइस चांसलर राजा ज्वाला प्रसाद जी ने यह जीवन-चिरत ग्रंथ मालवीयजी को भेंट किया और इस ग्रंथ के लेखक का परिचय दिया और उनको धन्यवाद दिया। फिर पण्डित सीताराम चतुर्वेदी जी ने इस ग्रंथ के प्रथम और अन्तिम अध्याय पढ़कर सुनाये जिसे सुनकर जनता मंत्रमृग्ध सी हो गयी और बहुत समय तक करतल ध्विन करती रही।"

पिताजी गुरुपूर्णिमा पर्व पर प्रातःकाल फल-फूल लेकर महामना के पूजन के लिये मालवीय भवन जाया करते थे। 1939 या 40 में पहली बार मैं भी साथ था। महामना मालवीय भवन के बाहर के कक्ष में श्भ्र धवल खादी की चादर बिछी शैय्या पर लेटे थे। पिताजी ने पूजन किया फिर मुझे इशारा किया चरणस्पर्श करने का। मैं पैताने गया और अपना मस्तक उनके चरणों पर रख दिया। महामना ने हाथ उठाकर आशीष दिया फिर संकेत से पिताजी से परिचय पूछा। ऐसे ही एक अवसर पर उन्होंने मस्तक पर हाथ फेरा। महामना की प्रेरणा से काशी के साहित्यकारों ने विक्रम संवत् की द्विसहस्राब्दी के अवसर पर तीन दिनों का विराट आयोजन किया था। अखिल भारतीय विक्रम परिषद नाम से एक संस्था का गठन भी हुआ था जिसका पहला प्रकाशन महाकवि कालिदास ग्रंथावली था। एक ही जिल्द में महाकवि कालिदास की सम्पूर्ण रचनाओं का सान्वाद प्रकाशन किया गया और मूल्य मात्र पांच रुपये था। महामना की इच्छा थी कि संस्कृत भाषा के अमृत तत्व को हिन्दी पाठकों तक न्यूनतम मूल्य पर उपलब्ध कराया जाय। अखिल भारतीय विक्रम परिषद के पदाधिकारियों, नाटक में भाग लेनेवाले कलाकारों तथा साहित्यकारों का महामना के साथ समृह चित्र का आयोजन भी किया गया। मैं सबसे छोटा। पहली पंक्ति में जमीन पर महिलायें थीं उनके बीच में मुझे जगह मिली तो वह भी महामना मालवीय के आगे उनके पंक्ति चरणों में।

वह दिन भी याद आ रहा है। मैं सातवीं कक्षा में हरिश्चन्द्र विद्यालय का छात्र था। मेरे पिताजी उन दिनों मुम्बई के भारतीय विद्या भवन में पालि और हिन्दी विभागाध्यक्ष थे। लेकिन किसी विशेष कार्यवश सहसा काशी आये थे। नगर में साम्प्रदायिक दंगा हो गया था। उस रात में नगर में कर्फ्यू लगा था। घर में चर्चा थी पिताजी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय गये हैं। प्रातः पता चला कि महामना मालवीय नहीं रहे। मैं घर से अकेले निकला। गोदौलिया गिरजाघर चौराहे तक पहुंचा था। आगे जनसमुद्र।

कहाँ अन्तिम दर्शन हो पाता। आज कहने की स्थिति में हूँ कि इतना विशाल जनसमूह काशी में तो अभी तक देखा ही नहीं। महामना आवास से लेकर मणिकर्णिका घाट तक नर-नारियों का रेला। तब अखबारों में जो चित्र अगले दिन छपे मणिकर्णिका घाट के सामने और अगल-बगल गंगा में नौकायें ही नौकायें इस किनारे से उस पार तक। घरों, पेड़ों, बिजली और टेलीफोन के खम्भों पर आदमी ही आदमी। गिरजाघर चौराहा जहाँ मैं था वहाँ से जहाँ तक देख सकता था केवल भीड़। लगता था सारा शहर ही उलट पड़ा है। ऋषि के अन्तिम दर्शन के लिये। अभूतपूर्व दृश्य और अभूतपूर्व शोक। पूरा नगर शोक में डूबा। काशी तो मौजमस्ती का नगर है लेकिन लगा कि इस शहर की पहचान ही कहीं खो गयी है। वह अस्ताचल अंग्रेजी राज का समय था। शहर में कर्फ्यू था। न कहीं पुलिस न कहीं फौज। शोक ने सबको निगल लिया। पिताजी से पता चला कि कर्फ्यू की रात में किस प्रकार लोगों ने शवयात्रा की तैयारियाँ कीं। प्रशासन इस मत का था कि ट्रक पर शवयात्रा हो। विद्यार्थी और महामना के भक्त इसपर आतुर थे कि हमारे कन्धे क्या इतने कमजोर हैं कि विश्वविद्यालय से मणिकर्णिका तक न ले जा सकें, यदि प्रयाग में संगम तक भी जाना हो तो हम तत्पर हैं। इतने बड़े व्यक्तित्व को सम्मान देने भक्तों, विद्यार्थियों, परिजनों, प्रशंसकों की अनन्त कोटियां तैयार खड़ी थीं। कौन से पुण्य से वंचित रहे।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपित तथा महामना के किनन्छ पुत्र पं. गोविन्द मालवीय मेरे पिताजी के सहपाठी भी थे और अन्तरंग भी। मैं तीसरी पीढ़ी का। यह भी संयोग ही है कि पं. गोविन्द मालवीय जी के सुयोग्य सुपुत्र न्यायमूर्ति गिरधर मालवीय तथा मेरा भी घिनन्छ सम्पर्क छात्रावस्था में हुआ। बी. ए. तथा एल-एल.बी परीक्षायें हम दोनों ने साथ ही उत्तीर्ण कीं। आज भी हमारी आत्मीयता तथा स्नेह कायम है। पं. गिरधर मालवीय की सौम्यता, सहजता, गम्भीरता ही नहीं महामना के स्वरूप की एक छिव तो उनमें दीख ही पड़ती है। अन्तर इतना ही है कि महामना मालवीय के कद की ऊंचाई इतनी नहीं थी।

मालवीय भवन में दो चीजें थीं। एक तो 16 मि.मी. के कैमरे से लिया गया उस शोभा यात्रा तथा दीक्षा का चित्रांकन जिसमें गंगाजी के तट पर महामना मालवीय ने हरिजनों को गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी। यह फिल्म मैंने टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज कोल्हुआ में किसी प्रोजेक्टर से होश सम्हालने के बाद देखा था। दूसरी चीज थी महामना के किसी भाषण की रिकार्डिंग। विद्यार्थी जीवन में मालवीय भवन में एक अवसर पर यह भाषण स्नने का सौभाग्य मिला था। उस भाषण को स्नने के बाद लगा कि इतना धाराप्रवाह ओजस्वी भाषण देनेवाला तो आजतक कोई दिखा ही नहीं। इतनी परिमार्जित और सुसंस्कृत भाषाशैली किसी राजनेता के मुख से सुनी ही नहीं। आज शायद ही ऐसे लोग बचे हों जिन्होंने महामना मालवीय के भाषणों को सजीव सुना हो। मैंने अनेक भाषणों को पढ़ा है। महामना मालवीय जीवन चरित में उनके भाषणों का भी संकलन किया गया है। फुटकर तौर पर भी भाषण पढ़ने को मिले हैं। जिससे महामना के विचारों के साथ ही उनकी भाषा के सौष्ठव का भी अनुमान लगता है। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी में समान रूप से साधिकार और धाराप्रवाह बोल लेना साधारण कौशल नहीं।

महामना मालवीय के जीवन में तीन बार मालवीय भवन मैं गया। जो एक चीज मेरे मस्तिष्क में आज तक कायम है वह है उस विशाल भवन में व्याप्त असीम शान्ति। सिवा पिक्षयों के कलरव के कुछ भी नहीं, कोई आवाज नहीं। इसका कारण बाद में पता चला। मेरे नाना पं. यज्ञनारायण उपाध्याय महामना के भक्तों में थे और 1920 के असहयोग आन्दोलनकाल से कांग्रेस के सेवक थे। नैनी जेल में महामना के साथ वे भी थे। मेरी माताजी परिवार के साथ जब भी जेल में नानाजी से मिलने जातीं तो संकेत करके दिखाती कि सामने मालवीय जी बैठे हैं वे शोरशराबा पसन्द नहीं करते और न ऊँचे स्वर में बातचीत। महामना का यह सद्गुण मेरे पिताजी ने भी प्राप्त किया। मेरे घर में आज तक कोलाहल, आपसी तू तू-मैं मैं अथवा बच्चों का रोना- धोना, पीटना नहीं होता। बच्चों का खेलना कूदना पिताजी से दूर।

पिताजी से यह जानकारी मिली कि मालवीयजी महाराज श्वेत धवल वस्न धारण करते थे। वस्न पर स्याही या अन्य किसी चीज का धब्बा उन्हें पसन्द नहीं था। यह महामना के महान व्यक्तित्व का बोधक था। निष्कलुष व्यक्तित्व बाहर भी और उससे कहीं अधिक भीतर भी। मैंने जब देखा उस समय वे अपनी पारम्परिक और चित्रों में प्रकाशित वेषभूषा में नहीं थे। सिर पर पगड़ी की जगह गोल सूती टोपी, कुर्ता तथा अलीगढ़ी पायजामा पहने थे। चमड़े के बने जूते उन्होंने सम्भवतः नहीं पहने। उनकी शैय्या के नीचे कपड़े का सफेद नागरा जूते के आकार का पादत्राण था। महामना के परिधान का तत्कालीन अध्यापकों और छात्रों पर भी प्रभाव पड़ा था। मेरे छात्र जीवन तक अनेकानेक ऐसे अध्यापक शेष रह गये थे जो शुभ्रधवल खादी के कुर्ते और धोती में ही दीख पड़ते थे। महामना के परिधान में नगर की तीन विभूतियां दीखती थीं। पं. शिवविनायक वैद्य (जिन्होंने चन्द्रशेखर आजाद के अन्तिम संस्कार का जिम्मा लिया था) दूसरे शिवप्रसाद गायनाचार्य, तीसरे गयाप्रसाद ज्योतिषी।

आगे के वृत्तान्त से पूर्व में एक संस्मरण बताना चाहता हूँ। काशी में महामहोपाध्याय पं. विद्याधर गौड़ जो अपने समय के अग्रणी वेद तथा संस्कृत के विद्वान थे उनके परिवार के स्व. माधव प्रसाद मिश्र नगर के विख्यात पत्रकार थे। एक बार वे जालपादेवी स्थित डा. सम्पूर्णानन्दजी के आवास पर प्रातःकाल पहुंच गये। डॉ. सम्पूर्णानन्दजी ने ही द्वार खोला और फिर उन्हें देखते ही द्वार बन्द कर दिया। बाद में कभी डाक्टर सम्पूर्णानन्दजी ने माधव से कहा सुबह सुबह अगर कोई ब्राह्मण बिना मस्तक पर तिलक लगाये घर से निकलता है तो अपने तो पाप का भाजन बनता ही है जिससे मिलता है उस पर भी पाप ही झोंकता है। महामना मालवीय के मस्तक पर सदैव गोल चन्दन का टीका लगा रहता था। वे जब भी आवास पर अथवा आवास से बाहर निकलते चन्दन धारण करना नहीं भूलते। स्वयं मेरे पिताजी भी प्रातः स्नान के पश्चात् चन्दन या भस्म लगाते थे। वे जब भी घर से निकलते घिसे हुए चन्दन का टीका लगाकर ही।

आज सभा और समारोहों में अध्यक्ष, मुख्य अतिथि आदि को आयोजक अपनी समझ से अच्छी से अच्छी और कीमती मालायें पहनाकर स्वागत और सम्मान करते हैं और जिन्हें मालायें पहनायी जाती हैं बिना किसी विलम्ब के उतारकर सामने धर देते हैं। मालवीयजी महाराज इसे आयोजकों का अपमान मानते थे। कोई तो इतनी श्रद्धा के साथ पृष्पहार पहिना रहा है और उसकी भावना को कितनी ठेस लगती है कि जब कोई व्यक्ति उसे तत्काल उतार धरता है। इसे अब असभ्यता नहीं माना जाता। मैंने देखा है कि विदेशी यात्री भी कभी गले में पहनायी गयी माला नहीं उतारते। मुझे स्मरण आती है स्व. संजय गाँधी की काशी यात्रा। वाराणसी से सड़क मार्ग से उन्हें इलाहाबाद जाना था। वाराणसी जनपद की सीमा तक हमलोग उन्हें विदा करने के लिये कार से चल रहे थे। स्व. संजय गाँधी की कार के ऊपर मालाओं का पहाड़ लदा था। नगर सीमा से पांच सात किलोमीटर कारों का काफिला पहुंचा ही था कि अचानक कारें रुक गईं। हर आदमी परेशान क्या माजरा है? में भी कार से बाहर निकला तो देखता हूं कि स्वयं अपने हाथों से संजय गाँधी मालायें कार से उतार कर सड़क के किनारे लगे वृक्षों की डालियों और टहनियों पर रख रहे हैं। संजय की तुनुकमिजाजी के कारण किसी अन्य ने न उन्हें रोका न तो मालायें उतारने में और पेड़ों तक पहुंचाने में मदद की पेशकश की।

महामना मालवीय के निजी अवैतिनक सिचव बाबू शिवधनी सिंह ने बताया था कि महामना जी कहते थे गले में माला पड़ी रहती है तो किसी कुदीठे की नजर माला को लगती है पहनने वाले पर प्रभाव नहीं पड़ता। सामान्य शिष्टाचार का सवाल तो है ही। कितना जतन करके आयोजक अच्छी से अच्छी माला पहनाकर स्वागत करता है, लोग तालियाँ बजाकर उस स्वागत का समर्थन करते हैं और मान्यवर कभी कभी तो पहनने से पहले ही हाथ बढ़ाकर 'लोक' लेते हैं और सामने मेज पर या डायस पर धर देते हैं। क्या यह तिरस्कार का द्योतक आचरण नहीं? यह तो सामान्य समझ की बात है। राजनेताओं का यह दुराचरण सभ्य और शिक्षितजन भी अपनाने लग गये हैं। कार्यक्रम के समापन तक अगर गले में माला पड़ी रह जाती है तो कौन सा अनर्थ हो जाता है, यह बात समझ में आती नहीं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की एक-एक ईंट में महामना की आत्मा है। मैंने अपने छात्र जीवन का अधिकांश समय इन ईंटों को पढ़ने और उनके सान्निध्य में बिताया है। हर भवन के भूतल से शीर्ष तक मैं गया हूँ। इसी इच्छा से मन्दिर के निर्माण की अवधि में शिखर के भीतर बनी अस्थायी सीढ़ियों से होता हुआ गुम्बद के करीब की झँझरी से पता नहीं कितनी दूर तक का दृश्य देखा है। मुख्यद्वार के गुम्बद ही नहीं पानी की टंकियों के ऊपर पूर्णिमा की दूधिया रोशनी में नहाये हुए परिसर का नयनाभिराम दृश्य भी देखा है।

महामना मालवीय जितने ही प्रखर राष्ट्रभक्त थे उतने ही मुखर राष्ट्रभाषा हिन्दी के समर्थक ही नहीं उन्नायक भी। नागरी प्रचारिणी सभा काशी ही नहीं, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की स्थापना और संवर्द्धन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उत्तर प्रदेश में न्यायालयों में प्रयुक्त प्रपत्र उर्दू भाषा में छपा करते थे। 1901 में महामना के अथक संघर्ष का प्रतिफल हुआ कि सभी प्रपत्र देवनागरी लिपि में तैयार होने लगे। वह काम जहाँ का तहाँ रह गया इसिलये कि कुछ को छोड़ अन्य प्रपत्रों की लिपि आज भी देवनागरी ही है लेकिन भाषा फारसी। हिन्दी भाषा के प्रति उनका लगाव केवल राजनीतिक कारणों से ही नहीं था। हिन्दी उनके हृदय में बसी हुई थी। उनके व्याख्यानों की भाषा का अध्ययन किया जाय तो सहज ही यह अनुमान लग जायेगा कि उर्दू और फारसी के साथ अंग्रेजी का बोलबाला जिस कालखण्ड में अपने पूरे प्रभाव के साथ छाया हुआ था उस कालखण्ड में भी कितनी परिमार्जित हिन्दी भाषा का उन्होंने प्रयोग किया उनकी लिखावट भी उतनी ही साफ और सुन्दर थी जितना निर्मल उनका व्यक्तित्व। हिन्दी हो या अंग्रेजी इतनी साफ और स्पष्ट कि सामान्य व्यक्ति भी सरलता के साथ पढ़ ले। महामना ने ब्रजभाषा में काव्य रचना भी की थी।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की संकल्पना के पीछे महामना का अन्य जो भी महत् उद्देश्य रहा हो लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि देशभर के सनातन धर्म में विश्वास करनेवालों को वे एक मंच पर लाना चाहते थे। उस समय दान के लिये जो भी अपील महामना ने कीं उन सभी में सनातन धर्मावलिम्बयों का मुख्य रूप से आह्वान किया गया कि वे इस महायज्ञ में सहयोगी बनें। महामना के हृदय में गहराई तक यह भावना थी कि सनातनधर्मावलम्बी पीड़ित, छिन्न-भिन्न और नैतिक दृष्टि से बलहीन हो रहे हैं। इस क्रम में महामना मालवीय के अन्तिम वक्तव्य का एक वाक्य उद्धृत करना चाहता हूं। पूरे अंग्रेजी वक्तव्य का हिन्दी अनुवाद मासिक 'कल्याण' में प्रकाशित हुआ था—

"केवल धर्म और संस्कृति के नाम पर नहीं, अपनी प्यारी जन्मभूमि के नाम पर भी मैं समस्त हिन्दुओं से अपील करता हूँ कि यदि वे भारतवर्ष में चिरकाल के लिये शान्ति चाहते हैं और ऐसा सन्देश देना चाहते हैं कि जिसको मुसलमान तथा अन्य जाति एवं धर्म के लोग भी सुनें तो वे एक हो जायँ और अपनी रक्षा करें। सन्देश यह हो कि— "जैसे वे पहले रह चुके हैं, अब भी वे एक साथ, एक ही भूमि पर रहना चाहते हैं तो उन्हें निश्चय ही हिन्दुओं के धर्म का आदर करना पड़ेगा, वे हिन्दुओं के पूजागृहों मन्दिरों को भ्रष्ट नहीं कर सकेंगे और धार्मिक स्वतंत्रता, जीवन की पवित्रता एवं स्त्रियों के सतीत्व का उन्हें अवश्य सम्मान करना पड़ेगा।" (महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी के वक्तव्य, संकलनकर्ता शिवकृमार शास्त्री से साभार)

महामना की भारतिनष्ठा पर किसी भी प्रकार का सन्देह करना पाप तुल्य है। कुशल और श्रेष्ठ अधिवक्ता होने के कारण ऐसा विश्वास करने का आधार भी है कि पश्चिम के लोकतंत्र और सैक्यूलिरिज्म (हिन्दी में इसका समतुल्य शब्द गढ़ा नहीं गया है, 'धर्मिनरपेक्षता' भ्रामक शब्द है) शब्दों को उन्होंने न जाना हो या उसका मर्म न समझते रहे हों। महामना के अन्तिम दिनों में यह भी सुनिश्चित हो गया था कि देश स्वतंत्र होने जा रहा है और उन्हें यह भी अच्छी तरह ज्ञात था कि भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाया जायेगा। जिस मानसिकता में महामना का उपरोक्त वक्तव्य आया होगा उसकी हल्की-सी पृष्ठभूमि भी मेरे मिस्तिष्क में है। नोआखाली में जैसी राक्षसी घटनायें घटीं थीं उसके छायाचित्रों से भरी एक पुस्तिका मैंने भी देखी थी। यह पता चला था कि किसी सज्जन ने यह पुस्तिका रोगशय्या पर पड़े महामना तक पहुंचायी थी। वहीं से होकर वह पुस्तिका हमारे घर तक आयी रही होगी। लोकतांत्रिक और सैक्यूलर व्यवस्था में यदि अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय संस्थापक की इच्छा के अनुरूप चल रहा है तो काशी हिन्दु विश्वविद्यालय क्यों कटघरे में खड़ा है?

संस्थापक के साथ ही दानदाताओं की भावना भी जुड़ी हुई है। बिना किसी संकोच के साथ कहा जा सकता है कि आसेतु हिमालय राजन्य से सामान्य सनातनधर्मी ने जिस आकांक्षा और मनोभाव के साथ महामना की झोली में उदारतापूर्वक दान दिया हो उसकी रक्षा के प्रति ही नहीं भारत के कल्याण के लिये भी यह आवश्यक है कि महामना द्वारा स्थापित मानकों के अनुरूप कार्य होना चाहिए। यह प्रसन्नता की बात है कि वर्तमान कुलपित डॉ. डी. पी. सिंह अत्यन्त लगन और निष्ठा के साथ उस महान ऋषि की कल्पना को मूर्तरूप देने के लिये सचेष्ट हैं। लेकिन देश की संसद को भी चेतन और संवेदनशील होना चाहिए। महामना मालवीय के शती वर्ष के उत्सवों का मैं साक्षी हूँ। देश के अत्यन्त लोकप्रिय तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और बर्मा के तत्कालीन प्रधानमंत्री ऊ नू दोनाक्री की उपस्थित में विराट जनसभा हुई थी। उस समय की परिस्थितियाँ भिन्न थीं। आज जब केन्द्र सरकार ने शिक्षकों को मौलिक अधिकार के रूप में ही अंगीकार नहीं किया वरन् उच्च शिक्षा सबके लिये जैसे कदम उठा रही है उस समय यह ध्यान में रखना होगा कि कहीं लोभ और आधुनिकता की आँधी में महामना की संकल्पना का विश्वविद्यालय मात्र ढांचा भर ही न रह जाय। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को हम महामना मालवीय का मूर्तरूप मानते हैं। इसलिये चाहते हैं कि आत्मा के साथ ही शरीर भी गढ़ा जाना चाहिए।

## अवतारी पुरुष पं. मदन मोहन मालवीय

डॉ. शीतिकण्ठ मिश्र \*

मेंने अवतारी विशेषण का प्रयोग पौराणिक अर्थ में नहीं किया बिल्क उसके यथार्थ वैज्ञानिक अर्थ में किया है। प्रत्येक युग में जब आततायियों का अत्याचार अति से भी अधिक बढ़ जाता है, जनजीवन कराहने लगता है तब युग की आवश्यकतानुसार परम शक्तिमान सर्वकला सम्पन्न विराट पुरुष अपना थोड़ा अंश देकर युग के कल्याणार्थ किसी महामानव को धराधाम में भेजता है, जैसे राक्षसों के संहार का 'मिशन' लेकर त्रेता में श्रीरामचन्द्र का अवतार हुआ था। उसी प्रकार जब पाश्चात्य राजनीतिक-सांस्कृतिक आक्रमण से त्रस्त भारतीय संस्कृति लुप्तप्राय हो रही थी, नवजागरण के नाम पर संस्कृत और भारतीय संस्कृति के स्थान पर अंग्रेजी भाषा, शिक्षा, पहनावा, रहन-सहन, खान-पान तथाकथित सभ्यों का जीवनादर्श बन रहा था तब मालवीय जी ने अतीत के अतल गर्त से भारतीय संस्कृति को पाश्चात्य शिक्षा के हथियार से लैस करके पाश्चात्य संस्कृति का मुकाबला करने के लिए उन्नीसवीं शती में अवतार लिया था।

अंग्रेजों को 1857 की क्रान्ति से यह शिक्षा मिल गई थी कि भारतीय जनमानस को हथियारों से नहीं बल्कि सांस्कृतिक उपायों से ही जीता जा सकता है, अतः उन्होंने छापेखाने, रेल, पोस्ट-आफिस, स्कूल, अस्पताल आदि का जाल बिछा कर भारतीय जनमानस को जीतने का महाप्रयास प्रारम्भ कर दिया। मालवीय जी ने उनकी युद्धकला पहचाना और उसके निराकरण में संकल्पपूर्वक लग गए। शिक्षा जनजागरण का मूलाधार है अतः दुनियाभर की शिक्षा एक स्थान पर भारतीय-पाश्चात्य समन्वित रूप से देने के लिए विश्वविद्यालय की स्थापना का संकल्प लिया। शिक्षा के माध्यम से ऐसे समाज की रचना चाहते थे जो कर्त्तव्य परायण, निर्भीक, विनयी और धर्मिष्ठ हो; सामाजिक कुरीतियों और जाति व्यवस्था को तोड़कर असमानताओं को समाप्त करे। केवल प्राचीन शास्त्रीय शिक्षा ही नहीं बल्कि प्रौद्योगिकी और विज्ञान की शिक्षा भी अवश्य दी जाय। वे आधुनिक भारत के निर्माता थे।

सर्वप्रथम 1904 में काशी नरेश श्री प्रभुनारायण सिंह की अध्यक्षता में, मिण्ट हाउस में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। उसी समय दरभंगा नरेश और एनी बेसेन्ट भी विश्वविद्यालय निर्माण पर विचार कर रहे थे। सन् 1911 तक तीनों मिलकर हिन्दू विश्वविद्यालय के निर्माण में लग गये। 1 अक्टूबर 1915 को हिन्दू विश्वविद्यालय स्वीकृत हो गया और मालवीय इसके निर्माणार्थ आवश्यक साधन जुटाने में प्राणप्रण से लग गए। उस समय उनकी अवस्था 55-60 के आसपास थी।

उनका जीवन चरित्र लिखना लक्ष्य नहीं है किन्तु तत्कालीन देशकाल को पृष्ठभूमि में रखकर उनके कार्य का समुचित मूल्याङ्कन किया जा सकता है अतः कुछ मुख्य तिथियाँ दी जा रही हैं। उनका जन्म 25 दिसम्बर सन् 1861 ई. में प्रयाग में हुआ। उनके पिता पं. ब्रजनाथ व्यास और माता मूनादेवी धर्मपरायण थे अतः धर्मपरायणता मालवीय जी का जीवनमंत्र था। 12 नवम्बर 1946 में महामना ब्रह्मलीन हुए। लम्बी जीवनयात्रा उन्होंने हिन्दू, हिन्दी और हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना व विस्तार में लगा दिया। आज वह विश्वविद्यालय तेरह सौ एकड़ भूमि, बीस मील लम्बी सड़कों पर फैला हुआ भारत का सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय है और महामना की महानता, उनके विराट् व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

उन्होंने विश्वविद्यालय के लिए दर-दर भीख मांगनी शुरू की। उन्होंने भिक्षा को कला बना दिया। वे प्रायः जिससे मांगते वह देकर स्वयम् को धन्य समझता था। दो एक अपवाद भी हैं, जैसे निजाम हैदराबाद, नबाब लखनऊ। लखनऊ के नवाब के आगे उन्होंने जब अपना धवल चादर फैला दिया तो उसने उसमें अपना जूता डाल दिया। मालवीय न क्षुड्य हुए न प्रतिक्रिया की। अखबारों में जूते की नीलामी की सूचना भर निकलवा दी। नवाब ने स्वयं प्रचुर धन देकर जूता खरीद लिया।

विश्वविद्यालय में शिक्षा-माध्यम मालवीय जी मातृभाषा को ही बनाना चाहते थे और कहा था कि मातृभाषा को माध्यम बनाने के पश्चात् पाठ्य पुस्तकें तैयार करने का काम अभी से आरम्भ करना होगा। एतदर्थ सन् 1930 में हिन्दी प्रकाशन समिति की स्थापना की गई। विज्ञान एवं इन्जिनियरिंग के उच्चकोटि के ग्रंथों की हिन्दी में रचना तथा मानक ग्रन्थों का हिन्दी भाषांतरण करने का लक्ष्य रखा गया था। समिति ने कुल 43 पुस्तकें तैयार की, कुछ प्रकाशित हुई परन्तु मालवीय जी की मृत्यु के उपरान्त ही समिति अनाथ हो गई और देश के स्वतंत्र होने पर वह कार्य सरकार ने स्वतः कराना प्रारम्भ कर दिया।

विश्वविद्यालय के निर्माण में देश के कोने-कोने से लोगों ने चंदा दिया। निर्माणाधीन दिनों में ग्रीष्मकालीन छुट्टियों में विद्यार्थियों को भी रसीदें दी जाती थी और वे चन्दा वसूलते तथा विश्वविद्यालय कोष में जमा करते थे। गरीब विद्यार्थी विश्वविद्यालय में काम करके कुछ पैसे पाते, काम अधिक करते और उससे अपनी पढ़ाई करते थे। (Earning & Learning) इस प्रकार विश्वविद्यालय का निर्माण प्रायः पूरा हो गया। अपने 75वें वर्ष में उन्होंने कहा था कि मैं 10 वर्ष और जीना चाहता हूं। तािक मंदिर का निर्माण हो जाय। मंदिर तो विश्वविद्यालय का हृदय है जब हृदय ही नहीं तो शरीर किस काम का? इतनी हिन्दू धर्म के प्रति उनकी निष्ठा थी।

भूतपूर्व विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं प्राचार्य डी.ए.वी. डिग्री कालेज (बी.एच.यू.), वाराणसी।

वे हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान के व्रती थे। उन्होंने विश्वविद्यालय के पूर्व 'हिन्दू' शब्द लगाया। इससे लोगों के मन में साम्प्रदायिकता की शंका उठती है पर यह शुद्ध भ्रम है। उनका हिन्दू धर्म संकुचित सम्प्रदाय नहीं है। वह एक परम उदार था, उसमें सनातन धर्म, आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, सिक्ख, जैन, बौद्ध आदि सभी सम्मिलित हैं। छूआछूत, भेदभाव में उनका 'हिन्दू' विश्वास नहीं करता, इसीलिए 'महात्माजी' भी उनके हिन्दू प्रेम को राष्ट्रीय धर्म ही मानते थे।

मालवीय जी ने हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के लिए बड़ा काम किया था। उन्होंने सन् 1897 ई. में 'कोर्ट कैरेक्टर एण्ड प्रायमरी एजूकेशन' नाम की अपनी पुस्तिका में उर्दू लिपि का दोष और नागरी के गुणों का वर्णन विलियम जोन्स, सर पैरी, विलियम के कथनों का प्रमाण देकर नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापकों और अन्य प्रभावशाली अनेक महानुभावों को डेपुटेशन लेकर उ. प्र. के ले. गवर्नर मैकडानल को दिया अंततः उन्होंने अपने आदेश नं. 585/ iii 343-868 दि0 10 अप्रैल सन् 1900 द्वारा नागरी लिपि को कचहरियों, विद्यालयों में प्रयोग की अनुमित प्रदान कर दी।

19वीं शती भारतीय इतिहास की बड़ी महत्वपूर्ण शती है। उस समय भारतवर्ष को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराना सबसे बड़ा कार्य था। देश को इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए बौनों नहीं ऊँचे कद के महामानवों की जरूरत थी अतः कई महामानव विभिन्न क्षेत्रों में प्राणप्रण से लगे थे जैसे राजनीतिक दासता से मुक्ति के लिए महात्मा गाँधी, शिक्षा संस्कृति में मदन मोहन मालवीय जी, धर्म-विश्वास में स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द आदि कार्य कर रहे थे और देश को पूर्ण स्वतंत्र कराने में अपना सर्वस्व समर्पित कर रहे थे। कभी कभी इन लोगों

में मतभेद भी होता था। मालवीय जी जितने धर्मनिष्ठ थे उतने ही देशभक्त। वे विद्याध्ययन के समय विद्यार्थियों को राजनीति में डालना उचित नहीं समझते थे पर गाँधी जी ने विद्यालय बहिष्कार का नारा दिया था। मालवीय जी ने कहा कि हम रेल नहीं, अन्य बहुत चीजें छोड़ने से हमारा ही नुकसान होगा। अतः उन्होंने विद्यार्थियों को पढ़ाई बहिष्कार की अनुमित नहीं दी, अतः महात्मा और महामना में इस बिन्दु पर मतभेद होते हुए भी दोनों के मूल लक्ष्य में समानता के कारण कभी मामूली मतभेद दोनों के बीच आड़े नहीं आए।

मालवीय जी का जन्म ऐसे समय में हुआ था जब भारतवर्ष अपनी संस्कृति को भूलता जा रहा था, लोगों का चारित्रिक, नैतिक पतन हो रहा था, उस समय अनीति अत्याचार के दमन और प्राचीन संस्कृति के संरक्षण के लिए ब्राह्मण कुल में मालवीय का आवेशावतार के रूप में आविर्भाव हुआ। वे राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। विद्या के सत्य का साक्षात्कार समाज को कराने के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया था। वे बड़े अच्छे वक्ता थे, भागवत के प्रेमी थे। जब धाराप्रवाह भाषण देते तो श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते, लगता साक्षात् सरस्वती बोल रही हैं। प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष और 'मकरन्द' उपनाम से कवितायें, समस्या पूर्तियाँ किया करते थे। सन् 1884 ई. में प्रयाग में हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा की स्थापना की थी।

उनका एक सोरठा उद्धृत कर उनके हिन्दी प्रेम की झलक प्रस्तुत करके यह लेख समाप्त करुँगा और निवेदन करुँगा कि लोग इस अवतारी पुरुष का पुण्य स्मरण करें— सोरठा—'गुनी जनन को साथ, रसमय कविता माँहि रुचि,

सदा दीजियो नाथ, जब जब जहां पठाइयो।'

## स्मरण : महामना एवं भारतेन्द्र के सान्निध्य का

प्रो. गिरीश चन्द्र चौधरी \*

यह कोई आश्चर्य नहीं कि महामना एवं आध्निक हिन्दी के जनक भारतेन्द्र बाबू हरिश्चन्द्र जी में कोई अंतरंग सम्बन्ध न हो। दोनों ही महान विभूतियाँ, देश एवं काल के अग्रगामी पुरुष थे। महामना का काल भी भारतेन्दु के उद्भव से जुड़ा था अतः उनकी भारतेन्दु के प्रति श्रद्धा जुड़ी होनी स्वाभाविक थीं। महामना सदैव स्मरण रखते कि अपने पिता श्री ब्रजनाथ मालवीय के साथ वे उनसे (भारतेन्दु) मिलते-जुलते यद्यपि वे केवल 10 वर्ष के थे। परन्तु बचपन की यादों के समान वह मिलना सदा याद करते। पिता जी (जो भारतेन्द्र की तीसरी पीढ़ी थे) महामना से सदा अपनी विश्वविद्यालय की पढ़ाई के दौरान मिलते तो वे पूछते ''क्यों कुमुद चन्द्र, तुम्हारे घर में वह स्थान सुरक्षित है जहाँ तुम्हारे दादा भारतेन्द्र जी बैठकर भगवान राधा-कृष्ण आराध्य की सदा स्मृति बनाय रचनाएँ किया करते थे?" महामना उस छोटे से बगीचे को इंगित करते जो वर्तमान भारतेन्द्र भवन के दक्षिण भाग में स्थित है। यह बगीचा ऐतिहासिक है कि भारतेन्द्र के पिता के जन्म पर उनके पिता स्व. बाबू कालेहरख चंद ने इमारतों को गिरा ठाकुर जी के लिए बगीचा बनवा दिया था। घर के कुलदेव (पृष्टिमार्गीय सम्प्रदाय) की सेवा घर में होती थी जो आज भी लगभग 200 वर्षों से होती चली आ रही है। महामना भी तो कृष्ण के अनन्य उपासक एवं सेवक थे। उन्हें पिता से यह संस्कार मिले थे जो भागवत महापुराण के उद्धट विद्वान् एवं कथा वाचक भी थे। स्वाभाविक है कि पिता भगवदीय पं. ब्रजनाथ 'सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा-रानी के' भारतेन्दु से उनका साहचर्य रहा हो। यही बात महामना भी मेरे पिता (बाबू कुमुदचन्द्र) से कहा करते थे कि मैं प्रयाग से काशी बचपन में अपने पिता के साथ जब भी आता तो भारतेन्द्र से मिलने पिताजी अवश्य जाते। भारतेन्दु ठाकुर जी के बगीचे में उनसे

कृष्ण चिरत्र के गुणगान व चर्चाएँ करते एवं दोनों विभोर हो समय की सीमा लाँघ जाते। महामना उस बगीचे के दृश्य को भी बताते कि चारों ओर फुहारों से जल निकला करता। भाँति-भाँति के सुगन्धित फूलों की महक से वातावरण बड़ा ही आकर्षक एवं कृष्ण की सुन्दरता का स्वरूप निखारता था। ऐसे ही सुन्दर वातावरण में कृष्ण चर्चा कितनी मधुर एवं हृदयग्राही होती थी महामना कहते चले जाते। पिताजी महामना के श्रीमुख से ये बातें यदा-कदा मालवीय भवन में उनके सान्निध्य में सुनते और अक्सर यह स्मरण कर महामना की पितामह भारतेन्दु से मिलन की घड़ियों की कल्पना में खो जाते थे।

महामना सदा भारतेन्दु परिवार को बड़ी श्रद्धा एवं स्नेह से देखते। पिताजी जब तक छात्र थे तो सदा याद दिलाते कि तुम्हें अपने महान् पूर्वज का गौरव बनाये रखना है। साथ ही भारतरत्न डा. भगवान दास जी का भी नाम कहते कि वे तुम्हारे नाना हैं। अतः दो महान संस्कारों को पाकर उनको सार्थक रखना तुम्हारा धर्म होगा।

एक बार भारतेन्दु नाटक मंडली ने वीर अभिमन्यु का नाटक खेला था। अभिमन्यु का अभिनय मेरे चाचा स्व. लक्ष्मीचंद जी कर रहे थे। छोटी वय में वह अद्भुत अभिनय देख महामना अपने को रोक न सके और स्टेज पर जा लक्ष्मीचंद जी को गोदी में ऊपर उठाकर कहा आज मैंने साक्षात् भारतेन्दु को अभिनय करते देखा। पुनः-पुनः महामना अपने बचपन में पायी स्मृति को संजोये रखकर उसे यदा-कदा प्रकट करते रहते। अपनी कविता प्रतिभा को जब भी प्रगट करते (मकरन्द उपनाम से कविता लिखते थे) कहते कि यह भारतेन्दु जी की ही प्रदत्त प्रेरणा का सुफल है।

1

# महामना-क्रांतिवीर राजगुरू के प्रेरणास्त्रोत

प्रसिद्ध क्रांतिकारी सरदार भगत सिंह के साथ फांसी पर झूलने वाले श्री शिवराम राजगुरू अपने किशोरवय में पूना से भाग कर काशी आ गये। काशी में वे संस्कृत अध्ययन में जुट गये। काशी में अध्ययन के दौरान उनकी भेंट काशी के विद्वान् बाबा राव सावरकर से हुई थी। वहीं उनका परिचय स्वातंत्र्य वीर सावरकर से हुआ। बाबा राव के घर महामना का काफी आना-जाना था और तत्कालीन राजनीति की खूब चर्चा होती। जिसमें अंग्रेजी शासन से देश को आजाद कराने की बात भी खूब होती।

यह आजादी क्रांति द्वारा भी लायी जावे जिसे महामना कहा करते थे। राजगुरू उनकी चर्चाओं को सुनते एवं प्रभावित हुए। यहीं महामना के विचारों से प्रेरित होकर वे क्रांति द्वारा देश की आजादी लाने का प्रण ले बैठे। काशी उनका आना-जाना बहुत होता। धीरे-धीरे क्रांति की बात को वो अमल में लाने लगे। सान्डर्स को मार कर लाला लाजपत राय की हत्या का बदला चुकाया और हँसते-हँसते अपने साथी भगत सिंह के साथ शहीद हुए। महामना का सान्निध्य उनकी जीवनी में स्पष्ट है।

## स्वावलम्बन के प्रति महामना के विचार \*

#### डॉ0 सैयद अली नादिर\*

विश्व प्रसिद्ध काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना एवं संरचना में ही महामना के स्वदेशी आन्दोलन की झलक मिलती है। अन्य कई क्षेत्रों में भी महामना ने हमारे लिए अनुसरणीय छाप छोड़ी। पत्रकारिता, कानून, समाज सुधार, गोरक्षा, धर्म और राष्ट्रभाषा आदि क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये और देश के लिए एक महान आदर्श स्थापित किया।

स्वावलम्बन के अनुयायी महामना ने पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अपनी एक अलग पहचान बनायी। सन् 1886 में ही अखिल भारतीय ख्याति के आप नेता घोषित हो चुके थे। आप के गुणों से प्रभावित होकर कालाकाँकर के राजा रामपाल सिंह ने आप से दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' प्रकाशित करने और उसका सम्पादक पद स्वीकार करने का आग्रह किया। मालवीय जी ने दो शर्तों के साथ पत्र का सम्पादन भार स्वीकार किया था। पहली शर्त थी कि राजा साहब पत्र की नीति, रीति में किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं करेंगे और दूसरी शर्त थी कि राजा साहब सुरापान करके सम्पादक के कक्ष में नहीं आयेंगे। राजा साहब कालाकाँकर ने मालवीय जी की दोनों शर्तें मंजूर की और 1857 में दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' जनता में जागृति नाद करने लगा। अभी ढाई साल ही गुजरे थे कि मालवीय जी के सम्पादक पद पर रहते हुए शर्तों को दरिकनार कर के एक दिन राजा रामपाल सिंह सुरापान करके उनके कक्ष में प्रविष्ट हुए और उसी दिन उसी समय मालवीय जी उठ कर वहाँ से चले गये। बाद में राजा साहब के क्षमा माँगने, अन्नय विनय करने पर भी मालवीय जी पत्र के सम्पादक पद पर नहीं लौटे।

'हिन्दुस्तान' अखबार की एक प्रति आज भी भारत कला भवन, का0 हि0 वि0 वि0 में सुरक्षित रखी है। जिसे एक धरोहर के रूप में देखा जा सकता है। महामना के महत्वपूर्ण कार्यों में पत्रकारिता के साथ साथ 'गो-रक्षा' भी एक मिशन के रूप में शामिल रही। उन्होंने 'गो-धन' को भारत की समृद्धि और स्वावलम्बन का प्रमुख स्रोत माना था। क्योंकि हाथी घोड़ा पालना सबके बस की बात नहीं थी, जब कि कम स्थान, कम खर्च पर गाय पालना और मनुष्य के लिए इसके उपयोगी होने के कारण लोग 'गो-पालन' को प्राथमिकता देते थे। विवाह के समय 'गो-दान' एक महत्वपूर्ण कृत्य बन गया था, जो आज भी जीवित है। अब से लगभग 1 हजार वर्ष पूर्व अरबों के प्रवेश पर 'गो-धन' की अवहेलना का सूत्रपात हुआ। अश्व, ऊँट प्रेमी एवं पालक अरबों को गाय की उपयोगिता का ज्ञान न था तथा उनसे लगाव भी नहीं था।

अतः गाय पालक न होने के कारण और उसके फायदे से अन्जान अरबो ने भारत में आने के बाद 'गो-माँस' को प्राथमिकता दी। भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना का जब दौर आया तो 'गो-दशा' और भी दयनीय होती चली गयी और अंग्रेजी साम्राज्य के भारत में विस्तार के साथ गाय, बेचारी पशु बनकर निरीहता की सीमा तक पहुँचा दी गयी।

'गो-वंश' की इसी विवशता को मालवीय जी ने भाँप लिया था और उसकी रक्षा का संकल्प उनके मन में उदय हुआ। सन् 1928 की बात है प्रयाग में एक 'गो-रक्षा' सम्मेलन के दौरान मालवीय जी के करीबी हासानन्द काला चोंगा तथा मुँह में कालिख पोत कर आए, मालवीय जी ने जब उन्हें देखा तो रो पड़े। फिर बोले हासानन्द! तुम मुँह पर कालिख लगाकर मेरे सामने क्यों आये हो? तो हासानन्द! तुम मुँह पर कालिख लगाकर मेरे सामने क्यों आये हो? तो हासानन्द ने कहा—जब 'गो-हत्या' के कारण सारे देश के मुख पर कालिख लगी है, तब मैं क्या करूँ? उनका जबाब सुनकर मालवीय जी गंगा से जल लाये और अपने हाथों से हासानन्द का मुँह धो डाला। फिर हाथ में गंगाजल लेकर बोले मैं जब तक जीवित रहूँगा, तब तक 'गो-रक्षा' के लिए काम करूँगा। शायद आज 'गो-रक्षा' के लिए देश के हर धर्म के लोगों को महामना के पद चिन्हों पर चलकर 'गो-रक्षा' के प्रति एक होकर आवाज बुलन्द करने का समय आ गया है। क्योंकि 'गो-रक्षा' तभी सम्भव है जब 'गो-पालन' के प्रति लोग अधिक से अधिक जागरूक हों।

इतिहास साक्षी है कि महामना ने 16 वर्ष की अवस्था में जनपद मिर्जापुर में आयोजित एक धर्म सम्मेलन में 'गो-रक्षा' की आवश्यकता पर भाषण दिया था। तथा सन् 1933 में उन्होंने लोगों से कहा कि मनुष्य बिना मांस के भी काम चला सकता है। किन्तु दूध का स्थान अन्य कोई पदार्थ नहीं ले सकता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'गो-रक्षा' एवं 'गो-पालन' के क्षेत्र में मालवीय जी का अनुसरण करते हुए वाराणसी शहर के प्रमुख कपड़ा व्यवसायी 'जालान्स परिवार' से जुड़े लोग 'सुरिभ शोध संस्थान' के माध्यम से जनपद मिर्जापुर के डगमगपुर स्थित अपने निजी फॉर्म हाउस में 'गो-रक्षा' के मिशन के रूप में 'गो-पालन' एवं दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में कृषि विज्ञान संस्थान, का० हि० वि० वि० के साथ जुड़कर क्षेत्र के किसानों के साथ एक सराहनीय कार्य कर रहे हैं।

<sup>\* &#</sup>x27;राष्ट्रीय सेमिनार' (29-30 जनवरी 2009) को स्वतन्त्रता भवन का0 हि0 वि0 वि0 में प्रस्तुत किया गया।

पूर्व सहायक परियोजना अधिकारी, बाल अधिकार परियोजना, यूनिसेफ, लखनऊ।
 पता—1/16, गोलाघाट, रामनगर, वाराणसी।

महामना का व्यक्तित्व बहुमुखी था। वह महान देश भक्त एवं दूरदर्शी शिक्षाविद्, समर्पित समाज सुधारक, प्रभावशाली वक्ता एवं प्रवक्ता थे। उन्हें भारत के अनमोल रत्नों की एक मिण भी माना जाता है। उन्होंने भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में धर्म योद्धा की भूमिका निभायी तथा चार बार 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' के अध्यक्ष चुने गए जो एक कीर्तिमान है। महामना ने देश में अंग्रेजी हुकूमत के दर्द को बहुत गहराई से महसूस किया और बार-बार उन्होंने प्राचीन भारत की तकनीकी उत्कृष्टता, वाणिज्यिक आत्म निर्भरता एवं भौतिक समृद्धि पर बल दिया। महामना ने सरकार द्वारा आयोजित औद्यौगिक संगोष्टियों, कांग्रेस के सत्रों एवं 'लेजिस्लेटिव कांउसिल' में अपने भाषणों के दौरान भारत से गरीबी दूर भगाने के उपाय के रूप में 'स्वावलम्बन' की पुरजोर वकालत की, कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में सत्र के दौरान अपने ऐतिहासिक भाषण 23 दिसम्बर 1907 को उन्होंने घोषणा किया कि 'स्वदेशी आन्दोलन' एक आजीवन व्रत है और इसका पालन करना हमारा धर्म है। 4

राष्ट्र धर्म के आचार्य एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पं0 मदन मोहन मालवीय जी की बचपन से ही दृढ़ इच्छा थी कि समूचा भारत वर्ष आत्म निर्भर, स्वावलम्बी बने जिससे कि उसे किसी के आगे झुकना ना पड़े। मालवीय जी का मानना था कि सब कुछ अपना हो। देश अपने ही बुनियादी संसाधनों, भाषा, संस्कृति एवं वसूलों के आधार पर अपना विकास कर सके। तब कहीं जाकर एक स्वावलम्बी भारत की कल्पना साकार की जा सकती है।

महामना पं0 मदन मोहन मालवीय एवं उनके समकालीन जो भी महाप्रूष हुए उन्होंने इन्हीं दृष्टिकोणों से 'भारतीय नव निर्माण' का सपना देखा जो उसे 'आत्म निर्भर' बनाने के लिए जरूरी था। महामना पं0 मदन मोहन मालवीय का झुकाव भारतीयता की ओर अधिक था। उन्होंने शैक्षिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टि से देश की आत्म निर्भरता पर बल दिया था। जिसमें मालवीय जी का 'स्वदेशी चिन्तन' प्रखर हैं। आज के परिप्रेक्ष्य में यदि आत्म निर्भर भारत की कल्पना करनी है तो महामना के 'स्वदेशी आन्दोलन' पर गंभीरता पूर्वक विचार करना होगा। ऐसा माना जाता है कि स्वदेशी आन्दोलन अपने व्यापक अर्थ में देश की अपनी नागरिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक पहचान एवं आर्थिक सुरक्षा से जुड़ा हुआ आन्दोलन है। यह सर्व विदित है कि जब कभी किसी देश की इन आंतरिक व्यवस्थाओं में किसी बाहरी शक्ति ने आघात पहुंचाने का कार्य किया तब ही स्वदेश-प्रेम अथवा 'स्वदेशी-आन्दोलन' की शुरूआत हुई। आधुनिक भारतीय इतिहास में लगभग 100 वर्षों का काल स्वदेशी आन्दोलनों की महत्वपूर्ण घटनाओं से भरा है। इस आन्दोलन के दौरान बहुत सारे नेताओं का जन्म हुआ जो इसके भागीदार रहे हैं। इन्हीं नेताओं में अपनी एक खास पहचान रखने वाले 1861 ई0 में जन्मे महाप्रूष पं0 मदन मोहन मालवीय को स्वदेशी के अग्रवर्ती प्रवर्तक के रूप में आज भी बड़ी श्रद्धा के साथ याद किया जाता है। इन्होंने अपने युवा काल में स्वदेशी का ऐसा व्रत लिया कि आजीवन हर स्तर पर उसका पालन करते रहे।⁵

विदित हो कि सन् 1924 में मालवीय जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ''इंडियन इकोनामिक कांफ्रेंस'' का आयोजन कराया। उसमें 'लैण्डरेवन्यू' पर दिया गया उनका व्याख्यान भी स्वदेशी अर्थ चिन्तन पर एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। मालवीय जी का कहना था कि यदि एक स्वावलम्बी भारत की कल्पना करनी है तो स्वदेशी के प्रचार प्रसार को एक पवित्र जन हितकारी कार्य तथा भारतीयता एवं देश-भिक्त का कार्य मानकर सिक्रयतापूर्वक हम सभी को करना चाहिए। उनका कहना था कि सिर्फ स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से ही स्वदेशी आन्दोलन और स्वावलम्बी भारत का सपना पूरा नहीं हो सकता बल्कि भारतीय रहन-सहन, खान-पान, बोली, विचार, शिक्षा, संस्कृति आदि में भी देशवासियों को स्वदेशी होना होगा। अग्रेजों ने इस देश को गुलाम बनाने के लिए सबसे पहले यहाँ की शिक्षा एवं संस्कृति पर आघात किया था।

मालवीय जी के विचार में स्वदेशी आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य देश की आर्थिक दशा को सुधारना है जिससे कि स्वावलम्बी भारत का खाका आसानी से खींचा जा सके। उनके अनुसार देश तभी आत्मिनर्भर बन सकता है जब देश में देशी चीजों का उत्पादन एवं व्यापार बढ़े। साथ ही हमारी आवश्यकता की चीजें यहाँ बनने भी लगें। मालवीय जी लघु एवं कुटीर उद्योगों के साथ-साथ भारी कल-कारखानों के भी हिमायती थे। सन् 1927 में एक कार्यक्रम में बोलते हुये उन्होंने कहा था कि देश के आर्थिक उत्थान के लिए पुराने उद्योग धंधों का पुनरूत्थान तथा नवीन उद्योगों की स्थापना दोनों जरूरी है। मालवीय जी भारत के गाँव-गाँव तथा घर-घर में कुटीर उद्योग की स्थापना कराना चाहते थे। जिससे कि कोई भी स्त्री, पुरूष बेरोजगारी का दंश न झेले और आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनकर एक विशाल भारत के निर्माण में हिस्सेदारी कर सके।

महामना ने सन् 1905 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का 'प्रास्पेक्ट्स' तैयार किया। उसमें स्वदेशी पद्धित पर आधारित देश की कृषिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक शिक्षा—अर्थ व्यवस्था सम्बन्धी आप के गंभीर गवेषणात्मक चिन्तनों का अध्ययन किया जा सकता है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में महामना ने इंजीनियरिंग के अनेक नवीन विषयों में पहली बार उच्च शिक्षा आरम्भ करायी। जिसका देश के औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन्हीं प्रयासों के माध्यम से महामना ने देश के प्रत्येक व्यक्तियों को रोजगार के साधन उपलब्ध कराते हुए स्वालम्बन की दिशा में एक सराहनीय कार्य किया।8

महामना ने विश्वविद्यालय को संकुचित परिधि में नही बाँध रखा बल्कि विद्या के क्षेत्र में उसे सार्वभौमिकता प्रदान की। देश-विदेश के प्रकाण्ड विद्वानों और प्रख्यात आचार्यों को उन्होंने यहाँ अध्यापन कार्य के लिए आमंत्रित किया और दक्षिण, उत्तर, पूरब, पश्चिम सभी दिशाओं से समस्त भारत के कोने-कोने से ढूँढ़कर विशेषज्ञों और विद्वानों को लाकर महामना ने विश्वविद्यालय को सर्व विद्या का केन्द्र बनाया और इसे राष्ट्रीय रूप प्रदान किया। शायद आज यही वजह है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा ग्रहण करके हजारों छात्र देश एवं विदेश के उच्च पदों पर आसीन हैं। यह सिलसिला तभी बरकरार रहेगा जब हम सभी लोग देश की बनी वस्तुओं का उपयोग करें। आज भूमण्डलीकरण के दौर में देश में विदेशी वस्तुओं की भरमार है इसके इस्तेमाल से हम सभी को बचना चाहिए। विदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल के कारण ही आज देश के लाखों कारीगर अपनी क्षमता के बावजूद अपने परिवार का पालन-पोषण नहीं कर पा रहे हैं। क्योंकि विदेशी वस्तुओं ने इनका बाजार बंद कर दिया है। स्वदेशी व्रत से देश का धन देश में रहेगा महामना के विचार में स्वदेशी आंदोलन अपनी सांस्कृतिक पहचान,नागरिक स्वतंत्रता और आर्थिक सुरक्षा से जुड़ा हुआ आंदोलन है।

महामना का संघर्ष सिर्फ स्वराज के लिए नहीं बल्कि सुराज के लिए भी था। वे चाहते थे कि देश का हर व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करने के बाद स्वयं अपनी रोजी-रोटी कमाये और भारत को विकास के मार्ग से जोड़ते हुए स्वावलम्बन की ओर सदैव अग्रसर रहे। 10

स्वालम्बन एवं स्वदेशी के प्रति महामना के लगाव की प्रमुख वजह यह थी कि इसके लिए वे अपने सार्वजनिक जीवन के आरम्भ से ही जागरूक रहे।<sup>11</sup>

अन्त में यही कहना है कि महामना ने जिन उद्देश्यों और लक्ष्यों को सामने रखकर इस विश्वविद्यालय की स्थापना की थी उसे पूरा करना हम सभी लोगों का कर्तव्य है जिससे कि महामना के एक स्वावलम्बी भारत की कल्पना को तीव्र गित दी जा सके। आज भारत एवं विश्व के विभिन्न देशों के विकास एवं प्रगित के जितने भी क्षेत्र है, वहाँ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्व छात्रों की विभिन्न क्षेत्रों में सिक्रिय भागीदारी है जो अपने-आप में महामना के प्रयासों की महान सफलता की परिचायक है।

#### सन्दर्भ

- आलोक पुरूष पं0 मदन मोहन मालवीय, भरत राम भट्ट, राजेश प्रकाशन, नई दिल्ली 1990, पृ.सं. 50, 51
- 2. वही पृ.सं. 92, 93, 94
- 3. महामना पं0 मदन मोहन मालवीय, संक्षिप्त जीवन परिचय, डा0 उमेश दत्त तिवारी, 2005, पृ.सं. 26
- 4. पम्पलैट, अनु0, सेमिनार, एलुमनी सेल, का0 हि0 वि0 वि0 जनवरी 29,30- 2009
- 5. महामना मालवीय का स्वदेशी अर्थ चिन्तन, डा० उमेश दत्त तिवारी, योजना, फरवरी 1995 नई दिल्ली। पृ.सं. 3,4
- 6. महामना पं0 मदन मोहन मालवीय, संक्षिप्त जीवन परिचय, डा0 उमेश दत्त तिवारी, 2005 प्र.सं. 13
- 7. महामना मालवीय का स्वदेशी अर्थ चिन्तन, डा० उमेश दत्त तिवारी, योजना, फरवरी
- 8. महामना पं0 मदन मोहन मालवीय, संक्षिप्त जीवन परिचय, डा0 उमेश दत्त तिवारी, 2005 पृ.सं.17
- 9. समाचारिकी सितम्बर 2007 महामना मालवीय फाउण्डेशन, वाराणसी।
- महामना पं0 मदन मोहन मालवीय, संक्षिप्त जीवन परिचय, डा0 उमेश दत्त तिवारी, 2005, पृ.सं. 14
- 11. महामना के विचार एक चयन, बी० एच० यू०, सम्पादन, डाॅ० अवधेश प्रधान, जनवरी २००९।

# हिन्दी, हिन्दू एवं मालवीय

डा० सुधा सिंह\*

मनुष्य स्वभावतः स्वप्न द्रष्टा होता है। निज स्वप्नों को साकार रूप देने में उसकी उत्कट ललक, अदम्य उत्साह एवं अविचल निष्ठा के दर्शन होते हैं। इस कार्यसाधना में सुख-दुःखों की परवाह न करते हुए वह लक्ष्य पाने तक सतत् क्रियाशील रहता है। कहा भी गया है-

## मनस्वी कार्यार्थी न गणयित सुखं न च दुःखम्।

ऐसे ही एक कार्यार्थी थे हिन्दी आन्दोलन से जुड़े हमारे शिखर पुरुष तथा हिन्दुत्व के अभ्युत्थान में सतत् रत पुरोधा, प्रातः स्मरणीय महामना मालवीय जी जिनका कार्यक्षेत्र था अतिविस्तृत और व्यक्तित्व था बहु-आयामी। जहाँ एक ओर वे भारतीय राजनीतिक गतिविधियों से जुड़े थे वहीं हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए आजीवन संघर्षशील रहे। वे जहाँ 'सिल्वरटंग' के रूप में सुविख्यात वाग्मी थे वहीं 'प्रिंस आफ वेगर्स' के रूप में माने जाने वाले अद्भुत याचक थे मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है—

भारत को अभिमान तुम्हारा तुम भारत के अभिमानी, पुज्य पुरोहित थे हम सबके, रहे सदैव समाधानी। तुम्हें कुशल याचक कहते हैं किन्तु कौन तुम-सा-दानी, अक्षय शिक्षा-सत्र तुम्हारा है, ब्राह्मण- ब्रह्मज्ञानी। स्वयं मदनमोहन की तुममे तन्मयता है समा गई, कल्याणी वाणी जन-जन के हित में धूनी रमा गई।

नवजागरण एवं नवनिर्माण के युगद्रष्टा तथा मौलिक विचारों के स्रष्टा महामना मालवीय जी निज काल खण्ड के 'जीवित इतिहास' बन गये। समन्वयवाद से संबलित मानवता के वे पुजारी थे। दरिद्रनारायण जनता जनार्दन को साहस, शौर्य एवं स्वाभिमान के साथ जीने की कला सिखाने वाले मार्गदर्शक थे। पत्रकारिता के क्षेत्र में उच्चमानदण्ड स्थापित करने वाले जहाँ वे एक अद्वितीय लेखक थे, वहीं हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए संघर्ष करने वाले राष्ट्रवादी देशभक्त थे। उनकी अक्षय कीर्ति का स्मारक है–काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

उनके अवदात्त अवदानों को उल्लिखित करना सम्भव नहीं है जो बहुरूप और व्यापक है। उनके त्याग, तप और महान् सेवाओं की अभ्रलिह ऊँचाईयों का मापन दुष्कर ही है।

मालवीय जी के धार्मिक विचारों का यदि अध्ययन किया जाय तो, हिन्दू धर्म का उदाररूप मालवीय जी को मान्य था। 'मालवीय जी' धर्म की सजीव शक्ति पर विश्वास करते थे धर्म का ज्ञान तथा अनुसरण जीवन के उत्कर्ष के लिए आवश्यक समझते थे। उनकी धार्मिक भावना मनुष्यता से विभूषित थी वे धार्मिक शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में उन 'व्यापक उदार भावनाओं' को प्रोत्साहित करना चाहते थे 'जो मनुष्य के बीच भातृत्व की भावना का विकास करें। उनका उपदेश निःसंदेह नैतिकता और देशप्रेम से समन्वित तथा उदात्त मानवीय भावना से अनुप्राणित होता था। हिन्दू धर्म इन्हीं उदात्त मानवीय भावनाओं से अनुप्राणित है। क्योंकि ''यह धर्म न तो एक महात्मा से आया है और न किसी एक सम्प्रदाय से'' यह अनेक विश्वासों का समुदाय है। आर्यों के आगमन के बाद अनेक जातियों का आगमन हुआ वे सभी हिन्दू धर्म में विलीन होते गये। फलतः वैदिक धर्म से भिन्न हिन्दू धर्म अस्तित्व में आया और विशाल उत्तरा पथ पर फैल गया उन्नीसवीं सदी में जब भारत में नवजागरण काल आया तो लोग पुनः इस नाम को छोड़कर आर्य नाम ग्रहण कर लिये। क्योंकि अनार्यों द्वारा दिया गया नाम इन्हें पसन्द नहीं आया। वैसे कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि मुसलमानों के आक्रमण के पहले की जातियों के जिस समग्र रूप को जाना पहचाना जाने लगा उसे हम हिन्दू कहते हैं। हिन्दू धर्म का यह प्राचीन स्वरूप उदार एवं समन्वयवादी था। अमरकोष में लिखा है—

## हिन्दू दुष्टो न भवति नानार्यो न विदूषकः सद्धर्म पालको विद्वान श्रोतधर्मपरायणः।

मालवीय जी ने, धर्म के कट्टरपंथ को कभी स्वीकार नहीं किया वे चिन्तित थे कि हिन्दू धर्म में कुरीतियाँ व्याप्त हो गई हैं। उनका विचार था कि धर्म के वास्तविक स्वरूप को हिन्दू जाति के सामने जब तक नहीं रखा जायेगा तब तक हमारे सामाजिक व्यवहार और हमारी नीतियों में सुधार सम्भव नहीं है।

वे हिन्दू और मुस्लिम एकता के पक्षधर थे उनकी धारणा थी कि ''हम दोनों में जितना ही वैर या विरोध या अनेकता रहेगी, उतना ही हम दुर्बल रहेंगे इसीलिए जो जाति इन्हें परस्पर लड़ाने का प्रयत्न करती है वह देश की शत्रु है।''<sup>3</sup>

वे स्वीकार करते थे कि ''हिन्दूओं को अपने देश में किसी जाति से राजनीतिक महत्व में कम समझा जाना हमारी जाति के लिए अत्यन्त कलंक और अपमान का विषय है। किन्तु यह कलंक और अपमान मुसलमानों या किसी और जाति का विरोध करने से नहीं मिटेगा इसको मिटाने का एक मात्र उपाय अपने कर्तव्यों का पालन करना है। मालवीय जी हिन्दू जनता में सनातन धर्म के सजीव तत्वों और मूल सिद्धान्तों का प्रसार चाहते थे। वे ये सब काम ''भारत धर्म महामण्डल'' द्वारा कराना चाहते थे। किन्तु जब उन्होंने देखा उसके धर्मीपदेशक या संचालक उसे उचित ढंग से नहीं कर पा रहे हैं तो उन्होंने अलग से 'सनातन धर्म सभा' को स्थापित कर उसके माध्यम से धर्म के मूल

<sup>\*</sup> विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग) आर0एस0के0डी0पी0जी0 कालेज, जौनपुर

सिद्धान्तों का स्वयं प्रचार करने लगे। वे अपने लेखों, भाषणों और कथाओं द्वारा अपने धार्मिक विचारों से हिन्दू जनता को लाभान्वित करने लगे।

मालवीय जी इस सन्दर्भ में मूल सिद्धान्तों के प्रचार और प्रसार में लग गये। वे कहते हैं—''बिना मूल सिद्धान्तों को दृढ़ किए धर्म का प्रचार और उसकी उन्नति करना वैसे ही अंसभव है जैसे कि बिना बुनियाद के इमारत खड़ी करना। यही कारण है धर्म अपना स्वरूप नहीं ग्रहण कर पा रहा है, और धर्म से उत्पन्न होने वाली लोक संग्रहकारी शक्ति उत्पन्न नहीं हो पा रही है।''<sup>5</sup>

इस प्रसंग में वे धर्म के मूल सिद्धान्त की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—"वस्तुतः धर्म उन व्यवस्थाओं उन नियमों का नाम है जो समाज को, राज्य के विभिन्न अंगों को धारण किये रहता है।" इसी सन्दर्भ में उन्होंने मनु के सिद्धान्त को उद्धृत किया—

### धृतिक्षमादमोस्तेयं शौचिमन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

हिन्दू महासभा की स्थापना सन् 1907 में पंजाब में हुई उसके एक वर्ष पूर्व मुस्लिम लीग की स्थापना ढाका में हो चुकी थी। हिन्दू सभा के प्रतिनिधियों ने अनेक सभायें एवं अधिवेशन किये जिसके द्वारा हिन्दू समाज को एकजुट करते हुए उनके उचित अधिकारों के रक्षा के प्रयास किये। इस प्रकार हिन्दू महासभा का उदय उचित कारणों व नेक उद्देश्यों के साथ हुआ था किन्तु आरम्भ से ही उसका नेतृत्व ऐसे लोगों को मिला, जो विचारों में अति उग्र एवं कांग्रेस विरोधी थे। यही कारण है कि यह संगठन हिन्दू समाज को पूर्ण रूप से प्रभावित नहीं कर सका। यद्यपि मालवीय जी हिन्दू धर्म और संस्कृति के उत्थान एवं हिन्दू हितों की रक्षा के लिए सदैव सिक्रय रहे। किन्तु वे विचारों से कांग्रेसी थे और वे लाला लालचन्द्र आदि की कांग्रेस विरोधी भावनाओं और धारणाओं को ठीक नहीं समझते थे। और हिन्दुओं के लिए कांग्रेस के नेतृत्व का अनुसरण उचित मानते थे। इसलिए 1920 तक मालवीय जी की हिन्दू महासभा का आन्दोलन से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था। "हिन्दू धर्म के मूल तत्वों का ज्ञान और अनुसरण वे हिन्दुओं का कर्तव्य समझते थे, पर हिन्द्-मुस्लिम वैमनस्य को उभारना पाप समझते थे।9

1921 एवं 1922 में क्रमशः मालावार एवं मुल्तान में भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुए और मुसलमानों ने हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार किये तब मालवीय जी के रूख में काफी बदलाव आया। "हिन्दू स्त्रियों की व्यथा सुनकर तो राजेन्द्र बाबू रो पड़े और फिर मालवीय जी और हकीम साहब भी जोर-जोर से रोने लगे।10 फिर मालवीय जी हिन्दू-मुस्लिम सभाओं में जाने लगे और उन्होंने उपदेश दिये कि वे साम्प्रदायिकता से दूर रहें और अपने धर्म के साथ-साथ देश की उपासना करें—उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दुस्तान के हिन्दुओं और मुसलमानों का दूसरा रिश्ता "इंसानियत" का और तीसरा रिश्ता "देशवासी" होने का है।11

''दिसम्बर 1922 में कांग्रेस अधिवेशन के समय डाॅं राजेन्द्र प्रसाद और अन्य नेताओं के अनुरोध पर मालवीय जी ने गया में आयोजित हिन्दु महासभा सम्मेलन की अध्यक्षता स्वीकार की। महामना ने हिन्दू समुदाय से कहा 'आप पहले भारतीय हैं, फिर हिन्दू ''उन्होंने गाँव-गाँव में सभायें करने, उन्नति के उपाय सोचने, छुआछूत मिटाने और अछूतों की व्यवस्था सुधारने की अपील की।

अन्त्यजों के उद्धार के लिए मालवीय जी के प्रयत्न से 1923 में हिन्दू सभा ने यह निर्णय लिया कि सवर्ण हिन्दूओं के समान दलित जातियों को सावर्जनिक स्कूलों में पढ़ने, कुओं तथा पानी के अन्य जिरये से पानी लेने सार्वजनिक सभाओं में अन्य लोगों के साथ बैठने, सडकों पर चलने तथा देवदर्शन का अधिकार है।

इस प्रकार 1922 के गया अधिवेशन से 1935 तक हिन्दू महासभा का महामना मालवीय ने प्रखर रूप से नेतृत्व किया और आगे भी इसके सम्मेलनों में भाग लेते रहे तथा स्त्री-रक्षा और उत्थान, दहेज प्रथा, स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, सुरक्षा तथा सम्मान, गौ-रक्षा, गंगा सुरक्षा आदि की समस्या पर अपने विचार व्यक्त करते रहे एवं प्रयत्नशील रहे। इस प्रकार ईसाई मिशनरियों द्वारा किये जा रहे हिन्दू धर्म परिवर्तन, और हिन्दू धर्म-संस्कृति के उपहास से विचलित मालवीय जी ने हिन्दू धर्म के उत्थान एवं संगठन के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। वे हिन्दुत्व के महान पुजारी थे जिस हिन्दुत्व की पूजा विदेशी विद्वानों ने भी की, मैक्समूलर (प्रसिद्ध इतिहासकार) ने लिखा है कि—''अगर में आपसे यह पूछूँ कि केवल यूनानी, रोमन और यहूदी भावनाओं एवं विचारों पर पलने वाले हम यूरोपीय लोगों के आन्तरिक जीवन को अधिक समृद्ध अधिक पूर्ण और अधिक विश्वजनीन, संक्षेप में, अधिक मानवीय बनाने का नुस्खा हमें किस जाति के साहित्य में मिलेगा तो बिना किसी हिचकिचाहट के मेरी उँगली हिन्दुस्तान की ओर उठ जायेगी।"12

हिन्दू धर्म के नवोत्थान के लिए मालवीय जी ने जो प्रयास किये और धर्म के जिस उदार स्वरूप को उन्होंने प्रस्तुत किया वह उच्च नैतिक मूल्यों तथा मानवीयता से परिपूर्ण था। इसी कारण गाँधी जी उन्हें प्रातः स्मरणीय मानते थे।

डाँ० सर एस० राधाकृष्णन ने कहा- "मालवीय जी भारतीय संस्कृति के मूर्तिमान स्वरूप थे। उन्होंने देश की उन्नति के लिए विज्ञान के प्रोत्साहन के साथ देशवासियों को प्रगतिशीलता की ओर प्रेरित किया। हिन्दू आदर्शों का नवीनीकरण तथा देश की भौतिक उन्नति में उनका प्रयोग मालवीय जी के जीवन का एक बहुत बड़ा कार्य है।"

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने कहा- ''ये ऋषिकल्प ब्राह्मण इस युग में हिन्दू संस्कृति में एक प्रतिनिधि सत्ता थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती के बाद हिन्दू समाज में सांस्कृतिक रेखाएं निर्मित करने वाले यही एकमात्र पुरुष थे। इनके पवित्र जीवन के चौरासी वर्ष का पल-पल हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान का मूल संगीत गाते बीता।'' जिस प्रकार मालवीय जी ने उदार हिन्दू धर्म के लिए संघर्ष किया वहीं उन्होंने नागरीलिप में लिखी हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए अथक प्रयास किया। "14 वर्ष के युवाकाल में भारतेन्दु मण्डली के सशक्त किव के रूप में प्रतिष्ठित मालवीय जी ने हिन्दी भाषा, लिपि के संरक्षण व हिन्दी साहित्य के संवर्द्धन हेतु सन् 1884 में हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा का गठन किया यही सभा आगे चलकर 1893 में "काशी नागरी प्रचारिणी सभा" के गठन की प्रेरणास्रोत बनी, जिसके मुख्य संरक्षक व सहायक मालवीय जी थे।

राजिष पुरुषोत्तम दास टण्डन से मालवीय जी के मधुर सम्बन्ध थे, उनके सान्निध्य में हिन्दी से लगाव और भी बढ़ गया। मालवीय जी की जन्मभूमि प्रयाग की उर्वर सांस्कृतिक स्थली में भारत की इस भारती को पनपने का प्रोत्साहन मिला। पुरुषोत्तम दास टण्डन और मालवीय जी के प्रयास से प्रयाग में "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" के शुभारम्भ का मार्ग प्रशस्त हुआ। यह मालवीय जी का मार्गदर्शन ही था जिसके कारण टण्डन जी में "भारतभारती" के प्रति अगाध प्रेम उत्पन्न हुआ।

भारतीय संस्कृति के प्रचारक राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी मालवीय जी के विचारधाराओं से प्रभावित थे। "उस समय मुक्तिकामियों के दो दल प्रबल हो उठे थे- नरमपंथी व गरमपंथी उदारचेता महामना जी नरमपंथी थे। उनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः उत्तर भारत रहा। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी भी नरमपंथी मुक्तिकामियों में से थे। अतः उनके काव्यों में शान्ति, सामंजस्य, सहअस्तित्व और हिन्दुत्व के तत्व प्राप्त होते हैं। 14

निःसंदेह कहा जा सकता है कि विवेकानन्द, गोखले, तिलक, महामना मालवीय, गाँधी जी जैसे मनीषियों ने ही हिन्दी साहित्याकाश में गुप्त जी जैसे देदीप्यमान नक्षत्र को जन्म दिया।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तो मालवीय जी प्राण थे। वे ही प्रमुख कार्यकर्ता थे। एक साप्ताहिक पित्रका 'अभ्युदय' का सम्पादन मालवीय जी ने प्रारम्भ किया जिसे मालवीय जी के भतीजे कृष्णकान्त मालवीय ने कालान्तर में सम्भाला और हिन्दी पत्रकारिता के पितामह के रूप में विख्यात हुए। 1890 में मालवीय जी के प्रयास से 'लीडर' नामक अंग्रेजी पित्रका का प्रकाशन शुरू हुआ जो बाद में श्री सी0 आई चिन्तामणि के सम्पादकत्व में फली-फूली।

10 अक्टूबर 1910 काशी में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में मालवीय जी अध्यक्ष थे अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में उन्होंने 'हिन्दी' की अनिवार्यता पर प्रकाश डालते हुए कहा।

"मातृभाषा को सीखने में कौन लज्जा की बात है? सच तो यह है कि जो पुरुष देश की भाषा न जानता हो वह क्या कभी गौरवान्वित हो सकता है?"" उन्होंने सुझाया कि हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने के लिए हमें अन्य भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी भाषा में लिखे उत्तम ग्रन्थों का अनुवाद करना चाहिए। पर यह भाषा प्रेम भी सरल हिन्दी के पक्ष में था। उन्होंने कहा ''हमें ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे इस प्रान्त के लोग समझ सकें। लिखने की भाषा यथा संभव बोलने की भाषा से मिलती-जुलती हो।<sup>16</sup>

वे भारत की अन्य भाषाओं को भी व्यवहार में लाने में पक्षपाती थे। किन्तु हिन्दी को सबकी बड़ी बहन मानकर उसे माता का स्थान देते थे, जिससे उसे राष्ट्रभाषा बनाया जा सके। 19 अप्रैल सन् 1919 को बम्बई में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए मालवीय जी ने कहा 'देवनागरी लिपि' में लिखी हुई हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा की मान्यता दी जाय।'' उन्होंने कहा हिन्दी भाषा अन्य देशी भाषाओं की 'बड़ी बहन' है यह भारत के अधिकांश प्रान्तों में किसी न किसी रूप में प्रचलित है अन्य प्रान्तीय भाषाओं की अपेक्षा इसे बोलने वालों की संख्या अधिक है।<sup>17</sup>

मुस्लिम भाइयों को सम्बोधित करते हुए मालवीय जी ने कहा सम्राट अकबर तक ने हिन्दी से प्रेम दिखलाया है। रहीम, रसखान आदि ने देश भाषा की सेवा की है। ईसाई मिशनिरयों ने भी इसकी बड़ी सेवा की है।  $^{18}$  उन्होंने यह भी कहा ''साहित्य और देश की उन्नति अपने देश की भाषा के द्वारा ही हो सकती है। जिस देश जो भाषा है उसी में समस्त राजकाज होना चाहिए।''19

उन्होंने कहा ''मुट्ठी भर आदमी जिस भाषा को बोलते और समझते हैं, उसके द्वारा सारी प्रजा का कार्य नहीं किया जा सकता।''<sup>20</sup>

उन्होंने यह भी कहा- ''हिन्दी को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाया जाय।'' यह सारी बातें अंग्रेजी भाषा को लक्ष्य करके उन्होंने कही। अपने विचारों को व्यक्त करते हुए मालवीय जी ने कहा—''हर प्रान्त में अपने-अपने प्रान्त की भाषा उन्नति करें। इन सबके रहते हुए हिन्दी भाषा राष्ट्रीय भाषा के तौर पर प्रयुक्त की जा सकती है।'' आगे उन्होंने कहा- अभी तक जो काम अंग्रेजी द्वारा होता आया है, वह अब हिन्दी में होना चाहिए।<sup>21</sup>

अक्टूबर 1939 में विजयादशमी के अवसर पर काशी में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ स्वागताध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने कहा- "मुसलमानों के समय में बहुत से मुसलमानी शब्द हमारी भाषा में मिल गये, और अब के भाषा के अंग है। इसी प्रकार अंग्रेजों के आने से कुछ अंग्रेजी भाषा के शब्द भी हमारी भाषा में मिल गये हैं। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हमारी भाषा उन शब्दों से बनी है जो संस्कृत से प्राकृत और अंपभ्रंश बनकर हिन्दी की शोभा को बढ़ाते हैं। जीवित भाषाओं की यह स्वाभाविक गित है कि उनमें प्रयोजन के अनुसार दूसरी भाषा के शब्द मिला लिये जाते हैं। हमें केवल उन्हीं विदेशी भाषा के शब्दों को ग्रहण करना चाहिए जिनसे हमारी भाषा की शिक्त बढ़े और भावों को स्पष्ट करने में सहायता मिले।

उन्होंने कहा ऐसा न हो कि हम अपने भाषा के शब्दों को छोड़कर केवल दूसरे भाषा के शब्दों को ग्रहण करें। हिन्दी भाषा या लेख में अंग्रेजी शब्दों के पुट को वे कभी स्वीकार नहीं करते थे।

वस्तुतः भाषा तथा शैली के विषय में मालवीय जी सर्वदा सरल भाषा तथा सुबोध शैली का आग्रह करते थे जैसा उनका वेष निर्मल, उज्ज्वल तथा निष्कंलक था वैसे ही विशुद्ध, सरल तथा सरस उनकी भाषा थी। मालवीय जी कालिदास की सम्पूर्ण रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद इसी सरल और सुबोध भाषा में करना चाहते थे। सन् 1922 में बी०एच०यू० में मालवीय जी ने हिन्दी विभाग की स्थापना की, जहाँ देश में पहली बार हिन्दी में उच्च शिक्षण व शोध के प्रबन्ध किये गये। सन् 1943 में एक अखिल भारतीय विक्रम परिषद् की स्थापना की, जिसका उद्देश्य था प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित करना।

मालवीय जी की धारणा हिन्दी के सम्बन्ध में थोड़ी अलग थी वे अनावश्यक संस्कृत के तत्सम शब्दों के पक्षधर नहीं थे वे तद्भव शब्दों के हिमायती तथा पारखी थे। वे चाहते थे सरल भाषा में हिन्दी साहित्य का निर्माण हो जैसा कि तत्कालीन द्विवेदी युगीन अनेक साहित्यकारों का भी यही मत था। अन्त में यही कहा जा सकता है कि मालवीय जी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए सम्पूर्ण प्रयास किये और उसके प्रचार-प्रसार में वे दत्त चित्त थे। यहाँ मालवीय जी के अवदानों को ध्यान में रखते हुए दिनकर की यह पंक्ति उन पर सटीक लगती है—

## धीमी कितनी गति है विकास कितना अदृश्य हो चलता है।

इस महावृक्ष में एक पत्र सदियों के बाद निकलता है।23

#### संदर्भ सूची

- 1. प्रो0 मुकुट बिहारी लाल, महामना मदन मोहन मालवीय जीवन और नेतृत्व पृष्ठ 160
- 2. रामधारी सिंह दिनकर- संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 73
- 3. अभ्युदय फाल्गुन त्रयोदशी, सम्वत् 1963
- 4. अभ्युदय, 26 मार्च सन् 1909
- 5. अभ्युदय, 2 मई सन् 1908
- 6. अभ्युदय, 2 मई सन् 1908
- 7. ''धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय, निग्रह, घी, विद्या, सत्य और अक्रोध ये सभी धर्म के मूल सिद्धान्त है।''
- 8. 1909 कांग्रेस अधिवेशन लाहौर
- 9. मालवीय जी के लेख पृष्ठ 24-25
- प्रो0 मुकुट बिहारी लाल, महामना मदन मोहन मालवीय जीवन और नेतृत्व पृष्ठ 305
- 11. सीताराम चतुर्वेदी, महामना पं० मदन मोहन मालवीय खण्ड-2, पृष्ठ 79
- 12. रामधारी सिंह दिनकर- संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 82
- 13. पुरुषोत्तम दास टण्डन महामना मालवीय बर्थ सेण्टेनरी कोमिमैरेशन वाल्यूम।
- मैथिलीशरण गुप्त के साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन- मुन्नीलाल जायसवाल, पृष्ठ 89
- 15. सीताराम चतुर्वेदी, महामना पं० मदन मोहन मालवीय खण्ड-2, पृष्ठ 24
- 16. सीताराम चतुर्वेदी, खण्ड-2 पृष्ठ 30-38
- 17. सीताराम चतुर्वेदी, खण्ड-2 पृष्ठ 30-38
- 18. सीताराम चतुर्वेदी, खण्ड-2 पृष्ठ 30-38
- 19. सीताराम चतुर्वेदी, खण्ड-2 पृष्ठ 38
- 20. वही पृष्ठ 35
- 21. वही पृष्ठ 34
- 22. वही पृष्ठ 83
- 23. रामधारी सिंह दिनकर रश्मिरथी, षष्ठ मार्ग।

# महामना मालवीय जी की दृष्टि में उच्च-शिक्षा और नैतिकता

डॉ. अनीता यादव\*

मानव के सतत, समग्र, बहुमुखी विकास तथा उन्नति के शिखर तक पहुँचने के सशक्त साधन उच्च-शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य उदात और पिरिष्कृत मानवीय गुणों का विकास करना तथा नैतिक रूप से पृष्ट समाज की रचना करना है, जिससे नवाचार हो, जागरूकता हो तथा आत्मबोध हो। उत्कृष्ट सोच, कल्याणकारी पिरकल्पना को उच्चस्तरीय प्रयोग द्वारा सिद्ध कर समुचित रूप से क्रियान्वित करना ही उच्च-शिक्षा को सार्थकता प्रदान करता है।

उच्च-शिक्षा के द्वारा चिकित्सा, विज्ञान, तकनीकी आदि का ऊँचे से ऊँचा, गहन से गहनतम ज्ञान पाया जा सकता है लेकिन नैतिक रूप से स्वस्थ मनुष्य ही उस ज्ञान का सही इस्तेमाल कर सकता है अतः हमारी शिक्षा का उद्देश्य नैतिक रूप से सुदृढ़ नागरिकों का निर्माण होना चाहिए। ऐसे वैज्ञानिकों का विकास हो, ऐसे चिकित्सकों का सृजन हो, ऐसी औद्योगिक क्रान्ति हो जिसका आधार मानवीय गुण हों, संवेदनशीलता हो तथा उच्च शिक्षित व्यक्ति सच्चे अर्थ में मानव हो क्योंकि शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य सही अर्थों में मानव का निर्माण करना ही है। अन्यथा उच्च-शिक्षा के बर्बर दुष्परिणाम हिरोशिमा-नागासाकी जैसे विध्वंस, मानव अंगों के व्यापार जैसे कुकृत्य, मुम्बई, निठारी-कांड या ट्रेड सेंटर जैसे आतंक-विनाश का महाताण्डव करते रहेंगे।

उच्च-शिक्षा की भारतीय दृष्टि इसमें महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। उदात्त भाव एवं नैतिक मूल्यों से पुष्ट, मानसिक, बौद्धिक तथा भौतिक रूप से स्वस्थ मनुष्य एवं समाज की रचना की जा सकती है। भारतवर्ष में उच्च-शिक्षा को भारतीय पराविज्ञान की दृष्टि से सम्यक् संवर्द्धित करते हुए विश्वकल्याण एवं राष्ट्रीय विकास हेतु नियोजित करना उपयुक्त होगा। शिक्षा का दीप्तिमान सूर्य अज्ञान के अंधकार को प्रकाशमय, अशिव को शिवमय तथा निषेध को स्वीकार्य बना सकता है। आवश्यकता है महामना पं0 मदन मोहन मालवीय जी जैसे उच्च-शिक्षा को सार्थकता प्रदान करने वाले मनीषियों की जिससे मानवीयमूल्यों से संवर्धित शिक्षा का व्यावहारिक रूप विश्व कल्याण का हेतु बन सके।

#### शिक्षा के प्रति महामना जी के विचार इस प्रकार थे-

जीवन का सर्वांगीण विकास शिक्षा का मूलमन्त्र हो, शिक्षा की ऐसी व्यवस्था हो कि विद्यार्थी अपनी शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक शिक्तयों का विकास कर आगे चलकर किसी व्यवसाय द्वारा सच्चाई और ईमानदारी से अपना जीवन निर्वाह कर सकें, कलापूर्ण सौन्दर्यमय जीवन व्यतीत कर सकें, समाज में आदरणीय और विश्वास पात्र बन सकें तथा देश-भिक्त से जो मनुष्य को उच्चकोटि की सेवा करने के लिए प्रेरित करती है अपने जीवन को अलंकृत कर राष्ट्र की सेवा कर सके।

महामना जी ऐसी ही सर्वांगीण शिक्षा के पक्षधर थे, जो सम्पूर्ण मानव बनाए। उन्होंने शिक्षा के उसी सर्वांगीण स्वरूप का विकास किया और जनकल्याण के लिए इसका प्रचार प्रसार किया। पूर्णतया समर्पित महामना जी ने शिक्षा, उद्यम नैतिकता, आदर्श तथा पीढ़ियों के लिए जीवन भर प्रयास किया। मानवीय गुणों का निर्माण और आध्यात्मक अनुशासन महामना मालवीय जी की शिक्षा अवधारणा के आधारभूत तत्व थे। उनका उद्देश्य विद्यार्थियों की प्रतिभा एवं रचनात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देना था तािक वे सही अर्थों में अनुशासित व उत्तरदायी नागरिक बनकर देश के विकास में सार्थक भूमिका निभा सकें। मालवीय जी का कहना था कि शिक्षा अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए है 'यतो अभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः' और इसमें उन्होंने फिर उस वक्त एक कथन उद्धत किया अपने इशोपनिषद से—

## अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो, य उ विद्यायारतः॥

जो केवल भौतिक विज्ञान की ओर जा रहे हैं वे अंधकार में गिरेंगे, इससे भी अधिक घोर अंधकार में वे गिरेंगे, जो प्रकृति की शिक्षा को नहीं समझते। इशोपनिषद् आगे कहता है—

# 'आविद्यां मृत्यु तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुतेः'।

विद्या से अमृतत्व की प्राप्त होगी। इसी भावना को साथ में रखते हुए महामना जी ने सभी आधुनिक शिक्षाएँ शुरू की। शिक्षा का उद्देश्य जहाँ एक ओर वैदिक दर्शन का प्रचार-प्रसार व उसे उद्धासित करना था, वहीं दूसरी ओर प्राचीन मनीषियों, प्रज्ञावानों की मान्यताओं, सिद्धान्तों व दिशा-निर्देशों के अनुरूप शिक्षा-प्रणाली को ढालना भी था। शिक्षा-प्रणाली में आधुनिक भौतिक-विज्ञान और अध्यात्म का संतुलित सामंजस्य प्रस्तुत किया ताकि व्यक्ति जहाँ एक ओर भौतिक विज्ञान के माध्यम से व्यावसायिक कुशलता अर्जित कर जीवन स्तर को समुन्नत कर सके, वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक चेतना से जीवन की गुणवत्ता को ऊर्ध्वगामी करते हुए स्थायी शांति व प्रशान्ति के पथ पर अग्रसर हो। भौतिक विज्ञान एवं भौतिक पदार्थों की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता परन्तु वे शाश्वत सुख और प्रशान्ति के चरम बिन्दु तक नहीं ले जा सकते हैं। उसकी प्राप्त के लिए तो 'अभ्युदय' और 'निःश्रेयस' दोनों की ही उपासना एक साथ करनी होगी और यही धर्म है। महामना मालवीय जी के शिक्षा-दर्शन का केन्द्र-बिन्द् भी यही है।

मालवीय जी ने शिक्षा के प्रसार और इसे नया स्वरूप प्रदान करने पर बल दिया, वे इसे सांस्कृतिक जागरण का प्रधान अंश मानते थे। राष्ट्रीय जागरण का प्रमुख साधन, मानव विकास का मूल मानते थे, लेकिन उनकी परिकल्पना मात्र डिग्री प्राप्त करने तक नहीं, बल्कि व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य निर्धारण हेतु व्यापक थी। इसकी बुनियाद समग्र व्यक्तित्व भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों के विकास से प्रेरित थी। महामना की दृष्टि भारतीय परम्परा से ओतप्रोत नैतिकता तथा धार्मिक आचरण, भावनात्मक रूप से सुदृढ़, मानवीयता के प्रति आग्रह बड़ों, विद्वानों तथा गुरूजनों के प्रति आदर, कला और सौन्दर्य के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति तथा देश-भक्ति से ओत-प्रोत पीढ़ियों के निर्माण की थी।

#### उच्च शिक्षा के ध्येय

- प्राचीन सभ्यता में जो भी श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण था, उसकी तथा हिन्दुओं की प्राचीन संस्कृति तथा भावनाओं की रक्षा और सार्वजनिक रूप से सर्वसाधारण में उसका प्रचार-प्रसार।
- 2. कला और विज्ञान की सर्वतोन्मुखी शिक्षा तथा अन्वेषण की वृद्धि।
- 3. आवश्यक प्रयोगात्मक ज्ञान के साथ-साथ विज्ञान, शिल्पादि कला-कौशल तथा व्यवसाय सम्बन्धी ऐसे ज्ञान की वृद्धि जिससे देशीय व्यवसाय तथा धन्धों की उन्नति हो।
- 4. धर्म और नीति को शिक्षा का आवश्यक तथा अभिन्न अंग मानकर युवकों में सदाचार का संगठन या चरित्र निर्माण का विकास करना।

महामना मालवीय जी के मतानुसार विद्यार्थियों का चिरत्र गठन शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य है। मालवीय जी के जीवन का एक-एक अध्याय एक-एक महाभारत है सत्य की विजय के लिए उन्होंने जो-जो लड़ाइयाँ लड़ी हैं और स्वार्थ त्याग, सेवा और सच्चाई के साथ-साथ काम किए हैं, वह किसी से छिपे नहीं हैं। उनकी वाणी में विचारों में और मान्यताओं में उस सांस्कृतिक उत्थान की झलक मिलती है, जिससे उनके युग के अनेक राष्ट्रवादी अनुप्राणित हुए थे। उन्होंने विशेष रूप से भारत की सांस्कृतिक धरोहर की ओर देखा, उसके गौरवमय इतिहास से प्रेरणा ग्रहण की और भारतीयता के प्रति अनुराग जगाने का सदैव कार्य किया।

वह उच्चस्तरीय शिक्षा की ऐसी व्यवस्था करना चाहते थे जिसके द्वारा भारतीय नवयुवकों में चिरित्र का निर्माण हो, उनमें देश-प्रेम और देश-सेवा की भावना का संचार हो और भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी निष्ठा बढ़े। मार्च 1915 में केन्द्रीय विधानपरिषद के सम्मुख विश्वविद्यालय विधेयक शिक्षा सदस्य के रूप में मालवीय जी ने कहा "यह विश्वविद्यालय संकुचित सम्प्रदायवाद को बढ़ावा देने के स्थान पर उदारता तथा मानसिक स्वतन्त्रता को विकसित करेगा। यह ऐसी धार्मिक भावना को विकसित करेगा, जो मनुष्य और मनुष्य के बीच भाई-चारे की भावना बढ़ायेगा। धर्म के वास्तविक ज्ञान से विशाल-हृदयता उपजेगी, ईश्वर से प्रेम की भावना उपजने से आपसी प्रेम बढ़ेगा और घृणा की भावना कमजोर पड़ेगी।"

उच्च-शिक्षा अन्तर्राष्ट्रीयकरण का महत्वपूर्ण सेतु है—जहाँ राष्ट्रीयता का सम्बन्ध, राष्ट्र के प्रति कुर्बानी, प्रेम और आत्मीयता के भाव से है वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध समूचे विश्व के प्रति बन्धुत्व, लगाव तथा तदीयत्व (बिलोंगिगनेस) का परिसूचक है। अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध या सद्भाव की स्थिति में व्यक्ति अपने राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को न भुलाते हुए पूरे मानवीय सन्दर्भों को विश्व-समुदाय जन्य तादात्म्य (वसुधैव-कुटुम्बकम) से अनुप्रेरित होकर देखता है।

शिक्षा की नीतियों, शैक्षिक पाठ्यक्रमों, शिक्षण विधियों तथा उच्च कोटि के शिक्षकों के माध्यम से इन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता हो सकती है इसलिए हमारे यहाँ शिक्षा नीति 1986 के तहत इन मुद्दों पर पर्याप्त बल दिया गया है तथा राष्ट्रीय एकता एवं अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध विकसित करने में शिक्षक की भूमिका की सराहना की गई है। भारत में राष्ट्रीय एकता (भावात्मक एकता) तथा अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध को बढ़ावा देने की दिशा में हमारी शिक्षा-प्रणाली को अन्य देशों की तुलना में अपनी प्राचीन गौरवपूर्ण अस्मिता एवं ख्याति को पुनर्जीवित करना होगा और अपनी विशिष्ट पहचान कायम करनी होगी। निश्चय ही राष्ट्रीय एकता एवं अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के क्षेत्र में परिमाणात्मक दृष्टि से सुधारात्मक परिवर्तन होगा। हमारी पीढ़ी नवीन भारतीय समाज की गरिमा के अनुकूल अपने आपसी सम्बन्धों में कड़ुवाहट की बजाए मिठास तथा अलगाव के बजाए ठोस लगाव कायम कर लेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

उच्च-शिक्षा के विभिन्न आयाम चाहे वह चिकित्सा के क्षेत्र में हों, प्रौद्योगिकी, अभियांत्रिकी या अन्य कोई भी क्षेत्र यदि उसका मूल आधार नैतिकता है तो निश्चय ही परिणाम कल्याणकारी होंगे। संवेदनाएँ और भावनाएँ विनाश और विध्वंस से रक्षा कर सकेंगी। इसमें हमारी भारतीय संस्कृति, भारतीय दर्शन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं इसलिए सत्य के मार्ग का अनुसरण करने वाला ही कल्याण मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। आधुनिक भारत में प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा-नीति के जनक महामना पं0 मदन मोहन मालवीय जी ने भी कहा है—

#### चरित्र में अजेय बनो।

हमारा बौद्धिक ज्ञान, हमारी बौद्धिक क्षमता हमें सामाजिक, भौतिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक परम्पराओं से जोड़ता है। उच्च शिक्षा द्वारा विकसित विवेक, नीर-क्षीर को विच्छेदित करता है, नवाचार सिखाता है, सृजनात्मकता अर्जित करता है। आन्तरिक व्यक्तित्व विकसित करता है। अपने जीवन तथा समाज को बेहतर बना सकता है। आदमी को मानव बना सकता है, विघ्न बाधाएँ पार कर सकता है।

शिक्षकों का आचरण, तौर तरीके एवं जीवन-मूल्य प्रत्यक्षतः या परोक्षतः प्रभावित करते हैं यह बात कोठारी आयोग से लेकर अब तक नई शिक्षा-नीति तक बार-बार दोहराई गई है। उच्च शिक्षा में गुणवत्ता, उदात्तता तथा नैतिकता के उत्थान के लिए आवश्यकता है कुशल, सुयोग्य और अनुकरणीय अध्यापकों की। अतः सत्य का पथ-प्रदर्शक अध्यापक तथा उसके अनुयायी भावी कर्णधार सत्य के मार्ग का अनुसरण करके ही कल्याण मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं और वास्तविक उन्नति को प्राप्त कर सकते हैं। अतः उच्च शिक्षा में प्रजातान्त्रिक गुणों, मानवीय मूल्यों तथा सिहण्णुता, सेवा भाव, त्याग, अहिंसा और प्रेम जैसी उदात्त भावनाओं को विकसित करना होगा। जरूरत है केवल आशा के एक नन्हें से दीप जलाने की, मन में विश्वास जगाने की।

भारतीय मनीषा की समर्थ प्रतीक और जागरूक प्रतिनिधि महादेवी वर्मा जी के शब्दों में—

''जीवन की विसंगतियों से हम हार मान बैठे हैं। इस स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए मानव संवेदना और चेतना में एक उद्वेलन लाना होगा। मन की ऋत् का ही परिवर्तन करना होगा और यह संवेदनशीलता जगने से ही सम्भव है।" मन की ऋतू का परिवर्तन वास्तविक शिक्षा द्वारा ही हो सकता है वास्तविक शिक्षा में जीवन दर्शन को समझने की, सत्य और मिथ्या में विभेदीकरण के विवेक की, आदमी-आदमी के बीच की दूरी मिटाने तथा एक दूसरे को समझने की, स्वाभाविक चेतना विकसित करने की शक्ति है। --- 'यूनेस्को' अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना लाने हेतु व्यापक पैमाने पर प्रयास कर रहा है। इसके तहत समय-समय पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन गोष्ठियाँ और कार्यशालाएँ आयोजित की जाती है तथा इनके माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध की दिशा में किए जाने वाले प्रयत्नों का समीक्षात्मक विवरण ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव लिए विभिन्न देशों के विख्यात शिक्षा-शास्त्रियों एवं विद्वानों से मिलकर बनी एक चौदह सदस्यीय समिति ने 'अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध' हेत् शिक्षा के सिद्धान्तों एवं विधियों पर विचार प्रकट करते हुए ''यूनेस्कों रिपोर्ट-1979'' में उल्लेख किया है—'विश्व के लोगों को परस्पर समझने तथा सामान्य हित में मिलकर काम करने हेतु उन्हें मदद देने के लिए सही प्रकार की शिक्षा को खोज लेना आसान नहीं है। व्यापक दृष्टि में विश्व सिमट गया है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति की अपनी निजी दुनिया अन्यन्त विस्तृत बन गई है। जिससे वह ऐसे तनावों एवं चिन्ताओं का सामना कर रहा है जो उसके अन्य लोगों (खास तौर से वे जो उसके देश की सीमा के बाहर के हैं) के प्रति रूख को गम्भीरता से प्रभावित कर सकती है।'6

अतः कौशलपूर्ण, उद्देश्यपूर्ण परिष्कृत उच्च शिक्षा द्वारा इस समस्या का निदान खोजा जा सकता है। विभिन्न अनुसंधानों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव से जुड़े मानवीय मूल्यों, सिहष्णुता, त्याग, प्रेम बन्धुत्व एवं सहयोग को विकसित कर इसमें अमूल्य योगदान दिया जा सकता है।

जहाँ एक तरफ वैश्वीकरण से औद्योगीकरण बढ़ने की सम्भावना बढ़ी है वहीं दूसरी तरफ इसके परिणाम स्वरूप विकसित देशों से विकासशील देशों की तरफ प्रदूषण स्थानांतरित होने की सम्भावना भी है। वैश्वीकरण के फलस्वरूप औद्योगीकरण में तीव्रगति से प्रगति के कारण औद्योगीकरण मानवीय आधारभूत सुविधाओं पर अतिरिक्त दबाव के रूप में सामने आ सकता है। औद्योगीकरण के साथ-साथ यातायात एवं संचार सुविधाओं का विकास, अन्य आधारभूत संरचना का विकास, शहरीकरण, कृषि विकास आदि होने लगा है। इन सबका प्रभाव, वायु, जल, ध्विन प्रदूषण, भूमि की गुणवत्ता में गिरावट, जंगलों तथा जैव विविधता आदि में कमी के रूप में परिलक्षित हुआ है। इन समस्याओं का निदान भी परिष्कृत उच्च-शिक्षा द्वारा ही खोजा जा सकता है।

अतः शिक्षा द्वारा उनमें विश्व को परिवार समझकर परस्पर सहयोग एवं सद्भाव पूर्ण भावना के साथ जीवन व्यतीत करने की कुशलता एवं उसके लिए अपेक्षित अभिवृत्ति (एटीट्यूड) एवं मूल्य विकसित, करने होंगे। इस दृष्टि से शिक्षा के पाठ्यक्रमों, शिक्षण-विधियों एवं शिक्षण-प्रणालियों को बड़ी तेजी से बदलना होगा। शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पढ़ाए जाने वाले विषयों में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों एवं अन्य देशों से सम्बन्धित सूचनाओं को उपयुक्त रूप में प्रस्तुत करना अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए अत्यावश्यक है।

मानवाधिकारों से सम्बन्धित विश्व-व्यापी घोषणा-पत्र को जिसे संयुक्त-राष्ट्र-संघ की वृहत सभा में 10 दिसम्बर 1948 को सर्वसम्मित से स्वीकृत किया गया था। इस घोषणा-पत्र में एक प्रस्तावना और 30 लेख हैं। उसमें दिए गए मानवाधिकार और स्वतन्त्रता सम्बन्धी नियम विश्व की समूची जनता के लिए बिना किसी भेद-भाव के लागू होते हैं। हमें ध्यान देना होगा कि विभिन्न देशों से सम्बन्धित ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों एवं सूचनाओं का शुद्ध एवं सही रूप में प्रस्तुतीकरण हो, विश्व की राजनीतिक गति-विधियों एवं अन्तर्राष्ट्रीय मसलों का पक्षपात रहित वर्णन तथा समीक्षा हो। अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध हेतु भाषा के महत्व को देखते हुए सम्प्रेषण के लिए अंग्रेजी के शिक्षण में अपेक्षित गुणवत्ता एवं सुधार लाने पर बल के अतिरिक्त अन्य विदेशी भाषाओं के शिक्षण को बढ़ावा देना भी आवश्यक है।

अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए मानवीय संवेदनशीलता या चेतना को भावनात्मक स्तर पर विकसित करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है, इसके लिए परिचर्चाएँ संगोष्ठियाँ तथा सूक्ष्म प्राहिता प्रशिक्षण सकारात्मक परिणाम दे सकते हैं। विचारावेश प्रक्रिया के प्रमुख प्रणेता आसबर्न के अनुसार व्यक्ति की कल्पना या सृजनशीलता सुनहरे भविष्य में परिणत हो सकती है। उनकी दृष्टि में समूह द्वारा प्रयुक्त विचारावेश व्यक्ति द्वारा अकेले प्रयुक्त विचारावेश की तुलना में समस्याओं का उत्कृष्ट हल प्राप्त करने में सहायक होता है अतः उच्च शिक्षा हेतु औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षण-विधियों के तहत विश्व-विद्यालयों, मुक्त विश्वविद्यालयों तथा दूर-शिक्षा एवं पत्राचार पाठ्यक्रमों के अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों तथा उनमें कार्यरत शिक्षकों की प्रमुख भूमिका है इसीलिए शिक्षकों एवं छात्रों के आदान-प्रदान को एक देश से दूसरे देश में विशिष्ट कार्यक्रमों के तहत वरीयता

दी जा रही है। हमारे यहाँ यूनेस्कों के अलावा कई देशों, जैसे अमेरिका, रूस, जर्मनी, हंगरी, ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, जापान तथा फ्रांस आदि में अन्तर्सहयोग के वायदों के अनुसार शिक्षा एवं अनुसन्धान के क्षेत्रों में आदान-प्रदान होते हैं। अतः शिक्षक को सूचना प्रदाता की भूमिका के साथ अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव से जुड़े मानवीय मूल्यों सिहष्णुता, त्याग, प्रेम, बन्धुत्व एवं सहयोग को विकसित करने में अमूल्य योगदान देना होगा। शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों तथा विश्व-विद्यालयों के शिक्षा-विभागों द्वारा गठित पाठ्यक्रमों में शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव या अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध को विशेष स्थान देना होगा। क्योंकि शिक्षक मानव-निर्माण की क्रिया से प्रत्यक्षतः जुड़ा हुआ है और राष्ट्रीय एकता एवं अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध दोनों ही मुद्दों को सूक्ष्मता एवं सावधानी पूर्वक समझकर अपनी कुशलता, निष्ठा तथा शिक्षा की सार्थकता सिद्ध करनी होगी।

वर्तमान तकनीकी एवं विज्ञान के युग में आज का मनुष्य अन्तरिक्ष में भ्रमण कर चुका है, चाँद पर अपना पाँव रख सका है, किन्तु इतनी उन्नति प्राप्त करने के बावजूद भी वह आपसी भेद-भाव, नफरत हिंसा एवं स्वार्थ के निर्मम एवं कठोर पाश से अपने को मुक्त नहीं कर पा रहा है। उचित शिक्षा द्वारा हम इस गम्भीरता को कम कर सकते हैं, मानवीय एकता में बाधक तत्वों के प्रभाव को नगण्य बना सकते हैं, राष्ट्रीय एकता को सृदृढ़ तथा अन्तर्राष्ट्रीय, अवबोध को विकसित कर सकते हैं। राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता की मूल बात यह है कि यह एक भावना के परिसूचक हैं तथा इसके तहत व्यक्ति की मानसिकता, उसकी भावनात्मक एवं रागात्मक अभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण माना जाता है। अतः शिक्षक की इसमें अहम भूमिका हो जाती है। उसे सुनिश्चित करना होगा कि उत्तम लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उच्च शिक्षा का स्वरूप, उसका कलेवर, कार्य-विधि, उसमें निहित भावना उदात्त परिष्कृत हो तथा सतत विकसित हो। उच्च-शिक्षा उन्नत या विकसित होने का तात्पर्य उसकी परिणति, विनाश या विध्वंस नहीं है।

## अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध विकसित करने में उच्च शिक्षा की भूमिका-

प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्धों की विभीषिका से संत्रस्त मानव-प्रजाति जब अपने स्व-विनाश की लीला को अपने ही कर्मों का फल मानने लगी तो धीरे-धीरे विश्व-शान्ति की बात अपने आप महत्वपूर्ण बन गई, यूनेस्को के अनुसार यह माना गया है कि ''चूँकि मानवीय मन में ही युद्धों की बुनियाद निहित है अतः वहीं शान्ति की सुरक्षा के उपाय भी ढूँढ़ने होंगे।''

'अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध' को अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का पर्याय कहा जा सकता है। इसके तहत पूरे विश्व परिवेश में भाषा, राष्ट्रीयता, धर्म एवं जाति के कृत्रिम बन्धनों से ऊपर उठकर दूसरे देशों एवं उनके निवासियों के प्रति विश्व-बन्धुत्व की भावना से सोचने का भाव निहित है। पं0 जवाहर लाल नेहरू ने 23 फरवरी सन 1959 ई0 में जो कहा था वह आज भी अक्षरशः सत्य है। उनके अनुसार ''अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से आज का बड़ा सवाल विश्वशान्ति का है आज हमारे लिए यही विकल्प है कि दुनिया को उसके अपने रूप में ही स्वीकार करें और एक दूसरे के लिए ज्यादा से ज्यादा सहनशीलता पैदा करें। हर देश को इस बात की स्वतन्त्रता रहे कि वह अपने ढंग से अपना विकास करें और दूसरों से सीखे लेकिन दूसरे उस पर कोई चीज नहीं थोपें। निश्चय ही इसके लिए नई मानसिक विधा चाहिए।''

नेमिशरण मित्तल ने नवम्बर 1988 (धर्मयुग, दीपावली अंक) में अपने लेख 'बदले अब ऋतु मन की' में प्रभावी ढंग से स्पष्ट किया है कि ''आत्मीयता ही सरोकार पैदा करती है, जब तक हमारे मन में दूसरों के प्रति अपनत्व का भाव नहीं उपजता तब तक उनके हित अहित के प्रति हमारे मन में कोई सरोकार नहीं पैदा होता। विश्व-एकता के लिए यह अपेक्षित है कि व्यक्ति में वास्तविक सद्भावना पर आधारित विश्व चेतना किसी न किसी रूप में प्रस्फुटित हो और यह न तो राजनीतिज्ञों द्वारा सम्भव है और न ही इसे किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है अपने व्यापक अर्थ में यह कार्य शिक्षा से सम्बन्धित है और उच्च शिक्षा इसका परिष्कार करती है।''

शिक्षा द्वारा देश में कृषक, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात करने वाले युग के महानतम शिक्षाविद् महामना मालवीय जी भी शिक्षा को मानव विकास का मूल मानते थे उन्होंने इसके लिए अनुपम योगदान दिया। आधुनिक पद्धति तथा साधनों का पूरा उपयोग किया। उनका अखिल भारतीय विश्वविद्यालय युवकों का पथ प्रदर्शक है।

महामना मालवीय जी ने विश्व-विद्यालय स्थापना की मूल दृष्टि में 'राष्ट्र-निर्माण' का मूल लक्ष्य रखा था। इसी उत्कट उद्देश्य से प्रौद्योगिकी तथा अभियांत्रिकी, विज्ञान, कृषि, मानविकी, विधि तथा अन्य ऐसी सभी विधाओं के शिक्षण की व्यवस्था की जिनकी राष्ट्र को जरूरत थीं। उनकी दृष्टि में विद्यार्थियों का चिरत्र-निर्माण शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य है। सज्जनता विहीन-ज्ञान उनकी दृष्टि में निरर्थक है वे जीवनोत्कर्ष और राष्ट्र की उन्नति, दोनों के लिए चिरत्र-निर्माण को बौद्धिक तथा व्यावसायिक विकास से कहीं अधिक आवश्यक समझते थे। वे कहते थे, राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को आचार के शासन से ही सदा शासित तथा प्रभावित रहना चाहिए तभी उनमें विश्वास, मृदुभाषण तथा व्यवहार की सच्चाई और सद्गुणों का विकास हो सकता है।

यद्यपि मालवीय जी भारतीय वाङ्मय का अध्ययन-अध्यापन, पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा और पृष्टि सामाजिक उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे, तथापि उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण, उनकी बौद्धिक मान्यताएँ व्यापक और उदार थीं। वे ज्ञान को किसी विशिष्ट जाति या देश की बपौती नहीं समझते थे। वे कभी नहीं मानते थे कि हमारे पास सब कुछ है, हमें दूसरों से कुछ लेना नहीं है। वे स्वीकार करते थे कि हमारे पूर्वजों की तरह दूसरे देश के विद्धानों ने भी अपनी प्रतिभा और योग्यता से

संसार को अलंकृत किया है। सब विद्वानों का आदर तथा ज्ञान का आदान-प्रदान वे मानव प्रगति और राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे। वे दूसरे देश के विद्वानों के युक्ति युक्त समाजोपयोगी विचारों को ग्रहण करने को सदा तैयार रहते थे। वे मनु, भीष्म, विशष्ठ और शुक्र आदि विद्वानों के इस विचार से सहमत थे कि हमें अपने गुरूओं और पूर्वजों के सद्गुणों को ग्रहण करते हुए सब विद्वानों के युक्तियुक्त विचारों को, शुभ ज्ञान को विनयपूर्वक स्वीकार करना चाहिए, उनका अध्ययन-अध्यापन करना चाहिए। इस तरह मालवीय जी भारतीय विद्यार्थियों के लिए प्राचीन भारतीय दर्शन, साहित्य, संस्कृति और अन्य विद्याओं के साथ-साथ अर्वाचीन नीति-शास्त्र, समाज-विज्ञान, मनोविज्ञान विधि-विज्ञान, अर्थशास्त्र और राजनीति का अध्ययन आवश्यक समझते थे।

वास्तव में वे इन सब विषयों के प्राचीन भारतीय और अर्वाचीन पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का तुलनात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन आवश्यक समझते थे। वे विश्व विज्ञान का समन्वय तथा विश्व के विद्वानों के सहयोगात्मक प्रयासों को मानव उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे।

उच्च शिक्षा ने मानसिक प्रदूषण को भी बढ़ाया है जिसका निराकरण अन्तर्मन के शुद्धिकरण से ही सम्भव है। खुली आँखों से भी न देख पाने की विकलांगता, पक्षपात जैसे पक्षाघात, समझते हुए भी न सोच पाने की असमर्थता व्यक्ति को पतन की गहराई में फेंक रहीं है इस स्थिति से उभारने के लिए उच्च-शिक्षा में नैतिकता ही एक मात्र अवलम्ब है। जो मानवीय गुणों को परिष्कृत कर मानव से मानव के अंतरंग तादात्म्य को राष्ट्र के प्रति समर्पण तथा अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध को विकसित कर वसुधैव कुटुम्बकम के स्वप्न को साकार कर सकती है।

#### सन्दर्भ

- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक-महामना पं0 मदन मोहन मालवीय (2006), डॉ0 विश्वनाथ पाण्डेय पृ0 3
- 2. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक-महामना पं0 मदन मोहन मालवीय का विद्यार्थियों के लिए संदेश (2008), डॉ0 विश्वनाथ पाण्डेय पृ0 3
- 3. का0 हि0 वि0 विद्यालय के संस्थापक महामना पं0 मदन मोहन मालवीय जी का विद्यार्थियों को संदेश (2008), डॉ0 विश्वनाथ पाण्डेय पृ0 12
- 4. महामना के विचार- एक वचन का०हि०वि०वि० (दीक्षान्त भाषण), अवधेश प्रधान, प्र0 63
- का0 हि0 वि0 वि0 के संस्थापक—डॉ0 विश्वनाथ पाण्डेय (2006),
   प0 20,21
- 6. It is not easy to find the right kind of education to enable the people of the world to understand each other and work together for the common good. Seen globally, the world has shrunk, but the world of each individual has expanded enormously and this has left him exposed to strains and anxieties that may seriously affect his attitude towards other man particularly those beyond his own national border. UNESCO Report-1979.
- 7. इकोनॉमिक सर्वे, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, 1996-97, पृ0 136-137
- Since wars begin in the minds of men, it is in the minds of men where the defence of peace must be Constructed (UNESCO)
- 9. पं0 जवाहर लाल नेहरू-भाषण : 23 फरवरी 1959
- 10. नेमिशरण मित्तल-नवम्बर 1988 (धर्मयुग, दीपावली अंक)
- महामना पं0 मदनमोहन मालवीय जी का विद्यार्थियों के लिए सन्देश : सम्पादक डाँ० विश्वनाथ पाण्डेय, पृ0 19

# भारतीय राष्ट्रवाद के पुरोधा महामना मालवीय जी

डॉ. अखिलेश्वर शुक्ल \* एवं डॉ. सन्तोष कुमार पाण्डेय \*\*

भारत के महान पुरुषों में पं. मदन मोहल मालवीय जी का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। आपका जन्म 25 दिसम्बर 1861 ई. को इलाहाबाद में श्रीमद् भागवत् के प्रसिद्ध पण्डित प्रेमदत्त चतुर्वेदी के परिवार में हुआ था। आपके पिता जी का नाम बृजनाथ व्यास, माता का नाम श्रीमती मुना देवी था। आपका परिवार भौतिक संसाधनों से धनाढ्य नहीं था, किन्त् शिक्षा साहित्य के धन से इतना सम्पन्न था कि समाज में भारी प्रतिष्ठा प्राप्त थी, यही कारण था कि मालवीय जी ने प्रभावशाली व्यक्तित्व, अध्यावसायी जीवन, धार्मिक मनोवृत्ति, साहस एवं विनम्र स्वभाव के गुण अपने पिता से वंश परम्परागत पाये थे। आप राष्ट्रवादी, भारतीय और मानव सेवक थे। उन्हें भारतीय साहित्य, संस्कृति और सभ्यता से अटूट प्रेम था। उन्हें वैदिक साहित्य और संस्कृति पर गर्व था। भारत में फैली ह्यी निरक्षरता, भारतीय संस्कृति एवं एकता के पतन को देखकर भारी दुःख होता था। भारत में व्याप्त निरक्षरता, कला-कौशल, उद्योग और संस्कृति आदि का अधोपतन इसीलिए था कि भारत में उस समय रचित शिक्षा व्यवस्था का भारी अभाव था, इन सब चीजों से उनके हृदय में भारी पीड़ा थी। भारत की परम्परागत धार्मिक शिक्षा, प्रचलित वर्णाश्रम व्यवस्था समाप्त हो चुकी थी, उस वक्त कोई ऐसा सामाजिक संगठन नहीं था जो इस परम्परागत शिक्षा व्यवस्था को पुनः स्थापित करता। ऐसी दुर्दशा के समय मालवीय जी का भारत में अवतरित होना वरदान सिद्ध हुआ। उन्होंने इस दुर्दशा का अध्ययन करके पुरातन धर्म परम्पराओं की स्थापना की और भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता को पतित होने से बचाया।

#### महामना और स्वदेशी आन्दोलन

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच से 1893 के लाहौर के कांग्रेस अधिवेशन में मदन मोहन मालवीय ने कहा था—''वे कोरी और जुलाहे कहाँ हैं? वे लोग कहाँ हैं जो विभिन्न प्रकार के उद्योग चलाकर और माल बनाकर जीवन-यापन करते थे और वे माल कहाँ हैं जो प्रतिवर्ष इंग्लैण्ड तथा अन्य यूरोपीय देशों को भेजे जाते थे।'''

1906 ई. में कलकत्ता अधिवेशन में इन्होंने पुनः कहा— ''कच्चा माल हमारे देश से बाहर जाता है और तैयार माल बनकर वापस आता है, अगर हम स्वतंत्र होते तो संरक्षण का सहारा लेते।'''

मालवीय जी ने यह विचार उस समय दिया जब 20वीं सदी में यूरोपीय तथा अन्य देश कला और उद्योग के क्षेत्र में प्रगति कर रहे थे तथा भारत निरक्षरता और नेतृत्व के अभाव में इन्हीं क्षेत्रों में पिछड़ता जा रहा था।

#### मालवीय जी और शिक्षा

शिक्षा का सर्वोपरि उद्देश्य व्यक्ति का चरित्र निर्माण करना है। समाज को सदैव चरित्रवान व्यक्तियों की आवश्यकता रहती है। यदि समाज में चरित्रवान व्यक्तियों का अभाव हो जाय तो समाज ही ध्वस्त हो जाय। समाज को चरित्रवान व्यक्ति स्व्यवस्थित शिक्षा प्रणाली ही दे सकती है। इसलिए मालवीय जी ने शिक्षा के अन्तर्गत धार्मिक, नैतिक, शिक्षा का समावेश करने पर बल दिया। यद्यपि बुड्स डिस्पैच के बाद कोलकाता, मुम्बई एवं मद्रास विश्वविद्यालय अस्तित्व में आये। उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद विश्वविद्यालय 1887 में बना मगर सही मायने में देश के प्रथम स्वदेशी विश्वविद्यालय का भव्य सपना महामना पं. मदन मोहन मालवीय ने देखा अपने इस सपने के संग उन्होंने राष्ट्र की आकांक्षा को शामिल किया और उसे सर्वविद्या की राजधानी के रूप में तामील कराया। उनका यह स्वप्न पश्चिमी व्लुप्रिण्ट से जुड़ा खालिस स्वदेशी था। इसका प्रमाण है कि ऐसा विस्तृत विश्वविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पहले तो नहीं ही था, उसके बाद भी नहीं बना। महामना ने तक्षशिला और नालन्दा विश्वविद्यालय के मानिन्द हजारों छात्रों, अध्यापकों को एक परिसर में जुटा दिया।3

#### मालवीय जी और सामाजिक विचार

मालवीय जी सनातनी हिन्दू थे और उन्हें प्राचीन रीति-रीवाजों से भारी लगाव था, किन्तु वह उन प्रथाओं और परम्पराओं को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते थे जो हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज को अवनति की ओर ले जाने में सहायक थे। वह बाल विवाह, स्त्री वर्ग के संकीर्ण सामाजिक स्तर तथा जाति प्रथा पर अंध विश्वास नहीं रखते थे। भारतीय स्त्रियों की दशा सुधारने में इन दूषित परम्पराओं को समाप्त करने में मालवीय जी ने सिक्रय रूप से भाग लिया। उनका विश्वास था कि स्त्री समाज को अशिक्षित और घर की चहारदीवारी में बन्द करके रखने से देश का कभी भी भला नहीं हो सकता। स्त्री समाज की उन्नति करने से राष्ट्र का अधिकाधिक भला होगा। मालवीय जी अछूतों के प्रति भी पर्याप्त प्रेम रखते थे और उनके सुधार पर ध्यान देते थे, उनकी दृष्टि में हिन्दू समाज के अभिन्न अंग थे और इस बात पर वे बार-बार बल दिया करते थे कि पिछड़े वर्ग के विकास के लिए हमें पूरा-पूरा प्रयास करना चाहिए। उन्होंने हिन्दुओं को समझाया कि दलित वर्ग और अछूतों के लिए ईश्वर की पूजा करने के लिए मंदिरों के दरवाजे खोल दें और अपने जैसे सभी धार्मिक अधिकार उन्हें दे दें जिससे वे निश्चित होकर निष्ठा के साथ ईश्वर की उपासना कर सकें।4

<sup>\*</sup> रीडर, राजनीतिशास्त्र विभाग, आर. एस.के.डी. पी.जी. कालेज जौनपुर।

<sup>\*\*</sup> प्राध्यापक, राजनीतिशास्त्र विभाग आर.एस.के.डी. पी.जी. कालेज जौनपुर।

#### मालवीय के विचार संकीर्णता से रहित

मालवीय जी संकीर्ण धार्मिक और साम्प्रदायिक विचारों से बहुत घृणा करते थे, जब कभी भी उनके समक्ष हिन्दू-मुस्लिम झगड़े हुए उन्हें भारी दुःख हुआ, उनका उपदेश था कि हिन्दू धर्म वाले हों अथवा अन्य धर्म वाले हों उन्हें अपना-अपना धर्म मानने उसका विकास करने और आरिक्षत रखने का प्रयास तो करना चाहिए, परन्तु दूसरे के धर्म पर किसी प्रकार की चोट नहीं करनी चाहिए। उनका हिन्दुओं के लिए उपदेश था कि अपने धर्म की सुरक्षा और उन्नति अवश्य करें, परन्तु इस्लाम और अन्य धर्मों को आघात न पहुँचायें। उन्होंने राष्ट्रीय और धार्मिक तथा साम्प्रदायिक एकता स्थापित करन पर बल दिया। वे चाहते थे कि हिन्दू-मुसलमान भावात्मक रूप से और बौद्धिक रूप से निकट आकर अपने मन-मुटावों पर समझौता करें और उन्हें सदैव के लिए समाप्त करें। यदि दोनों मिलकर राष्ट्रोन्नति और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अपनी-अपनी शक्ति लगायें तो देश का अधिक भला होगा। अतः मालवीय जी ने साम्प्रदायिक संघर्षों को समाप्त करके एक होकर कार्य करने तथा अपनी-अपनी शक्ति लंगायें का सदुपयोग करने की सलाह दी।

#### समीक्षा

मालवीय जी मानवता के पुंज थे, उनका विचार था कि हमें दूसरों के कष्टों का उसी प्रकार अनुभव करना चाहिए जैसे हम अपने कष्टों का अनुभव करते हैं। हमें दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसे व्यवहार की आशा हम अपने लिए दूसरों से करते हैं।

महामना के चिरत्र एवं व्यक्तित्व पर समग्र दृष्टि डाली जाय तो एक अजीब सी अनुभूति होती है तथा यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि तात्कालिक राष्ट्रवादियों की कतार में महामना प्रथम पंक्ति में खड़े दिखायी पड़ते हैं।

शिक्षा जो प्रत्येक धर्म चरित्र और आचरण के सुधार पर बल देता है महामना ने सच्चे अर्थों में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसे महान संस्थान की स्थापना कर प्रत्येक लोगों के दिलोदिमाग से जातिवाद, क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद आदि संकीर्ण विचारधाराओं से निकालकर उतरोत्तर विकास के पथ पर अग्रसर किया तथा आज यह महान संस्थान मालवीय जी की याद में निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

## संदर्भ सूची

- 1. रमेशचन्द्र मजूमदार, History of movement in India, भाग-दो, पृ. 5-6
- 2. डॉ. पट्टाभि सीतारमैय्या, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास, भाग-1, पृ. 41
- 3. अमर उजाला, जौनपुर, पृ. 7, दिनांक 10 जनवरी, 2010
- 4. भारत और पश्चिम के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, पृ. 84-85, डॉ. सरयू, डॉ. अखिलेश चौबे।

# राष्ट्रीयता के सजग प्रहरी : महामना पंडित मदन मोहन मालवीय

डॉ० महेन्दर सिंह यादव \* एवं डॉ० रुचि सिंह \*\*

किसी भी महान् विभूति का धरा पर पैर रखना सर्वविदित हो जाता है। इन्हीं महान् आत्माओं में गरीब ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने वाले पं0 मदन मोहन मालवीय जी अपने पिता ब्रजनाथ जी के छः पुत्रों एवं दो पुत्रियों में से एक थे। माता-पिता तथा परिवार की प्रतिष्ठा और भारत एवं भारतीय संस्कृति के गौरव की पृष्टि और वृद्धि हेत् महामना जी को बचपन से ही जिम्मेदारियों के बोझ से प्रभावित होकर संघर्ष करने के लिए बाध्य होना पड़ा। माता से शील तथा स्नेह जैसे गुण, पिता और पितामह की भगवद्भक्ति तथा धर्म के प्रति अनुराग का गहरा प्रभाव बालक पर पड़ा जिससे पं0 महामना का जीवन अत्यन्त धर्मनिष्ठ, शीलसम्पन्न, भगवद्भक्त, दीनबन्धु तथा समाजसेवी के रूप में विकसित हुआ। महामना जी ने स्वयं अपनी 75वीं वर्षगाँठ के अवसर पर यह कहा था कि मेरे पितामह, पितामही, पिता और माता बड़े धर्मात्मा, सदाचारी तथा निःस्वार्थी ब्राह्मण थे। उन्हीं से प्रसाद रूप में मैं इतना कार्य कर सका हूँ। उन्होंने बचपन में ही कुछ कठोर नियम बना लिये थे जो उनके जीवन के अहम् पड़ावों पर निर्णय लेने एवं कठोर कार्य करने की क्षमता को विकसित करने में सहयोग दिये। जैसे-मैं कोई ऐसा कार्य नहीं करूँगा जो अपनी माता से न कह सकूँ। उन्होंने अपने विद्यार्थियों को भी यह बताया कि इस नियम से मैं कई पापों से बचा, मुझे शक्ति मिली और मेरा जीवन उत्साह और दिव्य ज्योति से उज्ज्वल हुआ। पारिवारिक परिस्थितियों ने मालवीय जी को सादा एवं सरल जीवन की ओर प्रेरित किया।

आठ वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत संस्कार के बाद पिता जी के द्वारा उन्हें गायत्री मंत्र की दीक्षा मिली जिसका उन्होंने नियम-संयम से प्रतिदिन सुबह-शाम हर परिस्थित में आजीवन निर्वाह किया। पिता के कथावाचन के समय उनकी चौकी के पास बैठकर वे नित्य ध्यानपूर्वक कथा सुना करते थे। उन्होंने अपने संस्करण में बताया कि पिताजी ने एक दिन कहा कि तू बड़ा भक्त है। यह सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई थी। मालवीय जी भिक्त में सदा भाव-विभोर रहा करते थे। वे कृष्ण जन्माष्टमी के समय बहुत ही उत्साह के साथ झांकी सजाते, संगीत का प्रबन्ध करते एवं धूमधाम से श्रीकृष्ण जन्मोत्सव मनाते थे। उनका संगीत प्रेम सितार वादन के साथ झलकता था। वे सूरदास तथा मीरा के अनेक पदों को याद करके सितार वादन के माध्यम से गाते-बजाते थे। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही वे पुस्तकों की बेठन को खोलने और बाँधने का कार्य भी करने लगे। इन्हीं पोथियों में 'इतिहास समुच्चय' नाम की एक पुस्तक थी, जिसमें महाभारत के चुनेंदा 32 इतिहास थे। मालवीय जी के धर्म सम्बन्धी विचारों और ज्ञान को बढाने

में यह पुस्तक अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई। मालवीय जी ने एक बार गलती हो जाने पर प्रायश्चित करने के लिये अपनी माताजी से पूछा तो उन्होंने समझाया कि अनिच्छा से गलती हो जाने पर कोई विशेष दोष नहीं होता। भगवान् का भजन कर लो, परन्तु मालवीय जी ने कहा, उसे तो मैं प्रतिदिन करता ही हूँ। प्रायश्चित कुछ दूसरा होना चाहिए। अन्त में उन्होंने उसके लिये दिन भर का उपवास किया।

सन् 1884 में बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् संस्कृत में एम0ए0 की परीक्षा पास करके वे अपने पिता जी की भाँति अपना समस्त जीवन धर्म के प्रचार-प्रसार में लगा देना चाहते थे। इसीलिए वे नौकरी नहीं करना चाहते थे। अपने चचेरे भाई जयगोविन्द जी के कहने पर भी वे सरकारी स्कूल में अध्यापकीय कार्य करने से इंकार कर दिये, परन्तु माताजी के आग्रह एवं घर की आर्थिक स्थिति को देखते हुए अन्ततः नौकरी करने का फैसला किया। तत्समय धर्म के प्रचार-प्रसार की समस्त कल्पनाएं माँ के आसुओं में डूब गयीं। अध्यापकीय आमदनी का अधिकांश भाग वे परिवार के भरण-पोषण के लिये अपनी माता को देते थे तथा शेष अंश सार्वजनिक कार्यों में खर्च कर देते थे। अन्त में वे एक सफल अध्यापक सिद्ध हुए। अपने विषय को भलीभांति तैयार करने के पश्चात् बच्चों को रोचक ढंग से पढ़ाते थे तथा विद्यार्थियों के प्रति स्नेह-भावना बनाये रखते थे। उनके एक छात्र का कहना है कि छात्रों के ऊपर उनकी स्नेहपूर्ण कृपा का, कोमल व्यवहार का, वाणी के माध्यें का तथा उनके आकर्षक व्यक्तित्व का बहुत प्रभाव था। सभी लोग उनका सम्मान करते थे। मालवीय जी भी स्वयं कहा करते थे कि उनका स्नेह दृढ़ता से समन्वित था। अनुशासन के सम्बन्ध में वे काफी दृढ़ थे, किसी भी छात्र का अभद्र एवं अशोभनीय व्यवहार बर्दाश्त करने को वे तैयार नहीं थे। इस सम्बन्ध में वे काफी निर्भीक थे। सन् 1880 में ही मालवीय जी ने प्रो0 आदित्य राम भट्टाचार्य के प्रोत्साहन से सार्वजनिक कार्यों में सिक्रय योगदान करना आरम्भ किया था। अपने गुरु के आदेश पर 'प्रयाग हिन्दू समाज' नामक संस्था के संचालन में काफी काम किया। धार्मिक और सामयिक विषयों पर लेख महामना जी ने पं0 बालकृष्ण भट्ट के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने वाले पत्र के माध्यम से शुरू किया। मालवीय जी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। अपनी प्रतिभा के चलते वे अधिकांश कायक्रमों के अग्रज बने रहते थे। 1884 में 'हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा' प्रयाग में स्थापित हुई तथा मालवीय जी उसके एक प्रमुख कार्यकर्ता बनाये गये।

सन् 1886 दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में वे अपने गुरु पंडित आदित्य राम भट्टाचार्य के साथ कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में भाग लेने

प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास विभाग, अभय बालिका महाविद्यालय, रानीपुर, हंडिया, इलाहाबाद सम्पर्क सुत्र : 9452709744

<sup>\*\*</sup> प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास विभाग, उदय प्रताप स्वायत्तशासी कॉलेज, वाराणसी

के लिये कलकत्ता गये और वहाँ अपने गुरु की अनुमति से सुरेन्द्र नाथ बनर्जी द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का समर्थन करते हुए प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना पर बहुत ही अच्छा भाषण दिये। उन्होंने कहा कि संसार में किसी भी सभ्य समाज की प्रगति के लिए प्रतिनिधि संस्थाओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसलिए संसार में किसी भी सभ्य समाज की प्रगति के लिये प्रतिनिधि संस्थाओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसलिए भारत में निरंकुश संस्थाओं को बनाये रखने का प्रयत्न करने के बजाय प्रतिनिधि संस्थाओं को प्रतिष्ठित करना सभी का परम कर्तव्य होना चाहिए। इस माध्यम से वे यह बताना चाहते थे कि बिना किसी प्रतिनिधित्व का भारतवासियों पर कर का बोझ लादना अंग्रेजों के लिये अनुचित है, क्योंकि प्रतिनिधित्व के बिना कोई कर नहीं, यह ब्रिटिश राजनीति का मूलमंत्र है। महामना जी ने कहा कि कांग्रेस का अस्तित्व हमारी क्षमता का प्रमाण है। अच्छे अंग्रेज को यह जानकर दुःख होगा कि भारत सरकार निरंकुश है, वह हमारे साथ गुलामों जैसा व्यवहार करती है। अपने देश के शासन में भाग लेने से उन्हें रोकना अनुचित है। प्रतिनिधित्व का अधिकार ब्रिटिश प्रजा का मौलिक अधिकार है, वह हमें मिलना ही चाहिए।6

मालवीय जी का यह भाषण निश्चित रूप से उनके श्रेष्ठ वाग्मिता का उच्चतम उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस अधिवेशन की अध्यक्षता कर रहे दादा भाई नौरोजी ने इसे सुनकर कहा कि इस युवक की वाणी में स्वयं भारत माता ही मुखर हो रही हैं तथा सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने स्वयं यह स्वीकार किया कि यह भाषण अब तक मेरे सुने हुए भाषणों में सबसे अच्छा एवं मधुर था जिसका कांग्रेस के प्रतिनिधियों पर गहरा प्रभाव पड़ा और जिसने उन्हें कांग्रेस के भावी नेता के रूप में निर्दिष्ट कर दिया। ए०ओ० ह्यूम ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि मालवीय जी का यह भाषण श्रोताओं ने तन्मय होकर सुना, उनके धारा प्रवाह भाषण ने सभी लोगों को मंत्रमुग्ध कर दिया।

कालाकांकर में रहकर सम्पादन का कार्य करने के बावजूद मालवीय जी प्रति सप्ताह प्रयाग आ जाते थे और देश की राजनीतिक प्रगति में यथासम्भव सिक्रय योगदान करते थे। दिसम्बर, सन् 1887 ई0 में कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन (तीसरा कांग्रेस अधिवेशन) में उन्होंने अपने प्रांत से चालीस से अधिक प्रतिनिधि जुटाकर भाग लिया और वहाँ अपने भाषण के लिये राजा सर टी माधव राव, आर्डले नार्टन और ह्यूम जैसे विख्यात व्यक्तियों से प्रशंसा और आशीर्वाद प्राप्त किया। मालवीय जी ने पुनः प्रतिनिधि संस्था को संज्ञान में लेते हुए कहा कि प्रतिनिधि संस्था की स्थापना ब्रिटिश प्रजा की हैसियत से हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, जबिक रूस के अतिरिक्त यूरोप के सभी देश सरकार की गतिविधि में जनता के प्रतिनिधियों का योगदान आवश्यक समझते हैं और ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटेन में अपने बहुत से उपनिवेशों में किसी न किसी अंश में प्रतिनिधि सरकार प्रतिष्ठित कर दी है तब भारत जैसे देश को इससे वंचित रखना अनुचित है। जब यूरोप के वे देश जहाँ की प्रजा और शासक एक ही जाति और धर्म के हैं वे भी प्रतिनिधि

संस्थाओं की स्थापना की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं तब भारत जैसे देश में जहाँ प्रजा और शासक वर्ग की भाषा और संस्कृति बिल्कृल ही भिन्न है, ये संस्थायें निश्चित रूप से नितान्त आवश्यक हैं। तत्कालीन भारत के प्रशासन तथा राजकोष की देखभाल का उत्तरदायित्व पूर्णरूप से ब्रिटिश पार्लियामेण्ट पर है, परन्तु जैसा कि प्रोफेसर फॉकेट, चार्ल्स ब्रेडला आदि ने स्वीकार किया है कि पार्लियामेण्ट इस बोझ को सही तौर पर वहन नहीं कर रही है। ऐसी दशा में भारत में प्रतिनिधि संस्थाओं को स्थापित करके उन्हें इस भार को सौंपना ही उचित है। तृतीय कांग्रेस अधिवेशन का अस्तित्व इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हम भारतवासी लोग प्रतिनिधि संस्थाओं के सर्वथा योग्य हैं। कांग्रेस के इस अधिवेशन में पं0 मदन मोहन मालवीय जी अपने प्रान्त के 'पोलिटिकल एसोसिएशन' तथा स्थाई कार्य समिति के मंत्री नियुक्त किये गये और मालवीय जी के निमंत्रण पर कांग्रेस का अगला अधिवेशन प्रयाग में करने का निश्चय किया गया। कांग्रेस के प्रयाग अधिवेशन की सम्पूर्ण व्यवस्था का श्रेय पं0 अयोध्यानाथ, पं0 विश्वम्भरनाथ, श्री चारुचन्द्र मिश्र और रायबहादुर रामचरन दास आदि बुजुर्गों के साथ मालवीय जी को भी था, जिन्होंने स्वागत समिति के मंत्री की हैसियत से जी-जान से काम किया। पं0 अयोध्यानाथ के उत्तेजक-उत्साह का मालवीय जी बहुत प्रशंसक थे। उनके नेतृत्व में रहकर कार्य करना वे अपने लिए बहुत ही गौरवपूर्ण समझते थे। इस प्रकार से देखा जाय तो मालवीय जी के राजनीतिक गुरु अयोध्यानाथ जी ही थे। सन् 1888 में कांग्रेस के अधिवेशन में मालवीय जी ने विषय समिति की ओर से आयकर के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए किसी हद तक अप्रासंगिक ढंग से अनेक प्रमाणों द्वारा सन् 1858 की शाही घोषणा की वास्तविकता सिद्ध करते हुए मांग की कि इस घोषणा में निहित प्रणों को ईमानदारी के साथ पुरा किया जाय। उन्होंने प्रतिनिधि संस्थाओं के विस्तार की आवश्यकता पर भी जोरदार भाषण दिया। 1892 में कांग्रेस का अधिवेशन जब दूसरी बार प्रयाग में हुआ तो उसकी सफलता का पूर्ण श्रेय इन्हीं को जाता है, क्योंकि इस अधिवेशन की समुचित व्यवस्था इन्हीं के प्रयत्नों से की गयी थी।

मालवीय जी को रुपये-पैसों का लेशमात्र लोभ नहीं था, उनके अन्दर तो देशप्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। राष्ट्र प्रेम का सबसे अच्छा उदाहरण इससे अधिक क्या हो सकता है कि उन्होंने एक अच्छी वकालत छोड़कर सारा जीवन राष्ट्र की उन्नति में समर्पित कर देने का निर्णय किया। इस त्याग के सम्बन्ध में गोपाल कृष्ण गोखले ने कहा था कि त्याग तो मालवीय जी महाराज का है। वे निर्धन परिवार में जन्म और अपने ईमानदारी एवं सत्कर्मों से प्रसिद्धि पाकर वकील के रूप में बहुत धन एवं वैभव का स्वाद लिया और जब अन्तरात्मा से मातृभूमि की सेवा की पुकार उठी, तो उन्हें सर्वस्व त्यागकर पुनः निर्धनता का सुख स्वीकार कर लिया। भालवीय जी का कार्य क्षेत्र अन्य लोगों की अपेक्षा बहुत ही विस्तृत और व्यापक था। राष्ट्र सेवा में उनका योगदान इनकी वकालत से कहीं अधिक महत्वपूर्ण था। बीस वर्षों में

अर्थात सन् 1892-1911 तक जो मान-सम्मान उन्होंने एक वकील की हैसियत से प्राप्त की, उससे कहीं अधिक उन्होंने राष्ट्र-सेवा द्वारा अर्जित की।

मालवीय जी ने आजीवन हिन्दू धर्म, जाति और भारतीय राष्ट्र की निःस्वार्थ सेवा की। सन् 1930 और सन् 1932 के राष्ट्रीय संघर्षी के जमाने में भी उन्होंने जैसी राष्ट्र-सेवा की तथा सन् 1931 में लंदन में हुए प्रथम गोलमेज सम्मेलन में जिस प्रकार से गांधी जी का समर्थन किया, उनकी देशभिक्त, त्याग और राष्ट्र के आदर्शों के प्रति दृढ़ निष्ठा का अत्यन्त उज्ज्वल प्रमाण है। मालवीय जी निर्भीक एवं निरभिमानी व्यक्तित्व के धनी थे। उनकी दृढ़ता तितिक्षा और सहयोग की भावना से समन्वित थी। इसलिए वे संघर्ष के समय में भी राष्ट्रोन्नति की सम्भावनाओं पर विचार करते थे। किसी प्रश्न पर या चुनाव में हार-जीत के बाद बीती बात भुलाकर आगे की सुध लेते, प्रेम और उत्साह के साथ राष्ट्र सेवा करते। मालवीय जी के राजनीतिक कार्यों का प्रमुख मंच कांग्रेस ही था। जैसा सी0वाई0 चिन्तामिण के कथनों से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में बीस वर्ष तो संयुक्त प्रांत में मालवीय जी ने ही गंगा प्रसाद वर्मा के सहयोग से कांग्रेस का झण्डा फहराये रखा।10 कांग्रेस के मंच से इन्होंने राष्ट्र के हितों को पुष्ट किया, सरकार की दमन नीति का विरोध किया तथा राजनीतिक स्धारों की, जनता के प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व की, विधान कोंसिलों के अधिकारों के विस्तार की एवं सेना में भारतीयों को उच्चस्तरीय कमीशन दिये जाने की मांग की। उन्होंने देश की दयनीय दशा और जनता के कष्टों की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया तथा उन्हें दूर करने के लिये प्रशासकीय खर्चे को कम करना, शिल्प-विद्या की शिक्षा के विस्तार का प्रबंध करना, भारत में भी सिविल सर्विस प्रतियोगिता परीक्षा की व्यवस्था करना एवं योग्य भारतीयों को उच्च कोटि के प्रशासकीय पदों पर नियक्त करना जरूरी बताया। उन्होंने यह भी मांग की कि भारत की सीमा से बाहर आयोजित युद्धों का खर्च ब्रिटेन स्वयं वहन करे, मालगुजारी का स्थायी बन्दोवस्त किया जाय, किसानों के लगान में कमी की जाय, किसानों के पट्टों की मियाद बढ़ा दी जाय, किसानों को अनुचित लगान की वृद्धि से और जमींदारों द्वारा मनमानी बेदखली से सुरक्षित किया जाय। उन्होंने लार्ड कर्जन के विश्वविद्यालय विधेयक का विरोध करते हुए उच्चस्तरीय शिक्षा के प्रबन्ध में सरकारी अफसरों के हस्तक्षेप के वृद्धि की निन्दा की। मृदुभाषी मालवीय जी के भाषण की भाषा सदा सन्तुलित होती थी। पर उनकी आलोचना उतनी ही स्पष्ट, युक्तियुक्त और कभी-कभी काफी कठोर होती थी। सन् 1889 में नियुक्त 34 भारत मंत्री सर जॉन गोर्सट के इस विचार की कि "खर्च बढ़ा है, बढ़ना चाहिए और कम नहीं होना चाहिए'' की आलोचना करते हुए महामना जी ने कहा कि इस समय जबिक जनता की दशा दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है, खर्चे की वृद्धि केवल अनुचित ही नहीं, बल्कि निश्चय ही पापमय है। 11 देश की बढ़ती हुई गरीबी तथा उसके कारणों की समीक्षा करते हुए उन्होंने कहा कि लगभग दस करोड भारतीयों की कमाई प्रति वर्ष अंग्रेजी अफसरों के

वेतन और उनकी पेंशन के रूप में इंग्लैण्ड चली जाती है और ऊँचे पदों पर भारतीयों को भर्ती न करने की सरकारी नीति केवल अन्यायपूर्ण ही नहीं, बल्कि आत्मघाती है। 12 उन्होंने कहा कि "सरकार जनता के बिना जीवित नहीं रह सकती", यदि जनता अधिक निर्धन हो जाती है, तब सरकार कहीं भी नहीं ठहरती है, कम से कम 'सरकार' कहलाने योग्य तो वह नहीं ही है। 13 मालवीय जी ने बड़े ही सन्तप्त हृदय से सन् 1893 में कहा था कि लगभग पांच करोड़ भारतीय लोग भुखमरी जैसा दुःखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं और लाखों लोग प्रति वर्ष भुखमरी के शिकार हो जाते हैं, सरकार जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व का अनुभव ही नहीं कर रही है। उसके शासन में अन्याय, दमन और कष्ट फैला हुआ है। 14

मालवीय जी ने कहा कि इन समस्त दुष्पापों जैसे भुखमरी, अन्याय, दमन आदि से छुटकारा पाने के लिए पहले हम मन, मस्तिष्क से अपने को इस योग्य बना लें कि इंग्लैण्ड वे सब अधिकार हमको दे जो अंग्रेजों को प्राप्त है तो उस समय इंग्लैण्ड को हमें वे सब अधिकार देना ही पड़ेगा। योग्य होने का यह मतलब नहीं कि न केवल हमको उन अधिकारों को काम में लाने की और उनसे देशहित के कामों को करने की बुद्धि और योग्यता हो, अपितु यह भी कि हमारे हृदय में उनके पाने की ऐसी अभिलाषा हो कि उनको पाये बिना हम अपने को सुखी न माने और उनको पाने के लिए जितना सुख और स्वार्थ का त्याग करना जरूरी हो उसे करने को तैयार हों। 15 उनकी धारणा थी कि किसी मनुष्य अथवा किसी जाति की तब तक उन्नति नहीं हो सकती जब तक वह अपनी वर्तमान दशा से असंतुष्ट होकर उसे सुधारने का प्रयत्न न करे। 16 प्रत्येक देश या जाति का अभ्युदय मूलरूप से उसकी प्रजा के आत्मपौरुष पर निर्भर है।17 इस दृढ़विश्वास से जब हम कुछ अच्छे कामों में उद्योग या धन्धे करेंगे, तब फिर हमारे दिन लौटेंगे, हमारे देश का वैभव और गौरव बढ़ेगा।<sup>18</sup> वे चाहते थे कि हम अपने अधिकारों के लिए मर्यादा के अनुरूप आन्दोलन करें।19 सरकार और यहाँ रहने वाले लोग इन दोनों की शक्तियों को जहाँ तक अनुकूल और नियुक्त कर सकें, करें<sup>20</sup> और निष्कारण ऐसी बातें न करें जिससे सरकार और लोगों के बीच विरोध बढ़े।21

उनकी राय में देश और जाति का उद्धार करने के लिए इसके सुख, सम्पत्ति और प्रतिष्ठा पाने के लिए सब प्रकार की उन्नति-धर्म सम्बन्धी, सामाजिक, व्यापार सम्बन्धी और राजनीतिक उन्नति जरूरी है। ये सभी एक दूसरे की सहायक एवं एक दूसरे की अंग है। केवल एक प्रकार की उन्नति से हम उस स्थान पर नहीं पहुँच सकते जहाँ हम पहुँचना चाहते हैं। इस सब प्रकार की उन्नति के लिए एकता जरूरी है। परन्तु राजनीतिक और व्यापार सम्बन्धी उन्नति के लिए तो हिन्दुस्तान की समस्त जाति और धर्म के लोगों में परस्पर प्रीति और एकता की बहुत ही जरूरत है। बिना इसके हमारा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता। हम सभी लोगों को इस बात का खूब विचार कर अपने-अपने विश्वासों में जमा लेना चाहिए।22 मालवीय जी एकता को देशभिक्त से परिपृष्ट तथा

राष्ट्रीयता में परिपक्व करना चाहते थे। उनका कहना था कि प्रगाढ़ देशभक्ति में एकता उत्पन्न होती है, एकता से राष्ट्रीयता का भाव और राष्ट्रीयता के भाव से ही देश की उन्नति होती है।23 उन्होंने बताया कि जिस तरह भगवद्भक्त वे होते हैं जो अपने सभी कार्यों को भगवान् को अर्पण कर देते हैं और एकाकी लगन से भगवान् का ध्यान और उपासना करते हैं। इसी प्रकार सच्चे देशभक्त वे होते हैं, जो कुछ करें, धरें सभी कुछ देश के लिए ही हों और देश के कार्य में प्रति क्षण तत्पर रहें तथा एकाकी लगन से देश के ही ध्यान और उपासना में लगे रहें।24 वे देश के प्रति अन्राग को धर्म का महत्वपूर्ण अंग मानते थे। उनका कहना था कि सच्चा तप यह है कि अपने भाइयों के ताप से तपा जाय, सच्चा यज्ञ यह है कि जिसमें अपने स्वार्थ की आहति दी जाय, सच्चा दान यह है कि परमार्थ किया जाय और सच्ची ईश्वर सेवा यह है कि उसके दुःखी जीवों की सहायता की जाय। परमात्मा हम सभी के हृदय में व्यापक रूप से है। इसलिए हम जितने प्राणियों को प्रसन्न करेंगे, सहायता करेंगे उतना ही गुना ईश्वर को प्रसन्न करेंगे। यह सच्चा धर्म देशभक्ति के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। देशभक्ति का यह जुनून या संचार हमारे हृदय से स्वार्थ की भावना को निकालकर फेंक देगा। हम सभी कोई भी ऐसा कार्य न करें जिससे देशवासियों को किसी प्रकार का कष्ट हो एवं उसकी हानि हो, बल्कि हमें वही करना चाहिए जिसमें तमाम कष्टों के बावजूद भी देश का भला हो तथा देश की उन्नति हो। देश की उन्नति में ही अपनी उन्नति है। इस तरह मालवीय जी चाहते थे कि भारतवासी स्वार्थ सिद्धि को छोड़कर देशभक्ति को अपनायें, जिसके आगे हम अपने आप को सच्ची देशभक्ति में भाव-विभोर कर दें एवं देश के यश में ही अपना यश समझे, देश के जीवन में अपना जीवन समझें और देश की मृत्यु में ही अपनी मृत्यु समझें।25

मालवीय जी स्वदेशी की भावना को देशभक्ति का महत्वपूर्ण अंग समझते थे एवं उसका प्रचार-प्रसार आवश्यक समझते थे। उनकी धारणा थी कि गहरा, गाढ़ा, उत्कृष्ट अन्य सब भावों को दबा देने वाला अपने देश का प्रेम ही स्वदेशी का अर्थ है। स्वदेशी आन्दोलन के सन्दर्भ में उन्होंने बताया कि उसका मुख्य उद्देश्य देश की आर्थिक स्थिति को मजबूत करना है। देश की दशा तभी सुधर सकती है, जब देश में देशी वस्तुओं का व्यापार बढ़े और जो वस्तु हमारे नित्य प्रयोग की है उनका उत्पादन अपने देश में ही हो। हमारे देश में व्यवसाय एवं शिल्प की स्थिति अभी नवजात स्थिति में है। इनकी रक्षा और वृद्धि बढ़ी ही सावधानीपूर्वक करनी पड़ेगी। जिन देशों में स्वराज्य है उन देशों में इसकी रक्षा सरकार कर लगाकर एवं पूँजी देकर करती है, परन्तु अपने देश में वर्तमान में ऐसी उम्मीद नहीं की जा सकती है। इसलिए आत्मसहाय एवं स्वार्थ-त्याग से हम सभी को इसकी रक्षा करनी पड़ेगी। इसकी रक्षा करके, देश में व्यापार-वाणिज्य को बढ़ावा देकर ही हम देश को आर्थिक मजबती प्रदान कर सकते हैं। स्वदेशी के साथ ही साथ वे राजभक्ति को भी देशभक्ति का अंग मानते थे। उनके विचार से

''सच्ची देशभक्ति ही राजभक्ति है,''<sup>26</sup> ''प्रजाभक्ति ही सच्ची राजभक्ति है।"27 उनके विचार में समस्त राजभक्तों का यह कर्तव्य है कि राजभक्ति दिखलाने में देशभक्ति का सबसे पहले ध्यान रखें और राजा को उसी मार्ग पर लायें जिसमें उसके देश और प्रजा का भला हो।28 वहीं सच्ची देशभक्ति एवं राष्ट्र प्रेम है। किसी देश की उन्नति में राष्ट्रीयता का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने राष्ट्रीयता की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा कि राष्ट्रीयता ही जापान, इंग्लैण्ड आदि देशों की उन्नति का मुख्य कारण है और इसी के द्वारा भारत का भी उद्धार किया जा सकता है। राष्ट्रीयता उस भावना का नाम है जो देश में सम्पूर्ण निवासियों के हृदय में देश हित की लालसा से व्याप्त रही हो, उसके आगे अन्य भावों की श्रेणी नीची ही रहती हो। वे चाहते थे कि देश ही समस्त देशवासियों के प्रेम और भक्ति का विषय बन जाय, मतभेद, वर्णभेद और जातिभेद के होते हुए भी राष्ट्रीयता का श्रेष्ठ भाव देशव्यापी हो जाय और इतना बढ़ जाय कि उसके आगे अन्य भावों का दर्जा नीचा दिखायी देने लगे। मालवीय जी अंग्रेजी साम्राज्य के भीतर ही स्वराज्य की उपलब्धि के प्रयत्नों की पृष्टि करते हुए बताया कि प्रजा के चुने प्रतिनिधियों द्वारा प्रजा की सम्मति से राज्य के प्रबन्ध का अधिकार ही स्वराज्य है और हम भारतीय पूर्ण रूप से उसके योग्य है। उन्होंने विभिन्न देशों और विद्वानों का प्रमाण देते हुए कहा कि प्रजा के प्रतिनिधियों की सम्मति से शासन का क्रम सब सभ्य संसार में शासन का उत्तम क्रम समझा गया है। इनके अनुसार स्वराज्य जो मानव जाति के लिये सबसे बड़ा वरदान है, सबसे बड़ी नियामत है। वह केवल मनोरथ करने से नहीं मिलेगा, वरन् उसके लिए त्याग और तपस्या करनी होगी। इसके लिए हमें अपने आप में शान्ति और सहयोग, धैर्य और उत्साह, प्रज्ञा और पौरुष, तेज और सहनशीलता, प्रेम और स्वार्थत्याग तथा इनके समान अनेक उत्तम गुणों का संग्रह करना होगा। मालवीय जी के विचार से देशभक्ति ही स्वराज्य सिद्धि का पहला और सबसे बड़ा साधन है। वे चाहते थे कि देश में जहाँ तक हो सके प्राणी-प्राणी में देशभक्ति का भाव बढ़ाया जाय। जहाँ तक सम्भव हो नगर-नगर, गाँव-गाँव लोगों को स्वराज्य का अर्थ, उसकी आवश्यकता और उसकी महत्ता समझायी जाय, जिससे उनके हृदय में उसको पाने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो तथा प्रत्येक नगर एवं गाँव में सभायें स्थापित हों जो स्वराज्य प्राप्ति के लिए न्यायपूर्वक लगातार आन्दोलन करें।

मालवीय जी ने समता के आधार पर संयुक्त राष्ट्रीयता पर जोर देते हुए कहा कि किसी हिन्दुस्तानी को, चाहे वह हिन्दू, मुसलमान, पारसी हो, अपने को देशभक्त कहलाने का गौरव न प्राप्त हो, जो एक क्षण के लिए भी चाहता है कि उसका कोई देशवासी चाहे वह किसी प्रजाति या धर्म का हो, उसके विश्वास के लोगों के शासन में हो या कोई समुदाय किसी दूसरे समुदाय या समुदायों पर श्रेष्ठता प्राप्त करे। देशभिक्त की माँग है कि हम अपने समस्त राष्ट्रवासियों का समान रूप से हित चाहें। 29 उन्होंने कहा कि देवव्यास जी ने 'सब धार्मिक और

देशभक्ति कार्यकर्ताओं के लिए श्रेष्ठ आदर्श'<sup>30</sup> एक प्रार्थना के रूप में प्रस्तुत किया है कि

# ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु या कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥''

उन्होंने समस्त राष्ट्रवासियों को सम्बोधित करते हुए उनसे अनुरोध किया कि वे पार्थक्य की नीति को त्याग कर देशभक्ति के उच्च आदशों को अपनायें, जिसके द्वारा समस्त लोग कन्धे से कन्धा मिलाकर देशहित के लिए कार्य कर सकें।<sup>31</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि महामना पं0 मदन मोहन मालवीय जी का सम्पूर्ण जीवन लोगों की भलाई, सच्ची देशभक्ति एवं राष्ट्र की उन्नति में व्यतीत हुआ। महामना जी का राष्ट्र-प्रेम आज भी एक जीवंत सितारे की तरह चमकता हुआ दिखाई देता है जो अपने आप में एक आदर्श प्रस्तुत करता है।

#### सन्दर्भ

- 1. चतुर्वेदी, सीताराम : महामना मालवीय जी, पृ० 192.
- 2. लाल, मुकुट बिहारी : *महामना मदन मोहन मालवीय जीवन और नेतृत्व*, yo 28.
- 3. त्रिपाठी, रामनरेश : मालवीय जी के साथ तीस दिन, पृ० 33.
- 4. त्रिपाठी, रामनरेश : पूर्वोद्धृत, पृ० 10.
- 5. मालवीय पद्मकान्त : मालवीय जी-जीवन झलिकयाँ, पृ० 61.
- 6. *दी आनरेबल पंडित मदन मोहन मालवीय : लाइफ एण्ड स्पीचेज*, सेकेण्ड एडिशन 1918, गनेशन, मद्रास, पृ० 6-7.

- 7. वहीं, पृ0 11-12.
- 8. प्रान्तीय कांग्रेस का अध्यक्षीय भाषण, सन् 1908.
- 9. चतुर्वेदी, सीताराम : *पूर्वोद्भृत*, पृ० 42.
- 10. चिन्तामणि, सी0वाई : इण्डियन पॉलिटिक्स सिन्स म्यूटिनी, पृ० 74.
- 11. दी ऑनरेबल पंडित मदन मोहन मालवीय, वही, पृ० 206.
- 12. वहीं, पृ0 218.
- 13. *वही*.
- 14. *वही*, पृ0 223.
- 15. मालवीय जी के लेख, (सं0) पद्मकान्त मालवीय, पृ0 15.
- 16. *वही*, पृ0 51.
- 17. *वही*, पृ0 6.
- 18. वहीं, पृ0 13
- 19. *वही*, पृ0 15.
- 20. वहीं, पृ0 7.
- 21. *वही*.
- 22. वहीं, पृ0 24.
- 23. वहीं, पृ0 100.
- 24. वहीं, पृ0 108.
- 25. *वही*.
- 26. वहीं, पृ0 111.
- 27. वही.
- 28. वही.
- 29. रिपोर्ट, ट्वेंटी फोर्थ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, 1909, पु0 44.
- 30. वही.
- 31. वही.

# पंडित मदनमोहन मालवीय-एक युगद्रष्टा

डॉ. भावना त्रिपाठी \*

पंडित मदनमोहन मालवीय भारत के उन श्रेष्ठ महापुरुषों में से एक हैं, जिन्होंने अपने आध्यात्मिक सद्गुणों, नैतिक कर्त्तव्यों और सांस्कृतिक उत्कर्ष के साथ उन महान उपलब्धियों को प्राप्त करने में सफलता पायी जो सम्पूर्ण भारतवासियों के लिये वरदान सिद्ध ह्यी।

मालवीय जी 25 दिसम्बर सन् 1861 ई. को प्रयाग में जन्मे। समयानुसार शिक्षित होने के पश्चात् जीविका के क्षेत्र में उनका पदार्पण एक शिक्षक के रूप में हुआ। भारत उन दिनों अंग्रेजी दासता से ग्रसित था, और देश की सामाजिक व राजनैतिक दशा भी अधोगित पर थी। मालवीय जी भारतीय जनता की इस दिरद्रता, दुर्दशा से अत्यन्त दुःखी थे और विदेशी आधिपत्य के शोषण और ब्रिटिश अफसरों की नौकरशाही निरंकुशता ने ही उन्हें भारत के राष्ट्रोत्थान, नवजागरण तथा सांस्कृतिक चेतना के प्रति अग्रसर किया। उन्होंने भारतीयों के प्रति समाजसेवा के क्षेत्र को चुना जिससे कि उनके द्वारा तत्कालीन राजनीति में प्रविष्ट होकर, साहस और दृढ़तापूर्वक अपने देशवासियों के सामूहिक हित और उत्कर्ष के लिए पचास वर्ष से अधिक कार्य किया गया।

यह सत्य है, मालवीय जी ने पराधीन भारत के अंधकारमय वातावरण को देखा था, परन्तु उन्होंने सदैव अपनी अभिकल्पना से एक स्वशासित और स्वतंत्र भारत के सूर्य को भी देखा जो स्वतंत्रता, सर्वधर्म भाव, राष्ट्रीयता, मानवता, सामाजिकता और आर्थिक सम्पन्नता का प्रतीक हो। मालवीय जी ने राष्ट्रहित के प्रति जो विचार प्रगट किए, वह कालान्तर में यथार्थ का रूप बने, क्योंकि उनका मानना था कि प्राचीन भारत स्वतंत्र, समृद्ध और उन्नत था, वही भारत आज पराधीन है, क्योंकि हम अपने नैतिक मूल्यों को, राष्ट्रीय एकता को, स्वाभिमान को, और शिक्षा के मूल्यवान धन को गिरवी रख चुके हैं। यही कारण था, कि मालवीय जी ने स्वतंत्र भारत की कल्पना में इन सभी श्रेष्ठ विचारों को भारतीयों तक पहुँचाने की कोशिश की, जिससे जनजागरण संभव हो सका।

मालवीय जी ने इस दिशा में पहला कार्य पत्रकारिता के माध्यम से किया। सर्वप्रथम उन्होंने इसका आधार अपनी राष्ट्रभाषा 'हिन्दी' को बनाया जो समस्त भारतवासियों को मोती के समान एक माला में पिरोयी हुई थी। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रथम दैनिक समाचारपत्र 'हिन्दोस्थान' का संपादन कर महामना ने उस महान परंपरा का सृजन किया, जिससे कि युगांतर उपस्थित हो गया। सन् 1933 ई. में देश, काल और परिस्थिति के अनुसार 'सनातनधर्म' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला, जिसने देश में राष्ट्रीयता के साथ आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना का भी प्रचार-प्रसार किया। 'अभ्युदय' नामक एक अन्य पत्र में उन्होंने देश की उन्नति की बात की और अभ्युदय का अर्थ-देश का अर्थात् देशवासियों का सभी ओर से उदय बताया। सिहष्णुता, सद्भावना, स्वतंत्रता तथा सामाजिक सुधार उनकी सम्पादन नीति के मुख्य आधार बनें।

मदन मोहन मालवीय जी ने सन् 1910 में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का सुझाव दिया, जिससे यह राष्ट्रभाषा होने का गौरव पाये। इसी कारण उन्होंने व्यावहारिक तथा रचनात्मक कार्यों द्वारा हिन्दी को सच्चे अर्थों में सार्वदेशिक तथा राष्ट्रीय भाषा बनाने पर जोर दिया। वर्तमान समय में भी राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा हिन्दी पत्रकारिता को विकसित व उन्नत करने के लिए महामना के भाषा संबंधी विचार शाश्वत और सार्थक हैं। राष्ट्रीय भावों को व्यक्त करने और सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने के लिये राष्ट्रभाषा की क्या उपयोगिता होती है, यह सर्वविदित है।

मालवीय जी सदैव ऐसे शासन के विरुद्ध थे, जो निरंकुशता पर आधारित हो, अथवा परतंत्रता की बेड़ियों से बँधा हो, यही कारण था कि भारत में विदेशी हुकुमत के खिलाफ उन्होंने लोकतांत्रिक व्यवस्था का समर्थन किया। उनका कहना था कि पराधीनता से "जेता और विजित दोनों समुदायों में से मनुष्यत्व दूर भागता है—स्वतंत्रता का न होना, उन्नति के अवसरों को खोना है, उन्नति के अवसरों को खोना अधःपतन है और अधःपतन मृत्यु के तुल्य है।""

मालवीय जी ने प्रशासनिक स्वतंत्रता के साथ-साथ व्यक्तिमात्र की स्वतंत्रता पर भी बल दिया। इस व्यक्तिगत स्वतंत्रता को वह मनुष्य का मौलिक अधिकार मानते थे। उनका विचार था, कि प्रत्येक व्यक्ति और जनसमूह को सम्मानित जीवन व्यतीत करने का, संस्था संगठित करने का, सभा और प्रदर्शन आयोजित करने का, भाषण करने का, अपने विचारों को प्रकाशित करने का पूर्ण अधिकार है, जो न्यायसंगत है, अतः इन अधिकारों की रक्षा कानून द्वारा अवश्य की जानी चाहिए।<sup>2</sup>

व्यक्तिगत स्वतंत्रता का आधार लेकर ही, उन्होंने धार्मिक स्वतंत्रता पर भी अपने विचार प्रकट किए कि प्रत्येक व्यक्ति को धर्म के सिद्धान्तों और मतों पर अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार है। उनका विचार था, कि प्रत्येक कार्य करने में धर्म का पालन करना आवश्यक है। धर्म का सही अर्थ मालवीय जी ने यही बताया कि प्राणी को प्राणी के साथ सहानुभूति हो, एक दूसरे को उन्नत अवस्था में देखकर संतुष्टि हो। धर्म

<sup>\*</sup> अंश कालीन प्रवक्ता, इतिहास विभाग, आर्य महिला डिग्री कालेज, वाराणसी।

<sup>1.</sup> अभ्युदय, (प्रयाग) 19 मई सन् 1912।

<sup>2.</sup> लाल, मुकुट बिहारी, महामना मदन मोहन मालवीय-'जीवन और नेतृत्व' वाराणसी, 1978, पृ. 420

का अर्थ अंधविश्वास, छुआछूत और निर्बलता नहीं है। भारतवासियों का सच्चा धर्म उन्होंने देशभक्ति को ही माना। धार्मिक स्वतंत्रता संबंधी अपने विचारों को जनता तक पहुँचाने में उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता के सिद्धान्तों का अनुसरण किया। धर्म को वह नैतिकता का आधार मानते थे, जो व्यक्तिगत चरित्र को दृढ़ता प्रदान करने के साथ ही साथ उच्च सामाजिक व्यवहार तथा सत्कर्म की ओर प्रेरित करता है। सन् 1904 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की योजना के प्रारूप के संदर्भ में उन्होंने कहा कि ''भारत के प्राचीन धर्म की शिक्षा है कि प्रत्येक मनुष्य अपने को एक बड़ी समष्टि की इकाई समझ कर उसके हित के लिए जीवित रहे और काम करे, लोक कल्याण और लोक संग्रह को परम पुरुषार्थ समझे।3" स्वतंत्रता के साथ-साथ ही मालवीय जी साम्प्रदायिकता के विरोधी थे, यही कारण था कि जब 1909 में मुस्लिम लीग के द्वारा साम्प्रदायिक राजनीति और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की माँग गूँजी, तो उन्होंने इसका विरोध किया। यह सत्य है, कि मालवीय जी ने स्वयं 1922 में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का नेतृत्व किया था, परंतु इसके पीछे उनका एकमात्र लक्ष्य हिन्दुओं के सामाजिक संगठन को दृढ़ता प्रदान करना और धर्म की कुरीतियों को दूर करना था। स्वराज्य की माँग पर तथा देश की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने सदैव हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया, उनका मानना था कि जब तक हिन्दू-मुसलमान दोनों में प्रेम-भाव उत्पन्न नहीं होगा तब तक किसी का भी कल्याण नहीं होगा। उनके परस्पर मेल से एकता और देश की उन्नति तथा शक्ति का विकास होगा और बैर या विरोध दुर्बलता को जन्म देगी। उनकी यही कामना थी, कि दोनों साथ-साथ प्रेम पूर्वक रहें और सोलह आने राष्ट्रवादी बनने का उपाय करें, जिससे देश अपने पुराने वैभवयुक्त स्थान को प्राप्त कर सकें और भारत, भारतवासियों का ही हो जाए। 4 उन्होंने देश की उन्नति में पारसी, मुसलमान, ईसाई, यहूदी सभी के सम्मिलित प्रयास को आवश्यक बताया। मालवीय जी द्वारा जिस साम्प्रदायिकता रहित स्वतंत्र भारत का स्वप्न देखा गया, वर्तमान समय में उसकी प्रासंगिकता पूरे भारत में नितांत अनिवार्य प्रतीत होती है, क्योंकि जैसा व्यवहार हम अपने लिए नहीं चाहते, वैसा दूसरों के साथ भी नहीं होना चाहिए।

मालवीय जी सदैव भारत में राष्ट्रवादी हितों को सर्वोपिर स्थान देते थे। राष्ट्रीयता की व्याख्या करते हुए उन्होंने स्वयं कहा था— "राष्ट्रीयता उस भावना का नाम है, जो देश के सम्पूर्ण निवासियों के हृदय में देशहित की लालसा से व्याप्त हो, जिसके आगे अन्य भावों की श्रेणी नीची ही रहती है।"

उन्होंने जो विचार प्रस्तुत किए, वह पूर्णरूपेण सत्य है क्योंकि देश के प्रति प्रेम ही एकता की भावना को प्रस्फुटित करता है, और राष्ट्रीयता की भावना ही, किसी भी देश की उन्नति में सहायक होती है। उन्होंने अपने सम्पादकीय लेखों में इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि जब देशोन्नति का कार्य हमारे लिए एक व्यसन सा हो जाएगा, तो हम उसके अर्थ, त्याग को स्वीकार करने के लिए भी उद्यत हो

जायेंगे। मालवीय सदैव यही चाहते थे, कि देश ही समस्त देशवासियों के प्रेम और भक्ति का विषय बन जाये।

मालवीय जी की राष्ट्रीय भावना मानवतावादी मूल्यों पर आधारित थी। मालवीय जी प्रत्येक विद्यार्थी को देश-प्रेम और नागरिकता की ऐसी शिक्षा देना चाहते थे, जो साम्प्रदायिकता को समाप्त कर दे। उन्होंने सदैव प्राणी मात्र की उन्नित को सफल राष्ट्रप्रेम का बीज माना, जिसमें स्विहत के साथ परिहत का भी समावेश हो। वह स्वतंत्रता संघर्ष के हिमायती अवश्य थे, परन्तु पर राष्ट्र के प्रति अमानुषिक कृत्यों के घोर विरोधी थे। भारतवासियों को उन्होंने शौर्य, मनुष्यता और न्याय निष्ठा पर आधारित प्रेम सिखाया, जो मानवकल्याण का आधार था। सन् 1928 में कांग्रेस वार्षिक अधिवेशन में अध्यक्षीय उद्बोधन करते हुए उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि 'ईश्वर की सृष्टि में मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं है'', यद्यपि लोग पुरुष और स्त्री में भेद करते हैं, लेकिन जहाँ तक ईश्वर की ज्योति का संबंध है, उनमें बिल्कुल भेद नहीं।'' उनके द्वारा दिए गये, मनुष्यता के उच्च गुणों की व्याख्या उनके द्वारा भगवद्गीता के सिद्धांतों और विचारों का स्रोत थी। प्राणी मात्र की सेवा को ही उन्होंने ईश्वर की सच्ची सेवा बताया।

मालवीय जी ने स्वतंत्रता, असाम्प्रदायिकता, राष्ट्रीयता तथा मानववादी मूल्यों के समर्थन के साथ ही सामाजिकता और जनकल्याण को भी उतना ही महत्व दिया। सामाजिकता को वह मानव स्वभाव का महत्वपूर्ण लक्षण और सद्गुण स्वीकार करते थे, जिसके द्वारा न केवल व्यक्तित्व का विकास बल्कि समाज की उन्नति साध्य भी हो। सामाजिकता में जनकल्याण का समावेश और सामाजिक उत्तरदायित्व का पालन यह दोनों ही तत्व, एक दूसरे के पूरक होने के साथ-साथ राष्ट्रहित से जुड़े हैं, और एक सभ्य तथा उन्नत सामाजिक जीवन का मूल आधार भी माने जाते हैं, परन्तु जब स्वतंत्रता, उच्छुंखलता का रूप ले ले और सामाजिक उत्तरदायित्व व्यक्तिवादी उन्नति का स्वरूप धारण करें, तो राष्ट विकास संभव नहीं है। अतः यही कारण था, कि जन कल्याण की भावना से ओत-प्रोत, राष्ट्र के प्रति निरन्तर प्रयत्न को ही उन्होंने अपना परम कर्तव्य माना और ब्रितानी प्रभुसत्ता से भी उनकी यही आशा थी कि जनता की स्वतंत्रता की रक्षा हो. सामाजिक न्याय भेद-भाव रहित हो, श्रमिक जनता का विकास हो। उन्होंने आजीवन गौ सेवा की। सामाजिक जीवन में उन्नति को ध्यान रखते हुए ही उन्होंने स्त्री शिक्षा का समर्थन किया, जातीय जीवन के पुनः उत्थान के लिए उन्होंने स्त्री शिक्षा को परम आवश्यक बताया। जिसका उदाहरण वर्तमान में काशी हिन्दु विश्वविद्यालय में स्थापित महिला महाविद्यालय है।

मालवीय जी की इस जन कल्याण और राष्ट्रहित-भावना में भारत की आर्थिक उन्नति के तत्व का भी समावेश था। वह आर्थिक व्यवस्था को सामाजिक न्याय पर अवलम्बित मानते थे। उन्होंने इसी उद्देश्य से स्वदेशी आन्दोलन का भी समर्थन किया। अंग्रेजी दासता से पूर्व भारत एक सुसम्पन्न कृषि प्रधान देश था परन्तु अंग्रेजी शासनावधि में गलत नीतियों के कारणवश तथा कुछ प्राकृतिक आपदाओं के कारण, देश की आर्थिक व्यवस्था को अपार क्षिति पहुँची। मालवीय जी अपने देश को पुनः उसी आर्थिक सम्पन्नता से युक्त करना चाहते थे, जो सिदयों पहले भारत का गौरव था। अंग्रेजी सरकार द्वारा नमक पर जब कर लगाया गया तो उन्होंने इसका विरोध किया और कहा—नमक पर टैक्स लगाना सभ्य गवर्नमेण्ट के लिए एक बड़ी लज्जा की बात है। वह यह स्वीकार करते थे कि—"भारत की आर्थिक उन्नति का कृषि-व्यवसाय की उन्नति से गहरा सम्बन्ध है, और यह उन्नति तभी सम्भव है, जब भारत अपने औद्योगिक विकास के लिए अपने कुटीर उद्योगों को पुनः स्थापित करे, जिससे कृषि व्यवसाय का भी पुनरुत्थान हो।"

मालवीय जी ने पराधीन भारत को जिस तरह विवशता में बंधा हुआ अनुभव किया और उसे बंधनमुक्त करने का जो संकल्प उनके विचारों और कार्यों द्वारा किया गया, सौभाग्यवश उस स्वप्न को यथार्थ में परिणत करने का अवसर भी उन्होंने कालान्तर में स्वप्रयत्न से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के रूप में पाया। यह विश्वविद्यालय मालवीय जी की सबसे बड़ी कृति है, जहाँ से हिन्दी का भी प्रसार तेजी से हुआ। यहाँ प्रभु सेवा के साथ देश-सेवा की शिक्षा, राष्ट्र-सेवा के साथ समाजसेवा तथा जन कल्याण की भावना, प्राचीन से अर्वाचीन ज्ञान का समन्वय वर्तमान समय में द्रष्टव्य है।

मालवीय जी भारत के गौरव स्तम्भ थे। उनकी देशभिक्त और सेवा भारतीयों को नया उत्साह देती रहेगी। देश की पुकार पर उन्होंने अपनी वकालत छोड़ दी। देश में शिक्षा का प्रचार कर उन्होंने अमूल्य सेवा की है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उनका सर्वोत्तम स्मारक है। मालवीय जी के विचार आज भी प्रासंगिक और उपयोगी हैं, क्योंकि महामना के उच्च विचार सार्थकता का रूप तो अवश्य ले चुके हैं, परंतु वर्तमान और भावी भारत में सदैव ऐसे महापुरुषों की आवश्यकता है, जो चिरत्र-निर्माण की नींव से सुदृढ़ और सुन्दर राष्ट्र-निर्माण का भवन तैयार कर सकें।

#### सन्दर्भ

- 1. अभ्युदय, (प्रयाग) 19 मई सन् 1912।
- 2. लाल, मुकुट बिहारी, महामना मदन मोहन मालवीय-'जीवन और नेतृत्व' वाराणसी, 1978, पृ. 420
- 3. उपरोक्त।
- 4. हिन्दू महासभा, बेलगाँव अधिवेशन, उद्बोधन, दिसम्बर 1924।
- व्यास, लक्ष्मीशंकर, महामना मालवीय और हिन्दी पत्रकारिता, वाराणसी, 1987,
   पृ0 61 ।
- 6. प्रोसीडिंग, इण्डियन लेजिस्लेटिव कौंसिल सन् 1915।

# मालवीय जी का राष्ट्र प्रेम

डॉ0 नन्द बहादुर सिंह \*

## सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया। देशभक्त्याऽत्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

महामना दिव्य विभूति थे, उनका प्रत्येक कार्य राष्ट्र और समाज को समर्पित था। इसी उद्देश्य से उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र परिचय पत्र पर अंकित कराया।

जिसका अर्थ है-सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्यार्जन, देशभक्ति, आत्मत्याग से सदा सम्मान प्राप्त करने योग्य बनो।

महामना का जन्म पौष कृष्ण 8 बुधवार संवत् 1918 विक्रमी 25 दिसम्बर 1861 में तीर्थ स्थल प्रयाग में एक साधारण परिवार में हुआ था। इनकी सादगी, देशभिक्त इनके व्यवहार से ही झलकती थी। इनके अन्दर देश प्रेम कूट-कूट कर भरा था। जो इनके व्यवहार तथा कार्य को देखकर व्यक्ति अनायास सोचने के लिए बाध्य हो जाता है। राष्ट्र प्रेम की अनुभूति इनके विद्यार्थी जीवन से ही परिलक्षित होने लगी थी। इनके हृदय को लोक कार्यों के प्रति संवेदना हमेशा उद्वेलित करती रहती थी। मन की उद्वेलिता ने ही तो उनको सफलता के चरम शिखर पर सुशोभित किया, तभी तो आप महामना कहलाये। अर्थात् इनका जन्म जनमानस के धन्य के लिए ही हुआ था। सांसारिक मोह माया को त्याग कर इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र को समर्पित कर दिया। आज मन यूँ ही यह कहने को विवश हो जाता है-

हे महामानव! राष्ट्र के सजग प्रहरी, तुमको शत् शत् नमन। तेरी सादगी तथा उच्च विचार ने देश के निर्माण में दिया अक्षय दान॥ तेरे इस अटूट संकल्प ने दिया देश को अभय दान। इसीलिए देश-विदेश में जन-जन तक पहुँचा, तेरे संकल्प का संदेश॥

महामना पं0 मदन मोहन मालवीय जी प्रखर राष्ट्रभक्त, महान विद्यानुरागी, साहित्यसंस्कृति और मूल्यों के प्रबल संरक्षक थे। वे देश की आजादी की प्राप्ति के योद्धरती थे, ही उससे आगे एक भविष्य चिंतक के रूप में उनका दूरगामी चिन्तन यह था कि आजादी मिलने के बाद वह कैसे अनवरत अक्षुण्ण बनी रहे। देश में राष्ट्रभक्ति से भरे ऐसे विचारों का प्रवाह हो जिससे देश में राष्ट्र प्रेम का विचार जन-जन में अनवरत प्रवाहित होता रहे।

महामना ने अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी महान संस्था का निर्माण किया। वे अच्छी तरह जानते थे कि वर्तमान पीढ़ी अपने संघर्षों से किसी मूल्य पर आजादी लेकर रहेगी, लेकिन आजादी मिलने के बाद जब सत्ता देशी लोगों के हाथों में होगी, इस राष्ट्र के संचालन के लिए हर क्षेत्र के विशेषज्ञों की जरूरत होगी। लोगों को मिली आजादी को बचाये रखने के लिए राष्ट्रप्रेम का जज्बा भी होना चाहिए। आजादी के बाद जरूरत पड़ने वाले इन्हीं तत्वों की पूर्ति के लिए महामना ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की।

महामना का जीवन स्वतंत्रता आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलन तथा राष्ट्र-प्रेम से ओत-प्रोत था। उनके मन में राष्ट्र के प्रति कुछ कर गुजरने का जज्बा था। उन्होंने इस जज्बे को कार्य क्षेत्र में परिणत किया, जिसका जीता जागता प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उन्होंने उच्च न्यायालय के वकालत का त्याग किया। परन्तु 1923 में चौरी-चौरा काण्ड में अभियुक्त के पक्ष में बहस के लिए उनके मन में फिर से वकालत की भावना जागृत हुई और पुनः हाई कोर्ट में उपस्थित होकर देश के 156 आन्दोलनकारियों को फाँसी के फन्दे से बचाया। आपके वकालत जीवन की कुछ विशेषताएँ थीं। गरीब से तथा सार्वजनिक हित के लिए कोई फीस नहीं लेते थे।

इनके राष्ट्रप्रेम के विभिन्न पक्षों को इस प्रकार देखा जा सकता हैं–

## स्वदेशी-आन्दोलन में भूमिका

मालवीय जी 20 वर्ष की आयु से ही स्वदेशी आन्दोलन से जुड़ने लगे थे। इन्होंने उद्योग-धन्धों के संरक्षण हेतु देशी तिजारत कम्पनी की स्थापना किया। प्रयाग इण्डस्ट्रियल एसोसिएशन का गठन करके स्वदेशी आंदोलन को नई दिशा दी। इन्होंने अधिवेशनों, सम्मेलनों तथा प्रदर्शनियों के माध्यम से उद्योग धन्धों के उत्थान के लिए सफल प्रयास किया। इनके लगातार प्रयत्नों के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने भारतीय औद्योगिक आयोग का गठन किया।

मार्च 1932 में आपने अखिल भारतीय स्वदेशी संघ काशी की स्थापना की और स्वदेशी आंदोलन को तेज किया। मालवीय जी का यह प्रयास था कि स्वदेशी से देश में सभी लोग सुखी होंगे तथा देश की धन सम्पत्ति की समृद्धि होगी एवं लोगों को रोजगार मिलेगा।

## हिन्दी भाषा-संरक्षण आन्दोलन

मालवीय जी ने हिन्दी भाषा-लिपि के संरक्षण साहित्य के उत्थान हेतु 1884 में हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा की स्थापना की। यही सभा आगे चलकर नागरी प्रचारिणी सभा के गठन का आधार बनी। जिसके मुख्य सचेतक मालवीय जी थे। नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से युक्त प्रान्त के सरकारी काम-काज स्कूलों तथा न्यायालयों में हिन्दी भाषा के उपयोग के लिए उठे आन्दोलन की मालवीय जी ने अगुवाई की। इनके सतत् प्रयास से नागरी भाषा लिपि की राजाज्ञा जारी हुई। यह एक कनेर संग्राम के प्रतिफल के रूप में था। प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता आपके द्वारा की गई। कलकत्ता, मुम्बई, काशी तथा पंजाब में हिन्दी साहित्य सम्मेलनों की अध्यक्षता आपके द्वारा की गई।

#### साम्प्रदायिक एकता के पक्षधर

भारत एक धर्मिनरपेक्ष राष्ट्र है। यहाँ विभिन्न मतावलिम्बयों तथा विभिन्न धर्मों के लोगों को समभाव से देखा जाता है। इनके प्रति किसी भी प्रकार का भेदभाव तथा अनदेखी हमारे संविधान में पूर्ण रूप से वर्जित है। हिन्दू धर्म के पक्षधर होते हुए भी कभी मुस्लिम विरोधी नहीं रहे। यह इनके कार्यों से स्पष्ट जाहिर होता है। जब भी इनको तिनक महसूस हुआ कि मुस्लिम वर्ग के साथ अन्याय हो रहा है तो वहाँ इसका पुरजोर शब्दों में विरोध करते थे। क्योंकि अंग्रेजों की तरफ से हमेशा यह प्रयास किया जाता रहा कि हिन्दू-मुसलमानों के बीच दुराव पैदा किया जाय जिससे ये आपस में संगठित न होने पाए।

अनेक बार इन्होंने हिन्दू हितों के खिलाफ मुसलमानों को विशेष सुविधा दिलाने का प्रयास किया। आपके द्वारा अनेक मस्जिदों का जीर्णोद्धार कराया गया। मालवीय जी सभी धर्मों का आदर करते थे। गिरजाघरों में भी आपके द्वारा हाथ में बाईबल लेकर प्रार्थना की गई।

1910 में कलकत्ता में हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्मेलन के आयोजन में आपने मुख्य भूमिका निभाई। नागपुर में अखिल भारतीय हिन्दू मुस्लिम एकता की अध्यक्षता की। इन्होंने हिन्दू समाज को जागृत करने के लिए हिन्दू समाज में फैली अनेक कुरीतियों तथा कुप्रथाओं के विरोध में अपनी आवाज उठाई। धर्म तथा संस्कृति के वास्तविक मर्म को भली भाँति समझने के लिए लोगों को प्रेरित किया। इन्होंने हिन्दू समाज को संगठित करने के लिए परस्पर प्रेम की वृद्धि तथा आपसी सहयोग एवं सौहार्द पूर्ण वातावरण बनाने की पुरजोर कोशिश किया। हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों, छुआछूत तथा निम्न जातियों के साथ भेदभाव करना तथा उनको अपमानित करने का विरोध किया। राष्ट्र को एकसूत्र में संगठित होने को प्रेरित किया जिससे राष्ट्र मजबूत राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित हो। मालवीय जी रूढ़िवादिता तथा पाखण्ड के खिलाफ थे। उन्होंने देशवासियों को सब कुरीतियों से दूर हटकर राष्ट्र प्रेम में तथा राष्ट्र के नवनिर्माण में लगने को कहा तथा अन्याय एवं शोषण के खिलाफ हमेशा अपनी आवाज को ऊँचे शब्दों में जोर देकर कहा। इनके देश प्रेम ने राष्ट्र के लोगों को झकझोर कर रख दिया तथा कार्य को सही दिशा में परिणत करने की प्रेरणा दिया। मालवीय जी केवल भाषण तथा उपदेशों तक ही सीमित नहीं थे। उन्हें तब संतोष होता था जब उस कार्य को संपादित करते थे। चाहे हरिजनोद्धार का कार्यक्रम हो, प्रयाग का कुम्भ स्थल हो, 1930 में दिल्ली के अछूतों द्वारा भोजन ग्रहण करना हो या बम्बई का स्पृश्यता निवारण हो, यह सब उनके कार्यों से झलकता है।

इनकी राष्ट्र भक्ति तथा देशभक्ति को देखकर महात्मा गाँधी ने कहा—

"मैं मालवीय जी से बड़ा देशभक्त किसी को नहीं मानता। मैं सदैव उनकी पूजा करता हूँ। जीवित भारतीयों में मुझे उनसे ज्यादा भारत की सेवा करने वाला भी कोई दिखाई नहीं देता।"

#### आन्दोलन तथा समितियों का माध्यम

इन्होंने समस्याओं के समाधान का माध्यम आन्दोलन तथा समितियों को बनाया। यही एक ऐसी तलवार थी जिसके माध्यम से समाज में फैली कुरीतियों तथा बुराइयों के ऊपर संहार करके उनको समाप्त किया जा सकता था। यह प्रयत्न एक सफल एवं सार्थक प्रयास था। चाहे वो उनके किशोरावस्था का मिर्जापुर का गोरक्षा का भाषण हो या हरिद्वार में गोरक्षा संगठन की स्थापना हो, चाहे काशी का गोरक्षा अधिवेशन हो या मथुरा की गोचर भूमि ट्रस्ट की स्थापना। इन्होंने गोरखप्र, नासिक, हरियाणा, कलकत्ता इत्यादि स्थानों पर गोरक्षा से सम्बन्धित कार्यों में अपनी सहभागिता किया तथा लोगों को प्रेरित किया कि, हर प्रकार से गोरक्षा का उद्धार होना चाहिए। इन्होंने इस कार्य हेत् जन आन्दोलन को एक माध्यम बनाया जिससे बुराई को जन मानस के बीच से समाप्त करने के लिए लोगों को प्रेरित किया। इनका आन्दोलन केवल गोरक्षा तक ही सीमित नहीं रहा अपितु गंगा नहर योजना से भी इनका नाम जुड़ा। गंगा की अविरल धारा को रोकने की बात आयी तो इन्होंने गंगा सभा के नाम से एक संस्था को स्थापित कर डाला तथा उत्पन्न समस्या का समाधान करवाया चाहे, वह समस्या पुल निर्माण की हो अथवा सिंचाई की।

महामना कभी शांत बैठने वाले लोगों में से नहीं थे उनका ध्यान हमेशा समस्याओं की तरफ रहता था। जहाँ उनको समस्या दिखाई देती थी वहाँ कूद पड़ते तथा समस्याओं से जिनत पीड़ा के लिए उन्होंने अखिल भारतीय सेवा समिति का निर्माण कर डाला जिसके माध्यम से समाज में आपसी सौहार्द को बनाए रखना समाज के असहाय उपेक्षितों की सेवा करना था। इस कार्य में सहयोग करने हेतु सामाजिक कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना तथा सेवा दल का गठन इत्यादि भी इन्होंने किया।

## शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय योगदान

इन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। महामना द्वारा उत्तर भारत में स्थापित अनेक स्कूल कालेज हैं, जो जनमानस के संज्ञान में नहीं हैं। शिक्षा के क्षेत्र में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना से महामना की ख्याित देश तथा विश्व में हुई और इसको शिक्षा के क्षेत्र में एक आन्दोलन का रूप दिया गया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की सोच इनके विद्यार्थी जीवन से जागृत हुई और वर्ष 1884 में संकल्प के साथ ही अपनी योजना को साकार रूप देने के लिए तन, मन, धन से लग गए। इस योजना को मूर्त रूप देने के लिए

धन का अभाव इनके लिए एक अवरोध था, परन्तु धनाभाव इनके मन को आगे बढ़ने से नहीं रोक पाया। विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए आपने देश एवं विश्व के शैक्षणिक इतिहास का अध्ययन किया। फिर क्या था निकल पड़े अपने मार्ग पर और चले तो फिर रूके नहीं और विश्वविद्यालय के लिए इन्होंने धन संग्रह कर ही डाला। कहीं-कहीं ऐसे भी प्रसंग आए जहाँ महामना को अपमानित भी होना पड़ा। इन सब बातों को नजरअंदाज कर आगे बढ़ते चले गये। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय महामना की अनुपम कृति है जो उनकी स्मृतियों को चिरस्थायी रखने के लिए पर्याप्त है।

महामना के कार्यों का अवलोकन करने से यह पता चलता है कि वे कितने त्यागी तथा सच्चे राष्ट्र भक्त थे। उनके त्याग तथा बिलदान ने उनको महान बना दिया। उनके इन विचारों से ही पता चलता है कि मुझे राज्य, स्वर्ग, मोक्ष की कामना नहीं है। मेरा जीवन दुःखी प्राणियों के लिए समर्पित है। मैं ऐसे व्यक्तियों की सेवा में सम्मिलित होकर परम

सुख की अनुभूति करता हूँ। अन्त में इनके इस उद्गार को कहने में तिनक संकोच नहीं है-

## न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्ग नाऽपुनर्भवम। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

#### संदर्भ स्रोत

- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र परिचय पत्र पर अंकित श्लोक
- 2. डा० उमेश दत्त तिवारी, महामना पं० मदन मोहन मालवीय संक्षिप्त जीवन परिचय, प्र० 5
- 3. लेखक द्वारा स्वरचित काव्यांश
- 4. डा० उमेश दत्त तिवारी, महामना पं० मदन मोहन मालवीय संक्षिप्त जीवन परिचय, प्र० ७
- 5. उपरोक्त, पृ0 12
- 6. उपरोक्त, पृ0 21
- 7. उपरोक्त, पृ0 23

# महामना के तेजस्वी व्यक्तित्व का परिचायक उनकी वाणी व वेशभूषा

मृदुला पाण्डेय \*

पण्डित मदन मोहन मालवीय महापुरूष और श्रेष्ठ आत्मा थे। उन्होंने धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आदि बहुत-से क्षेत्रों में लोगों की उत्कृष्ट सेवायें कीं। ईश्वरभक्ति और देशभक्ति मालवीयजी के जीवन के दो मूल मन्त्र थे। इन दोनों का उत्कृष्ट संश्लेषण, ईश्वरभक्ति का देशभक्ति में अवतरण तथा देशभक्ति में ईश्वरभक्ति में पिरपक्वता उनके व्यक्तित्व का विशिष्ट सद्गुण था। उनकी धारणा थी कि "मनुष्य के पशुत्व को ईश्वरत्व में पिरणत करना ही धर्म है। मनुष्यत्व का विकास ही ईश्वरत्व और ईश्वर हैं और निष्काम भाव से प्राणिमात्र की सेवा ही ईश्वर की सच्ची आराधना है।"1

#### महामना मालवीय को वेशभूषा और उसके रंग तथा उनकी अर्थवक्ता

मानव जीवन में रंग का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक वस्तु कोई न कोई रंग लिए हुए है। रंगों के प्रति मानव का आकर्षण कभी घटा नहीं है। इसीलिए तो आदिम गुहावासियों से लेकर आधुनिक मानव तक ने संसार के निर्माण में रंग का सहारा लिया है। कमरे की रंग व्यवस्था से लेकर बाग-बगीचों में फूल-पौधों के रंगों का अपना एक प्रभाव होता है जो मानव की मानसिक भावनाओं को उद्वेलित करने का शक्ति रखता है। हमारे मन की भावनाओं के साथ रंगों का गहरा सम्बन्ध होता है। भावनाओं के आधार पर ही हम रंगों का पसंद या नापसंद करते हैं। रंगों की अनुभूति मानसिक प्रतिक्रिया पैदा करती है जैसे नीला व हरा रंग ठंडक का अहसास कराते हैं। लाल और संतरी गर्मी का अहसास कराते हैं। इस मानसिक प्रतिक्रिया के आधार पर रंगों को ठंडे व गर्म रंगों में विभाजित किया जाता है। हरा, नीला, बैंगनी एवं इनसे बनने वाली रंगतें ठंडे रंग माने जाते हैं। जबिक लाल, पीला, संतरी और इनसे बनने वाली रंगतों को गर्म रंग माना जाता है।

साधारणतः रंगों के निम्न प्रभाव होते हैं-

- 1. लाल- उत्तेजना, प्रसन्नता तथा उल्लास, विप्लव, राष्ट्र-प्रेम, युद्ध, भय तथा शंका, क्रोध, घृणा, ऊष्णता, प्रेम, कामुकता तथा आवेग, ओज, अराजकता आदि।
- 2. नीला- शीतलता, राजत्व, सत्यतता, आनन्द, रात्रि एवं आकाश, निराशा, दुःख तथा मलिनता, दूरी, मानसिक अवसाद, उद्विग्नता, स्थिरता तथा दृढ़ता।
- 3. हरा- शिथिलता तथा विश्राम, सुरक्षा, मनोहरता, वसंत, प्रजनन तथा विकास, प्रफुल्लता एवं प्रचुरता, ईर्ष्या, अशक्तता।

- 4. नारंगी- ज्ञान, वीरता, प्रेरणा, लपट।
- **5. बेंगनी-** राजसी, सम्मान, रहस्य एवं मृत्यु।
- 6. श्रेत- शान्ति, एकता, स्वच्छता, उज्जवलता।
- 7. श्याम- अवसाद, अंधेरा, भय, बुराई।
- 8. पीला- आशावाद, प्रसन्नता, प्रकाश, बुद्धिमत्ता एवं दिव्यता का प्रतीक माना जाता है। संसार के सम्पूर्ण सौन्दर्य को तराजू के पलड़े में रखकर एक कमल से तौल दिया। फिर भी कमल भारी ठहरा। भगवान् के नेत्र, मुख, कर, चरण-सभी कमल बन गये और जिसके भी सौन्दर्य ने हमारे हृदय को बन्दी बनाया उसके रूप को भी हमने कमल की कसौटी पर कसकर जाँचा। किवयों ने कमल को सर्वश्रेष्ठ सुमन कहा, सबसे पिवत्र पुष्प माना और उसे फूलों का राजा ठहराया। सरस्वती जी भी श्वेत पद्मासना हैं और लक्ष्मी जी को कमल ही सुहाता है, और उस शतदल कमल की पंखुड़ियाँ एक सी सुन्दर, एक सी कोमल, एक सी मनोहर और एक सी गन्धवाली हैं।

मालवीय जी उच्चकोटि के व्यक्ति थे, वे तगड़े नहीं, नाजुक थे। जैसा दुबला-पतला नाजुक शरीर वैसी ही हल्की से वेश-भूषा, और जैसा उनका बाह्य सफेद था वैसा ही शुभ्र निष्कलंक मन और चिरत्र भी। उन्हें देख पुराने ऋषि और महर्षियों का स्मरण हो आता था। इसीलिए अनेक समाचारपत्रों ने उन्हें महर्षि की उपिध से विभूषित कर दिया था।

## मालवीय जी का व्यक्तित्व व वेशभूषा का पारस्परिक सम्बन्ध

मालवीय जी के परिवार में पहले सिर पर पंडताऊ टोपी, कलीदार अंगरखा और देशी जूता पहनने का चलन था। उनकी पोशाक भी पहले यही थी। मऊ की बनी हुई रेशमी किनारे की बारीक और चौड़े पनहे की धोती, पैजामा उनको बहुत पसन्द थी। लम्बी बन्ददार अचकन, सिर पर भली-भाँति संवारा हुआ विशेष प्रकार की साफा, गले में घुटनों तक लटकता हुआ दुपट्टा एवं ललाट पर मलयागिरि चंदन उनके सुधर और गौर वर्ण पर विशेष शोभा देते थे और देखने वाले के मन पर शीतल आईज्योति बिखेरता था। पगड़ी और दुपट्टे के सँवारने में वे काफी सावधानी रखते थे। मध्यवय में ही उन्होंने चमड़े के जूतों के बजाय रबर की तली के जूते पहनना शुरू कर दिये थे क्योंकि उन्हें पशुबलि आदि हिंसात्मक प्रयोगों पर विश्वास नहीं था। वे उसे तामसिक प्रक्रिया समझते थे। जाड़ों की ऋतु में वे ऊनी लबादे का तथा शाल (चादर) का भी प्रयोग करते थे। पृजा-पाठ के समय, कथा स्नाते समय

तथा भोजन करते समय वह शुद्ध रेशमी वस्त्र का प्रयोग करते थे। सन् 1920 के बाद वे खद्दर का प्रयोग विशेष रूप से करने लगे थे।

मालवीयजी की वेशभूषा से भारतीयता स्पष्ट रूप से झलकती थी, उनका श्वेत परिधान उनके शान्ति, एकता, उज्ज्वलता और सात्विक व्यक्तित्व का प्रतीक है। हर दृष्टि से उनकी पगड़ी-दुपट्टा और प्रशस्त ललाट पर चंदन का टीका उनके शुभ, बुद्धिमत्ता एवं दिव्यता का प्रतीक थे। मालवीयजी के वस्त्र शुभ रंग के ही होते थे।

### महामना मालवीयजी के व्यक्तित्व निर्माण में उनकी खान-पान की भूमिका

मालवीयजी के रहने-सहने तथा खाने-पीने का ढंग सादा, सरल, स्वच्छ था। महामना की दैनिकचर्या में प्रातः ब्रह्ममुहुर्त में खुले वातावरण में टहलना, तैल मालिश, व्यायाम और सूर्योदय के पूर्व स्नान अनिवार्य था। मालिश के बाद पूज्य मालवीयजी महाराज स्नान करते थे। उसमें देशी साबुन, भरसक हिन्दू विश्वविद्यालय का बना हुआ इस्तेमाल करते थे। वे प्रातःकाल सन्ध्योपासना के उपरान्त मिश्री और दूध तथा कोई फल, मध्याह्न को भोजन के बाद गाय के दूध का मट्ठा, सायंकाल को कुछ फल तथा रात्रि को भोजन के कुछ देर बाद गौ के दूध का सेवन करते थे। युवावस्था में वे सायंकाल के समय 30-40 बादाम पिसवा कर पी लिया करते थे। फलों में उन्हें सेब बहुत पसन्द था। गर्मी की ऋतु में सायंकाल को बिना भाँग की ठंढई तथा रात्रि को चूसे जाने वाले आमों का भी सेवन करते थे। जैसे-जैसे बुढ़ापा बढ़ता जाता था, आहार की मात्रा घटती जाती थी, पर दूध और मक्खन की पुरानी मात्रा बुढ़ापे में भी बनी रही। उनका कहना था कि "बुढ़ापे का जिउ, दूध और घउ।"2

शाकाहारी भोजन में चाय, काफी, लहसुन, प्याज, मादक द्रव्य तथा गैस मिश्रित पेय पदार्थों का कोई स्थान नहीं था। वे तो मिर्च, मसाला तथा पान का भी सेवन नहीं करते थे। मनुष्य जैसा भोजन करता है वैसा ही उसका व्यवहार हो जाता है, मालवीयजी ने उसे तामसिक प्रक्रिया कहा है।

# महामना मालवीय की वक्तृत्व कला और उनका व्यक्तित्व धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचिमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥<sup>3</sup>

'धेर्य, क्षमा, बुरी वृत्तियों को दमन करना, चोरी न करना, शौच, आत्मनिग्रह, विवेक, विद्या, सत्य, क्रोध न करना-ये धर्म के दश लक्षण हैं।'

मालवीयजी ''अद्वितीय वक्ता'' थे। उनके भाषणों में जैसा कि सच्चिदानन्द सिन्हा ने बताया ''अनमोल वाक्शक्ति के साथ-साथ प्रभावकारी माधुर्य और गम्भीरता का अनुपम सम्मिश्रण रहता था।''<sup>4</sup>

"उनके मुख से दूसरों के लिए सदा मिठास टपकती थी।"5

''तप अपने उद्देश्य, प्रयोजन या गरज से अच्छा या ब्रा, ऊँचा या नीचा, तामसिक, राजसी और सात्त्विक एवं कायिक, वाचिक और मानसिक कहलाता है। जो काम निष्काम भाव से, फल की इच्छा त्याग कर, शम-दम से सम्पन्न होकर, श्रद्धा और धैर्य के साथ मन, वाणी या शरीर से किया जाता है, वह 'सात्त्विक तप' कहलाता है। मन को जीतना अर्थात् काम-क्रोध-लोभ-मोह से बचना और शुद्ध संकल्प-युक्त रहना, किसी विषय-वृत्ति के कारण विक्षिप्त होकर फिर भी उस पर विजय प्राप्त करना. व्यवहार काल में छल-कपट. धोखा ओर फरेब से मन को दूर रखना, मन को सात्त्विक बनाना-यह 'मन द्वारा सात्त्विक तप' करना है। 'वाणी का सात्त्विक तप' यह है कि जो वाक्य असत्य, दु:खदायी, अप्रिय और खोटा हो उसको किसी समय, किसी भी अवस्था में मुँह से न निकालना, बल्कि प्रिय, सत्य, मीठे और मधुर वचन बोलना- यह वाणी द्वारा सात्त्विक तप करना है। शरीर से अर्थात् शरीर के अवयवों से, हस्तपादादि कर्मेन्द्रियों के द्वारा दूसरों की सहायता और सेवा करना, गिरे हुए को उठाना, देश और जाति के लिए, अपने शरीर के दुःख और कष्ट की परवाह न कर, बल्कि आवश्यकता हो तो धर्म और परोपकारार्थ प्राण अर्पण कर देना- यह 'काया का सात्त्विक तप' है। परन्तु अपनी स्तृति, मान, पूजा, सत्कार, प्रतिष्ठा और नाम का भोग-विलास के लिए इन्हीं सब कामों को मन, वाणी या शरीर द्वारा करना इनको राजसी बना देता है। जो तप अविवेक से, दूसरों को हानि पहुंचाने, दिल दुःखाने, द्वेष और शत्रुता से किया जाता है—वह 'तामसी' है''।

## नैतिक मूल्यों से समन्वित उच्चकोटी के सम्पादक

सन् 1886 में जब मालवीय जी कलकत्ता कांग्रेस में भाग लेने गये तो वहां कालाकांकर के राजा रामपाल सिंह भी एक डेलीगेट की तरह से गये थे। अन्य श्रोताओं की भाँति वह भी मालवीयजी की वाणी एवं विचारों से अत्यधिक प्रभावित हुए। यह जानने पर कि मालवीय जी उस समय गवर्नमेंट इण्टर कालेज में अध्यापक थे. उन्होंने उनसे आग्रह किया कि वह अपने विचारों का प्रचार-प्रचार करने के लिए इलाहाबाद में अध्यापक की नौकरी छोड़ कालाकांतर आ करके उनके द्वारा प्रकाशित 'हिन्दोस्थान' अखबार के सम्पादक बने। मालवीयजी 'हिन्दोस्थान' का सम्पादक बनना तो स्वीकार किया किन्तु एक शर्त रख दी। उन्होंने राजा रामपाल सिंह जी से कहा कि राजा-महाराजा लोगों के लिए मद्य-पान एक साधारण आदत के रूप में स्वीकार्य है, किन्तु उनका इतना निवेदन या आग्रह स्वीकार करना पड़ेगा कि यदि कभी भी वह मद्य-पान किये रहें तो उस अवस्था में उनको अपने पास न बुलायें या उनके कार्यालय में न आयें। राजा रामपाल सिंह ने यह शर्त स्वीकार कर ली। जैसा मालवीय जी को अन्देशा था, एक दिन मद्य-पान किये होने के बावजूद, मालवीय जी से सलाह-मशविरा करने के उद्देश्य से राजा रामपाल सिंह उनसे मिले। अपने निश्चय के पक्के मालवीय जी ने उस मुलाकात के बाद ही तत्काल राजा रामपाल सिंह को अपना त्याग-पत्र भेजते हए अनुरोध किया कि उन्हें 'हिन्दोस्थान' अखबार के सम्पादक

के पद से मुक्त कर दिया जाये। राजा रामपाल सिंह को अपनी भूल पर बहुत पश्चाताप हुआ और उन्होंने मालवीय जी से बार-बार कहा कि भविष्य में फिर ऐसी स्थिति कभी नहीं उत्पन्न होगी। किन्तु मालवीय जी ने कहा कि यदि कोई आदमी अपनी बात पर अडिंग नहीं रह सकता तो यह उसके अच्छे व्यक्तित्व का परिचायक नहीं हो सकता अतः उन्हें सम्पादक की जिम्मेदारी से मुक्त कर ही दिया जाये।

'हिन्दोस्थान' अखबार से अलग होने के बाद भी पत्रकारिता से महामना के सम्बन्ध जुड़ा रहा। इलाहाबाद में आकर उन्होंने 1907 में 'अभ्युदय' तथा 'लीडर' अखबार निकाले। महामना के एक पत्र का नाम ही 'अभ्युदय' था, जिसके मुखपृष्ठ का आदर्श वाक्य था- ''सबसे ऊँचा पर्वत नगाधिराज हिमालय है। हमारी अभिलाषा है कि हमारे देश का अभ्युदय भी उतना ही ऊँचा हो।'' मालवीय जी समाचार पत्र के महत्त्व को पहचानते थे। यह उन्हीं का कथन था 'जब फौज हो कमजोर तो अखबार निकालो। इसका तात्पर्य यह है कि जब शासन से लड़ने के लिए शासन की फौज के सामने जन-बल पर्याप्त न हो तो अखबारों के लेखों के द्वारा शासन व शासक को ऐसी चोट पहुंचायी जाये जिससे शासन को हार कर जनता की बात माननी पड़े।'

उनकी सफलता के विषय में एक तत्कालीन कवि का विचार है-'हिन्दी भाषा में जदिए, प्रचलित पत्र अनेक। ये है हिन्दुस्तान, ही ता में दैनिक एक॥'

मालवीय जी समाचार पत्रों का मुख्य विषय देश-सेवा, स्वतंत्रता, देशभक्ति आदि पर समाचार पत्रों की स्वाधीनता, कृषि, खेलकूद, विज्ञान आदि होता था। पत्र में तत्कालीन समाज और उसकी आवश्यकताओं का चित्रण अंकन। समाचारों के संकलन, पत्र के मेकअप, गेट-अप करेक्शन, प्रूफ रीडिंग में एक-एक बात की पूर्णतया जाँच-परख करते।

"Draw not the sword nor bend the bow, When Faced with cannon bring out a newspapers."<sup>7</sup> Akbar allanabadi's witty couplet

## खींचो न कमानों को न तलवार निकालो। जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो॥

मालवीयजी का विचार था कि हिन्दी भाषा रोमन या फारसी लिपि के बजाय नागरी लिपि में ही लिखी जाय। उनका कहना था— ''भारतवासियों को अपनी भाषा विदेशी अक्षरों में लिखने को कहना वैसा ही है जैसा कि अंग्रेजों से अपनी भाषा को नागरी अक्षरों में लिखने को कहना''।<sup>8</sup>

# ज्ञानं प्राप्य तु संसारे यः परेभ्यो न यच्छति। ज्ञानरूपो हरिस्तस्मा अप्रसन्नो हि लक्ष्यते॥

ज्ञान प्राप्त करके जो दूसरों को नहीं देता, उसके ऊपर ज्ञानरूपधारी हरि की कृपा नहीं दिखाई देती। "No nation can be educated through a foreign language."<sup>10</sup>

कोई राष्ट्र विदेशी भाषा के माध्यम से सुशिक्षित नहीं बनाया जा सकता है।

#### सच्चा देशभक्त

मालवीयजी उच्च कोटि के देशभक्त थे। वे अनेक प्रकार के दुःखों, संकटों को सहन करते हुए तथा नाना प्रकार के विघ्नों का मुकाबला करते हुए सदा देश सेवा में लगे रहते थे। देश की स्वतंत्रता, राष्ट्र के गौरव की वृद्धि तथा जनता का सर्वांगीण उत्कर्ष उनकी देशसेवा के मुख्य लक्ष्य थे। समाजसेवा का कौन ऐसा काम होगा जो उन्होंने न किया हो। सनातन धर्म का प्रचार, प्राचीन संस्कृति का समर्थन, हिन्दी का प्रसार, गौ की सेवा सामाजिक कुरीतियों का विरोध, शिक्षा का विस्तार, समाज की आर्थिक उन्नति, नवयुग का निर्माण आदि सभी क्षेत्रों में उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान किया। मनुष्य अपने को समाज के आगे रखता है, अपने निजी हित पर समाज के हित को न्यौछावर करता है, उसका नैतिक पतन होता है, उसका व्यक्तित्व नीचे गिरता है।

पुरूषोत्तम दास टंडनजी ने बताया, ''यश की उन्हें चाह नहीं थी'', वे ''काम स्वयं करते थे'', <sup>11</sup> पर कीर्ति और यश के लिए दूसरों को आगे कर देते थे।

#### जनसाधारण की सेवा एवं उनके प्रति प्रेम

जमींदार, व्यापारी, राजे-महाराजे सभी मालवीयजी का आदर करते, उन्हें पूजनीय समझते और उनके निर्माण कार्यों में उनकी सहायता करते थे। जवाहरलाल नेहरू ने अपने भाषण में बताया, "मालवीयजी और गाँधीजी का ध्यान हमेशा जाता था किसानों की तरफ और उनकी तरफ जो सबसे नीचे तबके के लोग हैं।"12

करूणा और सौहार्द मालवीयजी के जीवन के जौहर थे। अपने भृत्यों और पार्श्ववर्तियों के प्रति भी उनका व्यवहार कोमल, मधुर और अनुग्रहपूर्ण होता था। वे बहुत कष्ट सहते हुए भी अपने नौकरों के आराम का ध्यान रखते तथा अपने कारण उन्हें कष्ट नहीं होने देते थे।

लोक-सेवा में संलग्न सहयोगियों के प्रति सद्भावना तथा विश्वासपूर्ण व्यवहार उनके चरित्र का विशिष्ट सद्गुण था। जब सन् 1910 में गोखले साहब ने प्रेम विधेयक का समर्थन और मालवीयजी ने इसका विरोध किया और इस कारण समाचारपत्रों ने मालवीयजी की बहुत प्रशंसा और गोखले साहब की भर्त्सना की, तब मालवीयजी "बहुत दुःखी थे।" उन्होंने बहुत ही "वेदना" के साथ मुंशी ईश्वरशरण से कहा- "गोखले कायर हैं और मैं बहादुर हूँ- यह कहा जा रहा है। कितने परिताप की बात है। यह हृदय-विदारक बात है।"

मानवता के प्रतीक मालवीयजी का प्रेम मानव समाज तक ही सीमित नहीं था। वह प्राणिमात्र के लिए था। गोसेवा में उन्हें विशेष आनन्द आता था। कुत्ते आदि जीवों पर भी उनकी दया बनी रहती थी। विनोद, साहित्य, संगीत, वाद्य मालवीयजी को प्रिय थे। मालवीयजी का ललित कला के प्रति प्रेम

मालवीयजी के विचार से मानव के प्रति सर्वांगीण विकास तथा उत्कृष्ट आनन्दमय जीवन के लिए विकासोन्मुखी व्यापक शिक्षा तथा चिरत्रगठन के साथ-साथ स्वस्थ निर्मल जीवन, ज्ञान-विज्ञान का विस्तार, लिलत कलाओं के प्रति रूचि तथा सुख-साधन की भौतिक सुविधाएँ भी आवश्यक हैं। मालवीयजी यह भी चाहते थे कि विद्यालयों में चित्रकला, वास्तुकला तथा मूर्ति-कला आदि लिलत कलाओं की शिक्षा का भी प्रबन्ध हो और उनमें से कम से कम किसी एक कला में विद्यार्थी अवश्य ही दिलचस्पी ले। उनके विचार में कला-विहीन जीवन शुष्क और नीरस है, जबिक लिलत कलाओं का ज्ञान तथा शुद्ध भावनाओं के साथ उनके प्रति अभिरूचि और समयानुकूल उनका अभ्यास जीवन सरस और आनन्दमय बनाता है।

Fine Arts शब्द का निर्माण फ्रेंच शब्द Beaux Arts से हुआ है जिसका हिन्दी रूपांतरण लिलत कला है। यह शब्द सुन्दर से सम्बन्धित है अर्थात् उन सभी कलाओं को लिलत कलाएँ कहा जा सकता है जो सुन्दर को अभिव्यक्त करती है।

भारतीय दर्शन (लिलतास्तवराजस्तोत्र) के अनुसार भगवान शिव महाशक्ति रूपा महामाया से प्रेरित होकर जगत की दृष्टि करते हैं। शिव की लीला सहचरी होने के कारण महामाया को लिलत कहा गया है। इसी लिलता से ही सभी लिलत कलाओं की उत्पत्ति हुई है।

लित कला में सौंदर्य की प्रधानता होती है अर्थात् यह सौंदर्यात्मक होती है। इस कला के कार्य में सुन्दरता, दक्षता, सुरूचिपूर्णता एवं श्रेष्ठता समाहित होती है जो पूर्णतः कलाकार की स्वयं की अनुभूति पर आधारित होती है। चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, संगीत, नाटक, काव्य आदि की गणना लिलत कलाओं में की जाती है। इसमें चित्रकला, मूर्तिकला एवं वास्तुकला रूप प्रधान है। काव्य कला अर्थ प्रधान है जबिक संगीत कला ध्विन भाव प्रधान है। उपर्युक्त लिलत कलाओं को मुख्यतः दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है-

- 1. दृश्य कलाएँ- चित्रकला, मूर्त्तिकला, व्यावहारिक कला, वास्तुकला, छापा चित्रकला, फैशन डिजाइन, टैक्सटाइल डिजाइन, छायांकन, सिरेमिक, स्थापना कला, कम्प्यूटर कला आदि।
- **2. मंचीय कला-** संगीत, नाटक, काव्य, नृत्य, चलचित्र आदि।

मालवीयजी चाहते थे कि जिस तरह प्राचीनकाल में भारत में गुरू सर्वसम्मानित था, उसी तरह अब भी सरकार, अधिकारी और विद्यार्थी गुरूओं के मान की रक्षा तथा उनके गौरव की वृद्धि अपना कर्त्तव्य समझें। इसके बिना शिक्षा की सुव्यवस्था असम्भव है।

मालवीयजी का विद्यार्थियों को उपदेश था-

## सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया। देशभक्त्यात्यागेन सम्मानर्हः सदाभव॥¹१

अर्थात् सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति, आत्मत्याग द्वारा अपने समाज में सम्मान के योग्य बनो।

#### निष्कर्ष

किसी को धर्म के दर्शन करने हों, धर्म से खुलकर बातें करनी हों और धर्म की ज्योति लेनी हो उसे मालवीय जी के विचारों से प्रेरणा लेनी चाहिए। बहुत से लोगों के हृदय में धर्म आकर निवास करता है पर मालवीय जी तो सशरीर धर्म हैं जिनके आचार-विचार, वेश-भूषा और बोलचाल से धर्म की ज्योति छिटकती थी। उनकी वाणी इसीलिये अक्सर कहती थी ''सिर जावे तो जाय प्रभु मेरो धर्म न जाय''। मालवीय जी जैसे बाहर से धवल दिखाई देते हैं। उससे भी धवल वे भीतर से थे। कहा जाता है कि आचार से ही विचार बनते हैं। मनुष्य जैसा भोजन करता है, जैसे लोगों की संगत करता है, जैसी पुस्तकें पढ़ता होगा वैसा ही उसके विचार हो जायेंगे। ये बात मालवीय जी पर पूरी तरह से लागू होती थी।

#### सन्दर्भ

- गिरिधर मालवीय, मदन मोहन मालवीय एक जीवन-परिचय, 2007, वाराणसी, पृ0सं0 26/28
- प्रो0 रामजी उपाध्याय, मदनमोहन-मालवीय-कीर्तिमञ्जरी नाटकम्, वाराणसी, पृ0सं0 55/81
- 3. डॉ0 उमेश दत्त तिवारी, भारत-भूषण महामना पं0 मदन मोहन मालवीय (जीवन एवं व्यक्तित्व), 1988, वाराणसी, पृ0सं0 9/53/55
- 4. मुकुट बिहारी लाल, महामना मदन मोहन मालवीय, 2034, वाराणसी, पृ0सं0 577/593
- 6. डॉ0 लक्ष्मी शंकर व्यास, महामना मालवीय जी और हिन्दी पत्रकारिता, 1967, वाराणसी प्र0सं0 51
- 7. Parmanand, Mahamana Madan Mohan Malviya (An Historical Biography) 1985, Varanasi, pg. no. 32
- 8. डॉ0 लक्ष्मी शंकर व्यास, महामना मालवीय जी का जीवन चरित्र, 2009, वाराणसी प्र0सं0 185
- डॉ० आर०ए० अय्रवाल, रूपप्रद कला के मूलधार, 1972, मेरठ, पृ०सं० 20/21
- 10. नरेन्द्र सिंह यादव, ग्राफिक डिजाइन, 2006, जयपुर, पृ0सं0 14

# महामना मालवीय जी की दृष्टि से धर्म एवं ईश्वर पर विचार

कु0 मिथिलेश पाण्डेय\*

युगद्रष्टा महापुरुष महामना मदन मोहन मालवीय जी के समग्र जीवन एवं व्यक्तित्व का आंकलन करने के बाद कोई भी यह मानने को तैयार हो जायेगा कि महामना जी किसी दैवी प्रेरणा के फल हैं। एक बार मुख से मदनमोहन कहने से ऐसा प्रतीत होता है कि रसना ही पवित्र हो गयी। एक उर्दू शायर ने सच ही कहा था—

## मैं मदनमोहन मेरी मनका का मजमूँ। क्या अजब इस नाम में जादू भरा है॥

इनके जीवन की न जाने कितनी ऐसी बातें हैं जिन्हें जानकर भी लिखना मुझ अल्पज्ञ से परे है।

#### मालवीय जी के धार्मिक विचार-

मालवीय जी ने अपने 'हिन्दू धर्मोपदेश' नामक छोटी सी पुस्तिका में अपने सम्पूर्ण विचारों को भर दिया है, जिस पर जरा सा विचार करने पर उनके सनातन धर्म का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। मालवीय जी कट्टर सनातनधर्मी थे, किन्तु वे सभी धर्मों से प्रेम करते थे अपने धर्म की निन्दा न सुनते थे न ही दूसरे धर्म की निन्दा करते थे। महामना के विचार से सभी लोगों में अपने-अपने विशेष धर्म का पालन करते हुए एक दूसरे के प्रति प्रेम तथा आदर होना चाहिए। हर मानव को अपने विश्वास में दृढ़ता, निन्दा का त्याग, मतभेद में सहनशीलता और प्राणिमात्र से मित्रता रखनी चाहिए। मालवीय जी का कथन था-परमेश्वर को प्रणाम करके सभी प्राणियों का उपकार करना तथा बुराई करने वाले को रोकना और दण्ड देना चाहिए। धर्म की स्थापना के लिए धर्म के अनुसार संघटन कर गाँवों में सभा करनी चाहिए। सभी गाँवों में कथा बिठानी तथा पाठशाला एवं अखाड़ा खोलना चाहिए। सभी पर्वों पर मिलकर महोत्सव मनायें, सभी लोग मिलकर अनाथों, विधवाओं, मंदिरों तथा गौमाता की रक्षा करें तथा इन सभी कार्यों को करने हेतु दान दें। स्त्रियों का सम्मान तथा दुःखियों पर दया करें। स्त्रियों तथा पुरुषों को निडर होकर, सच्चाई, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, धीरज तथा क्षमा का अमृत के तुल्य सदा सेवन करना चाहिए।

मालवीय जी अपना कोई भी पक्ष किसी को दुःखी करके या किसी के धार्मिक भावों को ठेस पहुँचाकर नहीं रखना चाहते, वे किसी को धक्का देकर आगे नहीं बढ़ना चाहते थे। वे मानते थे कि किसी को समझा-बुझाकर या हाथ जोड़कर प्रार्थना करके कहने पर वह स्वयं मान जायेगा। यही उनकी धार्मिक प्रगति की नीति रही है। अपने मत को स्थापित करने के लिए उपदेशकों के हथकण्डों, विचित्र झूठी कथाओं तथा दूसरे सम्प्रदायों और मतों को गाली देने आदि उपायों को, महामना

जी बुरा समझते थे। बुद्धि और हृदय किसी बात को स्वीकार करे तो ठीक है किन्तु धार्मिक सिद्धान्तों को समझने के लिए झूठे जोश को उभारना सबसे बुरी बात है।

जिस कार्य से स्वयं को दुःख पहुँचे वह कार्य दूसरों के लिए नहीं करना चाहिए।

## आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यित योऽर्जुन। सुखं वा यदि वा दु:खं स योगी परमो मतः॥

(गीता 6/32)

सनातन धर्म का मूल निम्न श्लोक द्वारा विदित होता है—

## भगवान्वासुदेवो हि सर्वभूतेष्ववस्थितः। एतज्ज्ञानं हि सर्वस्य मूलं धर्मस्य शाश्वतम्।

भगवान् ने अपने श्रीमुख से गीता में कहा है—"समोऽहं सर्वभूतेषु" (9/29)

#### ईश्वर पर विचार

माँ शारदा के अमर सपूत मालवीय जी के अनुसार इस जगत में सबसे उत्तम एवं अवश्य जानने योग्य 'ईश्वर' है। घट-घट में बसने वाले भगवान विष्णु का, सर्वव्यापी ईश्वर का सुमिरन सदा करना चाहिए, जिनके समान दूसरा कोई नहीं है। जो कि एक ही अद्वितीय है, दुःख एवं पाप को हरने वाले शिवस्वरूप हैं, जो सब पवित्र वस्तुओं से पवित्र तथा सब मंगल कार्यों के मंगलस्वरूप हैं, जो सभी देवताओं के देवता हैं एवं समस्त संसार के आदि, सनातन, अज, अविनाशी पिता हैं, ऐसे ईश्वर का ध्यान सदैव करना चाहिए।

वेद कहता है कि 'ईश्वर' को कोई आँखों से नहीं देख सकता, किन्तु हममें से हर एक मन को पवित्र कर निर्मल बुद्धि से ईश्वर को देख सकता है। इसलिए जो लोग 'ईश्वर' को मन की चक्षु से प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं उनको चाहिए कि वे अपने शरीर और मन को पवित्र करके और बुद्धि को विमल कर ईश्वर का अन्वेषण करें।

ऋग्वैदिक ऋषि घोषणा करता है कि सृष्टि के पहले यह जगत् अन्धकारमय था। उस तम के मध्य में तथा परे केवल एक ज्ञानस्वरूप स्वयंभू विराजमान थे जो अपने तप से अपनी ज्ञानमयी शक्ति के संचालन से सृष्टि को रचे। ऋग्वेद में लिखा है—

> ''तम आसीमत्ता गूळहमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमाइदम'' (ना० सू० दशम म०)

इसी को मनु इस प्रकार लिखते हैं-

#### ''आसीदिदं तमो भूतप्रज्ञातमलक्षणम्।''

श्रुति के अनुसार—''आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्।'' भागवत में भगवान् का वचन है—''अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्सदसतः परम्।'' (2-9-33)

"**एकः स आत्मा पुरुषः पुराणः ......॥''** (10-14-23) शिवपुराण में लिखा है—

## 'एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन। द्यावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वर॥'

वेद, स्मृति, पुराण के इसी तत्व को गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

### व्यापक एक ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आनंदरासी॥ आदि अन्त कोऊ जासु न पावा। मति-अनुमान निगम जसु गावा॥

वह परमात्मा एक ही है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश एक परमिपता की तीन संज्ञाएँ हैं। इनको भिन्न-भिन्न मानना भूल है। जैसा कि शिवपुराण में लिखा है—

#### शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः॥ (6/9/1,2)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय', 'ॐ नमोनारायणाय', 'ॐ नमः शिवाय', 'श्री रामाय नमः', 'श्री कृष्णाय नमः' ये सभी मन्त्र एक ही परमात्मा की वन्दना हैं।

वह परमात्मा सत्यज्ञानस्वरूप एवं अनन्त है। भागवत में लिखा है—

# 'विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक्सम्यगवस्थितम्......।'

(2/6/39,40)

सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करने वाला 'ईश्वर' ही है। इस सृष्टि तथा सम्पूर्ण प्राणियों के अद्भुत शक्तियों को देखकर हमारी बुद्धि विवश होकर इस बात को स्वीकारती है कि ऐसी ज्ञानात्मिका रचना का कोई आदि, सनातन, अज, अविनाशी, सत-चित-आनन्दस्वरूप, जगत्व्यापक, अनन्त शक्ति सम्पन्न रचिता है जिसे हम ईश्वर, परमेश्वर, परब्रह्म, नारायण, भगवान्, वासुदेव, शिव, राम, कृष्ण आदि सहस्रों नामों से पुकारते हैं। 'ब्रह्म' ज्ञानमय, चैतन्य और आनन्दस्वरूप है। उसका न आदि है, न अन्त है, वह नित्य और अद्वितीय है। पिप्पलायन ऋषि ने कहा है—

हे नृप! देह, इन्द्रिय प्राण और हृदय आदि जिससे संजीवित होकर अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं, उसी परमतत्व को नारायण जानो। जैसे—चिंगारियाँ अग्नि में प्रवेश नहीं पा सकतीं, वैसे ही मन, वाणी, आँखें, बुद्धि, प्राण और इन्द्रियाँ उस परमतत्व का ज्ञान ग्रहण करने में असमर्थ हैं और वहाँ तक पहुँच न सकने के कारण इसका निरूपण नहीं कर सकतीं।

'एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।' (श्वेतां 4/17)

एक ही परमात्मा सभी प्राणियों में व्याप्त हैं। 'एक देव: सर्वभूतेषु।' (श्वेतां 6/11)

उस सब सामर्थ्य और अधिकार रखने वालों के सबसे बड़े परम ईश्वर, देवताओं के सबसे बड़े देवता, स्वामियों के सबसे बड़े स्वामी परम पूजनीय देव को हम लोगों ने जाना है—''तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्॥'' (श्वेतां 6/7)

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मालवीय जी का अपने धर्म और ईश्वर पर अटूट श्रद्धा एवं विश्वास था जिसके बल पर वे महापुरुष की श्रेणी को प्राप्त किये। आचार्य नरेन्द्र देव के शब्दों में—''मालवीय जी भारत के गौरवस्तम्भ थे। उनका विशुद्ध एवं पवित्र जीवन, उनकी सौम्यता तथा उनका असाधारण त्याग, उनकी प्रबल देशभक्ति तथा बहु-आयामी सेवाएँ, भारतीय लोगों के लिए सदैव प्रेरणा का स्रोत बनी रहेगी।''

# महामना पं0 मदन मोहन मालवीय जी का व्यक्तित्व : मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में ज्ञानदास\*

ईश्वर भिक्त और देश भिक्त मालवीय जी के जीवन के दो मूल मन्त्र थें। इन दोनों का उत्कृष्ट संश्लेषण, ईश्वर भिक्त का देश भिक्त में अवतरण तथा देश भिक्त की ईश्वर भिक्त में पिरपक्वता का विशिष्ट सद्गुण था। उनकी धारणा थी कि ''मनुष्य के पशुत्व को ईश्वरत्व में पिरिणत करना ही धर्म है। मनुष्यत्व का विकास ही ईश्वरत्व और ईश्वर है'' और निष्काम भाव से प्राणिमात्र की सेवा करना ही ईश्वर की सच्ची आराधना है। इन सबकी साधना ही उनकी जीवन चर्चा थी, इसकी सिद्धि ही उनका जीवन लक्ष्य था, उनका सम्पूर्ण जीवन मनुष्यत्व की भावना से अनुप्राणित, ईश्वरत्व की भावना से ओत-प्रोत था उनकी देश सेवा, निष्काम उपासना की भावना, तथा लोक कल्याण की कामना से समन्वित और अलंकृत थी। वे निःसन्देह मनुष्यता की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति थे।

मालवीय जी उच्च कोटि के तपस्वी थे, सात्विक तप से सब सद्गुण उनमें विद्यमान थे। वे श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित कायिक, वाचिक और मानसिक तप के साधक थे। सब प्रकार के द्वन्दों को सहन करते हुए निष्काम भाव से, फल की इच्छा त्यागकर शम-दम से सम्पन्न होकर, श्रद्धा और धैर्य के साथ, मन, वाणी और शरीर से प्राणिमात्र की सेवा में सदा संलग्न रहना ही उनकी तप चर्या थी। काम-क्रोध-लोभ-मोह से बचना, सदा शुद्ध संकल्पयुक्त रहना, किसी विषय वृत्ति के कारण विक्षिप्त हो जाने पर उस पर विजय प्राप्त करना, व्यवहार काल में छल-कपट, धोखा और फरेब से अपने को दूर रखना उनका मानसिक तप था। असत्य, दुःखदायी, अप्रिय और कठोर शब्दों का त्याग तथा प्रिय, सत्य, मीठे और मधुर शब्दों का प्रयोग उनका वाचिक तप था। दूसरों की सहायता और सेवा करना, देश और समाज के लिए अपने शरीर के दुःख और कष्ट की परवाह न करना उनका शारीरिक तप था।

मालवीय जी धर्मनिष्ठ धर्मज्ञ थे। धर्म में उनकी अचल श्रद्धा थी, धर्म के मूल सिद्धान्तों का उन्हें अच्छा ज्ञान था, वे ही उनके जीवन के आधार थे। वे नित्य विधि पूर्वक पूजा-पाठ करते, शास्त्र विहित आचार का पालन करते, श्रीमद्भागवत तथा गीता आदि ग्रन्थों का अध्ययन करते, पारलौकिक विषयों पर भी समय मिलने पर चिन्तन-मनन करते, धर्म का प्रचार-प्रसार करते, तथा सदा लोक कल्याण में एवं देश के अभ्युदय में संलग्न रहते। उन्हें स्वर्ग और मोक्ष दोनों पर विश्वास था। पर वे इन दोनों में से किसी की कामना नहीं करते थे। वे तो चाहते थे कि तप्त ग्राणियों के कष्टों का निवारण करें।

#### देशभक्त

मालवीय जी उच्चकोटि के देशभक्त थे। वह अनेक प्रकार के दु:खों, संकटों और कष्टों को सहन करते हुए तथा नाना प्रकार के विध्नों का मुकाबला करते हुए, सदा देश सेवा में लगे रहते थे। देश की स्वतंत्रता, राष्ट्र का गौरव की वृद्धि तथा जनता का सर्वांगीण उत्कर्ष उनकी देश सेवा के मुख्य लक्ष्य थे। वे सब जातियों, सम्प्रदायों और प्रान्तों के भारतीयों को मिलाकर भारतीय राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। वे एक ही समय में विभिन्न प्रकार के सेवा कार्यों में संलग्न रहते थे। उनका कार्य क्षेत्र निःसन्देह बहुत विस्तृत और व्यापक था। समाजसेवा का कौन काम होगा जो उन्होंने न किया हो। सनातन धर्म का प्रचार, प्राचीन संस्कृति का समर्थन, हिन्दू हितों की रक्षा, हिन्दी का प्रसार, देश की स्वतंत्रता, गौ की सेवा, सामाजिक कुरीतियों का विरोध, स्वयं सेवकों का संगठन, नाना ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि, शिक्षा का विस्तार, मल्लञालाओं का उद्घाटन, दीनों के कष्टों का निवारण, स्त्रियों का उत्कर्ष, अछूतों का उत्थान, समाज की आर्थिक उन्नति, लोकतांत्रिक मर्यादाओं की प्रतिष्ठा, देश प्रेम पर आश्रित राष्ट्रीय भावना की पृष्टि, प्रगतिशील सिद्धान्तों का प्रतिपादन, देश कालानुकूल संस्कृति का विकास, नवयुग का निर्माण आदि सभी क्षेत्रों में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान किया। दैवी सम्पत्तियों से विभूषित जीवन को उन्होंने समाजसेवा में लगाया और समाजसेवा द्वारा उन्होंने अपने जीवन को उठाया, अपने व्यक्तित्व का विकास किया।

उनका विचार था कि जो मनुष्य अपने व्यक्तित्व को समाज में पीछे रखता है। समाज सेवा करते समय निजी हित की दृष्टि से कोई ऐसा कार्य नहीं करता जिससे समाज की हानि होती हो, वह समाज को ऊँचा उठाता है, और समाज की उन्नित के साथ-साथ अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। पर जो मनुष्य अपने को समाज के आगे रखता है, अपने निजी हित पर समाज के हित को न्योछावर करता है, उसका नैतिक पतन होता है, उसका व्यक्तित्व नीचे गिरता है। उनकी धारणा थी कि जो काम "अविवेक से दूसरों को हानि पहुँचाने, दिल दुःखाने, द्वेष और शत्रुता से किया जाता है, वह तामसी है" "जो काम अपनी स्तुति, पूजा, प्रतिष्ठा और मान के लिए किया जाता है, वह राजसी।" इस प्रकार के कामों से, उनके विचारों में, लाभ के बजाय हानि होती है, कार्यकर्ताओं में ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न होता है, और कार्य संभालने के बजाय बिगड़ जाता है, उनके नैतिक जीवन का विकास भी अवरूद्ध हो जाता है। पर ईर्ष्या और द्वेष से मुक्त निष्काम भावना से की गयी

सेवा कार्यकर्ताओं के जीवन को निर्मल करती है, ऊँचा उठाती है तथा सामाजिक कार्यो की समुचित सफलता में सहायक होती है। मालवीय जी निःसन्देह निःस्वार्थ समाजसेवी थे।

#### सात्विक सार्वजनिक जीवन

निष्कामभाव से अन्प्रमाणित मालवीय जी के कार्य का ढंग भी निराला था। वे सदा सार्वजनिक कार्यों में लगे रहते थे और उन सबको बड़े पैमाने पर करते थे। पर जैसा कि पुरूषोत्तमदास टंडन ने लिखा है कि, ''यरा की उन्हें चाह नहीं थी'', वे काम करते थे, पर कीर्ति-यरा के लिए दूसरों को आगे कर देते थे। वे दूसरों की समाज सेवा का आदर करते और समाज की सेवा में उनकी हिम्मत बढाते थे। अपने साथियों पर वे सदा विश्वास करते, उनके प्रति सद्भावना रखते और उनके सहयोग और परामर्श की कद्र करते थे। उनका बहत-सा समय साथियों के साथ विचार-विमर्ज़ में ही खर्च होता था। वे छोटों की बात को भी धीरज और ध्यान से सुनते, और उनकी बतायी अच्छी बातों को खुशी-खुशी ग्रहण करते, और उसके लिए उनकी सराहना करते थे। वे समाज सेवकों के यश सुनकर खुश होते थे, और सबके साथ मिलकर काम करते थे। वे विरोधियों का आदर करते, पर वे कटाक्ष और तिरस्कार की उपेक्षा करते थे। वे वितंडावाद से कोसों दूर भागते थे। किसी की निन्दा या किसी के अपयश का बखान करना वे ब्रा समझते थे। वे विपक्षी के साथ भी प्रेम, धैर्य और नम्रता की बात करते, विरोधियों के अपशब्द को सुनकर भी उनके लिए कोई बुरी बात कहे बिना विरोध का मुकाबला करते और यदि कोई दूसरी बुरी बात कहता, तो उसे मना करते थे। इस तरह वे अपनी ओर से वाद-विवाद और विरोध को व्यक्तिगत द्वेष और ईर्ष्या का स्वरूप न देकर मतभेद के स्तर तक सीमित रहते थे। वे वास्तव में विरोध के समय भी मेल का दरवाजा खुला रखते थे। विरोधी पक्ष की अच्छी बातों को भी ग्रहण करने को तैयार रहते थे। उसकी समाज सेवा की भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। यदि किसी एक बात में वे किसी का विरोध करते तो दूसरी बात में उसके साथ मिलकर काम करने में उन्हें हिचक नहीं होती थी। जैसा कि स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने एक संस्मरण में कहा है : ''दलबन्दी कर नेता बनने की इच्छा से वे (मालवीय जी) कोसों दूर रहते थे। वह जो कुछ करते, उसमें देशभिक्त और सेवा सर्वोपरि रहता था। उनकी तिबयत ऐसी थी कि जब ''राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय विचारों को धक्का लग रहा हो, तब वह उसको बर्दाश्त नहीं कर सकते थे।"6

#### जनसाधारण की सेवा

जमींदार, व्यापारी, राजे-महाराजे सभी मालवीय जी का आदर करते, उन्हें पूज्यनीय समझते, और उनके निर्माण कार्यो में उनकी सहायता करते थे। वे भी सभी उन सब से प्रेम से मिलते थे, उनका भला चाहते थे। पर उनका हृदय दीन-दुःखी जनता के साथ था। जनता का उत्थान वे राष्ट्र के उन्नित के लिए आवश्यक समझते थे। और उसके लिए सब कुछ करने को तैयार थे। राजाओं को उनकी यही सलाह थी

कि वे अपनी प्रजा की समुचित रक्षा और कल्याण वृद्धि को ही अपना कर्तव्य समझें कालानुसार अपनी शासन-व्यवस्था में सुधार करके संवैधानिक व्यवस्था प्रतिष्ठित करें, तथा सम्पूर्ण भारत से अपने सम्बन्ध दृढ़ करें। राजवाड़ों में संवैधानिक सरकार प्रतिष्ठित करने की चर्चा जब कभी मालवीय जी करते थे, तब ब्रिटेन की शासन-प्रणाली की तरह शासन व्यवस्था की स्थापना ही उनका लक्ष्य होता था। वे चाहते थे कि राजेमहराजे अपनी इच्छा से अपने अधिकारों को सीमित कर जनता के प्रतिनिधियों को शासन को उत्तरदायित्व हस्तान्तरित कर दें, राजकोष के एक निश्चित सीमित अंश का ही अपने निजी खर्चो में प्रयोग करें, जनता के प्रतिनिधियों द्वारा स्वीकृत संविधान द्वारा न्याय का शासन प्रतिष्ठित करें, जनता के मौलिक अधिकारों की रक्षा की समुचित व्यवस्था करें, तथा प्रजा की अभिवृद्धि ही शासन का लक्ष्य निर्धारित करें।

इसी तरह सेठ-साहुकारों से घनिष्ठ सम्बन्ध कायम रखते हुए भी उन्हें जनता के हितों तथा सार्वजनिक जीवन की पवित्रता का सदा ध्यान रहता था। इन बातों को ध्यान में रखते हुए जहाँ उन्होंने देश की औद्योगिक उन्नति के लिए देशज उद्योंगों के वित्तीय संरक्षण का समर्थन किया वहाँ मजदूरों के हितों और अधिकारों की समुचित व्यवस्था की मांग को पृष्ट किया, प्रतिज्ञाबद्ध श्रम प्रणाली का विरोध किया, इकरारनामें के उल्लंघन पर श्रमिकों तथा कर्जदारों को कैद की सजा देने की व्यवस्था की कड़ी आलोचना की, तथा सन् 1929 में सेठ-साहूकारों को चेतावनी दी कि यदि श्रमिक जनता के कल्याण की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया तो कम्यूनिज्म के प्रभाव को कानून द्वारा नहीं रोका जा सकेगा। जब सन् 1930 में सरकार के दबाव पर मुम्बई के औद्योगिकों ने आयात शुल्क विधेयक की उन धाराओं को भी स्वीकार कर लिया जिन्हें मालवीय जी राष्ट्रहित-घातक समझते थे, उनका ध्यान आकृष्ट किया गया कि मुम्बई से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को आर्थिक सहायता प्राप्त होती है, तब उन्होंने केन्द्रीय एसेम्बली में स्पष्ट तौर पर कह दिया कि वे राष्ट्रहित पर सौ विश्वविद्यालय न्योछावर करने को तैयार हैं, पर राष्ट्रहित विरोधी बात को धन के लोभ से स्वीकार करने को तैयार नहीं। इसी तरह जब एक रईस ने उन्हें पचास हजार रूपये की हुण्डी भेजकर उनसे अनुरोध किया कि वे सरकार से उसका कोई स्वार्थ सिद्ध करा दें, तब उन्होंने उस हुण्डी को लौटाते हुए कहला भेजा कि 'मैं वही करूँगा जो उचित होगा'। उन्होंने मालगुजारी के स्थायी बन्दोबस्त का समर्थन करने के साथ ही साथ जमींदारों के व्यवहार पर प्रतिबन्ध लगाकर किसानों के अधिकारों की रक्षा तथा उनके हितों की वृद्धि पर जोर दिया। उनकी धारणा थी कि ''इस देश में हमारी सहानुभृति का किसानों से अधिक कोई हकदार नहीं है।" उन्होंने माँग की कि किसानों पर लगान का बोझ कम कर दिया जाय, लगान की व्यवस्था को भी स्थायी बनाया जाय और उनकी दयनीय दशा को स्धारने का प्रयास किया जाय। 10 अभ्युदय के सम्पादकीय विभाग को उनकी हिदायत थी कि उसमें किसानों के हितों की बातें अधिक हों.

किसान बड़े ही दुःखी हैं उनके दुःखों के आगे जमींदारों का जरा लिहाज न करो। 11 मालवीय जी चाहते थे कि किसानों को कांग्रेस में शामिल होने के लिए प्रेरित किया जाय, उनके प्रतिनिधियों को बिना शुक्ल कांग्रेस के अधिवेशनों में शामिल किया जाय, उनमें राजनीति चेतना पैदा की जाय। जैसा कि जवाहर लाल नेहरू ने अपने भाषण में बताया। मालवीय जी और गाँधी जी का ध्यान हमेशा जाता था किसानों की तरफ और उनकी तरफ जो सबसे नीचे तबके के लोग हैं- क्योंकि जैसा ये लोग कहते थे कि अगर हिन्दुस्तान में स्वराज्य आ गया और लोग तैयार न हुए तो वह निकल भी जायेगा, रहेगा नहीं। लोग तैयार है तो स्वराज्य आ ही जायेगा और कायम भी रहेगा। 12 जनजीवन का उत्थान, पीड़ितों के कष्टों का निवारण, जनता के अधिकारों की रक्षा और वृद्धि मालवीय जी के सार्वजनिक कार्यों का अवश्य ही एक प्रमुख अंग था।

#### करूणा और सौहार्द

करूणा और सौहार्द मालवीय जी के जीवन के जौहर थे। अपने भृत्यों और पार्श्ववर्तियों के प्रति भी उनका व्यवहार कोमल, मध्र और अन्ग्रहपूर्ण होता था। वे बहुत कष्ट सहते हुए भी अपने नौकरों के आराम का ध्यान रखते थे तथा अपने कारण उन्हें कष्ट नहीं होने देते थे। इस सम्बन्ध में पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने बताया कि एक बार पटना के प्रसिद्ध वैद्य पंडित व्रजबिहारी चौबे जी ने मालवीय जी को एक काढ़ा पीने की सलाह दी। उसे तैयार करके ठीक समय पर पिलाने के लिए नौकर को प्रातःकाल चार बजे उठना पड़ता था। उसे इतना कष्ट अनुचित समझ मालवीय जी ने काढ़ा पीना बन्द कर दिया। जब दस-पन्द्रह दिन के बाद नौकर को कारण का पता चला, तब उसने उसका प्रबन्ध किया। राम नरेश जी एक प्रश्न के उत्तर में मालवीय जी ने उनसे कहा कि रामनरेश जी, हम तो गरीब आदमी हैं। इसलिए गरीब के प्रति हमारी सहानुभूति स्वाभाविक है। नौकरों को मैं कुटुम्ब से भिन्न नहीं समझता। ''मेरे यहाँ नौकर के साथ जैसा व्यवहार होता है, वैसा धनी परिवारों में भी नहीं होता'' रामनरेश जी ने स्वयं लिखा है। मुझे घूमने का तो मौका मिला है, और मेरा परिचय राजा से लेकर साधारण गृहस्थ तक प्रायः हरेक श्रेणी और हरेक स्रूचि के लोगों से है, पर नौकरों के प्रति जैसी आत्मीयता मैंने मालवीय जी में देखी, वैसी यहाँ के पहले कहीं-कहीं क्रूर दिखाई पड़े और कहीं तो नौकर ही मालिक बन बैठे हैं। पर यहाँ स्वामी और नौकर का अद्भुत ही रूप देखा।"14 मालवीय जी की करूणा नौकरों और पड़ोसियों तक सीमित नहीं थी। सभी गरीब समान रूप से उसके अधिकारी थे। उनके घर पर दीन-दुखियों की भीड़ सी लगी रहती थी। उन सबके लिए उनका दरबार हमेशा खुला रहता था। उन्हें उनके पास आने से कौन रोक सकता था। यदि उनका कोई पुत्र रोकने का प्रयत्न करता तो वे कहते कि जब तक वे इस घर में हैं, तब तक तो दीन-दुःखी इस घर में आयेंगे ही। बाबू पुरूषोत्तम दास टंडन ने अपने संस्मरण में लिखा है कि ''प्रयाग में गंगातट पर माघ का मेला था। कड़ाके की सर्दी थी रात का समय था। पानी बरसने वाला था जिसके कारण बहुत से साधनहीन यात्रियों को बड़ा कष्ट होने की सम्भावना थी। बस मालवीय जी टंडन जी को लेकर टाल पर पहुँचे, लकड़ियाँ खरीदी, कुछ उन्होंने अपने कन्धे पर रखी और अपने दूसरे साथियों की सहायता से वे साधुओं के यहाँ, गरीबों के यहाँ जिनके पास सहारा नहीं था, उनको बाँटने लगे। 15 इसी तरह एक दूसरे अवसर पर माघ मेले में ही जैसे ही मालवीय जी भोजन करने बैठे थे, कि किसी ने आकर बताया कि मेले में आग लग गयी। वह तुरन्त ही धोती पहने ही आग बुझाने दौड़ पड़े। इस भावना से अनुप्राणित मालवीय जी सन् 1919 में पंजाब हत्याकाण्ड के तुरन्त बाद पंजाब गये और वहाँ उन्होंने कई मास दुःखी जनता की सेवा की, उन्हें ढांढस बँधाया और साहस प्रदान किया।

#### प्राणि मात्र के लिए प्रेम

मानवता के प्रतीक मालवीय जी को प्रेम मानव समाज तक ही सीमित नहीं था। वह प्राणि मात्र के लिए था। गौ सेवा में उन्हें विशेष आनन्द आता था। उन्होंने आजीवन गौ सेवा की, उसके कल्याण के लिए प्रयत्न किया। पर उनका प्रेम गौ तक ही सीमित नहीं था। कुत्ते आदि जीवों पर भी उनकी दया बनी रहती थी। शिवराम जी वैद्य ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि जब मालवीय जी नवयुवक थे, तब उन्होंने जख्म के दुःख से तड़पते सड़क पर पड़े एक कुत्ते की वेदना से दुःखी हो उस कृत्ते की सेवा की, स्वयं उसके जख्म पर दवा लगाई। मालवीय जी जीवमात्र से कितना स्नेह करते थे, उससे समता का अन्भव करते थे, इसका पता इस रोचक घटना से भी अच्छे तौर पर लगता है जिसे उन्होंने स्वयं पंडित राम नरेश त्रिपाठी को सुनाई थी। त्रिपाठी जी लिखते हैं कि मालवीय जी ने उनसे कहा- ''बिछौने पर एक चीटी चढ आयी थी. उसे पकड कर मैं उसे नीचे उतार देना चाहता था, पर वह हाथ आती ही नहीं थी। इधर पकड़ने जाता तो उधर भाग जाती। अपने बचाव के लिए उसका प्रत्येक बार प्रयत्न बडा प्रिय लग रहा था। एक चींटी में भी जीवन रक्षा का वैसा ही उद्योग है, जैसे प्रत्येक प्राणी में है। सब में समान जीव है। जब कोई चींटी को लापरवाही से मार देता है तब मुझे बड़ा कष्ट होता है।16

# शिक्षा क्षेत्र में योगदान

पण्डित मदन मोहन मालवीय उदात्त बौद्धिक एकता के प्रतिमान तथा शिक्षा के क्षेत्र में पथ-प्रदर्शक थे, जिनका नाम सदैव के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, इसकी स्थापना तथा विकास से जुड़ा रहेगा। 17 ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के सदस्य कर्नल बेजबुड ने मालवीय जी द्वारा भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में की गयी सेवाओं का स्मरण इन शब्दों में किया था। 18 सारा यूरोप भली भाँति जानता है कि भारतीय शिक्षा-क्षेत्र मालवीय जी का कितना ऋणी है। मैंने आज तक कोई दूसरा शिक्षा संस्थान नहीं देखा, जो मुख्यतः एक ही व्यक्ति की कृति हो। यदि पण्डित मालवीय जी राजनीतिक न होते तो वे शिक्षा संसार के सबसे बड़े नेता के रूप में मान्य किये जाते और यदि उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय की सृष्टि न की होती तो वे संसार के बहुत बड़े राजनीतिज्ञ माने जाते। भारत और

पाश्चात्य देशों के इतिहास में यह बड़ा विचित्र समन्वय है। जिस समय महामना मालवीय जी का भारतीय शिक्षा-िक्षतिज पर अवतरण हुआ, उस समय देश में विश्वविद्यालयों की कमी थी। इस कमी को पूर्ण करके महामना ने भारत देश में शिक्षा की क्रांति ला दी।

#### अद्वितीय व्यक्तित्व

उनके व्यक्तित्व की सर्वतोमुखी प्रतिभा साहस एवं उत्साह और त्याग तथा राष्ट्र सेवा में उनकी निष्ठा और लगन अतुलनीय थी। उनका व्यक्तित्व निश्चय ही अद्भृत था। वे निःसन्देह उच्चकोटि के जननायक तथा राष्ट्र-निर्माता थे। राष्ट्र के नेताओं में उनका बहुत ऊँचा स्थान था। गाँधी जी का कहना था कि मालवीय जी के साथ देशभक्ति में कौन मुकाबला कर सकता है? राजर्षि पुरूषोत्तमदास टण्डन के विचार में मालवीय जी ''आदर्श पुरूष थे'', जिन्होंने ''राजनीति और शिक्षा दोनों क्षेत्रों में युग परिवर्तक और प्रवर्तक का काम किया।''<sup>19</sup> प्रिन्सिपल दीवानचन्द्र के विचार में ''मालवीय जी पवित्र आत्मा थे। उनके व्यक्तित्व की मनोहरता का उनके समकालीन लोगों पर उदात्त प्रभाव था।"20 बंगाल के सुप्रसिद्ध देशभक्त वैज्ञानिक सर प्रफुल्लचन्द्र राय का विचार था कि ''गाँधी जी के बाद कोई दूसरा ऐसा व्यक्ति मिलना कठिन है जिसने इतना अधिक त्याग किया हो और बहुमुखी कार्यों का ऐसा प्रमाण प्रस्तुत किया हो। जैसा मालवीय जी ने प्रस्तुत किया।''<sup>21</sup> लिबरल पार्टी के प्रमुख नेता श्री सी.वाई. चिन्तामणि का भी विचार है कि ''मालवीय जी एक ऐसे व्यक्ति हैं जो साबरमती के मनीषी (गाँधीजी) के कोष्ठक में रखने योग्य हैं।"22 दूसरे उदार-दलीय नेता पंडित हृदय नाथ कुंजरू का विचार है कि ''गाँधी जी को छोड़कर उनसे बड़ा भारतीय कोई नहीं हुआ।"23 इसी तरह सम्पूर्ण देश के विद्वान जन मालवीय जी के व्यक्तित्व से प्रभावित थे और हैं। भर्तृहरि ने महात्मा के प्रकृतिसिद्ध लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा है—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदिस वाक्पटुता युधि विक्रमः। यशिस चाभिरूचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मानाम्॥ (वैराग्य शतक)

अर्थात् विपत्ति में धैर्य, सम्पत्ति में क्षमा, सभा में वाक्परु, युद्ध में विक्रम, यश में रूचि, शास्त्र में लगन—ये सभी गुण महात्माओं में स्वभाव से होते हैं।

ये सभी गुण मालवीयजी में स्वभावतः विद्यमान थे और वे निःसन्देह बहुगुण सम्पन्न महात्मा तथा सात्विक सम्पन्न महामानव थे।

#### संदर्भ-ग्रन्थ

- 1. अभ्यदय (पत्र), 19 मई, सन् 1912
- 2. अभ्युदय (पत्र), 14 जनवरी सन् 1901
- वही पर
- 4. मालवीय-जीवन झलकियाँ, पृष्ठ-3, 4.
- 5. मालवीय जी जीवन झालकियाँ, पृष्ठ- 10
- 6. वहीं पर पृष्ठ-4 (पुरूषोत्तमदास टंडन).
- 7. लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स, 1930, जि0 3, पृ0 2626
- 8. रामनरेश त्रिपाठी : मालवीय के साथ तीस दिन, पृ0-30.
- 9. गवर्नर जनरल की कसिल (विधान), सन् 1915, जि0 53, पृ0 637.
- 10. वही, सन् 1914, जि0 52, पृ0 603-604.
- 11. मालवीय जी जीवन झलकियाँ, पृ0 75.
- 12. मालवीय जी- जीवन झलकियाँ , पृ० 18
- 13. रामनरेश त्रिपाठी : मालवीय जी के साथ तीस दिन, पृ० 163
- 14. मालवीय-जीवन झलकियाँ, पृष्ठ-4.
- 15. वही पर पृ0 10.
- 16. रामनरेश त्रिपाठी : मालवीय जी के साथ तीस दिन, पृ० 81.
- 17. Aiyer C-P Rama Swami, Forward, Mahamana malaviyaji, Birth Centenary commemoration Volume December, 25, 1961.
- 18. पण्डित मदन मोहन मालवीय, सीताराम चतुर्वेदी पृ० 124 पर उद्धत.
- 19. महामना मालवीय जी : वर्थसेन टिनरी कोमिमोरेशन वाल्यूम.
- 20. वहीं, पृ0 215.
- 21. मालवीय केमिमोरेशन वाल्यूम, पृ० 1005.
- 22. वहीं पर पृ0- 1012.
- 23. मालवीय- जीवन झलकियाँ, पृ० 48.

# महामना मदन मोहन मालवीय जी का जीवन-दर्शन विभिन्न विद्वानों की दृष्टि में ऋषिका वर्गा \*

हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान के उद्बोधक, प्रवर्तक पण्डित मदन मोहन मालवीयजी का प्राद्र्भाव ऐसे समय में हुआ था, जब भारतवर्ष सब प्रकार से दासता के बन्धनों में जकड़ा हुआ था। भारतीय जनता अपनी संस्कृति भूलती जा रही थी। भारत का नैतिक और चारित्रिक बल क्षीण होता जा रहा था। पिण्डत जी ने अनेक क्षेत्रों में देश की सेवा की, देश के लिए आत्मत्याग किया और अनेक कार्यों का संचालन किया तथा उपलब्धियाँ भी अर्जित की, जिन्हें वे हमारे लिए विरासत के रूप में छोड़ गये हैं। उनकी याद हमें सदैव प्रोत्साहित और प्रेरित करती रहेगी तथा युवा पीढ़ी को वे जो शिक्षा का प्रसाद निर्मित एवं पोषित करके दे गये हैं, वह तो अविस्मरणीय है ही।2 मालवीय जी का हमारी पुरानी सस्कृति के प्रति खास झुकाव था। उसको बढ़ाने की वह हर वक्त कोशिश करते थे। मालीवीय जी किसी भाषा के विरोधी नहीं थे, लेकिर वो चाहते थे कि भारत में हिन्दी और संस्कृत की तरक्की हो। उनका विचार था कि विद्या और इल्म वह धन-दौलत है, जो हमको ऊँचा करती है, और जितनी ही वह अधिक हो उतना ही अच्छा है। अपने देश की तो अवश्य और दूसरे देशों की भी वह हो तो और भी अच्छा। इससे हम बढ़ते हैं।

मालवीय जी के हृदय में बाल्यावस्था से ही देश, धर्म और शिक्षा की भावना गूँज रही थी। वे परम सात्विक, त्यागी, उदार, विनम्र और प्राणि-मात्र के निस्पृह और सच्चे सेवक थे। राजनीति, शिक्षा, धर्म-संस्कृति के क्षेत्रों में उनके कार्य अप्रतिम है। उनका व्यक्तिव्य अति भव्य और आकर्षक था। वाणी में अद्भुत जादू था, हृदय विशाल और मृदु था। मालवीय जी समस्त प्राणी के कलयाण के लिए प्रयोगात्मक विधि अपनाकर देश और समाज को सुसंगठित किया और उन्होंने सबमें नयी चेतना दी—

ग्रामे ग्रामे कार्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभा। पाठशालां मल्लशाला प्रतिपर्व महोत्सवः॥ अनाथाः विधवाः रक्ष्याः मन्दिराणि तथा च गौः। धम्यं संघटनं कृत्वा देयं दानं च तद्धितम् ॥ स्त्रीणां समादरः कार्यो दुःखितेषु दया तथा। अहिंसका न हन्तव्या आततायी वधाईणः॥

ये ही महाराजा के प्रयोगात्मक प्रयोग थे। जो मालवीय जी लगातार 70 वर्षों तक अविराम गति से देशोत्थान तथा समाज-रचना में संलग्न होकर पूरी शक्ति और निष्ठा से विशाल देश और मनुष्य-जाति का हृदय बनकर उसकी नस-नस में बल का संचार करते रहे और भिखारी से लेकर सेठ-साहुकार, राजा-महाराजाओं, सन्त-महन्तों, गवर्नरों,

वाइसराय और बादशाह तक सम्पर्क बनाकर देश और समाज को ग्रहण कराते हुए आगे की लड़ाई लड़ते रहे। स्वदेश, स्वधर्म और समाज हित के विविध कार्यों- संस्थाओं का गठन कर देश जाग्रत करते रहे और स्वयं कभी यश की कामना नहीं की। सच बात यह है कि उनके सब कार्यों पर दृष्टि डालने पर आश्चर्य होता है कि क्या इतना सब कार्य एक मनुष्य से सम्भव हो सकता है? निस्सन्देह यह मालवीयजी महाराज में निहित दैवी शिक्त थी, जो विविध मार्ग अपनाकर जन-मानस को प्रबुद्ध कर स्वराज्य के लिए सर्वसुलभ प्रशस्त राजमार्ग तैयार कर दिया था।3

महामना मालवीय जी एक माँ की तरह थे। गरीबों, असहायों व पिछड़ों के प्रति उनमें अपार करुणा भरी थी। यही कारण है कि समाज व राष्ट्र की सेवा में आजीवन समर्पित रह कर भी उन्होंने कभी मोक्ष की कामना नहीं की। दुःखीजनों को छोड़कर वे अकेले मोक्ष या स्वर्ग का सुख नहीं पाना चाहते थे। यह एक असाधारण बात है। वर्तमान व भावी पीढ़ी को अपने जीवन की सार्थकता के लिए महामना के मोक्ष न चाहने के पीछे निहित कारणों पर अवश्य ही विचार करना चाहिए।

महामना का व्यक्तित्व स्वयं में एक महान दर्शन है। इस दर्शन में उनके प्रयोगधर्मी और संघर्षी जीवन का बहुत बड़ा योग है। प्रतिकूल परिस्थितियों से गुजर कर भी वे अपने संकल्प और आदर्श से कभी विचलित नहीं हुए, बल्कि एक मौलिक पथ का मुजन करते गये। वे किसी वट-वृक्ष के नीचे नहीं उगे थे, इसीलिए करोड़ों मानवों के लिए बोधि-वृक्ष बन सके। वे न तो स्वयं कहीं बँधे दिखाई पड़ते हैं और न उन्हें कोई बन्धन प्रिय था। वे कहते भी थे- 'मैं किसी को पक्षी की तरह पिंजड़े में कैद रखने में विश्वास नहीं करता।' रूढ़ि से विद्रोह की चेतना उन्हें पिता से जन्मजात मिली थी, जिसका अनेक अवसरों व मुद्दों पर उन्होंने पूरी दृढ़ता के साथ परिचय दिया। वे शास्त्रज्ञ थे, शास्त्रों के विपरीत आचरण व व्यवहार नहीं कर सकते थे, किन्तु खुले तौर पर यह कहने में उन्हें तनिक भी झिझक नहीं थी कि 'शास्त्रों का अन्धवत अनुकरण करना निःसन्देह हानिकारक है।' वे शास्त्रों के व्यवहारिक, वैज्ञानिक एवं मानवीय पक्षों के संवाहक थे। पारिवारिक गरीबी के कारण अपनी इच्छा के विपरीत उन्होंने जीविकोपार्जन हेतु अध्यापकी, पत्रकारिता और वकालत अपनायी, पर अपनी देशभक्ति, त्याग एवं सेवा की जबरदस्त भावनाओं से प्रेरित हो इन क्षेत्रों में भी कई नये प्रयोग व प्रतिमान स्थापित किये। इन क्षेत्रों को उन्होंने स्वार्थ-साधन के बजाय सेवा का माध्यम बनाया और वहाँ जो आदर्श स्थापित किये, वे आज भी अपनी जगह पर बेमिसाल हैं। इसी प्रकार राजनीति और शिक्षा के

क्षेत्रों में भी अपने चिन्तन व आदर्श से उन्होंने एक मौलिक पहचान बनाई। अपने परिवर्तनकारी, सुधारवादी और समन्वयवादी विचारों तथा कठोर तप के कारण वे भारतीय जीवन की एक सिक्रय धुरी बने रहे और नई चेतना का प्राण फूँकते रहे।<sup>5</sup>

महामना जी की प्रतिभा बहुमुखी थी और उनका कार्यक्षेत्र भी बड़ा विस्तृत था। वे परम धार्मिक होने के साथ ही बहुत सुलझे हुए राजनीतिज्ञ थे। शिक्षा-विस्तार तथा प्राचीन सनातन धर्म की रक्षा करते हुए जनता में सत् शिक्षा का प्रसार तो उनके जीवन का प्रधान कार्य था। वे सुधार के संरक्षक थे। अर्वाचीन संस्कृति से लाभ उठाने वाले होते हुए भी प्राचीन संस्कृति के प्रतीक थे। आततायी-वध का स्पष्ट उपदेश करने वाले कठोर हृदय होते हुए भी वे एक क्षुद्रतम जीव की हिंसा से डरते थे। नरम दल के माने जाने पर भी गरमी के अवसर पर सबसे अधिक गरम थे। सबको प्रसन्न रखने की मधुर कला में दक्ष होते हुए भी स्पष्टवादी थे। स्त्री-शिक्षा के प्रसारक होने पर भी वो प्राचीन मर्यादा में श्रद्धा रखने वाले थे और वर्तमान युग के साहित्य का अध्ययन करने वाले होकर भी प्राचीन महाभारत, भागवतादि का नित्य श्रद्धापूर्वक पारायण करते थे।

महामना भागवत धर्म से ओत-प्रोत महान भक्त थे। उन्होंने अपना जीवन भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया था और यही कारण है कि उन्होंने जिस काम को अपने हाथ में लिया, उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त की। महामना की सफलता का आधार था ईश्वर में उनकी अनन्य भक्ति तथा कर्तव्य के प्रति अविचल निष्ठा। यदि महामना के आदर्शों की उनकी मूल वृत्ति की किंचित मात्रा भी हमारे हृदय में संचित हो जाए तो यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। वस्तुतः महामना एक अवतारी पुरुष थे। जिन्होंने अपने आदर्श, निष्ठा तथा कर्मठता आदि सद्ग्णों से भारतीय आत्मा को जगा दिया। महामना कहा करते थे कि छोटी आकांक्षाओं-सफलताओं से ही सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। अपने लक्ष्य को ऊँचा तथा महान रखना चाहिए। नौ मील की पैदल यात्रा कठिन होती है, किन्तु नौ हजार मील की यात्रा सुगम है। यदि आपका लक्ष्य ऊँचा है, आत्मबल, चरित्र तथा संकल्प है तो आपको निःसन्देह सफलता प्राप्त होगी। जो अपना सब कुछ न्यौछावर कर देता है, उसे बदले में सब कुछ मिल जाता है। महामना मालवीय जी ने राष्ट्र तथा मानवता के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया था और बदले में उन्हें जो सफलता मिली, उससे वे अमर हो गए।<sup>7</sup>

कहते हैं - दृष्टं किमिप लोकेऽस्मिन् न निर्दोषं न निर्गुणम्। अर्थात् इस विश्व में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं देखी गई है, जो न तो निर्दोष हो, न निर्गुण हो। सबमें कुछ दोष भी रहता है और कुछ गुण भी। इस परिभाषा के एकमात्र अपवाद भगवान कहे गये हैं। संसार के महान से महान पुरुषों में भी कुछ न कुछ दोष दिखायी देता है। मालवीय जी स्फटिक मिण की तरह निर्मल थे, वे बाह्यभ्यान्तर शुचि थे, उनकी मनोभूमि प्रांजल और पावन थी। उनका हृदय सात्विक था, उनकी वाणी

दिव्य थी। परन्तु कुछ लोग कहते थे कि यह सब तो ठीक है, किन्तु मालवीय जी बहुत लोगों को पत्रों और तारों का भी उत्तर नहीं देते थे, वे भुलक्कड़ थे। किन्तु पत्र या तार का उत्तर न देना या किसी वस्तु को इतस्ततः रख देना मालवीय जी का दोष नहीं था। इसका कारण कार्याधिक्य था। हिन्दू विश्वविद्यालय, कांग्रेस, सनातन धर्म महासभा, हिन्दू महासभा और अनेक संस्थाओं का महान भार उन्हें ढोना पड़ता था। अनेक विराट संस्थाओं के गुरुतम कार्यों में उन्हें इतना व्यस्त रहना पड़ता था कि किसी के साथ चिट्ठी-पत्री करना उनके लिये अशक्य था। दर्जनों काम करने वाले महापुरुष के लिए भी किसी काम को भूल जाना स्वाभाविक है, दोष नहीं। भारतवर्ष में या किसी भी देश में ऐसा कोई नेता नहीं हुआ है जिसने धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक शिक्षा और भाषा के क्षेत्रों में एक साथ कार्य करके सभी क्षेत्रों में उच्चतम स्थान प्राप्त किया हो। मालवीय जी ही एकमात्र ऐसे महापुरुष थे। इसलिए मालवीय जी के समान केवल मालवीय जी ही हुए हैं— 'सागर: सागरोपम:।' भूल से तो केवल भगवान ही बचे हैं।

मालवीय जी ने सन् 1880 में ही अर्द्ध राजनीतिक और अर्द्ध सामाजिक हिन्दू समाज की स्थापना की थी। तब से लेकर जीवनान्त तक आस्तिक-नस्तिक और छूत-अछूत तथा हिन्दुओं के उत्थान, अभ्युदय और श्रेयस के पावन कार्यों में संलग्न थे। इसी प्रकार काँग्रेस के द्वारा उन्होंने सभी भारतीयों में उन्नयन, प्रगति और जागरण का मन्त्र फूँका। वे सारी वसुधा के निवासियों को अपना कुटुम्ब मानते थे। वे आदर्श हिन्दू और आदर्श मानव थे, मानवेन्द्र थे। उनकी मधुर वाणी, सात्विक और रमणीय परिधान और उनका अभिराम और विशिष्ट व्यवहार तथा उनका प्रशस्त आचरण– सभी अनुपम थे, अनूठे थे, अद्वितीय थे। वे परोपकार व्रतनिरत थे, वर्चस्वी थे, ब्राह्मण गर्वधारी थे, ब्रह्मिष्ठ थे। बौद्धों का सिद्धान्त है— सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय। वे अपने भाषणों में कहा करते थे—

# सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी निरोग रहें, सभी कल्याण प्राप्त करें, कोई दुःखी न हो। वस्तुतः महामना महाकर्मा पण्डित मदन मोहन मालवीय जी पुण्यश्लोक थे।

महामना सनातनी थे, उन्होंने आजीवन वैदिक सनातन धर्म का परिपालन किया। धर्म-सम्बन्धी देश के सम्पूर्ण कार्यों में वे अग्रसर रहते थे। वे कहते थे– विद्या, रूप, धन, शौर्य, कुलीनता, निरोगता, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष, ये सभी धर्म से प्राप्त होते हैं। 10

#### विद्या रूपं धनं शौर्य कुलीनत्वमरोगिता। राज्यं स्वर्गञ्ज मोक्षञ्ज सर्व धर्मादवाप्यते॥

महामना का आदर्श वाक्य था— **उत्साहो बलवान् राजन्।** महामना जी कहा करते कि मैं कर्मठता का उपदेश गौरैयों से लेता हूँ, जो सबेरे ही हर्षेंद्रिक से चहचहाती हुए अपने काम में निरत हो जाती हैं।<sup>11</sup>

पण्डित मदन मोहन मालवीय, जिन्हें लोग आमतौर पर केवल 'मालवीय जी' के नाम से अधिक जानते हैं. चोटी के राष्ट्रीय नेताओं में से एक थे। जितनी श्रद्धा और जितना आदर उनके लिए शिक्षित वर्ग में था, उतना ही साधारण जनता में भी था। देश की जनता में जितने लोकप्रिय मालवीय जी थे, उतना गाँधी जी और लोकमान्य तिलक के सिवा शायद ही कोई अन्य नेता रहा हो। फिर भी विनम्रता एवं शालीनता उनमें कूट-कूट कर भरी थी। अपने युग के वे सर्वश्रेष्ठ वक्ता थे एवं हिन्द्स्तानी तथा अंग्रेजी दोनों में निष्णात थे। उनके स्तर के किसी अन्य नेता के पास जन-साधारण की पहुँच इतनी सरल नहीं थी, जितनी मालवीय जी के पास। लोग उनके साथ इतने प्रेम से बात कर सकते थे, मानों वे उनके पिता, बन्ध् अथवा मित्र हों। निर्धन एवं पीड़ितों की सेवा-सहायता करना उनके जीवन का आदर्श ही नहीं था, वरन् उनके जीवन की वास्तविकता भी थी। लोक-सेवा कार्य उनके लिए लोकप्रियता अथवा प्रतिष्ठा प्राप्त करने का साधन नहीं था। इतनी शक्ति और प्रतिष्ठा प्राप्त होते हुए भी वे असाधारण रूप से विनम्र थे। अहंकार अथवा गर्व उनके मन में लेशमात्र भी नहीं था।

जीवन-पर्यन्त वे युवकों की उन्नति के लिए चिन्तित रहे। उनका जीवन युवकों के लिए एक महान् प्रेरणा-स्रोत था। पं0 जवाहरलाल नेहरू का यद्यपि कई राजनैतिक मामलों में मालवीय जी से मतभेद रहा, किन्तु उन्होंने मालवीय जी के सम्बन्ध में लिखा है- 'मालवीय जी एक महा-मानव थे।' वे उन लोगों में से थे, जिन्होंने आध्निक भारतीय राष्ट्रीयता की नींव रखी। मालवीय जी की मुख्य विशेषता यह थी कि उन्होंने किसी के लिए, यहाँ तक कि अपने विरोधियों के लिए भी, कभी अशिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं किया। जिस समय मालवीय जी राजनीति में प्रविष्ट हुए, उस समय बहुत थोड़े से लोग ऐसे थे, जो देश-सेवा में अपना पूरा समय दे रहे थे। जब मालवीय जी की पुकार हुई, तब उन्होंने अपनी अत्यन्त लाभकर वकालत को भी त्यागने में तनिक भी देर नहीं की और देश-सेवा में पूरे समर्पण के साथ जुड़ गये। उनका विशुद्ध और अविक्षुब्ध जीवन, उनकी सादगी, अद्वितीय स्वार्थ-त्याग, प्रचण्ड देशभक्ति और उनकी बहुआयामी सेवायें, भारतीयों के लिए हमेशा प्रेरणा-स्रोत बनी रहेंगी। मालवीय जी भारतीय गौरव के स्तम्भ थे। देश की राजनीति में उनकी रुचि अन्यमनस्क भाव से आजीवन बनी रही।12

महामना जी जो भी काम करते उसमें एकाकार हो जाते। हिन्दू विश्वविद्यालय की एक-एक ईंट, पत्थर, रोड़े और माटी पर उन्होंने व्यक्तिगत ध्यान दिया और इसके भव्य निर्माण-कार्य को अपने जीवन-काल में ही चरम सीमा पर लाकर समाप्त किया। कई लोग यह गलत समझ बैठते हैं कि मालवीय जी रूढ़िग्रस्त सनातनी हिन्दू थे। लेकिन वे साम्प्रदायिकता से ऊपर एक ऋषि थे, उनके लिए सब जाति, सब कौम एवं धर्म बराबर थे। परन्तु साथ-साथ अपनी धर्मनिष्ठा में दृढ़ थे। किसी भी प्रकार की निम्न भावना से वे अछूते थे। उनके विशाल हृदय

में सभी के लिए स्थान था, सभी के लिए दया थी। कहीं पर भी विपत्ति आती, मानवीय या प्राकृतिक, वे दयावान दुःखियों का दुःख दूर करने दौड़ पड़ते, फिर चाहे बाढ़ आ जाए या भूकम्प, कोई निराधार अबला हो या निर्धन विद्यार्थी ही हो, सबकी वे मदद करते, सबका संरक्षण करते। आधुनिक भारत की शिक्षा के विकास का बीज महामना मालवीय जी ने बोया और आज उस विशाल वृक्ष की पृष्ट शाखाएँ सर्वत्र प्रमृत हैं। 13

मालवीय जी उच्चकोटि के वक्ता थे, यह कथन उनके सम्बन्ध में पृष्टपेषण मात्र होगा। उनकी मधुर वाणी की हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी भाषाओं में अबाध गति थी। वे कई घंटों तक लगातार इन भाषाओं में स्वाभाविक गति से बिना किसी आयास के बोल सकते थे। उनकी वाणी नदी की धारा की भाँति प्रवाहित होती थी। अनेक वक्ता अनेक प्रकार की भाव-भंगिमा के द्वारा तथा स्वराघात के बल से श्रोताओं पर प्रभाव जमाने की चेष्टा करते हैं, परन्तु महामना के भाषण में किसी भी प्रकार की कृत्रिमता नहीं होती थी। यह उनकी सरस, मध्र तथा हृदयस्पर्शी वाणी का जादू था जो श्रोताओं को अनायास प्रभावित कर लेता था। उनके भाषण का संस्कार बड़ा अद्भुत था। उनकी वाणी में इतनी शालीनता और दूसरे की भावना के प्रति इतना आदर भरा होता था कि कोई भी उनकी वाणी से मर्माहत नहीं हो सकता था। इसीलिए विरोधी भी उनकी वाणी का लोहा मानते थे, समान आदर करते थे। उनकी वाणी में सरस्वती का वास था। सुन्दर प्रभावशाली शब्दों को अत्यन्त मनोहारी, उचित स्वर के आरोह-अवरोह से प्रस्तुत करने की उनकी तर्क-शैली इतनी अद्भुत थी कि वे अपनी वाणी के सहारे चाहे जिस व्यक्ति या समाज को क्षण में हँसते-हँसते लोट-पोट करा दें या क्षण में करुण-रस बरसा कर आँसुओं में डुबो दें।14

मालवीय जी महाराज आशा के जीवन्त मूर्त रूप थे। उनकी बातचीत में, उनके जीवन में नैराश्य के लिए तिनक भी स्थान नहीं था। उनके कोश में 'निराशा' जैसा कोई शब्द ही नहीं था। फलतः वे आशावादी साहित्य के सृजन के ऊपर सर्वदा आग्रह रखते थे। वे कहा करते थे कि जो साहित्य जनता में स्फूर्ति का मंत्र न फूँके, आशावाद की ज्योति न जगावे, वह साहित्य मुर्दा है। उसे हम जीवित साहित्य के नाम से नहीं पुकार सकते। धर्म से अनुप्राणित तथा चरित्र को विशुद्ध बनाने वाले साहित्य के ही वे पक्षपाती थे। 15

महामना कहा करते थे कि— 'जब तक असफलता मनुष्य की छाती पर बैठ कर उसका गला न घोंटे, जब तक आशा की एक फींकी किरण भी दूरस्थ क्षितिज पर दीख पड़े, तब तक मनुष्य को निराश न होना चाहिए, प्रत्युत पूर्ण उत्साह के साथ काम में डट जाना चाहिए। विश्वास रखें वह काम सिद्ध होकर ही रहेगा। इस विषय में उनका प्रिय श्लोक था—

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूति कर्मसु। भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः॥ 'काम होकर ही रहेगा'— यह मान कर के सतत् व्यथाहीन होकर मानवों को उठना चाहिए, जागना चाहिए तथा कल्याणप्रद कामों में निरन्तर लगना चाहिए। महामना इस श्लोक के समुज्ज्वल उदाहरण थे। कार्य सम्पादन में व्यथा उन्हें कभी पीड़ा नहीं पहुँचाती थी। वे सोच ही नहीं सकते थे कि यदि कार्य विधिवत किया जाय, तो वह किस प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता। महामना आत्मविश्वास की जाग्रत मूर्ति थे। 16

मालवीय जी सच्चे अर्थों में महात्मा थे। 'महात्मा' का लक्षण इस प्रसिद्ध श्लोक में वर्णित है—

# विपदिधैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदिस वाक्पटुता युधि विक्रमः। यशिस चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृति सिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

अर्थात् विपत्तियों में धीरता, अभ्युदय में क्षमा, सभा में वाक्-चातुरी, युद्ध में विक्रम, यश में अभिरुचि तथा शास्त्र-श्रवण में अनुराग-इन छहों की सत्ता महामना में पूरे रूप में थी। 'महामना' उपाधि भी उनमें सर्वथा चिरतार्थ होती थी। उनके बहुमुखी जीवन का विश्लेषण करने पर जो चार सूत्र उपलब्ध हुए हैं, वे इस अनुष्टुप में निबद्ध हैं-17

# आस्तिव्यं चात्मश्चासः उत्साहः कार्यनिष्ठता। चतुःसूत्री समाख्याता मालवीय महात्मनः॥

महामना जी आर्यसमाज के विचारों से प्रभावित रहे हैं। यही कारण है कि उन्होंने समाज से बाल-विवाह, अछूत के प्रति भेदभाव आदि कुरीतियों को दूर कराया। वे समाज में धर्म का सही प्रचार देखना चाहते थे। नारी उत्थान के लिए भी महामना जी ने कार्य किया। वे आध्यात्मिक गुणों से पूर्णरूपेण सम्पन्न थे। यही कारण है कि उन्हें मानव रूप में देवतुल्य माना गया। भारत के लिए महामना जी ने आध्यात्मिक गुणों का मार्ग प्रशस्त किया। उनका विचार समन्वय भावना का था। वे बराबर इस बात का ध्यान रखते थे कि शान्तिपूर्ण स्थिति के माध्यम से किसी भी कठिन से कठिन समस्या का समाधान निकाला जाए। उनमें दृढ़-विश्वास तथा असीम आत्मशक्ति विद्यमान थी। वह किसी भी परिस्थिति का सामना हँसते हुए धैर्य के साथ करते थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति को विश्व-कल्याण के लिए उपयोगी सिद्ध किया था। राष्ट्रभाषा हिन्दी को गौरवपूर्ण स्थान दिलाने के लिए उन्होंने अनुपम कार्य किये। उनके द्वारा इस बात की घोषणा की गई थी कि कोई भी ज्ञान अपनी भाषा के माध्यम से यदि ग्रहण किया जाएगा तो उसमें जितनी स्वाभाविकता होगी, वैसी अन्य भाषाओं के माध्यम से नहीं हो सकती। यह स्मरणीय है कि मालवीय जी एक कर्मठ योगी थे। वह किसी बात के पूर्वपरक पूर्ण विचार कर ही उसमें प्रवृत्त होते थे। कोई भी शक्ति उनकी इच्छा के विरुद्ध उनसे कुछ भी मनवा लेने का दुस्साहस नहीं कर सकती थी।18

हिन्दू विश्वविद्यालय उनका सजीव कीर्तिस्तम्भ है। धन-संग्रह में उनका सिद्धान्त वाक्य था–

# मरि जाऊँ माँगू नहीं अपने तन के काज। परमारथ के कारने मोहिं न आवे लाज।।

सेवा-कार्य में मालवीय जी हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं करते थे। मालवीय जी सेवा-समितियों के सच्चे नेता थे। वह सेवा-कार्य में अपने लिए कोई विशेष सुख-सुविधाएँ नहीं चाहते थे। उनकी सेवा-समितियों का आदर्श वाक्य था।

# न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

अर्थात् न मैं राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग, मोक्ष की भी इच्छा नहीं करता। मैं दुःख से संतप्त प्राणियों के कष्टों का नाश चाहता हूँ। वह हिन्दू धर्म के मानने वाले होकर भी दूसरे धर्मों के प्रति उदार और सिहष्णु थे। इस सम्बन्ध में उनका एक श्लोक है-

# विश्वासे दृढ़ता स्वीये परिनन्दाविवर्जनम्। तितिक्षा मतभेदेषु प्राणिमात्रेषु मित्रता॥

अर्थात् अपने धर्म में दृढ़ता, दूसरे के धर्म का निन्दा से बचना, मतभेदों के प्रति उदासीनता और प्राणिमात्र के साथ मैत्री भाव रखना चाहिए।

मालवीय जी ने हिन्दू संस्कृति में आजीवन सुधार किया और राष्ट्रीयता के साथ उसका अपूर्व समन्वय किया। देश में संगठन और सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करने में जो कार्य महामना मालवीय जी ने किया, वह चिरस्मरणीय रहेगा। 19

महामना जी की गणना भारत के राष्ट्र-निर्माताओं में आदरपूर्वक की जाती है। वह कोरे राजनीतिज्ञ न थे, वह सच्चे सुधारक और शिक्षाशास्त्री थे। देश को राजनीतिक पराधीनता के बन्धनों से मुक्त करने के लिए उन्होंने अपना पूरा योग दिया। साथ ही उन्होंने राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा के क्षेत्र में अभिनव क्रान्ति लाने के लिए हिन्दू विश्वविद्यालय का निर्माण किया। वह गाँव-गाँव, नगर-नगर में संगठन का बिगुल बजाना चाहते थे, उसी के साथ सच्चे जन-जागरण को लाने के लिए शिक्षा को भी सार्वजनिक और सर्वसुलभ बनाना चाहते थे। देश के नव-निर्माण में महामना मालवीय जी ने शिक्षा के क्षेत्र में विधायक कार्य किया और अपना अमर स्मारक छोड़ने का प्रयत्न किया। वे देश और जाति उद्धार के लिए जनता को सशक्त बनाना चाहते थे। उनकी सीख थी–

# स्त्रीणां समादरः कार्यों दुःखतेषु दया तथा। अहिंसाका न हन्तव्या आततायी बधार्हणः॥

अर्थात् हमें नारी जाति का सम्मान करना चाहिए। दुःखियों पर दया करनी चाहिए और उन जीवों को नहीं मारना चाहिए, जो किसी को हानि नहीं पहुँचाते। केवल उनको मारना चाहिए जो आततायी हों, क्योंकि ऐसे लोगों को मारना धर्म है। स्वामी श्रद्धानन्द जी भी इसी आदर्श को मानते थे। उन्होंने ही दिल्ली के चाँदनी चौक में घण्टाघर के सामने और गोरी और गुरखा फौज के सम्मुख छाती तान कर कहा था- 'न दैन्यं न पलायनम्', हमें अपने जीवन में न तो किसी प्रकार की दीनता या कायरता दिखलानी चाहिए और न पलायन वृत्ति ही। इन दोनों महाप्रुषों के जीवनों की इन शिक्षाओं को यदि आज राष्ट्रीय जीवन में परख कर देखा जाए तो अनुभव होगा कि हमारा नवोदित राष्ट्र विश्वशान्ति के उदात्त सन्देश को अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय क्षेत्रों में अपना रहा है, वह पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से विशाल नदी-घाटी योजनाओं, इस्पात कारखानों, बड़े और छोटे कारखानों से जनता का जीवनमान ऊँचा कर रहा है, औद्योगिक, कृषि सम्बन्धी आत्म-निर्भरता की दिशा में हम पग बढ़ा रहे हैं, हम शिक्षा प्रसार द्वारा अज्ञानान्धकार का अन्त कर ज्ञान-ज्योति को भी प्रदीप्त कर रहे हैं। ये सभी प्रगति के चिह्न हैं, पर कुछ ऐसे कटु सत्य भी हैं, जो हमारे नवोदित राष्ट्र की स्वतंत्रता और स्रक्षा के लिए संकट बन गये हैं। हमने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की शिक्षाओं का अनुसरण कर अहिंसा को अपना जीवन-धर्म मान लिया है, पर यदि हम महामना मालवीय जी की सीख का अनुसरण कर स्त्रियों, दु:खियों और अहिंसकों के साथ अहिंसा और दया का व्यवहार करते और आततातियों के साथ 'शठं प्रति शाठ्यम्' और धूर्त के साथ उसी की शठता की नीति अपनाते तो कभी आज की स्थिति न होती। हमें आततायी के साथ दीनता और पलायन की वृत्ति छोड़नी होगी, यही महामना ने सन्देश दिया था, इसी के लिए स्वामी श्रद्धानन्द जी बिलदान हो गये और अपनी इसी दृढ़ता के लिए ईसा भी बिल हो गए। आज भी हम अपनी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ महापुरुषों के चरण-चिह्नों पर चल कर ही सुलझा सकते हैं।20

महामना जी की हिन्दू धर्म संस्कृति में परम आस्था थी, वह नित्य नियमित रूप से संध्योपासन और श्रीमद्भागवत का पाठ करते थे। नारायण-कवच और गजेन्द्र-मोक्ष प्रकरण में उन्हें पूर्ण विश्वास था। वे विपत्ति के समय इनका पाठ करते या सुनते थे तथा दूसरों को भी उपदेश करते थे।<sup>21</sup> मालवीय जी स्वभावतः स्वप्नवादी तथा आदर्शवादी थे। उनके स्वप्न सदैव वर्तमान प्रयासों के बहुत परे रहा करते थे, यहाँ तक कि वे साधारण लोगों की कल्पना के आगे की वस्तु बन जाते और उनकी ग्रहण शक्ति के बाहर हो जाते थे।<sup>22</sup>

मालवीय जी के जीवन और कार्यों का कोई भी विवरण, जिसमें 'हिन्दू धर्म में उनकी आस्था' का वर्णन न किया गया हो, अधूरा ही होगा। उनके व्यक्तित्व का सर्वाधिक विशिष्ट लक्षण था। वास्तव में यह तो उनके जीवन की प्राणवायु था। इसने उनके सम्पूर्ण जीवन को जितना आप्लावित किया था, उतना किसी अन्य बात ने नहीं। उनके समस्त कार्य-कलाप, चाहे वे राजनैतिक, सामाजिक या शैक्षणिक, कुछ भी रहे हों, धर्म पर ही आधारित थे। फिर भी इस विषय में कुछ भी साम्प्रदायिक नहीं था। यह किसी एक मत विशेष या सिद्धान्त तक सीमित नहीं था। वे हिन्दू धर्म के विषय में वैसा ही अनुभव करते थे, जैसा कि कोई प्राणी अपनी माता के विषय में सोचता है, अर्थात् उसे वे जीवन की एक ऐसी आवश्यक वस्तु समझते थे, जिसके बिना जीवन

असम्भव हो जाता है। जो लोग उन पर साम्प्रदायिकता का दोषारोपण करते हैं, वे उनके प्रति अन्याय करते हैं। हिन्दू-धर्म सम्बन्धी उनकी धारणा साम्प्रदायिक हो ही नहीं सकती थी, और यदि धर्म की अवधारणा एक सार्वभौम धारणा है, तो निश्चय ही हिन्दू-धर्म ऐसा ही है। किसी पंथ या सम्प्रदाय में सीमित हो जाना धर्म की सार्वभौमिकता को सीमित कर देता है। मालवीय जी ऐसा कभी नहीं कर सकते थे। उनकी इस भावना का तात्पर्य वैश्विक-स्नेह था। कोई भी व्यक्ति मालवीय जी के स्वभाव का स्मरण किये बिना उनके विषय में कुछ सोच नहीं सकता है। उनकी सहनशीलता, उनका सहयोग-भाव, वस्तुओं को उस दृष्टिकोण से देख पाना, जैसा अन्य कोई देख सके, विरोध पर विजय प्राप्त करना, वह भी दबाव डालकर नहीं, वरन् ऐसे मधुर तर्कों द्वारा जो उनके समग्र क्रिया-कलापों में अभिलक्षित होते हैं, ये सब उनके स्वभाव के लक्षण थे।<sup>23</sup>

छात्रों के लिए मालवीय जी के हृदय में अपार करुणा और हित-कामना थी। विश्वविद्यालय का द्वार तो सभी वर्ग के छात्रों के लिए खुला हुआ था, परन्तु दीन विद्यार्थियों पर तो उनकी विशेष कृपा थी। वास्तव में मालवीय जी का हृदय माता का हृदय था। वे 'बन्दौं सीताराम पर, जिनहिं परम प्रिय खिन्न' के उपासक थे। उनके अतिरिक्त मालवीय जी के पास कई सहायतार्थ कोष थे। जिनसे छात्रों को पुस्तकों, भरण-पोषणादि के लिए भी धन मिलता रहता था। ऐसे कई छात्र जो कभी कठिन रोगों से आक्रान्त हो जाते थे, उनकी चिकित्सा की विशेष व्यवस्था मालवीय जी करा देते थे। उन तक छात्रों का पहुँचना सुलभ था। इसलिए बहुत-से छात्र उनके व्यक्तिगत सम्पर्क में आ जाते थे। कोई भी छात्र उनके निकट सम्पर्क में जाकर वात्सल्य का ही अनुभव करता था।<sup>24</sup>

मालवीय जी महामना होने के कारण छोटे पैमाने पर कोई चीज सोचते ही नहीं थे। विश्वविद्यालय की उनकी विराट् कल्पना थी। वे चाहते थे कि विश्व में जितना भी ज्ञान सम्भव हो उनका अन्वेषण, सुजन, परिवर्धन और वितरण विश्वविद्यालय में हो और इस ज्ञान के द्वारा भारतीय चरित्र और बृद्धि का विकास हो। किन्तु सबसे पहले उनके सामने एक मौलिक प्रश्न था- विद्या अथवा शिक्षा का उद्देश्य क्या होना चाहिए? यहाँ पर वे औपनिषदिक आदर्श से प्रेरित थे। उपनिषदों में विद्या का उद्देश्य स्पष्ट लिखा हुआ है- 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् विद्या वह है जो मुक्ति के लिए हो और मुक्ति वह जो मानव को सभी प्रकार के बंधनों- आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक से छूटकारा दिलावे। उनके विचार में विद्या मृक्ति अथवा स्वतंत्रता के लिए ही है। विद्या मुक्ति का माध्यम है। इस पर विद्या की पद्धति स्वतंत्र होनी चाहिए और उसका अनुसरण होना चाहिए स्वतंत्र अध्यापकों और छात्रों द्वारा। जो स्वतः स्वतंत्र नहीं है, वह दूसरों को मुक्ति का मार्ग नहीं बतला सकता। मुक्त ही दूसरों को मुक्त कर सकता है (मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्)। इस आदर्श को ध्यान में रख कर महामना ने प्रारम्भ से ही मानव व्यक्तित्व और चरित्र के विकास के लिए स्वतंत्र वातावरण का निर्माण किया।<sup>25</sup>

पंडित मदन मोहन मालवीय अत्यन्त विश्वस्त व्यक्ति थे, परन्तु वे सदैव अन्य लोगों के विचार-बिन्दु को देख सकते थे और उनकी यह अनूठी विशेषता उन्हें उन तमाम संगठनों और पार्टियों का मित्र तथा पथ-प्रदर्शक बना देती थी, जो उनसे भिन्न दृष्टिकोण रखते थे। क्योंकि, उनके भीतर मानवीयता, सदाशयता का एक अक्षय भंडार था, और स्वभाव में एक ऐसा समभाव था जो सदैव राजनीतिक एवं धार्मिक विशिष्टताओं को पार कर जाता था। अतएव इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि एक विशाल जन-समूह के नेतृत्व के साथ उन्होंने देशी राजाओं के गुरु का दायित्व निभाया और अपने परम्परावादी दृष्टिकोण के बावजूद उन्होंने भारतीय विद्याओं के साथ पाश्चात्य शिक्षा को भी अपनाया। 26

'महामना' का अर्थ हुआ, बड़े मन वाला। यहाँ स्पष्ट ही मन शब्द चित्त, अन्तःकरण के व्यापक अर्थ में आया है, परन्तु बड़ा मन किसे कहते हैं? उसका लक्षण क्या है? वेद के कई मंत्र हैं, जिनमें मन का वर्णन किया गया है और प्रत्येक मंत्र के अन्त में कहा गया है—'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।' अच्छे मन का लक्षण है कि वह शिवसंकल्पमय हो। महामना वह है, जिसके संकल्प महान् और शिवात्मक हों, लोक-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत और प्रेरित हों। मालवीय जी के जीवन पर दृष्टि डालने से ही प्रतीत होता है कि उनकी यह उपाधि सर्वथा सार्थक थी। शिक्षा का क्षेत्र हो या राजनीति का, उनका प्रबल विरोधी भी उनके संकल्पों पर अशिवत्व का आरोप नहीं कर सकता था। भूलें मनुष्य से होती हैं, उनका हर काम सबको अच्छा लगा हो, यह बात नहीं थी। काफी कटु आलोचनाएँ भी होती थीं, परन्तु उनके आशय पर सन्देह नहीं किया जाता था। जिन युगपुरुषों ने आधुनिक भारत को सम्भव बनाया, उनमें मालवीय जी भी थे।<sup>27</sup>

महामना को जब कोई कहता, आप तो इस युग के **ब्रह्मार्ध** हैं, तो वे कहते— 'नारायण-नारायण', ऐसा कहकर उस नाम को कलंकित मत कीजिए। मैं उन पूतपावन महर्षियों की चरण रज लेने का भी अपने को अधिकारी नहीं समझता।' महाराज अपनी स्तुति से अप्रसन्न होते थे। मनुस्मृति का यह श्लोक वह हमेशा कहते थे।

# 'सम्मानाद्बाह्मणो नित्यमुद्विजो विषादिवाः।'

महापुरुषों के चिरत्र की वास्तविक अभिव्यक्ति उनके नित्य के साधारण व्यवहार से होती है। आवेश में सहसा कोई दुष्कर कर्म कर कोई यश का भागी भले हो जाये, उसके चिरत्र की सच्ची परख नहीं होती। परन्तु महापुरुषों की सभी बातें निराली होती हैं। उनके नैतिक धरातल का पता छोटी-मोटी घटनाओं से स्पष्ट होता है। कौन नामी नेता खुली बैलगाड़ी में बैठ कर मीलों दूर किसी महात्मा के दर्शनार्थ जायेगा? कौन लोक-प्रसिद्ध व्यक्ति गुण्डों से घिरी युवती की रक्षा का भार अपने माथे लेकर उसके घर तक पहुँचायेगा? अपने ग्वाले की हत्या

हो जाने पर कौन ख्याति प्राप्त व्यक्ति उसकी विधवा के सामने आत्मीय की तरह आँसू बहायेगा? मुहल्ले के सड़े घायल कुत्ते को बाँस के द्वारा कितने दयावान दवा लगायेंगे? क्या इन झाँकियों का मूल्य एक विशाल विश्वविद्यालय के निर्माता के चित्र से किसी तरह कम है? इन घटनाओं से भले ही उन्हें यश प्राप्त न भी हुआ हो, परन्तु वे महामना की कसौटी अवश्य हैं। 28

महामना मालवीय जी आधुनिक भारत के निर्माताओं में प्रमुख थे, किन्तु उनकी राष्ट्रीयता राजनीति तक सीमित नहीं थी। वे राष्ट्र और राज्य को जीवन के उच्चतम मूल्यों की प्राप्ति का माध्यम मानते थे और उनका यह भी विश्वास था कि उन मूल्यों की उपलब्धि के बिना राष्ट्र अथवा राज्य भी शीलवान् और स्थायी नहीं हो सकता। यह आस्था और विश्वास उनको भारतीय परम्परा से मिला था। अथवंवेद के पृथिवीसूक्त के निम्नलिखित मंत्र से वे अनुप्राणित थे।

#### 'सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयन्ति।'

अर्थात् महान सत्य, कठोर नैतिक आचरण, शुभ कार्य करने का दृढ़ संकल्प, तपस्या, वैदिक स्वाध्याय अथवा ब्रह्मज्ञान और सर्वलोकहित के लिए समर्पित जीवन पृथ्वी को धारण करते हैं। इन वेद-विहित चिरन्तर साधनों के द्वारा ही वे राष्ट्र का कार्य करना चाहते थे। राजनीतिक कार्य उनके लिए व्यवसाय नहीं था। किसी भी व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा पद, मान, प्रतिष्ठा आदि के लिये वे राजनीति से उदासीन और तटस्थ होते गये। उन्होंने अपने कार्य को मौलिक क्षेत्रों को पहले सींचा था, जहाँ वे सुखपूर्वक अपने जीवन की साधना कर सकते थे। धर्म, समाज, संस्कृति और शिक्षा को वे जीवन का आधार मानते थे। वे समझते थे कि इनके उत्थान के बिना राष्ट्र का उत्थान असंभव और अर्थहीन है। इन क्षेत्रों में उनकी अमूल्य देन हैं। किन्तु इन सभी में वे शिक्षा को अधिक मौलिक मानते थे। निम्नांकित पंक्तियों में उनकी शिक्षा सम्बन्धी भावनाओं और विचारों का ही संक्षिप दिग्दर्शन किया गया है।

मालवीय जी का जीवन आरम्भ से ही त्याग और तपस्या का जीवन रहा है। उनके जीवन में ब्राह्मण की अद्भुत सात्विकता थी, जैसा कि अल-कबीर ने लिखा है— निर्दोष जीवन का उज्ज्वल वस्त्र पहने इस अनित्य एवं परिवर्तनशील संसार के बीच खड़े वह वस्तु के स्थायित्व की ओर इशारा करते हैं। सादा जीवन और उनका ब्राह्मणत्व जहाँ तक उन्हें जाने दे, वहाँ तक, ऊँचे विचार, मादक द्रव्य नहीं, वासना-रंजन नहीं, शरीर की प्यास के लिए कोई घूँट नहीं, वह इस युग के एक गौरवपूर्ण यादगार हैं। मालवीय जी का ज्ञान तप से पवित्र, कर्ममय, जीवन-त्याग द्वारा उज्ज्वल था। बाह्य जगत् से सामंजस्य स्थापित कर उन्होंने अद्भुत मानसिक शान्ति अर्जित की थी। यह उनका त्याग एवं तपस्यामय पवित्र जीवन ही है, जिसके विरुद्ध कोई उंगली नहीं उठा सकता। यदि हम उनके व्यक्तिगत जीवन से परदा उठा दें, तो कहीं एक धब्बा न दिखाई पड़ेगा, इस विषय में अनावृत-नंगे स्वर्ग की भाँति वह

पवित्र हैं। यह एक बहुत बड़ी सिद्धि है। ("The ancient ethics inculcated sexual purity as the supreme virtue. And we do not find a breath of suspicion against Pt. Malaviya. Strip his private life bare and reputation has it you will find him free from strain pure as the naked heaven. All things considered, it is a great achievment. For the Hindu lacking that one lacks all"-Al kabir)

अंग्रेजी में एक प्रसिद्ध उक्ति है, जिसका आशय है— 'महापुरुषों के जीवन हमें याद दिलाते हैं कि उनकी तरह हम भी अपने जीवन को उच्च बना सकते हैं और भवसागर को पार करने से पहले समय की बालुका पर अपने चरण-चिह्न छोड़ सकते हैं।' ऐसे महापुरुष जिनके जीवन हमें नित्यप्रति आगे बढ़ने की प्रेरणा दें, जिनके कथन हमारे जीवन को मानवता एवं देवत्व के ऊँचे आदर्शों से ओत-प्रोत कर सकें, सदा वन्दनीय एवं अनुकरणीय है।<sup>30</sup>

महामना के जीवन की सार्वजनिक सफलता का मूल तीन बातों पर आश्रित था— चरित्र-बल, विश्वास से अनुप्राणित कर्मयोग और वाणी का वैभव। उनका चरित्र ब्राह्मणत्व का मूर्त प्रतीक था— पूर्ण सात्विक और कल्याणकर। उनके व्यक्तित्व में बुद्धि और हृदय का अद्भुत सामंजस्य था। अपने इन्हीं तीनों अलौकिक गुणों के कारण जितना भी मालवीय जी ने किया उतना केवल देवता ही कर सकते हैं, साधारण मानव नहीं। ऐसे ही व्यक्ति मानव को शिवत्व प्रदान करने में सहायक होते हैं। 31

अन्त में बस इतना ही कहा जा सकता है कि महापुरुषों के वचन सदैव से मानवमात्र के लिये प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। उनकी वाणी का प्रत्येक शब्द मानव जाित को सत्कार्यों हेतु प्रेरित करता रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक जिन महापुरुषों ने भारतीय मानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है, उनमें भारतीय संस्कृति के अप्रतिम संरक्षक महामना पं० मदन मोहन मालवीय का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारत के प्राचीन गौरव की पुनर्स्थापना के लिए वे जीवन पर्यन्त संघर्षरत रहे। उनके जीवन मूल्य एवं आदर्श आज भी देश व समाज के लिए प्रकाश स्तम्भ के समान हैं। 32

निष्कर्ष रूप में, मालवीय जी के जीवन से हमें जो महान शिक्षा प्राप्त होती है, वह यह है कि यदि कोई व्यक्ति कठिन परिश्रम से भयभीत नहीं होता है, अपनी विरासत और सफलता पाने के दृढ़ विश्वास पर आस्था रखता है तो उसके लिए कुछ भी प्राप्त करना असम्भव नहीं है। मालवीय जी का जीवन इस बात का एक उत्कृष्टतम उदाहरण है कि उद्देश्य की एकनिष्ठता और अपने देश तथा उसकी परम्पराओं से उत्कट प्रेम द्वारा क्या प्राप्त नहीं किया जा सकता?

#### संदर्भ

- 1. मालवीय जी महाराज की छाया में अट्ठारह वर्ष शिवधानी सिंह, पृ0 19
- 2. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद
- 3. मालवीय जी महाराज की छाया में अट्ठारह वर्ष शिवधानी सिंह
- 4. प्रो० रमाशंकर सिंह
- 5. वही
- श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार
- 7. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
- आचार्य रामगोविन्द त्रिवेदी
- 9. वही
- 10. पं0 केदारदत्त जोशी
- 11. डॉ0 राय कृष्णदास
- 12. मुन्नीलाल मेहरा
- 13. सुश्री सुमित्रा कुलकर्णी
- 14. डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय
- 15. आचार्य बलदेव उपाध्याय
- 16. वही
- 17. वही
- 18. युवराज रणञ्जय सिंह
- 19. श्री बाँके बिहारी भटनागर
- 20. वही
- 21. प्रो0 यदुनन्दन उपाध्याय
- 22. श्री रामाज्ञा द्विवेदी समीर
- 23. प्रो0 एस0के0 मैत्र
- 24. डॉ0 राजबली पाण्डेय
- 25. वही
- 26. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद
- 27. वही
- 28. प्रो0 जीवन शंकर याज्ञिक
- 29. डॉ0 राजबली पाण्डेय
- 30. श्री बाँके बिहारी भटनागर
- 31. डॉ0 जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
- 32. प्रो0 एस0के0 मैत्र

# महर्षिकल्प एवं महती प्रतिभा के अधिपति : महामना मालवीय जी

श्वेता सुमन\*

कृष्णाय वायुदेवाय देवकीनन्दनाय च। नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो मनः॥ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

अद्याविध संस्कृत जगत् में किसी भी कार्य का शुभारम्भ वैदिक एवं लौकिक मंगलाचरण से होता चला हा रहा है। इस परम्परा का अनुपालन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता परमादरणीय, चिरस्मरणीय महामना मदन मोहन मालवीय जी ने भी किया। उपर्युक्त मङ्गलाचरण महिष्ठिं कल्प महामना मालवीय जी को अत्यधिक प्रिय था। किसी भी सभा में बोलने से पूर्व वे सर्वाधिक श्रद्धाभिक्त के साथ प्रस्तुत मङ्गलाचरण का पाठ अवश्य करते थे। ये श्लोक भगवान श्रीकृष्ण के प्रति उनकी अगाध निष्ठा एवं भिक्त के परिचायक थे। अध्यापन के समय प्रायः उपनिषद् के दो मन्त्रों पर विशेष बल देते 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः', 'प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः' अर्थात् स्वाध्याय में कभी प्रमाद न करना और प्रजातन्तु का व्यवच्छेदन न करना।

महामना मालवीय जी का ब्रह्म-वर्चस्वयुक्त तेजोमय, चन्दन चर्चित ललाट, गौर प्रदीप्त वर्ण, शुभ्र व्यवस्थित उष्णीष, गले में एक फेरा देकर लिपटा हुआ, दोनों ओर लटका हुए उत्तरीय, शुभ्र निर्मल अङ्ग किसी भी व्यक्ति को सहसा प्रथम दृष्टि में ही आकृष्ट करने के लिए पर्याप्त वैभव था, किन्तु इन सबसे अधिक आकर्षक थी उनकी विचित्र मन्त्रस्वरूप दैवी वाणी, जो सबको सहसा स्तब्ध और अभिभूत कर देने वाली थी।

"मैं तो मालवीय जी महाराज का पुजारी हूँ। यौवन काल से आज तक उनकी देशभिक्त का प्रवाह अविच्छिन्न चलता रहा। मैं उनको सर्वश्रेष्ठ हिन्दू मानता हूँ, जो यद्यपि आचरण में बड़े नियमित हैं, किन्तु विचार में बड़े उदार हैं। उनके विशाल हृदय में शत्रु भी समा सकते हैं। यह वीर हमारे लिए दीर्घायु हों।" यह अनमोल कथन हमारे श्रद्धेय महामना मालवीय जी के लिए महात्मा गाँधी के कथन हैं, जो उन्होंने उनकी 75वीं वर्षगाँठ में शुभकामना संदेश में कहा था।

मालवीय जी का अभिजन मालव प्रदेश था; उनके पूर्वज मालवा से आकर तीर्थराज प्रयाग की पावन भूमि में या अपने गोत्रप्रवर्तक महर्षि भारद्वाज के पुण्य तपोवन में बस गये थे। मालवीय जी भारद्वाजगोत्रीय चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। महामना के पूज्य पितामह पं0 प्रेमधर चतुर्वेदी एक धर्मिनिष्ठ, सदाचारी, श्रीकृष्णपादारविंदो के सेवक तथा परम सात्त्विक पुरुष थे। इनके पूजनीय पिता पं0 व्रजनाथ चतुर्वेदी परम भागवत तथा सद्गृहस्थ वैष्णव थे। मालवीय जी की माता का नाम मूना देवी था,

जो कि पतिपरायणा सती-साध्वी गृहिणी थीं। श्रीमती मूना देवी जैसी पतिव्रता सहधर्मिणी को पाकर पं0 व्रजनाथ चतुर्वेदी अपने आपको परम पुण्यवान् एवं धन्य मानते थे। इन्हीं परम पावन दम्पति की समुज्जवला संतित थे हमारे ''महामना मालवीय जी''। इन्होंने पौष कृष्ण 8 वैक्रमाब्द 1818 अर्थात् 25 दिसम्बर सन् 1861 को प्रकट होकर इस पवित्र धराधाम को गौरवान्वित किया।

बालक मदनमोहन मालवीय का अक्षराम्भ 'श्रीमदक्षर-पाठशाला' में हुआ, जिसका नाम आगे चलकर 'श्रीधर्मज्ञानोपदेश पाठशाला' हो गया। इसके संस्थापक एक विरक्त सन्यासी श्री हरदेव जी थे; इसलिए लोग उसे हरदेवगुरु की पाठशाला भी कहते थे। अब तक तो निःशुल्क शिक्षा चलती थी, किन्तु अब तो शुल्क देना पड़ता। पिता की आय से घर का ही खर्च पूरा नहीं पड़ता था। माता मूना देवी प्रतिमाह शिक्षा शुल्क देने के समय अपने कड़े गिरवी रखतीं एवं जब हाथ में पैसे आते तब छुड़ा लेती थीं। इस प्रकार महामना की स्कूली शिक्षा प्रारम्भ हुई। यह न जाने कैसी विडम्बना थी! जिस महापुरुष ने आगे हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित कर सहस्रों दीन विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दिलायी, उनका अध्ययनकाल कितनी कठिनता से व्यतीत हुआ।

महामना सात वर्ष की अवस्था में 'विद्याकर्म प्रवर्धिनी' सभा की पाठशाला में भर्ती हुए। उसके प्रबंधक पं0 देवकीनन्दन जी इस होनहार एवं अब्दुत प्रतिभाशाली बालक से इतने प्रसन्न थे कि उसे माघ मेले में साथ ले जाकर वहाँ उससे व्याख्यान दिलवाते थे। व्याख्यान सुनकर श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते थे। नौ वर्ष की अवस्था में महामना का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ था। सन्ध्योपासना एवं गायत्री मंत्र-जप की ओर उनकी विशेष रूचि बढ़ी। एक स्थान पर मालवीय जी ने स्वयं लिखा है 'में गायत्री मंत्र का जाप बहुत किया करता था, जिससे घर वालों को शंका हुई कि 'मैं साधू न हो जाऊँ।'

विद्या, अध्यात्म, सदाचार और भगवान् की पूजा-अर्चना में सतत संलग्न रहने वाले इस ब्राह्मण परिवार पर लक्ष्मी का विशेष अनुग्रह नहीं था। शुद्ध उच्चारण और सुन्दर लिखने का उन्हें व्यसन था, अतः ये अपने शिक्षकों के अतीव प्रिय हो गये थे। ये संगीत के अत्यन्त प्रेमी एवं अच्छे सितार-वादक थे। एक बार मिर्जापुर में पण्डितों की एक सभा हुई। अपने चाचा के साथ मदनमोहन जी भी वहाँ पर गए। विद्वानों के व्याख्यान सुनते रहे। अवसर पाकर स्वयं भी प्रभावी भाषण किया। उनके सुन्दर रूप से लोग आकृष्ट थे ही, प्रवचन सुनकर सब मंत्रमुग्ध हो गए। उसी सभा में पं0 नन्दराम जी ने मालवीय जी को अपना जामाता बनाने का निश्चय किया। फलतः थोड़े ही दिनो बाद परम

रुपवती सद्गुणसमिन्वता कुन्दन देवी के साथ उनका विवाह सन् 1881 में हो गया। कॉलेज के जीवनकाल में भी सभा-सोसाइटियों में सिक्रिय सहभागिता, लोकसेवा एवं अन्य सार्वजनिक कार्यों में तत्परता से जुट जाना उनका स्वभाव बन गया था। 1883 में जब उन्होंने आगरा से बी०ए० की परीक्षा दी, तब अनुत्तीर्ण हो गए। सन् 1884 में कलकत्ता से उन्होंने बी०ए० पास किया। वे संस्कृत विषय में एम०ए० करना चाहते थे, परंतु निर्धनता मार्ग में खड़ी हो गयी। वे स्वयं लिखते हैं, ''जब मैं बी०ए० पास हुआ तो घर में गरीबी बहुत थी।'' बी०ए०, एल०एल०बी० होकर इन्होंने वकालत आरम्भ की। प्रैक्टिस अच्छी चली। घर की आर्थिक स्थित में किंचित् सुधार हुआ परन्तु उन दिनों भी उनका परोपकारी स्वभाव दूसरों से विशेषतः गरीबों से कुछ भी लिए बिना ही उनका कार्य सम्पन्न करने को विवश किए रहता था। चौरीचौरा कांड में फंसाये गये सैकड़ों अभियुक्तों को उन्होंने फांसी के फंदों पर झूलने से बचा लिया।

मालवीय जी अच्छे पत्रकार भी थे। 'अभ्युदय' का सम्पादन उन्हीं के हाथों हुआ। उस पर प्रकाशित होने वाला उद्बोधक वाक्य, जो कि उन्हीं की रचना थी—

# उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु। भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः॥

जब विश्वविद्यालय के पुरातन छात्र मिलते थे तब वे उनसे तीन प्रश्न अवश्य करते थे -

- 1- सन्ध्या करते हो कि नहीं?
- 2- कितना दूध पीते हो?
- 3- तुम्हें कितनी सन्तान है?

इन तीनों प्रश्नों के भीतर आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक कुशलक्षेम निहित था। विश्वविद्यालय में स्वयं मालवीय जी महाराज भी जन्माष्टमी, रामनवमी, देवोत्थान एकादशी, गुरुपूर्णिमा तथा अन्य पर्वों पर जब काशी में रहते थे तो अमृतमयीवाणी में कथा अवश्य कहते थे।

मालवीय जी को आर्य शब्द बड़ा प्यारा था और संसार की सर्वश्रेष्ठ नैतिकता, सदाचार, प्रेम, सिहष्णुता, परदुःखकातरता आदि उनके विशिष्ट उपादान थे। धर्म मालवीय जी का प्राण ही था "धर्मो रक्षित रिक्षतः"। लंदन में गोलमेज कांफ्रेंस का समय था देशभर में अपनी अति व्यस्त यात्राओं में भी मालवीय जी ने धर्म की टेक न छोड़ी। जब वे लंदन गए, तो उनके साथ गंगाजल, मिट्टी और गाय भारत से गयी और सर्वविदित है कि लंदन से लौटने पर उन्होंने समुद्रयात्रा का सविधि प्रायश्चित किया था। महाभारत उनका परम प्रिय ग्रंथ था, जिसे वे नियमित रुप से पढ़ते थे। श्रीकृष्ण के चिरत्र की उदात्तता मालवीय जी के जीवन में ओतप्रोत थी। वे श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता पर विशेष बल देते और उनके आदर्श चिरत्र के अनुकरण की प्रेरणा देते थे।

विद्वानों का आदर करना उनके व्यक्तित्व का अंश था। सरस्वती के अवतार प्रतिभाशाली विश्वविख्यात पं० रामावतार शर्मा, देवी प्रसाद, किव चक्रवर्ती, महावैयाकरण जयदेव मिश्र, महादार्शिनक श्री बालकृष्ण झा, पं० श्री प्रमथनाथ तर्कभूषण आदि महामनीषी विद्वान् विश्वविद्यालय की शोभा थे, जिन्हें मालवीय जी ने अपने समय में एकत्र कर लिया था।

मालवीय जी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने संस्कृत के पण्डितों को भी वही वेतनमान एवं प्रतिष्ठा दी, जो अंग्रेजी के विभिन्न विषयों के विद्वानों को मिलती थी। इनके जाने के बाद वे विद्वान् निराधार हो गये। मालवीय जी के कुलपित काल में विश्वविद्यालय में भारत के ही नहीं, विश्व के एक-से-एक विद्वान् अत्यंत अल्प पारिश्रमिक लेकर विश्वविद्यालय की सेवा करने के लिए जुट गए। विदेशों से आने वाले प्रिंसिपल किंग, प्रो० कोलन, प्रो० निक्सन आदि के नाम चिरस्मरणीय रहेंगे। मालवीय जी के त्याग और सेवा-भावना के प्रतिफिलत रूप थे- श्याम चरण डे, जो एक साथ विश्वविद्यालय में गणित विभाग के अध्यक्ष, सभी छात्रावासों के मुख्य वार्डेन और विश्वविद्यालय के रिजस्ट्रार थे और यदि वे वेतन लेते तो कम-से-कम ढाई हजार रुपये मासिक होता, परन्तु आजीवन कुल एक रुपया मासिक वेतन पर विश्वविद्यालय के सेवक-पद को गौरवान्वित करते रहें।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापितत्व का भार उन्होंने 1909 ई0 (लाहौर), 1918 ई0 (दिल्ली), 1932 ई (दिल्ली) और 1933 ई0 में संभाला। गाँधी जी के इक्कीस दिन के उपवास काल में मालवीय जी महाराज ने उनको श्रीमद्भागवत की अमृत-कथा सुनायी, उसका प्रभाव गाँधी जी के जीवन पर अंत तक बना रहा।

शिक्षा के क्षेत्र में उनकी दृष्टि सर्वथा आदर्शों से परिपूर्ण थी। मालवीय जी का आदर्श विश्वविद्यालय के रूप में मूर्तिमान् होकर सामने आया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ही भारत में 'विश्वविद्यालय' नाम को अक्षरशः सार्थक करता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक परम्परा और आधुनिक युग की अद्यतन वैज्ञानिक उपलब्धियों का मंगलमय सामञ्जस्य इसी विश्वविद्यालय में दृष्टिगोचर होता है।

मालवीय जी सच्चे अर्थ में ब्रह्मण थे। गीता में ब्राह्मण के जिन स्वभावज धर्मों ''शम, दम, तपश्चर्या, पवित्रता, क्षमा, आर्जव, सरलता, ज्ञान, विज्ञान एवं आस्तिकता' का उल्लेख है, मालवीय जी में वे पर्णतः परिव्याप्त थे।

# शमो दमस्तपः शौचं शान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

गाँधी जी मालवीय जी को 'भारत भूषण' लिखते थे और स्वयं को उनका पुजारी कहते थे। पूज्य महामना विश्वविद्यालय के छात्र समाज को उद्बोधित करने के क्रम में एक श्लोक कहते थे -

> सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया। देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानाईः सदा भव।।

अर्थात् सत्याचरण, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्योपार्जन, देशभिक्त और आत्मत्याग के द्वारा सदा सम्मान के पात्र बनो। शिक्षा के क्षेत्र में, राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास के क्षेत्र में एवं राष्ट्रीयता के विकास को दृढ़ करने के क्षेत्र में मालवीय जी ने अपने पावन चरित्र एवं ब्रह्मप्रज्ञा द्वारा दिव्य आदर्श उपस्थित किया है जो कि आने वाले पीढ़ियों के हृदय में चिरावधि तक जीवित स्पन्दित रहेगी। 'महामना' विशेषण उनके लिए सार्थक था। संस्कृत एवं संस्कृति में उनकी अमेय आस्था-निष्ठ थी। काशी का विश्वविश्रुत हिन्दू विश्वविद्यालय इस धरातल पर उनकी अक्षय कीर्ति है। यहाँ का नूतन विश्वनाथ मन्दिर उनके अमोघ संकल्प का मूर्त रूप है, वह सतत उनके पुण्य-ध्वज को फहराता रहेगा।

पुरुष स्वरूप अपने मूर्तिमान् पुरुषार्थ के कारण मालवीय जी इस इस जगत् में अन्य जीव से पृथक् है। यदि पौरुष न रहा तो मनुष्य का जीवन एवं जन्म दोनों ही व्यर्थ हैं। अतः जिस पुरुषार्थ से स्वयम् का, वंश, जाति, ग्राम, देश और राष्ट्र का तथा सर्वोपिर विश्व का कुछ कल्याण एवं अभ्युदय किया जा सके, वही पुरुष का वास्तविक स्वरूप है:

> स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नितम्। परिवर्तिन संसारे मृतः को वा न जायते॥

अर्थात्, यह संसार परिवर्तनशील है। यहाँ मरने और जन्म लेने का क्रम अटूट है। इस जगत् में कौन नहीं मरता और मर कर कौन जन्म नहीं लेता है? परन्तु वास्तव में उसी का जन्म और जीवन सार्थक है, जिससे कुल, जाति, समाज और देश का मस्तक ऊँचा उठता है। जिसके कार्यकलाप से सारा जन समुदाय लाभान्वित होता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूजनीय जन्मदाता महर्षिकल्प मालवीय जी महाराज के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि उन्होंने काशी जैसी प्राचीन और पुण्य नगरी में सरस्वती मन्दिर का निर्माण करने की कल्पना मात्र ही नहीं की वरन् उसे प्रत्यक्ष रूप देने का सफल प्रयास भी किया और अपने ही जीवनकाल में वर्तमान रूप में विद्या का महान् केन्द्र बनते भी देख लिया। जब तक सनातन हिन्दू धर्म है, हिन्दुस्तान है, तब तक पूज्य मालवीय जी की अमल-धवल कीर्ति इस भूलोक में अमर रहेगी। ऐसे सुकृती महापुरुषों के यशः शरीर का कभी अन्त नहीं होता। वे संसार को उचित पथ पर गतिशील करने के लिए ही अवतरित होते हैं। 150वीं जयंती क्या, शाश्वत इनका यशोगान इस धरा पर गुञ्जायमान रहेगा।

# महामना और असहयोग आन्दोलन

## सुशील कुमार सिंह\*

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अग्रणी नेता, प्रखर राष्ट्रवादी तथा सरस्वती पुत्र पं0 मदन मोहन मालवीय जी का जन्म गंगा, यमुना तथा सरस्वती के संगम पर स्थित तीर्थराज प्रयाग (इलाहाबाद) में 25 दिसम्बर, 1861 ई0 को एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। 1861 का यह वर्ष भारत के इतिहास के लिये और भी स्मरणीय है क्योंकि इसी वर्ष रवीन्द्रनाथ टैगोर, मोतीलाल नेहरू, प्रफुल्ल चन्द्र राय जैसे नेता भारतीय भूमि पर अवतरित हुए। मालवीय जी के पिता का नाम पं0 ब्रजराज था। महामना जी के व्यक्तित्व पर दादा तथा पिता की भगवद्भक्ति और धर्मानुराग माता का स्नेह और शील तथा घर की आर्थिक स्थिति का प्रभाव पड़ा था। घर में ही अपने बड़ों से विरासत में प्राप्त स्न्दर संस्कारों से मालवीय जी को आजीवन सादा तथा सरल जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा मिली। स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात महज 25 वर्ष की अवस्था में ही गुरु की कृपा से 1886 ई0 में कलकत्ता में होने वाले कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ। कलकत्ता जाने से पूर्व ही गुरु के प्रोत्साहन के फलस्वरूप सार्वजनिक कार्यों में मालवीय जी ने रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया था। अपने गुरु पं0 आदित्य राम भट्टाचार्य के साथ सम्मेलन में भाग लेने कलकत्ता गये। अधिवेशन के चौथे सत्र में इनको व्याख्यान देने का अवसर प्राप्त हुआ। अभी तक कांग्रेस के लिए मालवीय जी एक अनजान चेहरा थे। अपने ओजपूर्ण भाषण से वहाँ विराजमान नेताओं को अपनी प्रतिभा से परिचय कराया। इस भाषण से प्रभावित होकर दादाभाई नैरोजी ने कहा था कि 'इस युवक की वाणी में भारतमाता स्वयं मुखरित हो रही हैं।'1 उनके द्वारा दिया गया भाषण का एक अंश 'प्रतिनिधि नहीं तो कर नहीं' बाद में कांग्रेस की एक प्रमुख मांग ही बन गया। भाषण से प्रभावित होकर राजा रामपाल सिंह ने 'हिन्दुस्तान' पत्रिका के सम्पादक के पद पर नियुक्त कर लिया।<sup>2</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि मालवीय जी के अन्दर छिपे हुए एक प्रखर राष्ट्रवादी नेता का दर्शन बहुत ही कम उम्र में ही देश को हो जाता है।

1886 के अपने अभिभाषण में मालवीय जी ने यह स्पष्ट रूप से कहा कि कांग्रेस का अस्तित्व हमारी क्षमता का प्रमाण है। देश के शासन में भाग लेने से हमें वंचित करना अनुचित है। प्रतिनिधित्व का अधिकार ब्रिटिश जनता का मौलिक अधिकार है। तो वह अधिकार हमें भी मिलना चाहिए। यह पहला अवसर था जब मालवीय जी मात्र 25 वर्ष की अवस्था में कांग्रेस जैसे संगठन से जुड़े। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दादाभाई नौरोजी, ए०ओ० ह्यूम जैसे दिग्गज राष्ट्रवादी विचारक मालवीय जी की प्रतिभा से काफी प्रभावित हुए। अगले ही वर्ष 1887 के मद्रास में हुए कांग्रेस अधिवेशन में मालवीय जी ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया। इस अधिवेशन को सफल बनाने में मालवीय जी का सराहनीय योगदान था। गैर हिन्दी भाषी क्षेत्र में आयोजन होने के फलस्वरूप वहाँ बहत

कम लोग ही जुट पाये थे, ऐसी स्थित में भी मालवीय जी ने 40 प्रतिनिधियों के साथ अधिवेशन में भाग लिया। अपने भाषण द्वारा मालवीय जी ने सर्वप्रथम प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना को आवश्यक बताया। उस समय उनका यह बयान भारतीय जनता के लिये काफी महत्वपूर्ण था जिस प्रकार यूरोप में सरकारी गतिविधियों में जनता के प्रतिनिधियों का योगदान है, इस तरह की व्यवस्था भारतीयों के लिए भी करनी चाहिए। मालवीय जी के आग्रह पर कांग्रेस के अधिवेशन का अगला स्थल प्रयाग को चुना गया। 1888 के कांग्रेस के अधिवेशन में विषय समिति की तरफ से एक प्रस्ताव तैयार कर 1858 के शाही घोषणा पत्र के अनुरूप ब्रिटिश सरकार के विषयों को क्रियान्वित करने की मांग की। इसमें प्रतिनिधि संस्थाओं के विस्तार की मांग भी थी। 1891 ई0 में वकालत की परीक्षा पास कर वकालत प्रारम्भ की। 1892 में प्रयाग में आयोजित दूसरी बार कांग्रेस के अधिवेशन में भी मालवीय जी का अहम योगदान था। 1913 तक आते-आते उन्होंने पूर्णरूपेण वकालत को त्याग कर—

# ''न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्ग नाऽपुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥''

का व्रत लेकर आजीवन देश सेवा करने का संकल्प लिया। 1886 के इस 26 वर्षीय नवयुवक को 1920 तक आते-आते पूर्णरूपेण एक अनुभवी, दूरदर्शी तथा नरमपंथी विचार के पोषक तथा ब्रिटिश राज के काले शासन के प्रखर विरोधी व्यक्तित्व के रूप में हम पाते हैं।

इसी बीच उन्होंने वाराणसी में गंगा तट पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना 1916 में की। तबसे यह विश्वविद्यालय भी राष्ट्रीय आन्दोलन में एक केन्द्र के रूप में स्थापित हुआ। यहाँ के छात्र देश के सभी प्रमुख आन्दोलनों में बढ़-चढ़ कर भाग लिये। असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ होने से पूर्व ही मालवीय जी को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 1909 के लाहौर अधिवेशन तथा 1918 के दिल्ली अधिवेशन की अध्यक्षता करने का अवसर प्राप्त हुआ। यह इस बात का द्योतक है कि इस समय तक आते-आते मालवीय जी पूरे भारत में एक सर्वमान्य तथा लोकप्रिय नेता के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे।

बीसवीं सदी के दूसरे दशक के अन्तिम वर्षों में भारतीय जनमानस अत्यन्त क्षोभ तथा निराश था। प्रथम विश्वयुद्ध में गाँधी जी के नेतृत्व में भारतीय जनता ने ब्रिटिश सरकार की काफी सहायता यह सोचकर की थी कि युद्ध के बाद अंग्रेज उनके देश को स्वतंत्र कर देंगे। परन्तु इसके बदले भारतीयों को अप्रैल 1919 का जालियाँवाला बाग हत्याकाण्ड, पंजाब में मार्शल ला, रौलेट एक्ट आदि के रूप में अंग्रेजों के दमन का सामना करना पड़ा। इससे भारतीय जनता का आजादी का दिवास्वप्न टूट गया। इसी समय यूरोपीय मित्र देशों की तुर्की के विरुद्ध

गुप्त समझौते से भारतीय मुसलमान भी भड़क उठे। भारतीय मुसलमान तुर्की के खलीफा को अपना धर्मगुरु मानते थे। नई व्यवस्था से खलीफा के पद को खतरा उत्पन्न हो गया था। इससे मुसलमान भी अंग्रेजों से काफी खफा हो गये थे। अपने धार्मिक मान्यता पर प्रहार उन्हें अच्छा नहीं लगा। वे इसका पूरी तौर पर खिलाफत करने का निर्णय लिया। वहीं दूसरी तरफ जालियाँवाला बाग काण्ड पर गठित हण्टर आयोग की कार्यप्रणाली से भारतीय नेता भी काफी क्षुब्ध थे। भरतीय नेताओं ने इस अवसर को हिन्दू-मुस्लिम एकता के रूप में मजबूत करने के एक अवसर के रूप में देखा। मुस्लिम नेताओं की तरफ से सितम्बर 1919 में ही खिलाफत कमेटी का गठन कर दिया गया।

22 नवम्बर 1919 में फजलुल हक की अध्यक्षता में खिलाफत कांग्रेस का पहला अधिवेशन सम्पन्न हुआ। खिलाफत कमेटी का दूसरा अधिवेशन जो 31 दिसम्बर 1919 में अमृतसर में हुआ जिसमें मुस्लिम नेताओं के साथ हिन्दू नेताओं ने भी भाग लिया। इस अधिवेशन की मुख्य विशेषता यह थी कि इसमें गाँधी जी तथा मालवीय जी भी उपस्थित थे। आन्दोलन के इसी क्रम में 10 मार्च, 1920 को गाँधी जी द्वारा दिया गया व्याख्यान काफी महत्वपूर्ण था, जिसका सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से खिलाफत आन्दोलन के साथ था। 9 जून 1920 को इलाहाबाद में खिलाफत कमेटी ने गाँधी जी के अहिंसक असहयोग आन्दोलन को स्वीकार कर उन्हें अपना नेता घोषित किया। इसके पूर्व ही 30 मई 1920 को कांग्रेस से जुड़े सभी नेताओं ने पंजाब की समस्या के साथ ही खिलाफत आन्दोलन के प्रश्न पर भी सितम्बर में आयोजित होने वाले अधिवेशन में निर्णय लेने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। अधिकांश नेताओं का यह मानना था कि देश में कोई भी आन्दोलन मात्र कांग्रेस के नेतृत्व में ही प्रारम्भ किया जाय। गाँधी जी इस विचार से सहमत नहीं थे, 9 अगस्त 1920 को ही खिलाफत की तरफ से पूरे देश में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। 1920 के कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में असहयोग आन्दोलन की रूपरेखा पर कुछ नेताओं में मतभेद था। गाँधी जी मात्र खिलाफत के प्रश्न पर ही आन्दोलन के पक्षधर थे तो वहीं कुछ नेताओं ने पंजाब में अंग्रेजों द्वारा किये गये नरसंहार जैसे कुकृत्यों को भी शामिल कराना चाहा। विधान परिषदों, न्यायालयों तथा सरकारी विद्यालयों के बहिष्कार पर तो और अधिक मतभेद था। मोतीलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत इन संस्थाओं के क्रमिक बहिष्कार को मानकर मूल प्रस्ताव को संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया गया।8

इस प्रकार असहयोग आन्दोलन के अन्तर्गत उपिधयों, सरकारी पदों, विद्यालयों, न्यायालयों, विधान परिषदों तथा विदेशी माल का बिहिष्कार, मद्यनिषेध, छुआ-छूत निवारण, दिलत उत्थान तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता को बढ़ावा देने आदि जैसे कार्यक्रमों को शामिल किया गया था। इन सभी कार्यक्रमों में विद्यालयों, न्यायालय तथा विधान परिषदों के बिहिष्कार पर कांग्रेस में आम सहमित नहीं थी। विपिनचन्द्र पाल द्वारा प्रस्तुत संशोधित प्रस्ताव से भी मालवीय जी पूरी तरह संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने अपने भाषण में यह स्पष्ट रूप से कहा कि सरकार के सामने अपनी मांग मनवाने के लिए धमकी देना उचित नहीं है। उन्होंने

अपने भाषण में असहयोग आन्दोलन को न्यायसंगत ठहराया और खिलाफत आन्दोलन पर मुसलमानों से पूरी सहानुभूति प्रकट की। मालवीय जी असहयोग आन्दोलन में प्रस्तावित कुछ कार्यक्रमों से सहमत नहीं थे, इसमें विद्यालय, न्यायपालिका तथा विधान परिषदों का बहिष्कार जैसे मृद्दे प्रमुख थे। पंजाब समस्या पर उन्होंने कहा कि लार्ड चेम्सफोर्ड वापस जा रहे हैं, पंजाब काण्ड से जुड़े कई अधिकारी सेवानिवृत्त हो चुके हैं, क्या दो-चार अधिकारियों को दण्डित कराने के लिए देशव्यापी आन्दोलन चलाना उचित है? 10 उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि स्वशासन से ही अंग्रेजों के शोषण से बचा जा सकता है। इसके लिये आन्दोलन चलाना निःसंदेह आवश्यक है। विधान परिषदों के बहिष्कार पर उनका मानना था कि यह उचित नहीं है। इससे वहाँ सरकार समर्थक घुस जायेंगे। मालवीय जी का यह मानना था कि विधान परिषद के अन्दर रहकर भी ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रायोजित शोषणकारी प्रस्तावों का डटकर विरोध किया जा सकता है। इसे वह ब्रिटिश सरकार के खिलाफ भारतीय जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों के माध्यम से स्वराज्य की आवाज बुलंद करने के एक मंच के रूप में देख रहे थे। मालवीय जी का मानना था कि इसके माध्यम से चुने गये प्रतिनिधि भारतीय जनता की आवाज को परिषद के अन्दर जोर-शोर से उठा सकते हैं।

इसी तरह अदालतों के बिहिष्कार पर भी मालवीय जी के विचार गाँधी तथा अन्य नेताओं से भिन्न थे। इनका यह मानना था कि पंचायतों का गठन तो ठीक है, परन्तु इनके सफलतापूर्वक स्थापना से पूर्व ही अदालतों का बिहिष्कार करना क्या उचित होगा? सबसे पहले तो सभी वकीलों द्वारा वकालत छोड़ना भी सम्भव नहीं है, क्योंकि उनका यही मुख्य व्यवसाय ही है। अतः बिना पंचायतों का गठन किये ही अदालत का बिहिष्कार उचित नहीं है। इससे कई ऐसे बंदी जो निर्दोष हैं तथा जेलों में बन्द हैं, बिहिष्कार के फलस्वरूप उनके साथ न्याय नहीं हो पायेगा तथा वे जेल में ही रह जायेंगे। कुछ इसी तरह वे शिक्षण संस्थाओं के बिहिष्कार से भी असन्तुष्ट थे तथा इस पर लाला लाजपत राय के विचारों से पूरी तरह सहमत थे जिन्होंने शिक्षण संस्थाओं के बिहिष्कार को अनर्थकारी कहा था।

मालवीय जी शिक्षा को देश के विकास के लिए आवश्यक मानते थे। वे शिक्षण संस्थाओं का उपयोग एक सचेत राष्ट्रभक्त नवयुवक पैदा करने के पक्ष में थे। उनके विचार में इन संस्थाओं के माध्यम से ऐसे नवयुवक तैयार किये जा सकते हैं जो ज्ञान-विज्ञान में पश्चिम से बराबरी तो कर ही सकें तथा पश्चिमी देशों में आम नागरिकों को प्राप्त स्वतंत्रता की तरह अपने लिये भी स्वतंत्रता की मांग मजबूती से कर सके। वे इन संस्थाओं के माध्यम से नवयुवकों को देशप्रेम की शिक्षा देना चाहते थे। स्वतंत्रता आन्दोलन में छात्रों के प्रवेश पर मालवीय जी का स्पष्ट रूप से यह विचार था कि छात्र अपनी अन्तरात्मा की आवाज पर ही इसमें शामिल हों। अपना अमूल्य समय न बर्बाद करें तथा ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन द्वारा देश को एक समर्थ और शक्तिशाली राष्ट्र के निर्माण में योगदान दें। इस प्रकार मालवीय जी शिक्षण संस्थाओं से संबंध विच्छेद के खिलाफ थे।

इस तरह हम देखते हैं कि असहयोग आन्दोलन के समय गाँधी जी से कुछ मुद्दों पर विरोध होने के बावजूद भी वे गाँधी जी को सम्मानित भाई कह कर ही पुकारते थे तथा गाँधी जी मालवीय जी को बड़े भाई के रूप में ही सम्बोधित करते थे। मालवीय जी कांग्रेस के अधिवेशनों, बैठकों में जाकर निःसंकोच अपनी बात रखते तथा अपना विरोध भी प्रकट कर देते थे। मतभेद होने पर गाँधी जी को अकेले में समझाने का प्रयास भी करते थे। कुछ बिन्दुओं पर विरोध के बावजूद भी असहयोग आन्दोलन की सफलता से वे काफी प्रसन्न थे। लार्ड रीडिंग से गाँधी जी का समझौता कराने का मालवीय जी ने भरसक प्रयास किया। मालवीय जी लार्ड रीडिंग से मिलकर स्वहित के लिये नहीं अपितु देश की समस्याओं पर विचार-विमर्श करते। इससे स्पष्ट होता है कि इनके लिए राष्ट्रहित सर्वोपरि था। मालवीय जी ने 17 नवम्बर 1921 में देश में आये राजकुमार प्रिंस आफ वेल्स के बहिष्कार का विरोध ब्रिटिश सरकार से अपने फायदे के लिए नहीं किया अपितु कटुता, दमन, उपद्रव आदि जैसे अनावश्यक घटनाओं से भारतीय जनता को वे बचाने के लिए किया था।<sup>11</sup> सरकार ने नाइटहड की उपाधि द्वारा मालवीय जी को अपनी तरफ आकर्षित करने का प्रयास किया पर मालवीय जी ने तो निःस्वार्थ भाव से देश सेवा का व्रत ले लिया था, अतः सरकार को निराशा ही हाथ लगी। मालवीय जी ने वायसराय को शासन सुधारों से सम्बन्धित मार्च 1922 में एक गोलमेज सम्मेलन के लिये राजी भी कर लिया तथा मौलाना आजाद तथा देशबन्धु से मिले। परन्तु गाँधी जी बिना कोई शर्त ही जेलों में बंद नेताओं की रिहाई चाहते थे तथा इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इससे मालवीय जी काफी दृःखी भी हए जिसका उल्लेख आजाद ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया विन्स फ्रीडम' में किया है, क्योंकि मालवीय जी ने इस कान्फ्रेंस के लिये काफी प्रयास किया था।12 इसके बाद भी मालवीय जी समझौते के लिये प्रयासरत रहे। बाद में मालवीय जी एक प्रतिनिधि मण्डल के साथ जिसमें श्रीमती एनी बेसेंट, मिस्टर फजलुल हक, प्रफुल्ल चन्द्र राय, घनश्याम दास बिड़ला आदि जैसे नेता थे, वायसराय से पुनः मिले। वायसराय से प्राप्त आश्वासन के बाद मालवीय जी के आग्रह पर जमनादास तथा द्वारकानाथ. गाँधी जी से मिलने अमहदाबाद गये। गाँधी जी के पुनः इंकार से मालवीय जी ने गाँधी जी के दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए कांग्रेस की महासभा में एक वक्तव्य पढा। 14 फरवरी 1922 को मालवीय जी ने अन्य नेताओं के सहयोग से शंकर-नायर की अध्यक्षता में एक सर्वदलीय कान्फ्रेंस आयोजित की। इस कांफ्रेंस में सरकार की दमन नीति की घोर निन्दा की गयी तथा साथ ही कांग्रेस से भी यह प्रार्थना किया गया कि सरकार से जब तक बातचीत चल रही है सविनय-अवज्ञा आन्दोलन न चलाया जाय। इस कान्फ्रेंस में यह भी निर्णय लिया गया कि सरकार भी खिलाफत, स्वराज्य तथा पंजाब के मुद्दे पर एक गोलमेज कांफ्रेंस बुलाये तथा सभी सजा प्राप्त कैदी और सत्याग्रही को छोड़े।<sup>13</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि कांग्रेस अधिवेशन के तुरंत बाद ही इस तरह के अधिवेशन को आयोजित कर मालवीय जी ने अपनी क्षमता तथा प्रभाव का परिचय दिया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने के पूर्व

इस प्रकार का सम्मेलन आयोजित करना निःसन्देह एक प्रशंसनीय कार्य था जिसमें गाँधी जी ने भी भाग लिया था।

5 फरवरी 1922 को घटित हिंसक चौरी-चौरा काण्ड के फलस्वरूप गाँधी जी काफी विचलित हुए। गाँधी जी द्वारा इस आन्दोलन में हिंसा पर पूर्ण प्रतिबन्ध का आदेश दिया गया था। इस काण्ड से दुःखी हो गाँधी जी ने आन्दोलन को वापस लेने का निर्णय लिया। 14 अचानक गाँधी जी ने किसानों को लगान देने तथा कांग्रेस द्वारा जुलूसों पर प्रतिबन्ध का आदेश दिया। गाँधी जी के इस निर्णय पर काफी विवाद हुआ तथा इस निर्णय के कारणों पर आज भी विभिन्न विचार प्रस्तुत किये जाते हैं। 22 फरवरी 1922 को असहयोग आन्दोलन समाप्त हो गया। मार्च 1922 में गाँधी जी को गिरफ्तार कर 6 वर्ष की जेल की सजा ब्रिटिश सरकार द्वारा सुनाई गई।

अंग्रेजों द्वारा भारतीयों का उत्पीड़न और बढ़ गया था। गांधी जी को कारावास की सजा होने से मालवीय जी पर उत्तरदायित्व और बढ़ गया। इस विकट परिस्थिति में मालवीय जी ने अपने रचनात्मक कार्यों से राष्ट्रीय आन्दोलन तथा कांग्रेस को निरन्तर ऊर्जा का संचार करते रहे तथा भारतीयों द्वारा स्वराज्य प्राप्ति के आशा के दीप को प्रज्वलित किये रखा। मालवीय जी ने पंजाब, आसाम राज्यों के कितने ही दुर्गम स्थलों का दौरा किया। जोशीले भाषण दिये तथा देशवासियों को संगठित कर उन्हें एकजुट रहने का संदेश दिया। मालवीय जी ने इस संकट की घड़ी में अपने को देश सेवा के लिए पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के इस महत्वपूर्ण गदर में मालवीय जी ने अपने कुशल राजनीतिक चैतन्यता, पूर्ण समर्पण तथा अप्रतिम देश भक्ति द्वारा देश की अमूल्य सेवा की।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ

- 1. तिवारी, उमेश दत्त, *भारत भूषण पं० मदन मोहन मालवीय,* बी०एच०यू०,
- 2. परमानन्द, *मदन मोहन मालवीय : एक हिस्टोरिकल बायग्राफी,* केन्द्रीय ग्रंथालय, बी0एच0य्0, 1962, प्र0 64
- 3. लाल, मुकुट बिहारी, *महामना मदन मोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व,* मालवीय अध्ययन संस्थान, बी०एच०य्०, 1978, प्र० 38
- 4. वही, पृ0 42
- 5. वही, पृ0 282
- 6. बिपिन चन्द्र, *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1998 (द्वितीय संस्करण), पृ0 135
- 7. लाल, मुकुट बिहारी, *पूर्वोक्त*, पृ0 285
- 8. वहीं, पृ0 286
- 9. वही, पृ0 286
- 10. *वही,* पृ0 287
- 11. *वही,* पृ0 293
- 12. आजाद, इण्डिया विंस फ्रीडम, पृ० 27
- 13. लाल, मुकुट बिहारी, पूर्वोक्त, पृ0 297
- 14. बिपिन चन्द्र, *पूर्वोक्त*, पृ0 140

# मालवीय जी की दृष्टि में राष्ट्रवाद

रजनी कान्त राम\*

मालवीय जी की दृष्टि पर शिक्षा, स्वदेशी, सर्वधर्म आदर और स्वराज्य की श्रेष्ठता का अधिक प्रभाव था जो कि राष्ट्रीय गौरव की रक्षा के लिए आवश्यक माना जाता है। मालवीय जी राष्ट्रीयता को सभी कर्मों से ऊपर मानते थे। उनका जन्म परम्परागत हिन्दू परिवार में हुआ था। उन्हें हिन्दू संस्कृति की श्रेष्ठता पर विश्वास था। उनका हिन्दू धर्म, भाषा तथा हिन्दू संस्कृति से विशेष लगाव था।

संस्कृति को वे राष्ट्रवाद का आधार मानते थे किन्तु उनका कहना था कि हम सबसे पहले भारतीय है, हिन्दू या मुस्लिम बाद में। उन्होंने राष्ट्रीयता की भावना के लिए धर्मभेद, मतभेद, जातिभेद, वर्णभेद के होते हुए भी राष्ट्रीयता के श्रेष्ठ भाव अपनाने की आवाज उठायी। उन्होंने कहा था कि, "स्वराज्य की सीढ़ी में हमारा सबसे प्रथम प्रयास एकता स्थापित करना है।"

राष्ट्रवाद की किसी ऐसी धारणा को स्वीकार करने के लिए वे तैयार नहीं थे, जो हिन्दू धर्म के आधारभूत नैतिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल होती, किन्तु मालवीय जी का हृदय विशाल तथा उदार था, वे इस पक्ष में नहीं थें कि देश में हिन्दुओं का आधिपत्य हो। उनकी दृष्टि में सच्चे भारतीय राष्ट्रवाद की आवश्यकता यह थी कि जनता के सभी वर्गों के कल्याण और हितों का सम्बर्द्धन किया जाय। वे कहा करते थे कि सब सम्प्रदायों के लोगों को एक महान राष्ट्र के रूप में संयुक्त करने के लिए आवश्यक है कि देशमुक्ति तथा भाईचारे की भावनाओं का परिवर्द्धन किया जाए।

#### मालवीय जी की शिक्षा

देश के सार्वजिनक जीवन में मालवीय जी का बड़ा योगदान है। उनका एक महत्त्वपूर्ण कार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना है। इस विश्वविद्यालय से उन्हें हार्दिक प्रेम था । "मालवीय जी भी गांधी जी को बहुत मानते थे। विश्वविद्यालय के छात्र मालवीय जी से जब असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए पूछने गये तो मालवीय जी की आंखो में आंसू आ गये। उन्होंने कहा था, 'तुम लोगों का मेरा आशीर्वाद है'। मैं अपने अशिक्षित देश के लिए शिक्षा को बहुत महत्त्व देता हूँ। इसी शिक्षा के बल पर हम और गांधी जी राष्ट्रीय आन्दोलन और स्वाधीनता जैसी मांग करने के लिए सक्षम बने है। शिक्षा के असहयोग से अंग्रेजों को अहित के बजाय (उनका) हित ही अधिक होगा। वे कब चाहते हैं कि हम लोग शिक्षित होकर अपने अधिकारों के प्रति जागृत हों। किन्तु मैं राष्ट्रीयता और बापू के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार हूँ। मैंने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग और परिश्रम लगाकर इस विश्वविद्यालय की स्थापना की हैं"।

"भारत केवल हिन्दू का देश नहीं है यह मुसलमानों, ईसाई और पारिसयों का भी देश है। यह देश तभी शक्तिवान बन सकता है और अपना विकास कर सकता है जब भारत में रहने वाले विभिन्न समुदायों के लोग पारस्परिक सौहार्द से रह सकें। यह मेरी आशा एवं प्रार्थना है कि प्रकाश और जीवन के इस केन्द्र (बी.एच.यू.) जो अस्तित्व में आ रहा है, जो ऐसे छात्रों का मृजन करेगा जो न केवल दुनिया के अन्य भागों के अच्छे छात्रों के समान योग्य होंगे, बल्कि ये छात्र एक आदर्श जीवन जीयेंगे, अपने देश से प्रेम रखेंगे और देश की सत्ता के प्रति स्वामिभक्त रहेंगे।"

मालवीय जी के अनुसार हमारी शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह है कि बीस वर्ष की शिक्षा के बाद भी भारतीय नवयुवक अपना, अपनी स्त्री-बच्चों तथा निर्धन माता-पिता के निर्वाह के लिए कुछ नहीं कर पाता। अतः वर्तमान शिक्षा प्रणाली जड़ से ही दोषयुक्त है और इसमें आमूल परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता है, जो किसी भी व्यक्ति की सामर्थ्य की बात नहीं है। इसके लिए सामूहिक तथा राजनैतिक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। वह शिक्षा को राष्ट्रीयता से जोड़ना चाहते थे।

राष्ट्रीयता के विकास के लिए मालवीय जी हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं को सभी स्तर पर शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे। नौकरी तथा शिक्षा के माध्यम के विषय में मालवीय जी ने प्रकाश डालते हुए कहा था, भारतीय विद्यार्थीयों के मार्ग में अनेक बाधाएं है। उनके मार्ग में आने वाली कठिनाईयों का कोई अन्त नहीं है। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि यहां शिक्षा तथा नौकरी का माध्यम विदेशी भाषा है। संसार में कही भी शिक्षा तथा नौकरी का माध्यम विदेशी भाषा नही है। फलस्वरूप मातृभाषा पर कम ध्यान दिया जाता है। 7 वर्ष की अवस्था से ही बालक अपने अध्ययन का बहुमूल्य समय विदेशी भाषा रटने में लगा देता है, जिससे वह अपनी भाषा से भी अनभिज्ञ रह जाता है और विदेशी भाषा का अध्ययन, जो अप्राकृतिक है ही उसमें उसका रटा हुआ ज्ञान भी अधूरा ही रह जाता है। अंग्रेजी भाषा के विषय में ग्लेडस्टन ने कहा है कि ''यह एक ऐसी भाषा है, जिसकी वर्णरचना किसी विदेशी को पागल बना देती है।" अतः मालवीय जी चाहते थे कि विश्व के अन्य देशों की भांति शिक्षा तथा अध्ययन का माध्यम मातृभाषाएं हों।

जीवन के प्रति मालवीय जी का दृष्टिकोण धार्मिक था। उन्हें धर्म की जीवन दायिनी शक्तियों में हार्दिक विश्वास था। उनका कहना था कि धार्मिक नियमों, और व्रतों का पालन करने से जो नैतिक प्रगति होती

<sup>\*</sup> पीएच0डी0 (शोध छात्र), राजनीतिशास्त्र विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

है वह भौतिक समृद्धि से अधिक सारयुक्त है। वे कर्त्तव्य परायणता भिक्त तथा समर्पण की धार्मिक भावनाओं को राष्ट्रीय महानता का साधन मानते थे। मालवीय जी ने राष्ट्रीय पुनर्निमाण के लिए एक व्यापक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनका कहना था कि देश के नैतिक, बौद्धिक और आर्थिक साधनों का परिवर्द्धन करने के लिए राजनीतिक सुधारों के आन्दोलन के अतिरिक्त लोगों में लोक कल्याण और लोक-सेवा की भावना उत्पन्न करना भी नितान्त आवश्यक है।

मालवीय जी विश्व बन्धुत्व के समर्थक थे। उनके राष्ट्रवाद में उनका उदार दृष्टिकोण मुखरित है। मालवीय जी की राष्ट्रवाद की धारणा अत्यन्त व्यापक थी वह राष्ट्र को भूखण्ड और मातृभूमि की पृष्ठभूमि से अन्य राष्ट्र की भूमि से अलग करती है उनकी विचारधारा विवेकानन्द से मिलती है। विवेकानन्द जब अमेरिका प्रवास से लौटे थे तो भारत भूमि पर पैर रखते ही भाव विहल होकर मातृभूमि के स्पर्श हेतु लोटने लगे थे। मालवीय जी भी मातृभूमि को इसी रूप में देखते थे। वह राष्ट्र की शक्ति देश की अस्मिता में मानते थे।

#### स्वदेशी

मालवीय जी स्वदेशी को मूल रूप में देशभिक्त का महत्त्वपूर्ण अंग समझते थे। उनके अनुसार गहरा, प्रगाढ़, उत्सुक तथा अन्य सभी भावों को शामिल कर देने वाला अपने देश का प्रेम ही स्वदेशी का मूल अर्थ है। स्वदेशी आन्दोलन की व्याख्या करते हुए मालवीय जी ने लोगों को बताया कि स्वदेशी का मुख्य उद्देश्य देश की आर्थिक स्थिति को सुधारना है। देश की स्थिति तब सुधर सकती है, जब देश में देशी वस्तुओं के व्यापार में वृद्धि हो तथा जो हमारे नित्य की वस्तुएं है। हमारे देश में व्यवसाय तथा शिल्प अभी नवजात है इनकी रक्षा और वृद्धि बहुत सावधानी पूर्वक करनी पड़ेगी। जिन देशों में स्वराज्य है, उन देशों में इनकी रक्षा सरकार कर लगाकर तथा रूपया लेकर करती है। परन्तु इस देश में इस विषय में सरकार से बहुत आशा नहीं की जा सकती। अतः आत्म सहायता तथा स्वार्थ त्याग से हमें इनकी रक्षा करनी पड़ेगी।

#### सर्वधर्म आदर

अन्य धर्मों के प्रति मालवीय जी के मन में बड़ा सम्मान था। एक बार वह कांग्रेस की एक सार्वजनिक सभा में भाषण देने के लिए बस्ती जा रहे थे, मौलाना शाहिद अली फारूकी ने लिखा है कि "मैं भी उस यात्रा में महामना के साथ था। सन्ध्या होते ही मालवीय जी सन्ध्योपासना करने लगे। मेरा नमाज पढ़ने का समय हो गया था, किन्तु उनके महान व्यक्तित्व के सामने मेरा नमाज पढ़ने का साहस नही हुआ। मालवीय जी ने संकेत से मुझे बुलाकर कहा, तुम कैसे मौलाना हो जी, नमाज नही पढ़ते, शाम की नमाज अदा करोगे क्या, उन्होंने गम्भीर वाणी में कहा, उठो नमाज पढ़ो समय हो गया है। मैंने उनके सामने नमाज पढ़ी। पूजा से उठने के बाद उन्होंने प्यार से मेरी पीठ ठोकी और कहा, मैं कब कहता हूँ कि मुसलमान अपने मजहब का पालन न करें।

इसके विपरीत मैं तो हिन्दू-मुस्लिम दोनों से कहता हूँ कि वे अपने-अपने मजहब और धर्म का पालन करें।''10

#### स्वराज्य

मालवीय जी ने स्वराज्य की मान्यताओं को प्रतिष्ठित करते हुए लिखा, न्याय तथा धर्म की बात यही है कि प्रत्येक देश तथा जाति के लोग अपने-अपने देश में स्वाधीन हो एवं अपने ऊपर स्वतः राज्य करें। अंग्रेज जाति जो स्वतः स्वतंत्रता की प्रेमी है भारत को सभ्यता के नाम पर सदैव अपने अधीन नहीं रख सकती। जब तक यह नहीं हो जाता भारत का वर्तमान दुर्दशा से उद्धार नहीं हो सकता। उनके अनुसार, देश भिक्त ही स्वराज्य सिद्धि का पहला सबसे प्रमुख साधन है। मालवीय जी को यह सोचकर अपार आनन्द होता था कि प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य इस बात से सहमत होगा कि स्वराज्य की स्थापना के लिए सबसे अधिक आवश्यकता राष्ट्रीय एकता की है। अर्थात ब्रिटिश भारत तथा भारत की एकता, हिन्दुओं तथा मुसलमानों में एकता और भारतीय जनता के सभी वर्गों में एकता होनी चाहिए।

हिन्दुस्तान एक महान देश है और उसमें सब मतों के लोग रहते है। हम सबका कर्तव्य है कि हम भारत माता की सेवा करें। परन्तु साथ ही इस कर्तव्य का विरोध किये बिना हमारा यह भी धर्म है कि हम अपने उस विभाग की भी सेवा करें जिससे हमारा विशेष धर्मगत सम्बन्ध है। यह सेवा हमारे जातीय कर्म के विरूद्ध नहीं है, हमे यह भली प्रकार सोच लेना चाहिए की हमें अपनी मातृभूमि में रहना है और यहीं हमें मरना है, इसी में हमारा पालन हुआ है और यही की मिट्टी में हमारी भस्म अथवा मिट्टी मिलेगी। हम सब एक ही परमात्मा की सन्तान है और एक ही मातृभूमि में हमारा जन्म हुआ है। 12

हम यह देखते हैं कि मालवीय जी का एक मुख्य योगदान उनका राष्ट्रवाद का सिद्धान्त है। स्टाइन गेटे और फिक्टे की भाँति मालवीय जी भी संस्कृति को राष्ट्रवाद का आधार मानते थे। प्राचीन भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए उनके मन में गहरी श्रद्धा थी, साथ ही साथ उन्हें देश की भावी प्रगति और सृजनात्मक शक्तियों में भी विश्वास था। वे शुद्ध और भौतिकवादी अथवा ऐहिकवादी राष्ट्रवाद का समर्थन नहीं कर सकते थे। वे हिन्दू संस्कृति पर आधारित राष्ट्रवाद के सिद्धान्त को मानते थे, किन्तु साथ ही साथ वे देश के अन्य सम्प्रदायों के प्रति निरपेक्षतः उदार तथा न्यायोचित व्यवहार करने के पक्ष में थे।

गाँधी जी ने मालवीय जी को देशभिक्त की प्रशंसा में कहा है कि देश सेवा ही मालवीय जी का भोजन है, वे इसे कभी नही छोड़ सकते है। जिस तरह 'भगवतगीता' का नित्य-पाठ छोड़ना उनके लिए असंभव है, उसी तरह देश सेवा भी उनके जीवन में सांस की तरह ओत-प्रोत है। इसलिए जब तक देश-सेवा होती रहेगी, और कौन जानता है कि वे इसे अपने साथ स्वर्ग में भी ले जाए। किन्तु दिक्कत यह है कि मालवीय जी स्वर्ग में जाना नही चाहते थे। उनकी तो अभिलाषा ही है- ''मुझे न तो राज्य की कामना है, न स्वर्ग की और न मोक्ष की

मेरा बस एक ही कामना है, पुनः जन्म लेकर दुःख से त्रस्त जनता के दुःख दूर करूँ अँधेरी आँखों को रोशनी दूँ।''<sup>13</sup>

मालवीय जी का कहना है कि हम तभी एक राष्ट्र में गुँथ सकते है जब हम देश प्रेम को अपना राजनीतिक धर्म मान लें। ईश्वर तथा मानव जाति के लिए हमें ऐसा करने की प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए और हमें चाहिए कि मातृभूमि के प्रति तथा देशवासियों के प्रति यह प्रतिज्ञा कर ले कि वे देश भाइयों के साथ, जाति-पाति का भेद-भाव छोड़कर अपने ही सदृश उनके जीवन, उनकी प्रतिष्ठा तथा स्वतन्त्रता का आदर करेंगे, और व्यक्तिगत तथा जातिगत स्वार्थ के लिए देश के स्वार्थ का बलिदान नहीं करेंगे। स्वतन्त्रता देवी के सच्चे पुजारी बन जाओं और मातृभूमि को स्वतन्त्र बनाने के लिए अपने को मनसा, वाचा तथा कर्मणा, हर प्रकार स्वतन्त्र पुरूष और स्वतन्त्र स्त्री समझो। 14

एक बार मालवीय जी ने राष्ट्र के महत्त्व के सम्बन्ध में कहा था। भारत में अनेक जातियाँ है। यदि कोई जाति चाहे कि दूसरी जाति यहाँ से चली जाय, तो यह उसकी भूल है। हिन्दू भी यही रहेंगे और मुसलमान भी यही रहेंगे। हमें एक दूसरे को भाई समझना चाहिए। देश प्रेम को न समझ पाने के कारण ही दोनों जातियां परस्पर एक होकर नही रह पा रही है, यदि आप जीवित रहना चाहते है तो मेल बढ़ाने का उपाय कीजिए। राष्ट्रीयता के लिए मालवीय जी देश की सभी जातियों को एकाकार करना चाहते थे। मलवीय जी ने 1929 में बल देकर कहा था कि ''आप स्वतन्त्रता चाहते है, स्वशासन चाहते है तो इसके लिए त्याग करने के लिए तैयार हो जाइये। आप अपने में स्वातंत्र्य प्रेम और मातृभूमि के गौरव के लिए त्याग की भावना पुष्ट करे। इस प्रकार हम पुनः एक राष्ट्र बन सकेंगे। राष्ट्रीयता द्वारा ही विभिन्न समुदायों में एकीकृत भावना जागृत होती है, जो विकास और समृद्धि के लिए आवश्यक है। 16

इस प्रकार यह परिलक्षित होता है कि मालवीय जी का विचार था कि राष्ट्र के रूप में एक होने पर ही देश की एकता सम्भव है। देश की एकता और सौहार्द के लिए वह देश के विविध धर्मावलिम्बयों में राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय चिरत्र को सम्पूर्ण राष्ट्र के धर्म के रूप में विकसित करना चाहते थे। राष्ट्रवाद को पाश्चात्य विचारकों ने अपनी-अपनी परिभाषाओं में संजोने के प्रयास अपने-अपने ढंग से किये है, किन्तु मालवीय जी ने आकर्षक परिभाषाओं के परे भारतीय राष्ट्रवाद के व्यावहारिक पक्ष का प्रतिपादन किया है। व्यक्ति सामुदायिक प्राणी है। उसका विश्वास समूह में होता है। राष्ट्र एक समष्टिवादी आवश्यकता है। यही एक ऐसा तथ्य है, जिसके आधार पर किसी देश का निर्माण और विकास होता है। बहभाषा, बहधर्म, बहजाति, बह सम्प्रदाय आदि वाले भारत देश के विकास और समृद्धि के लिए भारत का राष्ट्र के रूप में एकजुट होना अति आवश्यक है।

सारांशतः भारतीय राष्ट्रवाद की आवश्यकता यह थी कि जनता के सभी वर्गों के कल्याण और हितों का सम्बर्द्धन किया जाए जो सब सम्प्रदायों के लोगों को एक महान राष्ट्र के रूप में संयुक्त करने के लिए आवश्यक है। किन्तु इसके लिए अन्य धर्मों का भी सम्मान करना होगा। आज देश से इतनी बड़ी अल्पसंख्यकों की जनसंख्या को यहां से बाहर नहीं भेजा जा सकता और न ही उसे समाप्त ही किया जा सकता है। भारत का सर्वांगीण विकास तभी सम्भव है, जब सभी सम्प्रदाय, जाति, धर्म, वर्ग के लोग भारतीय राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हो जाए।

#### सन्दर्भ-सूची

- लाल, मुकुट बिहारी. महामना मदन मोहन मालवीय, जीवन और नेतृत्व, मालवीय अध्ययन संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1987. प्र. 150.
- 2. वर्मा, वी.पी. *आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन*, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1998. प्र.378.
- मालवीय, पं. मदन मोहन. *दीक्षान्त भाषण*, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 14 सितम्बर, 1929. पृ. 43.
- 4. बी.एच.यू. वेबसाइट : www.bhu.ac.in, प्राप्त किया दिनांक 1.1.2007.
- 5. मालवीय, पं. मदन मोहन, दीक्षान्त भाषण, पृ. 60.
- 6. वही, पृ. 60.
- 7. *मालवीय जी के लेख*, अखिल भारतीय मालवीय जन्मशती समारोह समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1961. पृ. 15.
- 8. वही, पृ. 30.
- 9. वही, पृ. 30.
- त्रिपाठी, डॉ. द्विवेदी, डॉ. कृष्णदत्त. भारतीय राष्ट्रवाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006. प्र. 97.
- 11. मालवीय जी के लेख, पृ.11.
- 12. वर्मा, डॉ. विद्युत. *महामना चिन्तन आलोक,* महामना मालवीय मिशन विवेक खण्ड-1, गोमती नगर लखनऊ, 2001. पृ. 43.
- तिवारी, डॉ. उमेशदत्त. भरत भूषण महामना पं. मदन मोहन मालवीय (जीवन एवं व्यक्तित्व), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, 1988. पृ. 32.
- 14. वर्मा, डॉ. विद्युत. महामना चिन्तन आलोक, पृ. 44.
- 15. मालवीय जी के लेख, पृ. 4.
- त्रिपाठी, डॉ. सत्येन्द्र द्विवेदी, डॉ. कृष्णदत्त. भारतीय राष्ट्रवाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006. पृ. 101.

# महामना के स्वप्नों का भारत

डॉ0 सञ्जय कुमार\*

पण्डित मदन मोहन मालवीय का पदार्पण इस धराधाम पर उस समय हुआ था जब भारत गुलामी के अर्गला से जकड़ा हुआ कराह रहा था। जनता के पास न कोई अधिकार था और न ही कुछ करने मात्र की स्वतन्त्रता। प्रत्येक कार्य के लिए अंग्रेजी प्रशासन से अनुमित लेना भारतीयों का कर्त्तव्य बन गया था। हिन्दू धर्म का सब प्रकार से दमन करना अंग्रेजों का लक्ष्य था। अंग्रेज भारत में ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए कई संस्थाएँ स्थापित कर चुके थे, भारतीय जनता गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी आदि समस्याओं से जूझ रही थी। दिन भर काम करने पर भी शाम को नमक और रोटी भी मयस्सर नहीं हुआ करती थी। अंग्रेज अवसर का लाभ उठाते हुए दाने फेककर उन्हें ईसाई बना लेते थे। इस तरह हमारी सनातन संस्कृति बहुत सस्ते में बिक रही थी। भारतीय जनता अपनी संस्कृति छोड़कर पश्चिमी संस्कृति में पलने लगी थी। भारत का नैतिक और चारीत्रिक बल क्षीण होता जा रहा था। महामना मालवीय का जीवन सनातन संस्कृति में पृष्पित एवं पल्लवित हुआ था। सनातन संस्कृति के इस दुरूह अवस्था को देखकर महामना का हृदय आन्दोलित हो गया और वे लोक कल्याण एवं सनातन संस्कृति के रक्षार्थ संग्राम भूमि में कूद पड़े।

प्रयाग के श्यामल भूमि का सपूत महामना अपना कार्य क्षेत्र काशी चुना, यहाँ से वे भारतीय जनता में आदर्श का बिगुल बजाते थे। वे राम और कृष्ण के जीवन मूल्य को बाटते-फिरते थे। जन कल्याण उनका मूलोद्देश्य था, वे बहुत साहसी थे, किसी से भी नहीं डरते थे। उनकी निडरता पर माइकेल ओडयर कहता है कि "मालवीय बड़े खतरनाक व्यक्ति हैं भारत के क्रान्तिकारी दल को अपनी वक्तृताओं द्वारा उभाड़ा है। वह हृदय से क्रान्तिकारियों के साथ हैं। हमारे घर में आकर हमें ही गालियाँ देने की जुर्रत करना मालवीय जी की ही हिम्मत हैं। मालवीय में इतना आत्मबल था कि वे कभी सत्य कहने में संकोच नहीं करते थे। वे भारतीयों के आजादी के लिए सदैव संघर्षशील रहे। उनकी अभिलाषा थी कि भारतीयों को पतित से पावन बनाना है। उनका हर संभव सहयोग करना ही जीवन है। इसके लिए उन्हें कितना ही त्याग करना पड़े इसकी चिन्ता नहीं करते थे। वे महाकवि भवभूति के उसी आदर्श के अनुयायी थे जिसके राम ।

# 'स्नेहं, दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमिप। आराधनाय लोकस्य मुञ्जतो नास्ति मे व्यथा॥'²

लोकराधन के लिए स्नेह, दया, सुख अथवा जानकी को छोड़ने में मुझे (राम को) कोई कष्ट नहीं है। मालवीय जी भी लोक कल्याण के लिए अपने सभी सुखों की तिलाञ्जलि दे दी। देश की सेवा में वे कभी भी परिवार को सामने नहीं आने दिया। पवित्र भाव से दीन-दुखियों की सेवा में लगे रहे। उनका कहना था 'अपनी इच्छा से बिना किसी बन्धन वा स्वार्थ के किसी दीन-दुःखी प्राणी की सेवा करने से बड़ा यज्ञ और कुछ नहीं है।' यही पूजा है।<sup>3</sup>

मालवीय जी का सम्पूर्ण जीवन भारतीय संस्कृति की समृद्धि में समर्पित था। वे चारों तरफ दया, प्रेम, सदाचार को उत्पन्न करना चाहते थें वे जन-जन को यही उपनिषद् वाक्य की शिक्षा देते थे-

# सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग भवेत॥

उनका मानना था कि जब यह उपनिषदीय भाव सब मानवों में आ जायेगा तब आपसी राग-द्वेष समाप्त हो जायेगा। सबमें समानता का भाव उत्पन्न हो जायेगा। बाबू जगजीवनराम लिखते हैं कि 'महामना मालवीय जी भारत की एक ऐसी विभृति थे जिनको जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उच्च तथा स्मरणीय स्थान प्राप्त था। उनका विशाल हृदय धनी व निर्धन, विद्वान तथा सामान्य व्यक्ति, हिन्दू तथा अहिन्दू, सभी को समानता से स्वीकार करता है। वे चाहते थे कि समाज में ऊँच-नीच का जो भाव है वह नहीं होना चाहिए, वे कहते थे 'मै मनुष्यता का पुजारी हूँ मनुष्यत्त्व के आगे मैं जात-पात नहीं मानता' सबमें मनुष्यत्त्व का दर्शन करना ही दिव्य जीवन है। सभी एक ही परमब्रह्म की सन्तान है। उनका आग्रह था 'हिन्दू और मुसलमान इन दोनों में जब तक प्रेमभाव नहीं उत्पन्न होगा तब तक किसी का भी कल्याण नहीं होगा। एक दूसरे के अपराध को भूल जाइए और एक दूसरे को क्षमा कीजिए। '6 क्षमा में बहुत बड़ी शक्ति होती हैं पण्डित जी सदैव दीन-दु:खियों की सेवा, विद्वानों का सम्मान तथा गुणों को ग्रहण करने वाले थे। वे सदैव सहज जीवन जीने में विश्वास करते थे और सबको सहजता से रहने की शिक्षा देते थे। जो आनन्द सहजता में है वह बनावटी में कभी नहीं मिल सकता, बनावटी जीवन सदैव पीड़ा देता है।

मालवीय जी को भारत की मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य की चिन्ता थी। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है। शारीरिक बल की कमी से देश कमजोर होता है अतः मालवीय जी देशवासियों को शारीरिक और मानसिक रुप से स्वस्थ देखना चाहते थे। 1924 ई0 में लाहौर के एक कार्यक्रम में उन्होंने बोलते हुए कहा था—प्रत्येक पुरुष का धर्म है, वह व्यायाम करें, मै चाहता हूँ कि भारत की सब जातियों के लोग बलवान हों, सब शेर हों, जिससे आपस में युद्ध की सम्भावना मिट जाये क्योंकि किसी वन में शेरों का शेरों से युद्ध नहीं होता। 1937 ई0 में दिसम्बर मास की

रात्रि में एक बार मालवीय जी छात्रावास पहुँचे, वहाँ के सभी छात्र उनके दर्शन के लिए आये, सभी ने महामना के चरण छुये। इसी समय महामना ने मधुर वाणी में वार्डेन से कहा- अरे! शंकरदत्त तुमने इस सर्दी में बच्चों को बुला लिया, जाओ-जाओ बच्चों, छात्रावास वापस जाओ और

# दूध पियो कसरत करो नित्यजपो हरनाम। हिम्मत से कारज करो पुरेंगे सब काम॥

मालवीय जी का यह सपना था कि सभी देशवासी स्वस्थ रहे। महामना मालवीय भारतीय संस्कृति के प्रखर चिन्तक थे। उनकी आत्मा में भारत वसता था, भारत का जन-जीवन बसता था। उन्हें भारतीय संस्कृति इतनी प्रिय थी कि 'वे हिन्दू विश्वविद्यालय के सब मकान 'हिन्दू शिल्पशास्त्र' के अनुसार ही बनवाना चाहते थे उनका आग्रह था कि हमारे विश्वविद्यालय के मकान देखते ही उनमें हिन्दूत्व स्पष्ट रीति से दिखना चाहिए'। वे भारतीय रीति परम्पराओं के संरक्षक थे। सबकी आवश्यकता और अनुभूति समझते थे इसीलिए तो उन्हें महात्मा कहा जाता है। वे कभी किसी को निराश नहीं किया। 'वे आशा के सम्बल थे। पर दुःख कातर थे आपको वेदशास्त्र पुराणोक्त संस्कृति ही अभिष्ट थी। '10

सस्कृति हमारी भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवनचर्या को निर्धारित करने वाली वह व्यवहार पेटिका है जो मनुष्य से शास्वत सम्बन्ध रखती है। इसी के बल पर ही मनुष्य अपना पूर्ण विकास करता है तथा मानवीय मूल्यों को जान पाता है। किसी भी देश की पहचान उसकी संस्कृति से करना चाहिए। संस्कृति ही मानव को मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक विशिष्टता प्रदान करने वाली वह आचार-कोश है जिसकी झलक स्वर्ग में प्रतिविम्बित होती है। मालवीय जी भारतीय संस्कृति धर्मी थे और सभी को इसका धर्मी बनाना चाहते थे। वे जीवनपर्यन्त मानव कल्याण में लगे रहे। उनके अन्दर छूत-अछूत, नीच-ऊँच की भावना नहीं थी न किसी के प्रति राग-द्वेष ही रखते थे। वे सदैव मानव उत्थान अभ्युदय और श्रेयश के पावन कार्यों में संलग्न रहा करते थे। दूसरों से भी वे यही अपेक्षा रखते थे ''वे सारी वसुधा के निवासियों को अपना कुटम्ब मानते थे 'उनकी मधुर वाणी, सात्विक रमणीयपरिधान, अभिराम और विशिष्ट व्यवहार तथा प्रशस्त आचरण सभी अनुपम थे11 वे सबमें अनुपम संस्कार का वपन चाहते थे। उनके मन में भारत का ऐसा निर्माण करना था जहाँ लोग रागद्वेश से मुक्त होकर आदर्श जीवन जीये।

भारतीय संस्कृति में त्याग का विशेष महत्त्व है। त्याग ही जीवन का नियामक है। इसके बिना जीवन सही अर्थ में जीवन नहीं है। महामना ईशावास्योपनिषद् के उसी मन्त्र का सबको सन्देश देते थे जिसमें त्यागपूर्वक जीवन की कामना की गयी है-

'ऊँ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चजगत्यां जगत्। तेन् व्यक्तेन् भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥'¹² अर्थात् उस ईश्वर के द्वारा प्रदत्त पदार्थों का त्यागपूर्वक जीवन निर्वाह के लिए भोग करे। किसी के धन की इच्छा मत करो, इस आदर्श की संकल्पना हमारे प्राचीन महर्षियों में विद्यमान थी। यही प्राचीन साहित्यों का उद्घोष है। जिसका मालवीय उपदेशक एवं पालक थे। इसी प्रकार महामना कर्म की अवधारणा को भी व्यक्त करते थे। वे 'चरैवेती चरैवेती' की शिक्षा देते थे। कार्य करने से ही भाग्य भी साथ देता है। जब मनुष्य कार्य करना बन्द कर देता है तो वहीं उसका सब कुछ रुक जाता है। वे सदैव श्रीमद्भगवद्गीता के निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देते रहते थे-

# 'कर्मव्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सङ्गोऽत्वकर्मणि॥'<sup>13</sup>

फल की चिन्ता किये बिना मनुष्य को कर्म करना चाहिए। मनुष्य को कर्म करने का ही अधिकार हैं, उनका मानना था कि कर्म साधन है और फल साध्य। कर्म के द्वारा मनुष्य साध्य तक निश्चित पहुँचता है इसलिए कर्म करना चाहिए। महामना सबको कर्म करने की शिक्षा देते थे और कहते थे कि जन्म तो विधाता के हाथ में निश्चित है लेकिन कर्म के द्वारा जीवन साफल्य करना तो मनुष्य के ही हाथ में है। वह जैसा चाहे बन सकता है। शायद मालवीय जी का आशय भट्टनारायण के उस पंक्ति की ओर था जिसमें कहा गया है कि मैं सूत हूँ अथवा सूत का पुत्र हूँ जो हूँ कोई भी हूँ। कुल में जन्म लेना तो भाग्याधीन होता है मेरे अधीन पराक्रम है-

# 'सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्। देवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्॥'<sup>14</sup>

इस प्रकार महामना का स्वप्न था सभी पौरुषवान होवें। वे कहते थे कि विद्या पढ़ो सबको पढ़ाओ। राजाभोज के राज्य में धीवर भी संस्कृत जानते थे और पण्डितों की गलती शोधते थे। सबको विद्या पढ़ाना हमारा धर्म है। मालवीय जी अन्त्यजो को शिक्षा ग्रहण कराने के प्रबल हिमायती थे, उनका मानना था कि 'अन्त्यजों में जो कुछ भी त्रुटि समझी जाती है उसका सबसे प्रबल कारण उनमें विद्या प्रचार की कमी है। <sup>15</sup> वे सबको शिक्षित बनाकर ही राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। बिना शिक्षा की जागरूकता सम्भव नहीं है। अतः हर हाल में सबको शिक्षा ग्रहण कराना चाहिए।

स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय की बात है पण्डित मदन मोहन मालवीय जी असहयोग आन्दोलन में विद्यार्थियों के पाठन-पाठन के सम्बल बने हुए थे। काशी विश्वविद्यालय की स्थिति डावाँडोल हो रही थी। अध्यय-अध्यापन का नाम नहीं, क्षण-क्षण विश्वविद्यालय बहिष्कार की चर्चा चल रही थी। एक मालवीय जी की व्यक्तित्व था जो स्थिति को संभाले हुए था। पहले मालवीय जी को वक्तृता आरम्भ हुई। वे असहयोग के सभी पहलुओं के विरोधी नहीं थे परन्तु शिक्षालयों के बहिष्कार के विषय में उनका महात्मा जी से पूरा मतभेद था। 16 उनका मानना था कि शिक्षा ही आगे बढ़ने और संघर्ष करने की नींव है। इसका

बहिष्कार करने पर विकास कैसे सम्भव है? विद्या जीवन का सार है और अमरता का साधन। उनका आदर्श वाक्य था—

# 'विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतश्नुते॥'<sup>17</sup>

अर्थात् विद्या तथा अविद्या इन दोनों को जो मनुष्य साथ ही साथ जान लेता है वह अविद्या से मृत्यु को पा करके विद्या के द्वारा अमरत्व को प्राप्त करता है।

महामना मालीवीय जी सभी भाषाओं का आदर करते थे। उनकी दृष्टि से सभी भाषाओं का अपना महत्त्व है, अपनी प्रकृति है वे हिन्दी, संस्कृत या अंग्रेजी के भी प्रबल समर्थक थे क्योंकि भाषा जानना तो सबका अधिकार है। यह किसी की निजी वस्तु नहीं है वे विरोधी थे अंग्रेजी संस्कृति की, वे रोकते थे अंग्रेजियत की बाढ़ को पर विरोध करके नहीं बल्कि अपने काम से, अपने विचारों से और कोशिश करते थे अपनी संस्कृति के बढ़ाने की<sup>18</sup> महामना धर्म-दर्शन आदि की शिक्षा को सिर तथा भौतिक विज्ञान आदि की शिक्षा को धण मानते थे। वे उस शिक्षा के समर्थक थे जिससे व्यक्ति के चिरत्र का निर्माण हो। वे प्राचीन साहित्य के साथ विज्ञान शिक्षा पर भी बल देते थे। उनका मानना था दोनों के सहभाव से ही राष्ट्र का विकास सम्भव है। "आजकल के विज्ञान वगैरह को न समझे तो हम आज की द्नियाँ में खप नहीं सकते, दुर्बल रहते हैं अपने को खुशहाल नहीं बना सकते और हमारी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती क्योंकि दुनियाँ विज्ञान की और विज्ञान सारे ज्ञान का हिस्सा है। विज्ञान ने आदमी को बड़ी-बड़ी शक्तियाँ दी है-दी क्या है, ये शक्तियाँ तो प्रकृति की है लेकिन विज्ञान प्रकृति को अपनाता है और इससे उसकी ताकत बढ़ जाती है। इसलिए दोनों ही पहलू भारत को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक है। अगर इसमें से एक भी निकल जाता है तो यह एक पहिये की गाड़ी जैसा हो जाता है।<sup>19</sup> अतः प्राचीन संस्कृति और विज्ञान को एक साथ लेकर चलना चाहिए। एक सूक्ष्म है तो दूसरा स्थूल, एक जीवन का आन्तरिक सौन्दर्य है तो दूसरा वाह्य साधनों की स्विधा, इसीलिए मालवीय जी अपने विश्वविद्यालय में विज्ञान की सभी शिक्षाओं के साथ-साथ प्राचीन संस्कृति वेद, धर्म-दर्शन, उपनिषद्, पुराण, साहित्यादि के अध्ययन के निमित्त संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान सङ्काय की अलग से स्थापना किये। उनका विचार था कि हमारी पैत्रिक सम्पत्तियों में से सबसे बहुमूल्य रत्न हमारी संस्कृत भाषा है। इसी में हमारे पवित्र धार्मिक तत्त्व, ज्ञान और सभी प्रकार की प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति के अंग, प्रत्यँग, पूर्णतया सुरक्षित है।<sup>20</sup> इसीलिए वे संस्कृत ग्रन्थों को जीते थे और संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार भी करते थे। शिक्षा का विस्तार तथा प्राचीन सनातन धर्म की रक्षा करते हुए जनता में शिक्षा का प्रसार तो उनके जीवन का प्रधान कार्य था। वे प्राची और प्रतीचि दोनों संस्कृतियों को अपने विश्वविद्यालय में स्थापित किये। वे स्धारक होने पर भी प्राचीन वर्ण-व्यवस्था पद्धति के संरक्षक थे। उदार होते हुए भी भोजन की शुद्धि में बड़े कठोर थें

अर्वाचीन संस्कृति से लाभ उठाने वाले होते हुए भी प्राचीन संस्कृति के प्रतीक थे। वे भारत में वैसी ही शिक्षा देने के पक्षधर थे जैसी आचार्य मनु को मान्य थी। इस देश में उत्पन्न विद्वानों से पृथ्वी के सब मानव शिक्षा ग्रहण करे—

# एतत् देश प्रसूतस्य सकशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरपृथिव्यांसर्वमानवाः॥

महामना का सपना था भारत विश्वगुरु बने, धर्म गुरु बने, ज्ञान गुरु बने। इसलिए उन्होंने सभी ज्ञान-विज्ञान की शाखाओं-प्रशाखाओं की अपने विश्वविद्यालय में अध्ययन की सुविधा प्रदान किया। हिन्दू विश्वविद्यालय में शरीर शिक्षा और धर्म शिक्षा दोनों अनिवार्य हैं इन दोनों का मेला गङ्गा-यमुना की तरह होना जरूरी है। ब्रह्मचर्य का पालन कर शरीर दृढ़ बनाओं और चरित्र की रक्षा करो, जो छात्र विवाहित हैं वे यहाँ ब्रह्मचारी बने। उनका रहन-सहन आचार-व्यवहार लक्ष्मण की तरह हो। लक्ष्मण ने चौदह वर्ष ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया उसी से मेघनाद का वध कर सके। महामना के इस वक्तव्य का यह आशय है कि ब्रह्मचर्य में इतनी शक्ति है कि महान लक्ष्य को भी सामान्य बना देता है।

महामना परम धार्मिक थे और सनातन धर्म के उपासक, वे कहते थे कि इस पृथ्वी मण्डल पर जो वस्तु मुझको सबसे अधिक प्यारी है वह धर्म है और वह धर्म सनातन धर्म है। 22 सनातन शब्द का अर्थ है शाश्वत अर्थात् वह धर्म जो सदा-सदा से सदा-सदा के लिए इस भारत भूमि पर फैला हुआ है। मालवीय जी कहते थे धर्म तो शाश्वत है। मन्ष्य को किसी काल में भी उसके नियमों का पूर्ण रूप से पालन करने पर सदा के लिए परमानन्द, परमशक्ति, निर्वाण या मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। प्राचीन हिन्दू ऋषि-म्नियों ने अपनी तपस्या से जिस पूर्ण (धर्म) सत्य को जानकर उपदेश दिया था वह स्वतः सिद्ध है क्योंकि प्रकाश को दीपक दिखाने की आवश्यकता नहीं है। वह तो मनुष्य मात्र की सम्पत्ति है। उसकी रक्षा तथा प्रचार करना प्रत्येक विवेकी और मननशील मनुष्य का कर्त्तव्य है। वे सनातन धर्म एवं संस्कृति के मूर्त रुप थे सनातन धर्म की उन्हें व्यापक दृष्टि प्राप्त थी। जब आप चाहते हैं कि आपकी बिमारी में आपकी कोई सहायता करे, सुखदेवे तो इसी तरह आप दूसरों को सुख दो, दवा दो, यही धर्म का सिद्धान्त संसार के सभी प्राणियों के लिए है। और यही सबका कल्याणकारी एवं संसार में शान्ति स्थापित करने वाला है। महामना को व्यास जी की वही परिभाषा स्वीकार है जिसमें कहा गया है जो तत्व मनुष्य के समाज के, राष्ट्र के और विश्व के जीवन को धारण करता है वही धर्म है-

# 'धारणाद् धर्ममित्याहुधर्मो धारयति प्रजाः'23

धर्म ही सभी मनुष्यों को एकता के सूत्र में बाधता है और कर्त्तव्य को पूरा करने की प्रेरणा देता है। धर्म मार्ग का अनुसरण कर मानव इहलोक में सुख-शान्ति को प्राप्त करता हुआ मृत्योपरान्त परमपद मोक्ष को प्राप्त करता है।

महामना के मन में ऐसे भारत का निर्माण करना था जहाँ जीवन में धर्म, विज्ञान, संस्कृति, साहित्य, कला की साथ-साथ स्वदेश प्रेम व राष्ट्र सेवा की ललक हो। देश में विपत्ति आने पर उनमें इतना साहस हो कि दुश्मन समर्पण के लिए वाध्य हो जाय। वे ऐसे वीर सपूतों का जन्म चाहते थे जिनकी प्रेम और भक्ति का विषय अपनी मात्रभूमि हो। वे सच्चे सपूत दिन-रात कष्ट और हानियाँ उठाते हुए भी देश हित करने में मग्न रहे। जब देश में इसी भाव की बहुत आत्माएँ उत्पन्न हो जाती हैं तब उनका 'समानशील व्यसनेषु सख्यम्' की उक्ति के अनुसार मन से मन का मिलन हो जाता है।<sup>24</sup> उनका विचार था कि उच्च सैनिक जीवन अभिलाषा ही राष्ट्र को सुरक्षित रख सकती है। भारत हर प्रकार से आत्मनिर्भर रहे। उसके पास न खाद्यान् की कमी हो न रहने की समस्या। भारतकृषि प्रधान देश है अतः यहाँ अच्छी फसल के लिए अच्छी व्यवस्था का होना नितान्त आवश्यक है। भारत गावों में बसता है का मूल मन्त्र यही है कि कृषि के बिना यहाँ सब कुछ शून्य है अतः कृषि में उत्तरोत्तर विकास होना चाहिए। महामना सदैव किसानों के हित की बात करते थे। किसानों के ऊपर ही सम्पूर्ण देश का भरण-पोषण अवलम्बित है।

इस प्रकार हम देखते है कि महामना के स्वप्नों के भारत में शिक्षा एवं सनातन धर्म व संस्कृति के द्वारा उत्तरोत्तर विकास करके लोगों को आत्म निर्भर बनना था। सबका कल्याण तथा दीन-दुखियों की सेवा करना ही उनका मूलमन्त्र था। विद्यार्थियों से राष्ट्र का निर्माण सम्भव है अतः अपने कर्णधारों को विलष्ट और चिरत्रवान बनाना चाहते थे। भारतीय संस्कृति एवं पाश्चात्य संस्कृति के संयोग से देश के विकास के पक्षधर थे, मानवता के पुजारी थे। उनके स्वप्नों के भारत में चारों तरफ सुख शान्ति, समृद्धि की कल्पना थी। मानव मूल्यों की अक्षुणता थी। प्राचीन ग्रन्थों की दृढ़ आधारशीला से भारत का नव निर्माण एवं संस्कार करना ही महामना का सपना था जिसे वे साकार भी किये।

#### सन्दर्भ सूची

- 1. वर्मा ईश्वर प्रसाद, मालवीय जी के सपनों का भारत, किताब घर, गांधीनगर, दिल्ली, 1967, पृ0 177।
- 2. उत्तररामचरितम्, 1/12
- 3. वर्मा ईश्वर प्रसाद, मालवीय जी के सपनों का भारत, पृ० 139।
- 4. वही, सन्देश पृ0
- 5. वही, पृ0 140
- 6. वही, पु0141
- वर्मा डॉ. विद्युत, महामना के चिन्तन आलोक, महामना मालवीय फाउण्डेशन, लखनऊ, 2001, पृ0 17।
- 8. महामना सन्देश, पृ० 40-41
- 9. वर्मा ईश्वर प्रसाद, मालवीय जी के सपनों का भारत, पृ0 4
- तिवारी डा० उमेश दत्त, महामना के प्रेरक प्रसंग, खण्ड-एक, महमना मालवीय फाउण्डेशन, वाराणसी, पृ० 209।
- 11. वही, पृ0 211
- 12. ईशावस्योपनिषद, 1
- 13. श्रीमद्भगवत्गीता, 2/47
- 14. वेणीसंहारनाटकम्, 3/37
- 15. वर्मा डॉ0 विद्युत, महामना के चिन्तन आलोक, पृ0 71
- 16. तिवारी डॉ उमेश दत्त, महामना के प्रेरक प्रसंग, पृ0 31
- 17. ईशावास्योपनिषद् 11
- 18. तिवारी डाॅ0 उमेश दत्त, महामना के प्रेरक प्रसंग, पृ0 15
- 19. वही, पृ0 16
- 20. वर्मा डॉ विद्युत, महामना के चिन्तन आलोक, पृ0 57
- 21. तिवारी डॉ0 उमेश दत्त, महामना के प्रेरक प्रसंग, पृ0 21
- 22. मन्स्मृति, 2/20
- 23. अग्रवाल वासुदेव शरण, मालवीय जी के लेख और भाषण, भूमिका।
- 24. वर्मा ईश्वर प्रसाद, मालवीय जी के सपनों का भारत, पृ० 286।
- 25. महाभारत, शान्ती पर्व, 109/11।
- 26. वर्मा ईश्वर प्रसाद, मालवीय जी के सपनों का भारत, पृ0 144।

# महामना मालवीय : जीवन एवं चिंतन

#### सविता कुमारी \*

पं0 मदनमोहन मालवीय जिन्हें सादगी और सौम्यता का प्रतिमान कहा जाता है, अपने विचार एवं कर्म से भी महामना होने का परिचय दिया है।

मालवीय जी का चिंतन संश्लेषणात्मक एवं वृहद् दृष्टिकोण से परिपूर्ण था, उन्होंने पुरातन कट्टरता को अपने विचार एवं कार्य में स्थान ना देते हुए संश्लेषणात्मक एवं वृहद् दृष्टिकोण को अपनाया। उनके विचार आदर्शवाद एवं वस्तुवाद, प्रयोगवाद एवं ब्रह्मवाद, अस्तित्ववाद एवं मायावाद, मानवतावाद एवं आध्यात्मवाद के सुंदर समन्वय से परिपूर्ण है। उन्होंने अपने जीवन में जो संघर्ष किया और अपने लक्ष्य के प्रति जो दृढता का परिचय दिया, उससे उनके ईश्वरीय प्रेरणा का भाव प्रदर्शित होता है।

बचपन से ही धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण वाले महामना जी ने आजीवन संघर्षशील होकर जो कार्य किया उसका लाभ आज लाखों लोगों के जीवन को प्रतिभाओं से सुशोभित कर रहा है। उनका संघर्ष जीवन में किसी एक ही पक्ष को लेकर, ना होकर बहुआयामी था। बचपन से युवावस्था तक उन्होंने गरीबी की भयंकर मार झेली, तथापि उन्होंने बहुत ही धैर्य और मेहनत से अपना अध्ययन कार्य पूरा किया। मालवीय जी के जीवन का सबसे गौरवान्वित पहलू यह है कि, जो मालवीय जी स्वयं आर्थिक संकट के कारण स्वयं बी.ए. के उपरान्त इच्छा होने के बावजूद एम.ए. की पढ़ाई नहीं कर पाये, उनके संघर्ष एवं प्रयास के द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसे विशाल विश्वविद्यालय की स्थापना हुई, जो कि वर्त्तमान में भारत का सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय होने का गौरव प्राप्त किया है। अपनी पढ़ाई की इच्छा को उन्होंने अपने लेख के माध्यम से व्यक्त किया था—"जब मैं बी. ए. पास हुआ, घर में गरीबी बहुत थी, घर के प्राणियों को अन्न-वस्त्र का भी क्लेश था।"1

महामना जी का हृदय बहुत ही विशाल था, जिसमें मानवता के लिए सेवाभाव की भावना कूट-कूट कर भरी हुयी थी। मालवीय जी के अनुसार- "सच्चा तप है अपने भाईयों के ताप से तप्त होना। सच्चा यज्ञ है, अपने स्वार्थ की आहुति देना। सच्चा दान है, परमार्थ करना। सच्ची ईश्वर सेवा है, दुःखी जीवों की सेवा सहायता करना।"<sup>2</sup>

मालवीय जी ने अपने विचारों को साकार रूप देकर सफल कर्मयोगी होने का जो परिचय दिया है, वह अनुकरणीय है। उनके विचार जीवन में नैतिकता को समाहित करते हुए प्रगति के उच्च शिखर तक पहुँचने का था। जीवन के सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित उनके विचार अनुपम हैं।

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी मालवीय जी पत्रकारिता, वकालत, शिक्षाशास्त्री देशभक्त और सबसे बढ़कर एक आदर्श व्यक्ति के जीवन को बहुत ही सफलतापूर्वक चिरतार्थ किया है। अपनी देशभिक्त का साकार परिचय उन्होंने चमकती हुई वकालत को छोड़कर दिया है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उन्होंने जनमानस में अपने भाषण के द्वारा जोश से भर दिया। 1931 ई0 में करांची कांग्रेस में मालवीय जी ने अपने वक्तव्य में कहा- ''एक पराधीन देश को स्वतंत्रता जल्दी नहीं मिला करती। उसके लिए बड़े-बड़े यत्न करने पड़ते हैं। सैकड़ों तरीकों का इस्तेमाल करना पड़ता है।''<sup>3</sup>

उन्होंने हिंसात्मक होकर लड़ने की अपेक्षा अहिंसात्मक ढंग से लड़ने पर बल दिया, अहिंसात्मक लड़ाई की धैर्य को उन्होंने शिक्तशाली बताया। उन्होंने देश की अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए स्वदेशी को अपनाने पर जोर दिया। 23 सितम्बर 1907 ई0 को सूरत कांफ्रेंस की बैठक में 'स्वदेशी आन्दोलन योजना' का समर्थन करते हुए कहा-''अपने देश के उत्थान और जनता की समृद्धि में जितने भी आवश्यक प्रश्न वर्त्तमान हैं, उसमें स्वदेशी आन्दोलन का प्रश्न सबसे अधिक महत्त्व रखता है।''<sup>4</sup> उन्होंने देशवासियों से अपील की कि स्वदेशी आन्दोलन की सहायता कीजिए, तािक इससे भारत के सब गरीब भाईयों को अन्न और वस्न मिल सके। मालवीय जी देशभिक्त से पिरपृष्ट एकता को राष्ट्रीयता में पिरपृक्व करना चाहते थे। उनके अनुसार ''गहरी देशभिक्त से एकता उत्पन्न होती है। एकता से राष्ट्रीयता का भाव और राष्ट्रीयता के भाव से देश की उन्नित होती है।''

महामना जी ने स्वदेशी को प्रोत्साहित करते हुए भारतीय उद्योग के पतन के कारणों को उजागर किया कि किस तरह से विदेशी प्रभावों से ग्रसित होकर भारतीय परम्परागत उद्योग की स्थिति दयनीय अवस्था तक पहुँच गई। उन्होंने भारतीय उद्योग के सुधार पर विशेष बल देते हुए स्वदेशी को अपनाने की बात कही थी। सन् 1916-18 में उन्होंने औद्योगिक दशा को सुधारने के विषय में पर्याप्त रूप से प्रकाश डाला। उनका प्रारम्भिक जीवन स्वयं गरीबी में गुजरा था, इसलिए गरीबी के कष्ट को उन्होंने बहुत अच्छी तरह से समझा था। मालवीय जी की महानता इस बात से है कि उन्होंने गरीबी से उबर कर भी सादगी भरा जीवन को ही प्राथमिकता देते हुए उसे अपनाया।

अपने देशभिक्त में उन्होंने एकता का संदेश दिया। दिसम्बर 1909 में मालवीय जी की अध्यक्षता में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने जो भाषण दिया उसमें पंजाब हिन्दू सभा के विचारों का खण्डन तथा साम्प्रदायिक राजनीति और पृथक निर्वाचन पद्धति की कड़ी आलोचना की गई थी। उन्होंने देशवासियों से एकता की अपील की।

मालवीय जी हिन्दू धर्म के समर्थक होते हुए भी हिन्दू-मुस्लिम एकता को बनाये रखने के पक्ष में थे। राजनीति से उनका तात्पर्य कभी भी स्वार्थ नहीं रहा, बल्कि वे शांति और सुव्यवस्था को बनाये रखना चाहते थे। 16 सितम्बर 1922 को लाहौर में मालवीय जी ने हिन्दू-मुस्लिम सौहार्दता पर भाषण दिया। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए दोनों धर्मों के आदर-सम्मान देने की बात की। इसके लिए उन्होंने दोनों सम्प्रदाय के लोगों के बीच समन्वय स्थापित करने की बात स्वयं लोगों के बीच जाकर किया।

मालवीय जी ने सामाजिक समानता पर विश्वास किया। उन्होंने स्त्री को जीवन के विकास हेतु हमेशा सहभागी बनने का पक्ष लिया। उनके द्वारा स्त्री शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया। उन्होंने स्त्रियों को उनके चिरत्र-निर्माण पर अत्यधिक बल दिया। अपने इसी उद्देश्य से उन्होंने प्रयाग में बालकृष्ण भट्ट और राजिष पुरुषोत्तम दास टण्डन के सहयोग से 1904 ई0 में गौरी पाठशाला की स्थापना की, जो आजकल उच्चतर माध्यमिक कॉलेज के नाम से विख्यात है।

पुरुषों की शिक्षा से स्त्रियों की शिक्षा के प्रश्न को उन्होंने महत्वपूर्ण बताया, क्योंकि वे ही भारत की भावी सन्तानों की माता है। मालवीय जी ने स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहित करते हुए अपने दिक्षान्त भाषण में कहा ''स्त्रियाँ हमारे भावी राजनीतिज्ञों, विद्वानों, तत्वज्ञानियों, व्यापार तथा कला-कौशल के नेताओं की प्रथम शिक्षिका हैं। उनकी शिक्षा का प्रभाव भारत के भावी नागरिकों की शिक्षा पर विशेष रूप से पड़ेगा। महाभारत का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि, ''माता के समान कोई शिक्षक नहीं है।''6

महामना जी ने सामाजिक रूप से महिलाओं के उत्थान की जो रूपरेखा रखी उसमें उन्होंने स्त्रियों को विदुषी होने के साथ-साथ उच्च चित्रिय के विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला। उन्होंने स्त्रियों के लिए सभी विषयों के द्वार खोल रखे थे। उन्होंने उस समय भारत में प्रचलित वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली की राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं के लिए पूर्णतः अनुपयुक्त बताया। उन्होंने स्त्रियों के शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान के लिए कला, साहित्य, संगीत, विज्ञान सभी विषयों के अध्ययन हेतु उत्प्रेरित किया।

पं0 मदनमोहन मालवीयजी की दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति समष्टि का अंग है। विश्वबन्धुत्व से ओत-प्रोत महामना जी का जीवन देश, काल परिस्थिति के अनुसार लोक कल्याण की दृष्टि से जनसामान्य के कष्टों को दूर करने के लिए आजीवन स्वयं को कष्टों की ज्वाला में समर्पित कर दिया।

आचार्य नरेन्द्र देव के शब्दों में- "मालवीय जी भारत के गौरव स्तम्भ थे।" उनका जीवन सामाजिक कल्याण एवं देशहित को समर्पित था। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने मालवीय जी के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा, "'मैं मालवीय जी से बड़ा देशभक्त किसी को नहीं मानता, मैं सदैव उनकी पूजा करता हूँ।' महात्मा गाँधी ने मालवीय जी को सदैव आदर-सम्मान देते हुए अपने बड़े भाई का दर्जा दिया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के एक समारोह में श्री सी0 वाई0 चिन्तामणि ने लिखा है,

"If Mr. Mohan Das Karmchand Can be called Mahatma Mohan Das Karmchand Gandhi Pt. Madan Mohan Malaviya can be a aptly called Dharmatma Pandit Madan Mohan Malviya."8

महामना जी ने सादगी से अपनी बातों को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया। धर्म में उनकी अटूट आस्था थी, उन्होंने राजनीति में प्रवेश करने की पूर्व सनातन धर्म के माध्यम से ही जनता के मध्य अपनी पहचान बनाई थी। महामना मालवीय ने सनातन धर्म के विषय में कहा था। महामना जी का सत्य निष्ठा में अगाध विश्वास था। सात्विक सनातन धर्मी होने के कारण वे परम्परागत मर्यादा के विपरीत कोई बात नहीं सुनते थे। लेकिन वे विचारों में अत्यन्त उदार थे। वे आंदोलन करने के बदले रचनात्मक कार्यों में अधिक रूचि दिखाते थे। उनके हृदय में मानवता के लिए अपार भाव भरे हुए थे। विपन्नों तथा गरीबों को देखते ही उनका हृदय द्रवित हो उठता था।

महामना जी का व्यक्तित्व अद्भूत देव स्वरूप था। उनके व्यक्तित्व में सत्य-निष्ठ, सादगी, कर्त्तव्यनिष्ठ देशभक्ति, धर्मनिष्ठ, करूणा का जो समन्वय था, देवतुल्य आभा उत्पन्न करती है।

मालवीय जी सनातनधर्म के उपासक ही नहीं, सनातनधर्म के साक्षात् मूर्तरूप थे, परन्तु वे रूढ़ियों, कुप्रथाओं, अन्धविश्वासों का सनातन धर्म पर आवरण नहीं चढ़ाना चाहते थे। उनके सनातन धर्म का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत था।

महामना पण्डित मालवीय जी के विषय में जितना भी कहा जाये कम है, मालवीय जी एक महान शिक्षाविद्, कुशल राजनीतिज्ञ, सांसद, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, धर्मप्रवक्ता, श्रेष्ठअधिवक्ता, हिन्दुत्व के श्रेष्ठ प्राधिकारी, सशक्त देशभक्त, मानवता और करुणा के सागर एवं भारतीय संस्कृति के प्रकाश स्तम्भभूत भारतीयता की जीवंत प्रतिमूर्त्ति थे।

# सन्दर्भ सूची

- 1. महामना मालवीय, लेखक- ब्रजमोहन व्यास
- 2. मदनमोहन मालवीय जीवन-दर्शन, डा० मिथिलेश पाण्डेय
- 3. 8 अक्टूबर, 1917 को प्रयाग में महामना का भाषण महामना मदनमोहन मालवीय (चतुर्वेदी), प्र. 152
- 4. 23 दिसम्बर सन् 1907 ई0 को सूरत की कांफ्रेंस बैठक में सहायता का विचार (म0म0म0गा0) चतुर्वेदी कृत, पृ० 319
- 5. 8 अक्टूबर, 1917 को प्रयाग में महामना का भाषण महामना मदनमोहन मालवीय (चतुर्वेदी) पृ0 152
- 6. 14 दिसम्बर सन् 1929 का का0हि0वि0वि0 दीक्षान्त भाषण
- 7. मदनमोहन मालवीय
- 8. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में श्री सी. वाई चिन्तामणि का वक्तव्य उद्धत महामना मालवीय (ब्रजमोहन व्यास) yo 71
- 9. महामना मदनमोहन मालवीय (पं0 सीताराम चतुर्वेदी कृत) तृतीय खंड।

# महामना का महास्वप्न : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अरूण कुमार यादव \*

आधुनिक भारत के विश्वविद्यालयों की शिक्षा व्यवस्था सुसंगठित तथा पूर्णरुपेण व्यवस्थित है। आज सम्पूर्ण भारतवर्ष में केन्द्रीय विश्वविद्यालय तथा सैकड़ों विश्वविद्यालय (राज्यस्तरीय) अस्तित्व में है, जो कि भिन्न-भिन्न विषयों तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपनी एक अलग पहचान रखते हैं और इन्ही विश्वविद्यालयों की भीड़ में बनारस का एक विश्वविद्यालय अपनी एक अलग पहचान रखता है तथा सूरज की रिशम की तरह अपने ज्ञान-रिशम के द्वारा समस्त संसार को आलोकित कर रहा है। यह कोई अन्य नहीं अपितु महामना पिण्डत मदन मोहन मालवीय का साक्षात स्वप्न 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' है जो कि पूज्य महामना के दिये गये आदर्शों के साथ कुछ वर्षों में अपने शताब्दी वर्ष में प्रवेश करने जा रहा है।

यहाँ इस विश्वविद्यालय को अन्य विश्वविद्यालयों की भीड़ से अलग इसलिए कहा गया है क्योंकि यहाँ विद्यार्थियों को ज्ञान के अलावा संस्कार जो कि इस विश्वविद्यालय को महामना से विरासत में मिला है भी दिया जाता है।

इस विश्वविद्यालय को साकार करने के लिए मालवीय जी ने अपना समस्त जीवन समर्पित कर दिया तथा दान स्वरुप मिले इतने बड़े परिसर को अपने खून-पसीने से सिंचित किया, जिस कारण इनकों 'भिखारियों का राजा' भी कहा जाता है। यह शब्द ऐसा है जो कोई भी अपने ऊपर नहीं प्रयोग करवाना चाहता होगा, किन्तु काशी हिन्दू विश्वविद्यालय परिवार इसको बड़े गर्व के साथ बोलता है कि हम इसी 'राजा' के मानसपुत्र हैं, जिसको सुनकर तथा साक्षात विशाल परिसर को देखकर इस 'राजा' की श्रद्धा में देशी तथा विदेशीयों का सिर झुक जाता है इन्हीं महामना के प्रताप के कारण यह विश्वविद्यालय अपने आपको भीड में अलग रखता है।

भारत में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से भी कई प्राचीन विश्वविद्यालय जैसे – कोलकाता, मुंबई, मद्रास तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय है किन्तु वास्तविकता में सही मायने में पहला स्वदेशी विश्वविद्यालय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है जिसके अन्दर महामना ने एक सशक्त राष्ट्र तथा सर्वविद्या का सपना देखा तथा उस सपने को साकार किया।

भारत के सभी विश्वविद्यालय किसी न किसी क्षेत्र विशेष के उत्कृष्ट विश्वविद्यालय है किन्तु काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एक मात्र ऐसा विश्वविद्यालय है जहाँ सभी विद्याओं का अध्ययन-अध्यापन होता है। प्रख्यात वैज्ञानिक शान्तिस्वरुप भटनागर के शब्दों में- ''मधुर मनोहर अतीव सुन्दर यह सर्वविद्या की राजधानी।''1 महामना के इसी महा

स्वप्न को साकार करने तथा इनकी राष्ट्रभक्ति के कारण ही महात्मा गाँधी ने इनको अपना पूज्य बतलाया है।<sup>2</sup>

महामना के इसी साक्षात स्वप्न काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पिरसर तथा वृहत पिरवार को देखने से हमे अपने प्राचीन काल का दिग्दर्शन होता है। जिसके कारण हमारे देश को 'जगहुरू' कहा जाता था, क्योंकि हमारे देश में ही सर्वाधिक दर्शन फले फूले तथा इस संसार को अपनी ओर अपने आप खींचे जाने पर विवश किया। इन दर्शनों को फैलाने वाले केन्द्र प्राचीन विश्वविद्यालय थे जो अपनी उत्कृष्ठता के लिए विश्वविख्यात थे। इन विश्वविद्यालयों के इतिहास को देखने से प्रतीत होता है कि महामना ने इन्हीं उत्कृष्ट प्राचीन विश्वविद्यालय से प्रेरणा ली होगी तथा इन समस्त विश्वविद्यालय के सम्मिलित स्वरूप के रूप में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की परिकल्पना की होगी। यह स्थित इन विश्वविद्यालय के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होगी-

#### तक्षशिला विश्वविद्यालय

तक्षशिला ज्ञात इतिहास में भारत का प्राचीनतम तथा विश्वविख्यात विश्वविद्यालय था इसकी उन्नित प्राचीन वैदिक शाखाओं के अनुसार हुयी थी। वैदिक काल की शिक्षा आश्रम शिक्षा होती थी जो कि एक गुरू पर अवलम्बित होती थी। उस पाठ्यक्रम, शिक्षा और परीक्षा का संतुलन करने का कोई केन्द्र नहीं था, किन्तु बौद्धों का काल आते आते आवासीय शिक्षा का स्वरूप विकसित हो चुका था इसी कारण 'जातकों' में तक्षिशिला विश्वविद्यालय का विवरण सबसे पहले मिलता है। यह नगर भगवान बुद्ध के समय से प्राचीन था तथा विश्वविद्यालय उनके काल के पहले ही मूर्त रूप ले चुका था। जातकों से ही पता चलता है कि राजगृह, मिथिला, उज्जैन इत्यादि देशों से विद्यार्थी अध्ययन हेतु यहाँ आते थे तथा यहाँ ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं था राजा तथा प्रजा एक साथ अध्ययन करते थे। कोशल के राजा तथा काशी राज्य के उत्तराधिकारियों ने भी यहीं शिक्षा पायी थी। पाणिनी, कौटिल्य, असंग तथा इनके भाई वसुबन्धु जैसे विद्वानों के सानिध्य में बैठकर उच्च तथा निम्न दोनो वर्गों के विद्यार्थी सभी शिक्षा ग्रहण करते थे।

यहाँ कला विषय में तीनों वेद और अष्टादश शिल्प सिखाये जाते थे। विज्ञान विषय में, शरीर-विज्ञान और शल्य-चिकित्सा के साथ-साथ औषध-विज्ञान भी अध्यापन होता था। प्रसिद्ध बौद्ध कालीन राजपुत्र वैद्य जीवक यहीं का विद्यार्थी था। विषयों और हैसियत के अनुसार छात्र-शुल्क में परिवर्तन होता था। विद्यार्थींगण, अध्यापकों के साथ उन्हीं के गृह में रहते थे, किन्तु धनी विद्यार्थीं अलग गृहों में निवास करते थे।

#### नालन्दा विश्वविद्यालय

प्राचीन विश्वविद्यालयों में नालन्दा एक अद्भुत विश्वविद्यालय था। नालन्दा का अर्थ होता है ज्ञान को देने वाला⁵ नाम के अनुरूप ही वह ज्ञान को देने वाला विश्वविद्यालय था। इसका विकास क्रमानुबद्ध रीति से हुआ था तथा यह सर्वप्रथम छात्रावासीय विश्वविद्यालय था जिसकी स्थापना ईसा से पाँचवीं शताब्दी बाद 'कुमार गुप्त प्रथम' ने की थी जिसमें एक मठ धार्मिक जनों के लिए प्रदान किया था तथा बुद्ध मन्दिर भी निर्मित कराये थे। बाद में गुप्त शासकों ने इसके विकास में योगदान दिया, ह्वेनसांग के काल (7वीं शताब्दी)<sup>8</sup> तक यह पूर्ण गौरवशाली विश्वविद्यालय था केन्द्रीय विद्यालय में सात-प्रकोष्ठ थे तथा भवन कई मंजिलों की थी। ह्वेनसांग के अनुसार यहाँ पर दस हजार छात्र तथा एक हजार अध्यापक थे। <sup>9</sup> बौद्ध धर्म के 18 सम्प्रदायों, तीनों वेद, दर्शनशास्त्र की समस्त शाखाओं का अध्यापन होता था। विद्यार्थियों के प्रवेश के लिए कठिन प्रवेश परीक्षा का प्रावधान था। इसकी प्रसिद्धि इतनी हो चुकी थी कि विदेश से विद्यार्थी यहाँ अध्ययन हेत् आया करते थे जिनमें ह्वेनसांग, फाह्यान तथा इत्सिंग प्रमुख नाम थे जो यहाँ के छात्र थे। इस विश्वविद्यालय के पास तीन विशाल पुस्तकालय था जिसमें लाखों किताबें थी, किंवदन्ती के अनुसार यह पुस्तकालय बख्तियार खिलजी के द्वारा जला दिया गया<sup>10</sup> जो कि एक महीने तक जलता रहा जिससे कि इस विश्वविद्यालय की समृद्धि का पता चलता है, इस तरह का स्व्यवस्थित विश्वविद्यालय प्राचीनकाल में आश्चर्यचिकत करने वाला ही प्रतीत होता है। नालन्दा विश्वविद्यालय बारहवीं शताब्दी में मुसलमान आक्रमणकारियों<sup>11</sup> द्वारा नष्ट होने के पूर्व तक भारतीय संस्कृति तथा शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था।

#### विक्रमशिला विश्वविद्यालय

विक्रमशिला प्राचीन काल का तीसरा सबसे बड़ा विश्वविद्यालय था। यह महाराज धर्मपाल<sup>12</sup> द्वारा स्थापित प्रमुख बौद्ध- विश्वविद्यालय था जो 8वीं शताब्दी में बना। इसमें 108 मन्दिर, कई प्रकोष्ठ और 108 अध्यापक थे।<sup>13</sup> यह नालन्दा विश्वविद्यालय से छोटा था किन्तु यह भी अर्न्तराष्ट्रीय ख्याति का विश्वविद्यालय था इसी कारण ईसा की 11 शताब्दी में तिब्बत के राजा द्वारा यहाँ के प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान दीपंकर श्रीज्ञान को निमंत्रित किया यहाँ कई प्रसिद्ध आचार्यों जैसे- ज्ञानपाद, रत्नाकर, शान्तरक्षित, ज्ञानश्री मित्र, विरोचन नें बौद्ध ग्रन्थों का तिब्बती तथा संस्कृत अनुवाद किया।<sup>14</sup> यहाँ भी नालंदा विश्वविद्यालय के समान कठिन प्रवेश परीक्षा के आधार पर प्रवेश मिलता था, बारहवीं शताब्दी तक 3 हजार विद्यार्थी यहाँ अध्ययन करते थे। यह विश्वविद्यालय भी सन 1203 ई0 में मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दिया गया।<sup>15</sup>

इस प्रकार उपरोक्त वर्णनों से पता चलता है कि महामना का स्वप्न इस प्राचीन भारत के 'जगत्गरू' की संज्ञा को चिरतार्थ करने का था उनका स्वप्न एक सशक्त भारत तथा सर्वविद्या का केन्द्र विकसित करने का था जो अपने द्वारा इस संसार को आलोकित कर सके तथा

ज्ञान का मार्ग दिखला सके, और यह केवल तक्षशिला, नालन्दा तथा विक्रमशिला विश्वविद्यालय जैसे ज्ञान के केन्द्र द्वारा ही संभव था और इन्ही तीनों विश्वविद्यालय का सम्मिलित स्वरूप महामना का काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है क्योंकि इस विश्वविद्यालय में तक्षशिला जैसी प्राचीनता है क्योंकि वस्तुतः यह प्रथम स्वदेशी विश्वविद्यालय है, यहाँ भी इस विश्वविद्यालय की तरह भारत के विभिन्न प्रान्तों से विद्यार्थी पढ़ने आते है, यहाँ भी तक्षशिला की तरह सभी वर्गों को सभी विषयों का अध्ययन करने का पूर्ण अधिकार है। प्राच्य विद्याओं के महत्व को महामना ने पूर्ण सम्मान दिया जिस कारण प्राच्य विद्या के अध्ययन के लिए संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय को साकार किया जिसमें भारतवर्ष की लगभग समस्त प्राच्य विद्याओं जैसे - वेद, उपनिषद, दर्शन, बौद्ध अध्ययन तथा ज्योतिष इत्यादि का संस्कृत भाषा में अध्ययन-अध्यापन होता है; जिससे पता चलता है कि महामना इस देववाणी भाषा संस्कृत की महत्ता पर कितने गंभीर थे। वहीं हमारे प्राचीन भारत के वैभवशाली इतिहास के ज्ञान के उद्देश्य की पूर्ति हेतू काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रथम संकाय कला संकाय की नींव रखी जहाँ प्राचीन भारत का इतिहास एवं प्रातत्व, कला इतिहास, मुद्रा परिषद् द्वारा भारत के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है वहीं राष्ट्रभाषा हिन्दी के सम्मान में विशाल हिन्दी भवन भी बना, अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति भी उनका पूर्ण स्नेह था जिसका प्रतिफल भारतीय भाषा विभाग है जहाँ भारतीय भाषाओं का अध्ययन-अध्यापन होता है, वहीं अपनी राष्ट्रीयता को संजोये हुए यहाँ विदेशी भाषाओं का भी अध्ययन-अध्यापन होता है। महामना शिक्षा के साथ-साथ शारीरिक व्यायाम पर भी जोर देते थे जिसका प्रेरणा स्वरूप शारीरिक शिक्षा विभाग है, इसके अतिरिक्त पूरे विश्वविद्यालय में खेल के कई बड़े-बड़े मैदान हैं तथा छात्रावासों में खेल की पूर्ण व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त मालवीय जी आध्यात्म पर भी जोर देते थे इसी कारण आज भी मालवीय भवन में गीता प्रवचन प्रवाहमान है साथ ही नालंदा तथा तक्षशिला विश्वविद्यालय के समान ही प्रांगण में विशाल मंदिर है। आध्यात्म तथा विद्या का ऐसा मधुर मिलन अन्यत्र कहां किसी अन्य विश्वविद्यालय में उपलब्ध है।

तक्षशिला विश्वविद्यालय की तरह ही यहाँ चिकित्सा विज्ञान के लगभग सभी विषयों का अध्ययन होता है, वहीं हमारी प्राचीन चिकित्सा पद्धित आयुर्वेद को भी पूर्ण सम्मान मिला हुआ है तथा यहाँ एक संकाय के रूप में इस विद्या की समस्त जिटलताओं का अध्ययन-अध्यापन होता है। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है इस हेतु यहाँ विशाल कृषि विज्ञान संस्थान तथा उसका फार्म भी है जहाँ नित्य नये कृषि अविष्कार हो रहे हैं वहीं देश को नई दिशा देने को तत्पर वाणिज्य तथा प्रबंध शास्त्र संकाय है वहीं न्याय के क्षेत्र में विधि संकाय का भी अप्रतिम स्थान है। इन विद्याओं के अतिरिक्त तकनीकी शिक्षा हेतु विशाल प्रौद्योगिकी संस्थान तथा विज्ञान के नित्य नये आयामों के अध्ययन हेतु विज्ञान संकाय है इसी प्रकार अन्य संकाय तथा संस्थान इत्यादि मिलकर महामना के महास्वप्न को साकार करने के पथ पर अग्रसर हैं। काशी

हिन्दू विश्वविद्यालय कि नालन्दा जैसी विशालता का अनुमान ऐसे लगाया जा सकता है कि यहाँ लगभग 29000 छात्र अध्ययन करते है। 1800 अध्यापक है तथा लगभग 5000 कर्मचारी है तथा इसका दो विशाल परिसर है, यह नालंदा विश्वविद्यालय की तरह ही विशाल तथा व्यवस्थित है। नालन्दा प्राचीन काल का सबसे बड़ा आवासीय विश्वविद्यालय था उसी प्रकार काशी हिन्दू विश्वविद्यालय भी सबसे बड़ा आवासीय विश्वविद्यालय है जिसमें आवास, छात्रावास तथा मैदान स्व्यवस्थित तरीके से बने है। यहाँ भी नालंदा तथा विक्रमशिला विश्वविद्यालय जैसे प्रवेश का कड़ा नियम है तथा इन प्राचीन विश्वविद्यालयों की तरह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भी तमाम देशों-विदेशों के विद्यार्थी आते है तथा शिक्षा ग्रहण करते है। यहाँ नालन्दा विश्वविद्यालय की तरह बड़ा पुस्तकालय है जिसमें 8 लाख से ज्यादा पुस्तकें है। कई मायने में तो यह विश्वविद्यालय इन प्रातन विश्वविद्यालय से कहीं आगे ठहराता है क्योंकि यहाँ कोई भी जाति पात का भेद नहीं है सभी एक साथ अध्ययन-अध्यापन करते है तथा निर्धन छात्रों को भी पूर्ण सहयोग मिलता है तथा सभी एक ही छत के नीचे निवास करते है। दो विशाल परिसर, तीन संस्थान, चार एडवांस सेंटर, चार इंटर डिसिप्लीनरी स्कूल 16 संकाय तथा 140 विभिन्न विषयों के अध्ययन-अध्यापन के द्वारा काशी हिन्दु विश्वविद्यालय देश तथा विदेश में मील के पत्थर गाड़ रहा है। वहीं इस विश्वविद्यालय में विशाल चिकित्सालय भी है जहाँ मरीजों का इलाज भी होता है तथा यह समस्त अत्याधुनिक सुविधाओं से परिपूर्ण है। इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था एक ही छत के नीचे अन्यत्र किसी विश्वविद्यालय में न उपलब्ध था और न ही वर्तमान में है।

इसलिए भी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय इन पुरातन विश्वविद्यालय से आगे ठहरता है क्योंकि युगदृष्टा महामना ने इन तीनों प्राचीन महान विश्वविद्यालयों को सम्मिलित करके एक विशाल विश्वविद्यालय का स्वप्न देखा तथा साकार किया जिसमें समस्त प्रकार की शिक्षाएँ तथा संस्कार एक ही स्थान पर उपलब्ध हों और उसी महापुरूष महामना पंडित मदन मोहन मालवीय की अमर कृति है- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय महात्मा गाँधी के शब्दों में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के मालवीय जी प्राण है, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मालवीय जी का प्राण है। 16 ऐसे महान आत्मा का समस्त संसार व विशेषकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय परिवार ऋणी है जिन्होंने यह अमर कृति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रदान किया। हम सभी उनकी श्रद्धा में उनके चरणों में कोटि-कोटि नमन करते हैं।

#### संदर्भ

- 1. कुलगीत, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
- 2. प्रज्ञा अंक 6 वर्ष 1961, पृ0 1-2 व प्रज्ञा स्वर्ण जयन्ती विशेषांक, 2008-09 पृ0-125
- 3. टी0डब्लू0 रीज् डेविड्स, राजोवाद जातक, बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज (जातक टेल्स) : द कमेन्ट्रियल इन्ट्रोडक्सन, पृ0 22 व 255
- 4. जातक कथा सं0 537
- 5. थरूर, शिश 'रिकन्सट्रिक्टंग नालन्दा' द हिन्दू (दैनिक समाचार पत्र-05.02.07)
- 6. गार्टेन, जेफरी ई, रियली ओल्ड स्कूल, न्यूयार्क टाईम्स दिसम्बर 6, 2006
- अलतेकर सदाशिव, नालन्दा एण्ड इट्स एपीग्राफिक मैटेरियल्स, पृ० 5,
   दृष्टव्य- श्रीवास्तव के०सी०, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ० 773
- 8. श्रीवास्तव के0 सी0, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ0 774
- 9. वहीं पृ0 774
- स्कॉट डेविड, बुद्धिज्म एण्ड इस्लाम : पास्ट टू प्रजेन्ट इनकाउन्टर्स एण्ड इन्टरफेथ लेशन
- स्कॉट डेविड, बुद्धिज्म एण्ड इस्लाम : पास्ट टू प्रजेन्ट इनकाउन्टर्स एण्ड इन्टरफेथ लेशन
- 12. श्रीवास्तव के0 सी0, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ0 777
- 13. वहीं पृ0 777
- 14. वहीं पृ0 778
- 15. वहीं पृ0 779
- प्रज्ञा अंक 6 वर्ष 1961, पृ0 1-2, व प्रज्ञा स्वर्ण जयन्ती विशेषांक, 2008-09, पृ0125
- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संबंधित सभी आंकड़े प्रज्ञा पत्रिका, बी०एच०यू० वेवसाइट इत्यादि से लिया गया है।

#### MAHAMANA PANDIT MADAN MOHAN MALAVIYA JI'S ECONOMIC VISION-INDUSTRIAL DEVELOPMENT THROUGH TECHNICAL EDUCATION

PROFESSOR D.P. SINGH\* & DR. PADMINI RAVINDRA NATH\*\*

#### Introduction

Mahamana Pt. Madan Mohan Malaviya Ji's life while richly distinguished by varied and high attainments epitomized the quintessential Indian values of patriotism, probity and religiosity. He was known as much for his acceptance of noble ideas from all corners of the world as for his deep and abiding faith in Sanatan Dharma. This has led to a common misconception about Mahamana that his views due to his religiosity and attachment to Sanatan Dharma were regressive. However, his life in itself is an example that the traditional truth when tried and tested on the anvil of scientific veracity never loses its relevance, rather it constantly reinvents itself with changing times.

Today, it is widely accepted that education enables development-so much so that the 21st century is known as the century of knowledge. This is an universal truth. Ancient India was a land of plenty only because of the premium placed on knowledge and the free spirit of inquiry. The Indian intellectual tradition of truly international universities like Taxila, Nalanda, Vikramshila, Kashi, Kanchi, Nadia, Vallabhi and Mithila goes back thousands of years in time. These universities evolved not only as a seat of learning in subjects like astronomy and philosophy but were contributing richly to the fields of arithmetic, science and technology. As Swami Vivekanand said "Like the gentle dew that falls unseen and unheard and yet brings into blossom the fairest of roses, has been the contribution of India to the thought of the world. Silent, unperceived, yet omnipotent in its effect, it has revolutionized the thought of the world yet nobody knows when it did so."

The preeminent position of India in the world continued unabated except for brief interruptions till the advent of the East India Company. This is amply borne out by the glowing descriptions of India given in the writings of Bernier and Tavernier. When Robert Clive entered Murshidabad, the old capital of Bengal in 1757 he wrote of it:

"This city is as extensive, populous and rich as the city of London, with this difference that there were individuals in the first possessing infinitely greater property than in the last city" (Malaviya, 1918, p. 10).

Following Battle of Plassey, all this was to change. As a result of East India Company's deliberate policies India became the stepping stone for the industrial supremacy of England. Britain deliberately followed a policy of repressing Indian Industries. Economic historians like Romesh Dutt have pointed out that the import of Indian goods to Europe was repressed by prohibitive duties. At the same time the export of British goods to India was encouraged by almost nominal duties. The twofold objectives of the British policy was to ensure production of raw materials for British industries in India and encourage the consumption of British manufactures in our country (Dutt, 1906).

Malaviya Ji felt keenly the pain of India's poverty and pauperization under British rule. He described the position of the country in the following words in his speech as President, Indian National Congress at the Lahore session of 1909:

"The national income is low and therefore the national prosperity is low. People are dying in vast numbers from plague and malaria. Famines are claiming a large toll and people are unprosperous and unhappy. That is the condition of the country. On the other hand you find that it is a country most richly endowed with natural resources. It is a country whose people are not lacking in intelligence and industry, and living most simple life, they are not addicted to crimes as some of the most advanced countries are. Can there be anything more sad and disappointing than to find that people are still in such an unfortunate condition that this country should lie so low in the scale of nations? And if this is so what is our duty to the motherland?" (Zaidi, 1978, p. 475).

Malaviya Ji advocated the promotion of technical education and indigenous industries as a remedy for India's poverty. As a result of his efforts the Congress urged the establishment of at least one central fully equipped polytechnic institute on par with the best engineering institutions in the world for the first time in 1904. It also recommended the establishment of minor technical schools and colleges in different provinces. It pressed for free and gradually compulsory primary education as well as technical education based on local requirements in 1906.

<sup>\*</sup> Distinguished Professor, Department of Mining Engineering & Hony. Chairman, Alumni Cell, Banaras Hindu University

<sup>\*\*</sup> Associate Professor in Economics, Mahila Mahavidyalaya & Member, Alumni Cell, Banaras Hindu University

Under Malaviya Ji's leadership the Indian Industrial Conference started meeting regularly as an adjunct of the National Congress since 1905 when it first met in Varanasi. In this conference Malaviya Ji said, "... India in poverty! Midas starving amid heaps of gold does not afford a greater paradox: yet here we have India, Midas-like, starving in the midst of untold wealth". He realized that India's backwardness was not due to paucity of natural resources but due to lack of a proper system of education. Consequently, the Industrial Conference of 1905 held at Varanasi and the subsequent one held in 1907 at Nainital, tried to impress upon British government the need for providing technical, industrial and commercial education throughout the country.

# Note of Dissent to the Indian Industrial Commission Report

The Indian Industrial Commission was appointed by the British government in the year 1916 which coincided with the founding of Banaras Hindu University. Its objective was to consider and suggest the measures to be adopted for the growth and development of industries in India. It consisted of nine members with Sir T.H. Holland as President and Mr. R.D. Bell as Secretary. It had three Indian members appointed by the government besides British industrialists and civil servants. Pandit Madan Mohan Malaviya was also a member of the commission as the sole representative of the people.

Malaviya Ji appended a Note of Dissent to the report of the Indian Industrial Commission in which he unwaveringly advocated the revival of industries as the only remedy for the poverty of India.

In the Note of Dissent, he dispelled the idea that Indians are to blame for the decline of their indigenous industries, and the Europeans are by nature more fit than Asiatics for success in manufacturing pursuits. He quoted extensively from various sources, most of them British to prove that "up to the middle of the eighteenth century England herself was an agricultural country; that for thousands of years and up to the beginning of the last century India excelled in manufactures as well as in agriculture, and that if during the last century she came to be predominantly agricultural, this was due to the special treatment to which she had been subjected and not due to any want of industrial capacity and enterprise among her people" (Malaviya, 1918, p. 27).

In the initial chapters of this Note, Mahamana described the material, technological and intellectual superiority of ancient India and how it was in the forefront of every industry, be it Cotton Textiles, Iron & Steel, Shipbuilding, Sugar, Glass or Gems and Handicrafts. It was this trade and prosperity which led traders of Europe to India, including the East India Company. But after the Battle of Plassey there was a sudden rise in the industrial supremacy of England due to the vast hoards of Bengal and Karnatak being made available for her use. Malaviya Ji felt that the British Government in India followed a deliberate policy of encouraging the exports of raw produce which resulted in India becoming more and more agricultural. The railways too were constructed only to promote English trade and commerce with India. The decline of Indian industries, the growing imports of British manufactures and increasing export of raw produce from India led to the impoverishment of Indians. This forced the people to depend on land and exposed India to the ravages of widespread famines.

Malaviya Ji pointed out that India had three important economic advantages- an abundance of agricultural and mineral raw materials, great natural facilities for power and transport and a vast home market which can absorb all the production of indigenous industries. On this basis he described in detail his vision for the economic resurgence of India. Agricultural revival is based on three planks-general and agricultural education of the masses, creation of fuel and folder reserves and provision of greater financial facilities for agricultural improvement. For industrial development he suggested "...let us at once organize technical schools in every small town, technical colleges in every large town, and a technical University in the Metropolis" (Malaviya, 1918, p. 65). He recommended that a first class Polytechnic Institute be established for imparting engineering education in the country. He also insisted that provision be made for the simultaneous training of electrical engineers with mechanical engineers.

The Report of the Indian Industrial Commission was discussed at the 33<sup>rd</sup> session of the Congress held at Delhi in December 1918. Mahamana Pt. Madan Mohan Malaviya Ji was the President of the Indian National Congress at that time. The separate note submitted by Malaviya Ji was acclaimed as a masterly presentation of India's industrial and economic position and an open exposition of the causes which ruined the indigenous industries. The Congress passed a resolution welcoming the recommendations of the commission and urged the government for the industrial development of the country. It would be pertinent to mention here that Malaviya Ji attended almost all the sessions of Indian National

Congress from 1886 till his demise. He was the President of the Congress four times, twice during Tilak era before 1920 and twice during Gandhi era after 1920. He was a member of the central and state legislatures for a long period. He talked of technical education at all these forums as he was convinced that it is a must for the economic resurgence of India.

Malaviya Ji concluded the note of dissent by arguing that in the matter of Indian industries, we must consider Indian interests firstly, secondly and thirdly. By firstly he meant that local raw material be used, by secondly that industries be established and by thirdly that the profits of the industries remain in the country.

In the words of the renowned engineer Sir M. Visvesvarayya, "The minute he wrote for the report of the Industrial Commission (1916-1918) has often been quoted as the true Indian view of the industrial needs of the country. In that minute he has pointed out how Indian industries have suffered in the past by discouragement and neglect and how vital it is to foster industries on modern lines for the economic uplift of the country" (Visvesvarayya, 1932, p. 991).

It would be no exaggeration to say that the Note of Dissent is a blue print for the industrial development of our country. This was recognized by Calcutta University which prescribed it as a reading material for its postgraduate degree.

#### Malaviya Ji's vision for technical education

Malaviya Ji felt that neither the recommendations of the Indian National Congress, nor those of the Indian Industrial Conferences, produced much effect. This led to the seed of Banaras Hindu University being sown in 1904, in a meeting of the eminent persons, presided over by Maharaja Sir Prabhu Narayan Singh of Banaras at the Mint House of Varanasi. A provisional prospectus was prepared and copies of it were circulated privately among a number of leading Hindus of different provinces for consultation in October 1905. The cover page of this prospectus exhibited prominently the legend "Prospectus of a proposed Hindu University for the promotion of Scientific, Technical and Artistic Education combined with Religious Instructions and Classical Culture".

This prospectus clearly stated that "India cannot regain her prosperity until the study and application of the modern sciences becomes, so to speak, naturalized in the country.... Technical education cannot be expected to make any real progress until there is, at least, one

well appointed polytechnic institution in the country capable of giving efficient instruction in the principles and practice of the technical arts which help the production of the principal necessaries of life of the Indian population".

Malaviya Ji discussed the proposed scheme of the university with distinguished educationists and prominent public figures drawn from the delegates who attended the 21st session of Congress held at Varanasi in 1905 under the presidentship of Shri Gopal Krishna Gokhale. This meeting was held at the Town Hall on December 31, 1905. Soon after this the scheme was also laid before Sanatan Dharma Mahasabha held at the time of Kumbh at Allahabad during January 20-29, 1906. At the Triveni Sangham, the Hon'ble Pandit Madan Mohan Malaviya took a resolve to dedicate his life for the establishment of the proposed Hindu University (Dar & Somaskandan, 1966). The first public prospectus of the University was issued on March 12, 1906. It incorporated the decisions of the Sanatan Dharma Mahasabha which included a resolution to "...advance and diffuse scientific and technical knowledge through the medium of Sanskrit and the Indian vernaculars".

The original prospectus of 1905 envisaged a college of Sthapatya Veda or Artha Sastra having 3 distinct departments of Physics, Chemistry and Technology. Mahamana was emphatic that the aim of technological department would be to teach the manufacture by means of machinery all the articles of personal and household use for which India was depending on foreign countries.

Malaviya Ji believed that the ultimate goal of technical education should be to achieve economic self reliance. This finds an echo in the third object of Banaras Hindu University given in the final prospectus and followed to this day which states:

"To advance and diffuse such scientific, technical and professional knowledge combined with the necessary practical training, as is best calculated to help in promoting indigenous industries and in developing the material resources of the country".

#### Engineering education in pre independence India

Although engineering education started in India in eighteenth century itself, the focus was on civil engineering and the other branches were established later. It is clear that although there were sporadic attempts to introduce engineering education in India from late eighteenth century, Malaviya Ji was perhaps the first person to present

a comprehensive plan for inception of degree awarding courses. In fact, Department of Higher Education, Ministry of Human Resource Development, Government of India states. "The credit of first starting degree classes in mechanical and electrical engineering (1919) belong to the Banaras Hindu University (BHU) thanks to the foresight of its greater founder, Pandit Madan Mohan Malaviya" <a href="http://www.education.nic.in/">http://www.education.nic.in/</a>>.

The oldest engineering institution in India is Anna University which was born as a Survey School on May 17, 1794. It was later upgraded to a Civil Engineering School in 1838 and Civil Engineering College in 1862. Whereas the first batch of graduates in civil engineering passed out in 1864 itself, it was only in 1932 that the first electrical engineering degree was awarded. <a href="https://www.indiastudychannel.com">http://www.indiastudychannel.com</a>

The oldest civil engineering degree awarding institution not only in India but in the whole erstwhile British empire was the Thomson College of Engineering established in 1847. This venerable institution was to receive the status of a university in 1948 and is at present known as the Indian Institute of Technology, Roorkee. But even here the electrical and mechanical engineering courses were started in 1946 and 1957 respectively. <a href="http://en.wikipedia.org/wiki/Indian\_Institute\_of\_Technology,\_Roorkee">http://en.wikipedia.org/wiki/Indian\_Institute\_of\_Technology,\_Roorkee</a>

The Bengal Engineering College (now the Bengal Engineering and Science University, Shibpur) was established in 1856. It was affiliated to the Calcutta University in 1857 for awarding a civil engineering degree. However, the degree courses in electrical and mechanical engineering could be introduced only as late as 1939. <a href="http://www.becs.ac.in/">http://www.becs.ac.in/></a>

The only civil engineering college in western presidency for a long time was the Pune College of Engineering. Initially started as an overseers school it became the Pune college of engineering in 1855, gaining affiliation from Bombay University in 1858. The degree course in electrical engineering here started in 1932. <a href="http://www.coep.org.in/">http://www.coep.org.in/</a>

The VJT Institute (Veermata Jijabai Technological Institute), Mumbai came into existence in 1887 as School of Mechanical Engineering and Textile. The courses in electrical engineering were introduced in 1903. However, the bachelor degree courses in mechanical engineering and electrical engineering commenced as late as 1947 and 1949 <a href="http://www.vjti.ac.in/">http://www.vjti.ac.in/</a>>.

Another landmark in the history of engineering education was the establishment of the National Council of Education (Calcutta) in 1908. It started an engineering institution in 1919 which developed into college of Engineering and Technology and then Jadavpur University in 1955.

The Indian Institute of Science, Bangalore opened electrical engineering classes in 1915 but awarded only certificates and associateships.

The above mentioned educational institutes have all been more or less similar in nature. To begin with, they had licentiate courses in civil engineering and then started degree classes in this branch alone. Later on when the need was felt degree courses in electrical and mechanical engineering were started in the decades of thirties and forties of the 20<sup>th</sup> century.

#### **Establishment of Banaras Hindu University**

As stated earlier, the first provisional prospectus was issued in October 1905 for private circulation followed in March 1906 by a public prospectus. However, the plan for the proposed university entered a brief hiatus between 1905 and 1910. The scheme could not make any significant progress in these years due to massive political upheavals in the aftermath of events like Bengal partition in 1906, promulgation of repressive acts like The Press Act and Seditious Meetings Act in 1908 and the attempt to implement Morley Minto reforms in 1909. After a gap of nearly five years it was at the 25th session of Congress held at Allahabad in 1910 that Malaviya Ji decided to resume work upon his plan for the establishment of a university at Varanasi.

However, it would be in order to mention here that two other proposals were also being put forward for the establishment of a university almost at the same time. Both these proposals mooted the idea of establishing a university at Varanasi itself. A group of Hindu educationists wanted to establish an institution called 'Sarda Vishwavidyalaya' at Varanasi under the leadership of Maharaja Rameshwar Singh of Darbhanga.

Another idea for establishing a national university was put forward by Mrs. Annie Beasant in 1907 under the name of "The University of India". It is interesting to note that the petition for Royal Charter submitted by Mrs. Beasant too emphasized the importance of reviving indigenous industries through the dissemination of scientific and technical knowledge. In the words of the petition, "The third important specialty will be the paying

of special attention to manual and technical training, to science applied to agriculture and manufactures, and to Indian arts and crafts, so as to revive these now decaying industries, while bringing from the West all that can usefully be assimilated for the increasing of national prosperity".

It was the stalwart personality of Malaviya Ji which ultimately led to Maharaja Rameshwar Singh Ji cooperating fully in the establishment of Banaras Hindu University. Dr.Annie Besant too decided to amalgamate her proposal in Malaviya Ji's scheme. In fact, Maharaja Sir Rameshwar Singh Bahadur of Darbhanga and Dr. Annie Besant were the President and Vice President respectively of the Hindu University society formed in November 1911.

It was Malaviya Ji's vision and untiring efforts which finally led to the enactment of the 'The Benares Hindu University Act' which received the assent of the Governor General on October 01, 1915. The foundation stone of the proposed university was laid by Lord Hardinge on February 04, 1916. The Viceroy in his address expressed the hope that the "... Benares Hindu University may be a place of many sided activities, prepared to equip young men for all the various walks of life that go to the constitution of modern society; able to lead their countrymen in the path of progress; skilled to achieve new conquests in the realms of science, art, industry, and social well-being and armed with the knowledge as well as the character so essential for the development of the abundant natural resources of India" (Dar & Somaskandan, 1961, p. 349).

#### **Engineering education at BHU**

Malaviya Ji had released a pamphlet entitled "Banaras Hindu University-why it is wanted and what it aims at" in July 1911. In this pamphlet Mahamana states. "It is proposed that this (*The College of Science and Technology*) should be the first college to be established by the university. In the present economic condition of India there is no branch of education for which there is greater need than scientific and technical instruction".

Banaras Hindu University came into existence in 1916 and the first convocation of the University was held on January 17, 1919. The then Vice-Chancellor Sir P.S. Sivaswamy Aiyar in his convocation address said, "For years past, the improvement of the economic resources of the country has been occupying the public mind... The dawn of a new era of industrial development is in sight, and it is the duty of the Hindu University to prepare young men for it by education in those departments of applied scientific knowledge which are likely to be of most use in

our present condition. In this view, the most important subjects in which this university should provide teaching are Engineering, Agriculture and Commerce".

Mahamana wrote the dissenting note during 1916-1918 by which time Banaras Hindu University had already come into existence. He did not wait for the British Government to act on the suggestions given in the note. Rather, he took the initiative to start the technical courses in Banaras Hindu University. As a result, the College of Engineering was established in 1919 and the College of Mining & Metallurgy in 1923.

The university was successful in securing the services of Mr. C.A. King, Professor of Mechanical Engineering at Shibpur, as the Principal of the Engineering College. He was appointed on August, 13, 1918. Similarly, Professor L.D. Coueslant, Head of the Department of Mechanical, Civil and Structural Engineering at the Technical College, Sunderland was appointed as an additional Professor of Mechanical Engineering. Due to Mr. C.A. King's tireless efforts the engineering workshops were opened in January 1919, on the occasion of the visit of Sir Krishnaraja Wadiyar Bahadur, Maharaja of Mysore and the first Chancellor of the University. To begin with, three courses were introduced-artisan, diploma and degree. The artisan courses were mainly for poor students having no knowledge of English. The diploma courses were to grant licentiate and minimum qualification required was High School. Students were required to pass intermediate examination with Mathematics, Physics and Chemistry for admission to degree course. In this manner degree awarding courses in electrical and mechanical engineering commenced at BHU for the first time in India.

At that time, the doors of Geological education at Presidency College and the Calcutta University were closed for Indians. Malaviya Ji for whom the imparting of technical education had always been a top priority felt this injustice deeply. In addition, there was not even one institution running courses in mining and metallurgy in the whole country. Malaviya Ji emphatically asked the British Government to establish at least two imperial colleges of the highest grade, one of which should cover every branch of engineering while other should be devoted mainly to "metallurgy and mineral technology." The ruling princes who contributed immensely towards building this University also favoured the inception of mining and metallurgy courses in order to get the engineers to help them in exploitation of the mineral wealth in their states.

Professor N. P. Gandhi, a graduate from Royal School of Mines (who worked for some time as a mining engineer for Tata & Sons) was appointed on October 06, 1919 as Professor of Geology, Mining and Metallurgy. Though the Department of Geology was started in 1920 itself, the setting up of laboratories took considerable time. Thus, mining and metallurgy could start only in 1923. In this manner, the first degree awarding mining institution came into existence in India. Banaras Hindu University was not only the first institute to start a graduate course in mining but was also the first to begin postgraduate education in 1966 and award the first PhD degree in 1964.

Banaras Hindu University was one of the early universities to introduce the study of Industrial or Applied Chemistry in India- the pioneers in the field being Forman Christian College, Lahore followed by Calcutta University (Parmanand, 1985). Initially Industrial Chemistry was taught as a part of the BSc course at Central Hindu College. Later, when due to Malaviya Ji's ceaseless efforts Professor N.N. Godbole was persuaded to join BHU, a full fledged Department of Industrial Chemistry was started in 1921.

The two years course of Pharmaceutical Chemistry was started in 1932 in the Chemistry Department. In 1936, a postgraduate diploma in Pharmaceutics was introduced. These courses were remodeled in July 1937 into a three years course leading to the degree of Bachelor of Pharmacy for the first time in Asia.

Ultimately in 1939, the year Malaviya Ji retired from Vice-Chancellorship, the complex consisting of departments of Industrial Chemistry, Pharmaceutical Chemistry as well as Glass and Ceramic Technology became a separate College of Technology. Professor Godbole was the first Dean of the Faculty of Technology.

A new course in Chemical Engineering was introduced in 1949 by amalgamating the two year course in Industrial Chemistry started in 1920 and the two year M.Sc. (Tech) course in Applied Chemistry started in 1930.

The teaching of Ceramics first began as a subject in the Industrial Chemistry course. A sister Department of Glass Technology also came into existence in 1935 with a three year degree course. The merger of earlier Departments of Glass Technology and Ceramic Technology gave birth to the Department of Silicate Technology (now Ceramics Engineering). This department is the first of its kind in India and has been maintaining its unique status in this respect till now.

The cause of technical education was very close to Malaviya Ji's heart. He accorded a special status to the faculty and students of engineering and technology. Their residences and hostels were painted in dazzling white, teachers were given priority in the allotment of accommodation and their emoluments were higher to begin with. Malaviya Ji made it a point to persuade the renowned experts to join the university irrespective of their nationality.

#### BHU as hub of industrial resurrection

Malaviya Ji was a vigorous advocate of the policy of industrial self reliance and he looked on technical education as a means of achieving this goal. He was emphatic that the University should not become an ivory tower of academic aloofness. Rather, he felt that we have a sacred responsibility to give back much more to the society than we take from it.

Inspired by Mahamana's vision the manufacture of various articles of daily use like soap, shampoo, cosmetic, inks, glassware and porcelain was started in the university. Similarly, facilities were set up for research in artificial silk. After teaching of Pharmaceutical Chemistry started, the manufacture of pure Ayurvedic medicines became a reality.

Almost all departments were taking special efforts to ensure that the benefits of research should flow to the industries and society. A course in Electro Chemistry was started in the Department of Chemistry. Along with this the manufacture of chemical compounds like hydrogen peroxide, alkali, dichromates etc was begun. The fine chemicals section supplied pure chemicals to the science departments in BHU and other institutions in the state as well.

A power plant was set up by the engineering College to generate power for its own needs. The power house was built in 1921 and a 20 KW Set was installed which was augmented by a 100 KW set in 1923. The excess capacity was sufficient to generate adequate power to meet the needs of the entire city, although this could not materialize due to government reluctance.

Equipment for the laboratories was produced in the engineering workshops in addition to undertaking repairs of various kinds. A large number of fans were made which were in use for a long time in the university (Sengupta, 1966).

A small plant was established in the university to manufacture rubber. However, Malaviya Ji was unable to ful-fill his dreams of starting a course in sugar technology. Other-wise who knows BHU may have had its own sugar plant.

#### Conclusion

Malaviya Ji continued with his dream to germinate the seed of industrial resurrection in India through Banaras Hindu University even in the face of opposition from some quarters. It can be said that he was building a model university which would help in propagating the best practices of economic self reliance.

Malaviya Ji's conviction that engineering and technical education is a prerequisite for industrial development has been amply justified over the years by the role played by alumni of this university. After unveiling the life size bronze statue of Malaviya Ji at the university gate on the occasion of the Birth Centenary Celebration on December 25, 1961, Dr. Radhakrishnan, the then Vice-President of India said, "Yesterday, I was at Jamshedpur and I was told that the town had 200-300 graduates of Banaras Hindu University working there in mining, metallurgy, mechanical and electrical engineering. As an outstanding sturdy patriot, he realized that our country suffered on account of technical backwardness, lack of public spirit, inattention to our own great culture. These were the defects which he attempted to remove by the establishment of this university."

Malaviya Ji was unfortunately not able to realize his original dream of imparting scientific and technical education through the medium of Hindi. In fact, he initially visualized a scheme of education in which instruction could be imparted in Sanskrit to all who desired it. But, in the face of practical difficulties Mahamana had to put these schemes in abeyance.

However, Malaviya Ji ensured that religious instruction should be a part of teaching at BHU. He wanted to bring the students under a system of education which would enable them to pursue the three great aims of life i.e. Dharma, Artha and Kama laid down in the scriptures. It was his objective to train students not only in the production of material wealth but also to make them into good citizens. In Mahamana's words, "Being able to earn wealth by honourable means, they will be above temptations to unworthy conduct, and being inspired by high principles

imbibed from Sanskrit learning, they will be men of unswerving rectitude and incorruptible integrity."

Undoubtedly Malaviya Ji's vision for an economically prosperous India meant a country which would be endowed with material wealth as well as spiritual riches and education for him was the path to achieve both.

#### References

- 1. Dar, S.L. and Somaskandan, S. (1966). *History of the Banaras Hindu University*. Varanasi: Banaras Hindu University Press.
- Malaviya M.M. (1918). Note by the Hon'ble Pandit Madan Mohan Malaviya in Indian Industrial Commission Report, 1918. Reprinted as Pandey D.B. & Singh. S. (Ed.). (2006). Industrial Growth and Development in India. Varanasi: Mahamana Malaviya Mission, BHU Unit.
- 3. Zaidi, A.M.. (1978). *The Encyclopaedia of Indian National Congress Volume V (1906-1910)*. New Delhi: Indian Institute of Applied Political Research.
- 4. Dutt. R. (1906). *The Economic History of India in the Victorian Age*. London: Kegan Paul, Trench, Trubner & Co.
- Parmanand (1985). Mahamana Madan Mohan Malaviya, Vol. 1. Varanasi: Banaras Hindu University Press.
- 6. Visvesvaraya, M. (1932). Pandit Madan Mohan Malaviya, Some Personal Reminiscences in 70<sup>th</sup> Birth Anniversary Commemoration Volume of Malaviya Ji. Varanasi: Banaras Hindu University Press.
- Singh, D.P. & Nath, P.R. (2009). J.C. Bose, Swami Vivekananda and Malaviya Ji in *Souvenir (National BHU Alumni Meet 2009)*, pp. 30-34.
- 8. Singh, D.P. (2007). Mining Education and Research for the Development of Mineral Industry. *Proc. Indian Mining Congress*, pp. 23-28.
- Singh, D.P. (2008). Industrial Resurgence of Modern India: The Vision & Contribution of Mahamana. *Prajna*, 54 (1-2), 241-43.
- Singh, D.P. and Nath, P.R. (2007). Prateechi Prachi Ka Male Sundar. In Souvenir (Indian Pharmaceutical Congress), pp. 1-4.
- Sengupta, M. (1966). Engineering College, Banaras Hindu University. *Prajna*, Golden Jubilee issue
  - <a href="http://en.wikipedia.org/wiki/Indian\_Institute\_of\_TechnologyRoorkee">http://en.wikipedia.org/wiki/Indian\_Institute\_of\_TechnologyRoorkee</a>
  - <a href="http://www.education.nic.in/">http://www.education.nic.in/>
  - <a href="http://www.vjti.ac.in/">http://www.vjti.ac.in/</a>
  - <a href="http://www.coep.org.in/">http://www.coep.org.in/>
  - <a href="http://www.becs.ac.in/">http://www.becs.ac.in/>

## A DREAM OF PT. MADAN MOHAN MALAVIYA

From a Super Knowledge Society to a Super Knowledge Society

K. N. PRUDHVI RAJU\*

Pandit Madan Mohan Malaviya, who spent his energies and life for the cause of education, in his message on the eve of starting of Banaras Hindu University wished "........ It is my earnest hope and prayer that this centre of life and light which is coming into existence, will produce students who will not only be intellectually equal to the best of their fellow students in other parts of the world, .......". What is written in the few following pages is written taking inspiration from this quote.

"India was once a super power"— this was a statement given by a high level government bureaucrat of one of our neighbouring countries. It was in fact, an apprehensive statement in terms of geo-political and strategic considerations, addressing world nations, "mind you. India was once a super power", meaning thereby that given a peaceful and favourable climate, India will once again become a super power, when, we (they) all will have to live at its mercy. That is a pointer towards the potential of our country to become a super power again. Now, the question is how we're once a super power!? We were a super power not because of our might of arms and army but because of being a super knowledge society. But, we are no more now near to even a knowledge society. The change had come because we forgot our 'sastras/science'.

Leave alone the great teaching and learning traditions of yore especially of Vedic and Upanishadic periods, (during sixth century BC?), when civilization was just dawning on the rest of the world, we started Takshashila, a grand edifice of education. Thereafter, during fourth and fifth centuries AD, two more universities, Nalanda and Vikramsila respectively were established in our country. Great Masters taught in these universities and they attracted students and teachers from far and wide. Great Masters of knowledge turned out of these universities and turned the country into a super knowledge society commanding a great deal of respect and attraction for our country from around the world. For centuries the world looked at us with an intense sense of respect, awe and wonder especially because of being a super knowledge society.

The word about an "educationally superior, philosophically perfect, culturally and materially rich" status of India spread around and aroused the interest of

many leading them on voyages of discovery to reach our land. It was this guest to reach India on sea that led them to discover a whole new world-Americas, Australia and other unknown parts of the world. People arrived in legions by caravans and ships especially in the medieval and post medieval times and the traditional educational system started feeling the pinch with such a rush of men and women of different languages and cultures. Muslim rule got established and thereafter came many others from the European shores leading ultimately to the establishment of British colonial rule. It was under the British colonial rule the traditional Indian education system based on a time tested concept of learning and teaching—'sravanam, mananam and nidhiadhyasanam' (which approximately translates into 'listening the shruti, repetitive reciting and singing the shruti, and contemplating on it to know the ultimate') and the mother tongue (Sanskrit) of our motherland were left to the winds. Our country lost its voice and vogue of learning and teaching, and, we were forced to learn under a new system in a new language. This is the singular reason why we lost our supremacy in education and are now lagging behind the rest.

The main accent of education during British rule was on producing servants out of us conversant in English to serve 'the masters'. By the time we gained Independence from the colonial rulers, India had only 20 universities and 500 colleges. But now we have a conspicuous presence in the firmament of education but only by sheer numbers—417 universities and 18,000 colleges. There is view point, that to bring many more of our people under the umbrella of education we require at least few thousands more of colleges and a few hundreds more of universities!!

Driven by an imperative of giving at least the three R's—reading, writing and arithmetic—to the illiterate masses of our country, the successive governments of Independent India embarked upon setting up schools in every nook sans a thought to the quality of teaching and learning at that (school) level which ultimately feeds the higher education. Still, unfortunately our school education is not up to the mark. Quality was given a go-by and quantity became the target. With no clear policy on quality, quantity targets are being achieved; but, to what end? With the roots weaker, our tree of knowledge couldn't

<sup>\*</sup> Professor, Department of Geography, Banaras Hindu University, Varanasi-221005

fully bloom, flower and fruit. With the result, now, our higher education especially in the universities is so week and poor, less said the better about it. But, still, let us look at this example mentioned by Bhanoji Rao (The Hindu Business Line, Oct. 30, 2007) while dealing with "Higher Education: The Quality Issue"—the pathetic situation of our higher education is reflected in the survey conducted by the Institute of Higher Education, Shanghai Jiao Tong University, "using internationally comparable third-party data that everyone could check only two of our institutes— IISc and IIT, Kharagpur—appear in 301-400 ranking. Not a single university of our country could come into any ranking whereas many universities of US and UK not only figure in top 20 and top 50 ranks but also take almost 50% of places in ranks 51-100 and 100-200. It is an irony with our higher education system, considering the historical contact we have had and have with the universities through the modern times, in US and UK, not to measure up to the level of their universities." Further, in the context of quality and standards it is pertinent to state and quote here what has been written and quoted by Bhanoji Rao (op cit) "our universities must aim for standards which are affirmed by the world as the best. We are not alone in such ambitions. Even the highly educationally-advanced US is re-positioning itself to go for globally best educational attainments". In a September 2006 report entitled, 'A Test of Leadership: Charting the Future of US Higher Education', the Commission appointed by the US Secretary of Education has made several recommendations one of which is that "the United States must ensure the capacity of its universities to achieve global leadership in key strategic areas such as science, engineering, medicine, and other knowledge-intensive professions. We recommend increased federal investment in areas critical to our nation's global competitiveness and a renewed commitment to attract the best and brightest minds from across the nation and around the world to lead the next wave of American innovation." Though the US is in an enviable position of the best in the education, it should be an eye-opener to us, its government thinks that they should run to remain where they are or to be at the lead of the pack.

With the motto of education, 'learning for learning sake' changing into 'learning for earning sake' due to changing times and needs, it is imperative now, to care for quality for it is the one that matters in the present day highly competitive job market. Let us look at the reality of learning and earning in the current times of globalization. With a whopping number of students coming out of 447 universities and other centres of higher learning, our country cannot offer employment to one and all and because of which students have to seek opportunities by going out of

the country and such students must meet the quality requirements of job market abroad. It is, in fact, due to poor quality of higher education there is an apparent increase in the number of unemployed youth in our country and this question of quality would also debar such students from seeking employment in the global job market. So, it is much more imperative now than never before to improve quality in our education, because of the fact that the standards are high in developed countries and hence our education quality must be such that it must enable our students to compete in global job market.

Looking at the attitude of the best to remain the best what should be done at least now is to frame a quality policy and to lay out a detailed quality plan and programme to achieve it. Quality policy can be a small statement and quality plan to implement the policy may have to be longer. In fact, a quality policy of our education right from the school level to the university level, should have first, been framed quite early after independence. No harm, better late than never. "To produce students who are intellectually the best and who will strive to enable our country regain the glory of being a super knowledge society which once it was" should be our policy.

Of course, production of quality product basically depends up on the machine (university), men (administrators, teaching and other staff) and the raw material i.e., input (the students). In manufacturing industry too, the goods produced depend upon these three factors. Further, in the industry, once a quality product 'meeting all the quality standards' is made, the same routine of methods are repeated to produce the same product till the standards go higher up because of competition from other manufacturers. As for the assessment of quality of industry manufactured product, customer/user satisfaction is the best parameter. Similarly in case of education, the customers, in one way, being students, the quality can best be tested through the assessment of teachers by students. There is one other important input—a teacher—in education which determines the quality of output. If these two inputs—teachers and students-are taken care of at the entry point and if everything is done according to the quality plan and programme, there is no doubt, the desired quality product can be produced at the end of it all. Here comes into question, the policy of reservation especially for admission into higher educational institutions. Follow the policy, we must. But, generally what is happening at present in many institutions is, admissions are given going even below the threshold levels of eligibility or cut-off marks in the entrance examinations (for

admissions) just to fill the seats. Once, the thresholds, taking care of concessions to reserved category students, are determined and set they must be strictly followed in the admission process. Only then a certain level of quality can be ensured. Otherwise, the paradox of students with even zero and negative marks in various entrance examinations getting admissions becomes a paradigm!!

Faculty are the most visible faces of the higher education structure, as they constitute a single major group which is responsible for both research and teaching and the performance of the entire system is judged by performance of the teachers alone (Biyani, Current Science, v84, March 25, 2003). I wish to further accentuate this same fact by quoting Prof. Yashpal Committee Report (2009), "Quality of teaching is the best indicator and a key determinant of the overall quality of institutional life." This is exactly the reason why, more than the quality of students introduced as inputs in to the university machine, the quality of teachers running the machine is the basic pre-requisite to bring quality in education. Because, it is expected to be well within the capacity of a teacher to mend, mould and make even a poor pupil into an able person. It is for this reason utmost care has to be taken in the matter of recruitment of teachers into the higher education system. It is here as our universities falter in the process of recruitment, drastic change in the policy of recruitment is needed to be introduced if possible countrywide or at least in the case of all central institutions. It can be through an all India level examination and interview similar to civil services and other examinations conducted by Union Public Service Commission, at least, in the central universities if not in all-India universities. Anything less than this, there is ample opportunity to misuse and misrecruit. Or else, the best way to call the bluff of the interviews in the process of selections of teachers in the higher educational institutions is to beam the interview proceedings out for public view and scrutiny.

Now, with this background, let us have a look into some important aspects of teachers, teaching and administration. If these three elements in a university system work in order, it is possible to produce students who are intellectually the best. But if the two key components—teaching content and the human component—are deficient in their content and functioning respectively or are not overhauled with changing needs and priorities, either the system fails to 'produce intellectually the best' or the system would reach a high degree of entropy with very little left within the system to work to produce the intended product. After all, quality of the student depends on quality of teaching.

#### **Teachers and Teaching**

If in our country, higher education is in a pathetic condition, it is solely because of teachers first. So. something drastic must be done in this respect to reinvent and reinvigorate higher education. At this juncture, it would be in the fitness of things to reproduce two quotes from Prof. Yashpal Committee Report (2009), "(i) In the composition of the faculty, the representation of regions other than the one in which a university is located can serve as a valuable means of assessing a university's resolve to avoid parochial tendencies we commonly notice, (ii) Any reform of higher education must give the highest priority to attracting good teachers. It is important that the universities attract talent from diverse backgrounds, and take care not to encourage inbreeding." In respect of recruitment of teachers in general and recruitment of teachers at entry level in particular, a few suggestions are given here which if implemented would hopefully revitalize teaching and learning in our universities.

(i) In the process of recruitment, the first step is short-listing of candidates. It is here a great of deal of caution has to be exercised to quantify the eligibility of applicants to appear for interview. A few important parameters to quantify the eligibility of candidates to be called for interview should be UGC/CSIR NET JRF followed by academic record, M.Phil., Ph.D., and papers published. If at the entry level teaching experience is added to the short-listing criterion, gross injustice would be done to those bright fresh students clearing UGC/CSIR NET JRF with good academic record. Further, in case of publications, the international and national level impact factors must be taken into account rather than simply the number of papers. If this aspect is ignored during short-listing of candidates to be called for interview, many mediocre and meticulous manipulators having scores of papers in local journals, books and magazines would take over the genuine candidates publishing just a handful of papers in journals of international and national repute with listed impact factors. Because of 'various factors' playing a role in the evaluation exercise of answer scripts in most of our universities, quite often bright students fail to score higher than some of the average and below average students, in their qualifying examinations. It is for this reason the bright get excluded in the short-listing process. To remedy the situation, a pre-interview test for which question paper has to be set just before the examination, has to be conducted in the relevant subject for all applicants. Through such a pre-interview test the worthy will prove themselves to come to the stage of interview.

- (ii) Interview should focus on the question of how confidently a candidate articulates and communicates rather than on very objective type of questions dealing with numbers and facts. Pedagogic skill is very important and it is the one in which most of our teaching faculty fall way behind the best. Hence, every candidate appearing for the interview must be given the task of teaching to the interview board either on any topic of his/her choice or at least any some introductory topic of his/her subject.
- (iii) Appointments at middle level (Associate Professor) and higher level (Professor) under certain approved and advertised specializations must be made strictly on the basis of substantial contributions of candidates in the respective specializations. Abstract reasoning, presumptions and inferences to prove a candidate's specialization will not do; the evidence must be direct.
- (iv) Promotions of teachers to higher level must be based on objective assessment of contributions and pedagogic abilities but not on mercy. If this is not done, as per Peter's Principle, the teachers would reach higher levels of incompetence!! Just, the opposite of what is required of teachers with growing age, is happening. In fact, as age progresses, knowledge levels should increase and the teacher must mature to the extent of becoming sage of wisdom best fit to teach and preach students. With tenured appointments almost guaranteed till retirement, with promotions coming by effortlessly and with no proper assessment and accountability, a big chunk of senior teaching community has become incompetent. This is the basic reason for development of lethargy and easy going nature of most of the teachers that is primarily responsible for the bad state of affairs in our higher education system; fail them in their tricks and stop them in their tracks, higher education sector in our country would improve, certain.

"Too many cooks spoil the broth". This saying has a bearing on the teaching in many of the departments in many universities. There are some real weird examples in many of our universities—a single theory paper handled (for a class of 40-50 students) by not less than six teachers and a practical handled by not less than nine teachers. This doesn't help in continuity and connection between the students and a teacher vis-a-vis a particular paper/pratical. The more the number of teachers teaching discrete topics and sections of a single paper, the worse will be the reception by the students. This practice must by all means be eradicated. Further, because of this practice, the workload 'without-work' increases becoming ultimately a cause to ask for more posts. When a single teacher can teach a paper/practical, why share it between

two or several teachers?? Student assessment of teachers, once every semester, must be introduced. The questions (in the student assessment exercise) can be very objective. The whole exercise can go like this. A student is asked to list the names of teachers teaching him/her in a tabular format with various assessment parameters like: who comes on time and leaves on time, who is regular/not regular, who gives pre-lecture or post-lecture synopsis of the topics, who is well audible/not audible, whose fluency is good/not good, who teaches through modern visual media, who you think possess good subject knowledge, who you think teaches well etc. Student feedback at the end of each semester should become a routine, "and teachers whose feedback record remains poor in successive years should be required to face formal procedures which might allow a university to shed them" (Prof. Yashpal Committee Report, 2009).

#### Administration

The administration must facilitate the limbs of the university to move and function (instead of tying them up to thwart their very movement and functioning!!). If teachers and students are the mind of the university the administration is the heart of the university. Normally all papers go from top to bottom and bottom to top in a cyclic fashion causing inordinate delay in the finalization of papers. This cyclic process is a British colonial legacy started and perpetrated by the Colonial rulers to vex and trouble the natives. Let us do away with this cyclic process and let things go linear in administration. Complete e-governance must be introduced and no teacher, student and staff is made to run (unless and otherwise absolutely required) up and down the corridors of the university administrative offices. At least in central universities which are fully computer-networked this can be implemented with ease because of the availability of computers not only at almost each and every desk in the administrative offices but also with each and every teacher apart from students who have a number of computers in every hostel to use.

One can go on like this to great lengths on the state of affairs in our universities. What is required are solutions. And, especially on the quality issue, several education commissions have grappled with the problem of finding suitable units to measure the quality of teaching without much success. It was only during 1994 an autonomous council called National Accreditation and Assessment Council (NAAC) under the aegis of University Grants Commission (UGC) was set up to carry out periodical assessment of universities and colleges in the country. Depending on certain methodologies, NAAC

assesses the higher educational institutions and gives them the so called 'accreditation.' And, all the accredited higher educational institutions are directed by NAAC to constitute Internal Quality Assurance Cell (IQAC) "(i) to develop a system for conscious, consistent and catalytic improvement in the performance of the institution (ii) to channel the efforts and measures towards academic excellence in all the operations of the institution and to assure the stakeholders—namely students, parents, teachers, staff, would—be employers, funding agencies and society in general—of the accountability of the institution of its own quality and probity." Besides a few administrative officers and teachers of the institute, the IQAC consists of one or two nominees from the local society with the head of the institution as the chairperson and one of the teachers as the coordinator. If the IQACs are constituted without fear and favour and of right persons, and are given sufficient powers, something can really be done to improve quality in higher educational institutions. In fact, a look into some of the expected functions of IQAC (as per NAAC guidelines)—(i) Development and application of quality benchmarks/parameters in various activities of the institution, (ii) Dissemination of information on quality aspects, (iii) Recording and monitoring quality measures of the institution, (iv) Acting as a nodal agency of the institution for quality-related activities, (v) Organization of discussions, workshops, seminars and promotion of quality circles (vi) Preparation of the Annual Quality Assurance Report—it would appear as if the IOAC is like an auditing authority and actually, it should be. In fact, the methodology and parameters of NAAC to assess the institutions of higher learning and the functions and responsibilities of IQAC cover the whole gamut of myriad functionaries and functions within a university system. Further, NAAC's guidelines state that IQAC has to ensure that whatever is done in the institution for "education" is done efficiently and effectively with high standards.

So, involve IQAC in every process of university right from recruitment to assessment of staff and to mete out punishment to the erring staff. Very rarely punishment is meted out to erring teachers and staff deficient and derelict in and to their duties. This is the deficiency that is really making things go from bad to worse which in turn makes the derelict staff and teachers to get emboldened to continue to carry out their activities to the detriment of education. So, assessment and punishment should be the 'mantra' if quality has to be brought in to

our higher education. Leave practically everything under the umbrella of our universities in the hands of IQAC to examine, decide and assess in order to enable them to assure the stake holders on the 'quality' of students generated by the university education system—just as an experiment, hoping that 'the fence would not eat the crop.'

Let us go back to the beginning on the question of 'forgetting our sastras'. We have had great Masters who produced an ocean of knowledge in various fields. It is a different matter, it mostly remained buried and is not being looked into. Here the word 'sastras' does not refer merely to the large body of knowledge it refers to the science of generating knowledge. The science of generating knowledge is 'observations sans personal bias.' Our past Masters before becoming Masters underwent a rigorous training/tapasya to shed personal bias. Teachers before being inducted into universities after their selections have to be put through fire for one year during probation and bid them adieu if found deficient because it is the teacher first that matters when we talk of quality in higher education. In conclusion, let it be repeated for the sake of emphasis what Prof.Yashpal Committee Report, 2009 suggested—"student feedback at the end of each semester should become a routine, "and teachers whose feedback record remains poor in successive years should be required to face formal procedures which might allow a university to shed them." Of course, this is not easy to implement in our country with what our politics are!? Yet, serious measures have to be taken to make our country regain the glory of being a 'super power' not to rule and lord over the world but only to command respect from around the world.

I was told that when one of our great freedom fighters during his address to the students of Banaras Hindu University in its campus, exhorted them to leave studies and to join freedom struggle, Pandit Madan Mohan Malaviya, who presided over the function in his brief address, gently said, "there are leaders and masses enough to fight against the British to liberate our country, you students, should continue your studies for an independent India can really become strong only through education of its masses." The education, Pandit Madan Mohan Malviya, meant was not simply giving three R's to the masses but to make them "......intellectually equal to the best of their fellow students in other parts of the world.......", This onerous task can be handled by teachers alone who must equal, if not excel, our "Great Masters" of the past.

# MAHAMANA MADAN MOHAN MALAVIYA : SOCIAL ENTREPRENEUR OF THE 20<sup>TH</sup> CENTURY

PROF. H. C. CHAUDHARY\*

Social entrepreneurship as a practice that integrates economic and social value has a long heritage and a global presence.<sup>1</sup>

The term 'social entrepreneurship' may be new, but the phenomenon is not. We have always had social entrepreneurs, even if we did not call them that. They originally built many of the institutions we now take for granted<sup>2</sup> (One such great institution is Banaras Hindu University).

Social entrepreneurship is the work of social entrepreneurs. Social entrepreneurs are those exceptional individuals who dream up and take responsibility for an innovative and untested idea for positive social change and usher that idea from dream to reality.<sup>3</sup>

Mahamana Madan Mohan Malaviya, the founder of the great Banaras Hindu University, provides a classic example of social entrepreneurship.

The Hindu University idea had caught the fancy of many earnest thinkers and was supported by vast numbers of people but the university which ultimately emerged was Malaviya's conception.<sup>4</sup> In the course of his life time, Banaras Hindu University came to be known as a capital of knowledge, acknowledged across India and the world.

Pandit Madan Mohan Malaviya created history in Indian education with this institution-the first of its kind in the country. He chose Banaras as the site, because of the centuries old tradition of learning, wisdom and spirituality inherent to the place. His vision was to blend the best of Indian education called from the ancient centers of learning-Takshashila<sup>5</sup> and Nalanda<sup>6</sup> and other hallowed institutions, with the best tradition of modern Universities of the west.<sup>7</sup>

#### **Entrepreneurs vs. Social Entrepreneurs**

The concept of entrepreneurship, long hallowed in the concept of business and economic ventures, has been increasingly applied to the context of social problem solving. The challenges of finding effective and sustainable solutions to many social problems are substantial and solutions may require many of the ingredients associated with successful business innovations in business creation.<sup>8</sup>

In common parlance, an entrepreneur is associated with starting a business. The term 'entrepreneur' originated in French economics as early as the 17<sup>th</sup> and 18<sup>th</sup> centuries. In French, it means someone who 'undertakes' a significant project or actively. More specifically, it came to be used to identify the venturesome individuals who stimulated economic progress by finding new or better ways of doing things.<sup>9</sup>

In the 20th century, entrepreneurs have been described as innovators. The function of entrepreneurs is to reform or revolutionize the pattern of production. By serving new markets or creating new ways of doing things, they move the economy forward.

Social Entrepreneurs are one species in the genus "entrepreneur". They are entrepreneurs with a social mission. For social entrepreneurs, the social mission is explicit and central. This obviously affects how social entrepreneurs perceive and assess opportunities. Mission-related impact becomes the central criterion, not wealth creation. The phrase "Social Entrepreneurship" combines the passion of social mission with business-like discipline, innovation and determination. Social entrepreneurs look for the most effective methods of serving their social missions

The critical distinction between entrepreneurship and social entrepreneurship lies in the value-proposition itself. For the entrepreneur, the value proposition anticipates and is organized to serve markets that can comfortably afford the new product or service, and is thus designed to create financial profit. From the outset, the expectation is that the entrepreneur and his or her investors will derive some personal financial gain. Profit is sine-qua-non to any venture's sustainability and the means to its ultimate end in the form of large-scale market adaptation and ultimately a new equilibrium.<sup>11</sup>

The Social entrepreneur, however, neither anticipates nor organizes to create substantial financial profit for his or her investors or for himself or herself. Instead, the social entrepreneur aims for value in the form of large-scale, transformational benefit that accures either to a significant segment of society or to society at large.

The social entrepreneur's value propositions targets an under-served, neglected or highly disadvantaged population that lacks the financial means or political clout to achieve the transformative benefits on its own.<sup>12</sup>

"Social Entrepreneurs are individuals with innovative solution to society's most pressing social problems. They are ambitious and persistent, tackling major social issues and offering new ideas for wide-scale change. Rather then leaving societal needs to the government or business sectors, social entrepreneurs find what is not working and solve the problem by changing the system, spreading the solution, and persuading entire societies to take new leaps." <sup>13</sup>

Madan Mohan Malaviyaji was one of such social entrepreneurs who persuaded the entire India (rich and poor) to establish a university of national level to solve the problem of the society for higher education in early 20th century.

# Mahamana Madan Mohan Malaviya as social entrepreneur of 20th century

Social Entrepreneurship describes a set of behavior that are exceptional.

Social entrepreneurs are characterized by very special traits, special leadership skills, a passion to realize their vision, and a strong ethical fiber. Social entrepreneurs exemplify certain characteristics necessary to bring change in society.

Mahamana Madan Mohan Malaviya (born in an educated orthodox Hindu family at Allahabad in 1861) is recognized as an outstanding and noble son of India. His multifaceted personality made him, at the same time, a great patriot, an educationist with a vision, a social reformer, an ardent journalist, reluctant but effective lawyer, a successful parliamentarian and an outstanding statesman. His vision and hard work created Banaras Hindu University.

For the establishment of the university (a social need of the country in the early 20<sup>th</sup> century), he applied entrepreneurial spirit, innovative approaches, management skills, and leadership. Accomplishing the social mission was certainly the prior objective of his life. As a social entrepreneur he played the role of a change agent in the social sector <sup>15</sup> by

- adopting a mission to create and sustain a university;
- recognizing and relentlessly pursuing new opportunities to serve that mission;

- engaging in a process of continuous innovation, adaptation and learning;
- acting boldly without being intimidated by limited resources in hand, and
- exhibiting heightened accountability to serve the university.

## Malaviyaji as change agent in the social sector

Social entrepreneurs are reformers and revolutionaries with a social mission. They make fundamental changes in the way things are done in the social sector. Their visions are bold. 16

Among Malaviyaji's many achievements, the most monumental was the establishment of the Banaras Hindu University or Kashi Hindu Vishvidyalaya. Great minds and personalities like Annie Besant, Mahatma Gandhi, Rabindranath Tagore, Shyama Charan De and many others joined hands with him in his quest for knowledge, arousing the national spirit in India and winning freedom with the power of education and righteousness.<sup>17</sup>

Malaviyaji had great dreams, grand wakeful dreams that made him the visionary of the 20th century. While a sleepy dream fades in the dawn, the wakeful dream gets clearer by the day, takes a specific shape and soon becomes a burning passion. A suitable mission emerges out of the vision and soon consumes the person's entire life towards its fulfillment. The greatness of the vision depends mostly on its farsightedness, its clarity, its magnitude, and its wide canvas. Normally, the farther one looks into the future, the hazier is the picture. While the ordinary sees nothing but dark clouds, the visionary sees a bright star shining in the distance. He then paints it for others with all the clarity on a wide canvas. Malaviyaji was one such rare visionary.<sup>18</sup>

# Malaviyaji adopted a mission to create Hindu University

Mission is the core of what distinguishes social entrepreneur from business entrepreneurs. For a social entrepreneur, the social mission is fundamental.<sup>19</sup>

Malaviyaji realized the importance of education and the hardships of the students early in life. He set up the "MacDonald Hindu boarding house" to accommodate 230 students at Allahabad in 1903, by collecting a public donation of Rs. 1.3 lakhs. This appears to be the precursor for his grand vision of the Banaras Hindu University, which became a reality in 1916.

Malaviyaji started with a definite concept of what the university was to do and what the general disposition was to be of the various buildings which were to give it habitation.

Malaviyaji was not a mere dreamer; he was an active 'Builder' too. Clarity of vision, conviction of thoughts, skills in communication, power of persuasiveness, transmitting that dream into an action plan .... were some of the extraordinary qualities that marked him as a great 'Builder'. To say that the 'Banaras Hindu University' was his creation is acknowledging only part of the truth. He can be considered responsible for providing the backbone of 'modern India', of most of what we see today as 'progress'.<sup>20</sup>

# Malaviyaji recognized and relentlessly pursued the opportunity for the creation of a university

Where others see problems, entrepreneurs see opportunity. Social entrepreneurs are not simply driven by the perception of a social need or by their compassion, rather they have a vision of how to achieve improvement and they are determined to make their vision work.<sup>21</sup>

Malaviyaji had a different perspective on the university of his dreams. A residential teaching institution, it would maintain high standards of research in all the fields-ranging from culture, history, agriculture, engineering, science and education. Of course, emphasis was to be laid on imbibing true religious spirit which was possible only in a pure and healthy atmosphere. He, therefore, also laid stress on games and sports. He sought help of people from all over the country and was encouraged in his mission by people propounding different faiths.<sup>22</sup>

In 1904, when he started giving shape to his idea of the university, the scheme appeared grandiose, if not impossible. But Mahamana went ahead with his mission since in his view education provided a key both to freedom and nation-building.<sup>23</sup>

It is remarkable that proving necessity of the University, he first threw light on the problem of the country's increasing poverty and ignorance and then compared India with European countries. He pointed out the continuous decline of average earning of Indians. Whereas illiteracy percentage in U.K. was 5%, in Germany 1%, in India it was 95%.

To improve this sorry state he called on the necessity of establishing University. He had declared that

the main objective of the University would be the study of morality, religion and ancient culture. The only solution to eliminate the country's backwardness and decline was scientific development. He had said in the 1905 document: "The millions mired in poverty here can only get rid when science is used in their interest. Such maximum application of science is only possible when scientific knowledge is available to Indians in their own country". Obviously, in Madan's plan the main objective was to provide scientific knowledge and study of Indian youths. He considered sciences the key to prosperity.<sup>24</sup>

Malaviyaji realized that Modern India' can be built by engineers, doctors, scientists and artists, only when they are imbued with high character, probity and honour. He strongly felt that all of them could be nurtured in a beautiful, big garden called the 'university' what should be an extension and modified version of the 'gurukul'. Hence, in order to meet the future immense needs of the 'Resurgent Modern India', he visualized a 'Modern University' that would combine the best thought and culture of the East with the best science and technology of the West.<sup>25</sup>

The other distinguishing characteristic of the proposed University was to make it fully residential, whereas all other existing Universities in India-Bombay, Calcutta, Madras, Lahore, and Allahabad were merely affiliating universities conducting examinations. His vision was a University where 10 thousand students would live together and think over progress of society and nation.<sup>26</sup>

When the project of the Hindu University was mooted, it was thought by many that it would continue to live only in the fertile mind of Panditji but as a result of his incurable optimism and tireless labour it is now a grand and noble fact.

# Malaviyaji engaged in a process of continuous adaptation and learning

The keynote of the success of the life and career of Mahamana Madan Mohan Malaviya had been the sincerity and earnestness of his convictions, fortified by a sense of robust optimism, which never failed him even in the most unfavorable or adverse circumstances and surroundings.

Malaviya first propounded the idea of a Hindu University in 1904 at a meeting at Mint House, Banaras, presided over by the Maharaja of Banaras who had been his co-worker in the founding of the Hindu Boarding House at Allahabad. The idea was enthusiastically received and a prospectus was drawn up by Malaviya and circulated to select members of the Hindu community in October 1904.<sup>27</sup>

Madan Mohan Malaviya also circulated and discussed his prospectus of the Hindu University in the select meeting of distinguished educationists and representatives of Hindu community who were assembled in Banaras for the 21<sup>st</sup> session of the Indian National Congress in December 1905. During this select meeting a provisional committee was appointed to give final shape to the prospectus and to promote the scheme.<sup>28</sup>

Malaviya placed the university scheme also before the *Sanatan Dharma Sammelan* which met at Allahabad during the Kumbh fair (January 20-29, 1906) under the presidentship of the Shankaracharya of Govardhan Pitha (Puri). The Sammelan, while approving the idea, suggested some additions to the aims and objects of the University.<sup>29</sup>

Due to political events taking place in the country, the scheme of the proposed Hindu University could not make any appropriate progress during the period, 1905-1910. The scheme was, however, kept alive by Madan Mohan Malaviya through discussions and consultations with leading educationists, patriots and leaders of the Hindu Community.<sup>30</sup>

In the meantime, another idea of establishing a National University was gradually shaping in the mind of Mrs. Annie Besant and in the year 1907 she put forward the idea of establishing such a University at Banaras under the name of "The University of India".

In order to get government's approval for the university at Banaras, the two schemes were amalgamated and Madan Mohan Malaviya modified his scheme in consultation with Mrs. Besant, who was leaving India for six months in April, 1911. His highness the Maharaja of Banaras had promised as much land as was needed for the carrying out of the scheme.<sup>31</sup>

In order to establish university at Banaras, Malaviyaji incorporated many charges in his earlier scheme and issued, in July, 1911, a pamphlet entitled 'Banaras Hindu University-why it is wanted and what it aims at'. A copy of this note was forwarded by him to all concerned with his convening letters dated the 15<sup>th</sup> July, 1911.<sup>32</sup>

# Malaviyaji acted boldly without being limited by resources in hand

Social Entrepreneurs do not let their own limited resources keep them from pursuing their vision. They are skilled at doing more with less and at attracting resources from others.<sup>33</sup>

The most notable achievement of Malaviyaji in the sphere of constructive activities is the establishment of the Hindu University at Banaras. Such important institutions are usually built up by the benefactions of super rich men, or by high officials taking the lead with the backing of government, or by means of public subscriptions raised to commemorate a great name. But in the present case the university has been brought into existence by the devoted exertions of private citizens, mainly through the trust reposed by the public in Malaviyajee's devotion, character and high morale.

He had also demonstrated that the funding requirements for a social initiative could be successfully met on a sustainable basis by multiple strategies. He was successful in marketing his social mission of creating a national university. He carried on an intensive, campaign to collect funds and build up the university from stage to stage.

By preparing an acceptable draft proposal of the university, he had created basis for cooperation of influential sections of country. He knew well that for realizing his dream wide support of society was necessary. For about five years, he was busy collecting donations. The government could grant recognition only after a sum of Rs. 50 lacs was available. For raising the sum, he travelled to different parts of the country, met both the rich and the poor appealing them to donate generously for a noble cause. And he succeeded in his mission in 1915.<sup>34</sup> The Banaras Hindu University Act was passed on 1st October 1915 and came into force on 1st April 1916.

Government cooperation was sought for the development of the university. That is why he invited the Viceroy to lay the foundation in February 1916 where several governors, Kings, feudal lords, educationists and national leaders gathered. The main aim of the ceremony was to seek cooperation of the government and the rich. Madan sought help from both, the rich and the poor.<sup>35</sup>

It was the first university to come out of private efforts. The other existing ones were government creations. Here everything was to be done by one single man, Madan.

# Malaviyaji exhibited a heightened sense of accountability to serve the university

Madan Mohan Malaviyaji not only had the vision of dedicating a new temple of Sarasvati (center for learning) in the ancient and scared city of Banaras, but also the tenacity of purpose to achieve its material realization, and within his own life time to see it become a great seat of learning.<sup>36</sup>

Malaviyaji decided to give up his roaring practice at the bar in 1910 in order to devote all his energy to the Hindu university movement.<sup>37</sup>

When he accepted the Vice-Chancellorship in 1919 during the formative years of the university and until 1939 when he retired, the institution had already attained through his untiring efforts a definite shape and a character of its own, which has been sustained through the wear and tear of time. He was a unique patriarch—a banyan tree who, paradoxically enough, encouraged talent and positive tendencies. It goes to his credit that the University maintained best of traditions, with Pt. Malaviya making periodic visits to the classes as also to staff quarters and helping poor students.<sup>38</sup>

Malaviyaji gave up his lucrative practice and courted poverty so that he might devote his whole attention to the country's cause in its multifarious aspects. He has been a life of dedication to the service of his motherland. The Banaras Hindu University is a living monument of his unbounded and untiring energy and devotion.

#### Conclusion

The establishment of the Banaras Hindu University is a landmark in the history of the university education in this country. It was the first residential university to be established in India. In those days it was considered to be a novel experiment in the field of education. Not only was the university a residential one, it was established as an All – India University.

The Banaras Hindu University is the living picture of Madan's philosophy of education. The dedication with which he founded the University proves that he showed exemplary capability as a successful social entrepreneur of the 20<sup>th</sup> century to achieve his objective. Right from the beginning he had the vision of a great fully developed university.

He not only dreamt of such an institution but materialized his dream and founded this great University by raising funds for it from the rich and the poor, princes and peasants of this land. He made the institution a major centre of national awakening. He made education the prime means for national awakening. He was determined to establish Banaras Hindu University even before achieving national stature of leadership. More than a decade after 1905, he was engrossed in establishing the University. After that his main task was development of the University. That is why Gandhi said, "His greatest accomplishment is the Banaras Hindu University". He wanted an educational system that would shape character of Indian youths, increase their faith in Indian culture and enliven them with patriotism and national service.

One century ago when the starting of the Hindu University was mooted, there were many who treated the idea with ridicule, regarding it as utopian and impracticable. Today the Banaras Hindu University with its magnificent edifices, colleges and hostels vivid with life, stands as a living monument of what robust optimism and self-confidence can accomplish.

Remembering through this paper such a great man, the Founder of this great University and its glorious tradition provides new sources of inspiration to all of us.

As we are going to celebrate the 150<sup>th</sup> birthanniversary of Mahamana Madan Mohan Malaviya in the year 2011 and 100 years of Banaras Hindu University in the year 2016, we need more SOCIAL ENTREPRENEURS like Pt. Madan Mohan Malaviyajee to help us find new avenues towards social improvement.

#### **References and Notes**

- Johanna Mair & Ignasi Marti, 2006; "Social Entrepreneurship Research": A source of explanation, Prediction and Delight; Journal of world Business; www.socscinet.com/bam/jwb.
- J. Gregory Dees; 1998; "The Meaning of Social Entrepreneurship"; Graduate School of Business; Stanford University.
- 3. What is Social Entrepreneurship? (http://www.echoinggreen.org).
- 4. Under the foundation stone of the Banaras Hindu University is laid a casket containing, among other things, a copper-plate bearing a long inscription in Sanskrit verse which names the "Malaviya Brahman Madan Mohan" as the prime instrument of the Devine will for bringing the University into being (Parmanand; 1986 "Mahamana Madan Mohan Malaviya: An historical biography"; Varanasi; Malaviya Abhyayan Sansthan, Banaras Hindu University)
- In the seventh century before Christ, Takshashila was the most famous seat of learning and a celeberated centre of Hindu culture (S. L. Dar & S. Somas Kandan; 2007, (reprinted) "History of The Banaras Hindu University, Varanasi" Publication Cell, Banaras Hindu University).

- 6. By the forth century A.D., Nalanda grew to be the most important centre of learning, attracting scholars from different parts of the country. The well known Chinese pilgrim Hiuen Tsang who came to India in the seventh century A.D. (629 A.D. to 645 A.D.) studied at the Nalanda University. (S. L. Dar & S. Somas Kandan; "History of The Banaras Hindu University; op.cit.
- 7. http://internet.bhu.ac.in/mahamana.htm
- 8. Sarah H. Alvord, L. David Brown and Christine W. Letts; November 2002; "Social Entrepreneurship and Social transformation: An exploratory study"; www.socialinnovationexchange.org.
- 9. J. Gregory Dees; op.cit.
- 10. Ibid
- Rojer L. Martin & Sally Osberg; 2007, "Social entrepreneurship: The Case For Definition"; spring; Stanford Social Innovation Review
- 12. Ibid
- 13. www.ashoka.org.
- 14. http://internet.bhu.ac.in/mahamana.htm
- 15. The idea to describe these characteristics/conditions of social entrepreneurs has been derived from the definition of social entrepreneurship proposed by J. Gregory Dees (1998). According to him social sector leaders will exemplify these characteristics in different ways and to different degrees. The closer a person gets to satisfy all these conditions, the more that person fits the model of a social entrepreneur. (For details please refer to the article of J. Gregory Dees, 'The meaning of "Social Entrepreneur-ship"; op.cit).

- 16. Ibid
- 17. http://internet.bhu.ac.in/mahamana.htm.
- 18. www.mahamanamalaviya.org
- 19. Dees; op.cit.
- 20. www.mahamanamalaviya.org
- 21. Dees, op.cit.
- Parmanand; 1986 "Mahamana Madan Mohan Malaviya: An historical biography"; op.cit.
- 23. Ibio
- Vishwanath Pandey (ed); 2006 "Founder of Banaras Hindu University: Mahamana Pandit Madan Mohan Malaviya:" Varanasi, Publication Cell, Banaras Hindu University
- 25. www.mahamanamalaviya.org
- 26. Vishwanath Pandey, op.cit.
- 27. Parmanand; op.cit.
- 28. S. L. Dar & S. Somas Kandan; op.cit
- 29. Parmanand; op.cit.
- 30. S. L. Dar & S. Somas Kandan; op.cit
- 31. Ibid
- 32. Ibid
- 33. Ibid
- 34. Vishwanath Pandey, op.cit.
- 35. Ibid
- 36. Dar & Somas Kandan; op.cit
- 37. Ibid
- 38. Parmanand; op.cit.

## UNITED INDIA - MALAVIYA JI'S DREAMS AND EFFORTS

DR. VISHWANATH PANDEY\*, K. CHANDRAMAULI\*\*, DR. S. K. MAINI\*\*\*

This article is based on a chapter from to be soon published coffee table book on Mahamana Madan Mohan Malaviya by Mahamana Malaviya Jee Trust, Bangalore. The trust planning to published complete works of Malaviya Jee, A biography and also books in respect of holistic vision of education and total personality - Editor

I take it that every Indian wants that we should have complete freedom for the management of our own affairs. The attainment of this freedom will become easier if we will unite and work with one mind and purpose to achieve it. I implore all Hindus and Musalmans, Sikhs, Christians and Parsis and all other countrymen to sink all communal differences and to establish political unity among all sections of the people.

– Pt. M. M. Malaviya, President Congress Session Calcutta, 1933.

### MALAVIYA JI'S DREAMS

Malaviya ji firmly believed that only unity could help in winning freedom for the country and retaining it also. It was unity alone that could bring in progress, prosperity, peace and harmony in the country. India being a country of great diversities, Unity had to be worked out between political, social and religious groups. Malaviya ji believed that the basic elements for achieving unity among the groups were unity of purpose, patriotism, tolerance, fair play, equality and justice. While Unity of approach in Congress was essential for putting up our claim for freedom, Unity between the communities was essential in the fight to freedom with solidarity and also for harmony and progress in a multi cultured country. Similarly, Unity amidst the wide diversity of castes, creeds and language groups among the Hindu community was essential for progress in arts, literature, culture and dharma, without interference with the belief of other communities and political ideologies. Thus he dreamt of a strong, united, free India of various communities, living in harmony.

#### **MALAVIYA JI'S EFFORTS**

In practice, Malaviya ji's first step was to understand the view points of different groups and then to

explore the basic underlying factors to bridge the gaps to the minimum. He would then work out alternatives and negotiate for an honourable working solution, within the limits of fair play and equal justice. His fairness, principles and frankness made him a person who could be relied upon by all the groups.

During the course of freedom movement, Malaviya ji tried to sort out differences within the Congress, between the Communities and among the Hindu community. Malaviya ji's role as a negotiator, peacemaker, unifier, conflicts or crisis manager could be seen in a number of instances.

#### **UNITY WITHIN CONGRESS**

'Keep the Congress united and synthesise the old and new spirit' and 'Congress is the only hope and constitutional method the only remedy'. —Malaviya ji

The differences within the Congress showed up in three groups—Moderates, Extremists and the Liberals. Malaviya ji belonged to the group of Liberals, who believed in constitutional approach, appeals to the cause of justice as against the belief of some leaders that agitation was the only way for achieving the objectives. He also believed in fair play of the British.

Malaviya ji's role as a unifier, peacemaker, manager of crisis and conflicts could be seen in two time frames—Elitist/Educated Movement (1886-1919) and Mass Movement (1919-1937). Malaviya ji's role was two fold, namely bringing in unity between the different factions within the party and presenting a united front to the Government; and secondly in finding a way for a peaceful dialogue with the Government. This was possible because Malaviya ji was held in great respect by the British Viceroys and the officials, mainly for his knowledge and his ability to convince others with all sweetness.

Elitist Movement (1885-1919): Since the formation of Congress in 1885, the freedom movement was an elitist movement of the educated, the zamindars, and the business people till about 1919-1920. The adopted method was a gradual progress in a constitutional way in

<sup>\*</sup> Information and Public Relations officer, B.H.U., Varanasi

<sup>\*</sup> Mahamana Malaviya Ji Trust, Bangalore

<sup>\*\*\*</sup> Chairman and Managing Trustee, Mahamana Malaviya Ji Trust, Bangalore

the sequence of petition, representation, appeal, strong opposition and finally agitation. Malaviya ji 's views were in line with the Congress thinking in the earlier years. He believed more in co-operation with Government and escalation only in stages.

Few Incidents: Three incidents are briefly mentioned here out of ten (Details given in APPENDIX -3) to illustrate the role played by Malaviya ji in bringing unity within Congress. The first was the Boycott resolution (1905), when the Moderates and Extremists fought over the question of the Bengal Partition. Malaviya ji cleared the atmosphere and brought in unity by holding that 'boycott' is a legitimate means but cautioned its use only as a last resort. A.O. Hume commented "there was some difference of opinion over the Boycott Resolution but... complete unanimity attained by the exercise of that sweet reasonableness which is one of the best-known characteristics of Malaviya". His fervent appeals to 'Keep the Congress united and synthesise the old and new spirit' could avert the split between Moderates and Extremists till at least 1908.

Few Congressmen were not happy with the slow process of appeals and negotiations with the British on many issues and decided to form the Home Rule League (1916-1918). Malaviya ji felt that the Home Rule League would weaken the Congress, create disunity and dissipate the energy in the fight for freedom. Therefore, in spite of his close association with Mrs Besant in the setting up of the Banaras Hindu University (Feb, 1916), Malaviya ji did not join the new organisation, Home Rule League (Sept, 1916).

The constitutional reforms agreed by the British under the Montague-Chelmsford Reforms (1917-1918) drew varied responses from the Congressmen. This Report on Reforms recommended progressive realisation of Responsible Government. Moderates welcomed the Reforms, Extremists rejected it, Gandhi felt that it deserved sympathetic consideration and Jinnah was not satisfied. Malaviya ji was discontented and demanded changes but never wanted to escalate the issue without fully trying for an honourable solution.. He advised Congress to 'accept what is offered and agitate for more' and succeeded in making the Congress agree to the substance of the Montford Scheme. He succeeded in bringing out ultimate unity. All these were considered as great achievements of Malaviva ji. Congress chose Malaviya ji as President of Delhi Congress Dec 1918 for his unifying role in earlier months. "Montague was

advised to win Malaviya to his side" by the British and Montague admired him as a "Great leader of the Legislature".

Mass Movement (1919-1937): Malaviya ji's work in Congress has been best summed up by the contemporary journalist Edgar Snow: "Perhaps his greatest service to Congress was that, through his esentially conservative spirit, he kept the Congress from contesting with the Government until it had developed sufficient strength to launch a campaign without being wrecked as a result of it..... He realised, as a politician, that before acting, the Congress must secure itself firmly on the edifice of public support. Thus for years he fought the Congress Left Wing, counseling for delay in the execution of a revolutionary programme". Malviya ji's elitist movement continued til Gandhi came into the political scenario.

Gandhi's announcement of the Passive Resistance Manifesto in March 1919 brought in a sea change in the method of operations in the freedom struggle, with consequent repercussions too. The method suggested was a 'mass scale uprising', by taking the support of the wide public in political matters. Some called it as a virtual proxy war. The weapons used in this 'Non violent' warfare were 'Satyagraha', 'Civil Disobedience'. Civil Disobedience meant **triple boycott of the legislatures, the courts and the educational institutions.** Gandhi ji insisted on Boycott by saying 'Let us try this for a while; it will yield good results'.

Malaviya ji was not agreeable to involving the general mass, which was ignorant of the true implications and rational reasoning, in the freedom movement. Malaviya ji expressed: "Boycott of the Councils is like dismissing the watchman at a time when your home is being burgled". He believed in educating the masses with the current affairs and problems before their involvement in mass movements. As a practical person, Malaviya ji put into action his thoughts and invited kisans for the first time to attend the Session, urged the Congressmen to start branches in every Taluk and Tehsil, explain Congress ideologies in the villages and towns, take its work to the masses, requested delegates to work for communal harmony and women to participate in national life.

Mrs. Besant vociferously commented that the "...movement would result in the release of forces whose potentialities for evil were quite incalculable" (1919). Many leaders opposed these moves on the ground that unless the general public clearly understood the concept

of these novel methods, the 'mass scale uprising' and 'mob mentality' could neither be predicted nor controlled.

**Differences Surface in the Congress:** All these reactions generated more differences within Congress, but Gandhi over ruled them. His victories in leading the farmers of Champaran (Bihar) and Kheda (Gujarat) on tax revolts had made him a national hero. The 'Gandhi wave' of mass appeal, his popularity, his determination to go ahead as per 'his call of conscience' even at the cost of Party democracy marked the 'New Era'

Malaviya ji argued strongly (in August 1920), stating that the boycott of legislature was an 'inexcusable blunder', a 'dangerous doctrine', and a 'wrong lead'. Instead he wanted to organise and educate the people, fill the Council with the best men, and demand for 'Swaraj' and agitate. He found no rationale in boycotting English education when Railways, Posts and Municipalities are not boycotted. His invincible reasoning and arguments were of no avail and the Special Session (Calcutta) and the Congress at Nagpur (Dec 1920) passed the resolution for non co-operation.

A few instances of Gandhi's Satyagraha/Non Cooperation Movement namely Rowlatt Bills and Satyagraha Pledge (1919), Khilafat and non-cooperation (1920) and Khilafat, Punjab and Swaraj (1921-1922), Civil Disobedience Movements (1922) ended tragically. These instances prove the right apprehensions of Mrs Annie Besant, Tagore and Malaviya ji.

Rowlatt Bills (1918-1919) and Satyagraha Pledge, 1919: Gandhiji's announcement of Satyagraha from 6th April 1919, Delhi firing, and other disturbances elsewhere started a chain reaction at different places. In Punjab, it ignited the pent up feelings of Lt Governor Michael O'Dwyer, who had obsessive hatred towards revolutionaries. His earlier anger at the Congress decision to hold the Amritsar Congress in Dec 1919, his strong dislike or irritation of the Hindu Muslim unity visible during the Ram Navami on 9th April further sparked off the fire in him and led to the arrest of the Congress leaders on 10th April. The arrests of leaders led to a chain reaction of demonstrations, police firing, further processions and more firing. The net result was the killing of twenty persons. It was then the crowd got out of control and burnt offices and killed five Englishmen. The repressive actions of the worst sort climaxed in the Jallianwala Bagh massacre (13th April 1919)—another unimaginable sordid story! Details of Jallianwala Bagh massacre are given below.

Ghastly, Cold Blooded Massacre at Jallianwala Bagh, 1919: The most infamous, ghastly, inhuman and cold blooded massacre at Jallianwala Bagh has its beginning in the equally infamous Rowlatt Bills. It has already been narrated how the Rowlatt Bills of 1919 were opposed and the second Bill, namely the Criminal Law Emergency Powers Bill, was withdrawn; however the first Bill namely the Criminal Law Amendment Bill was passed in the Council on 6th Feb 1919, against tough opposition by the non official members. The Rowlatt Act became law from 10th March 1919.

Black Bill: The Rowlatt Bill, known as the Black Bill, had enough provisions for the arrest, detention, internment, and imprisonment without trial of persons engaged in or suspected of planning offences or revolutionary activities against the State and no appeal was allowed. The Bill had some safeguards against misuse and arbitrary enforcement like—the Act would be applicable only in areas declared (by the Governor General) as prone to anarchical activity; a judge and a non official would have to examine the order of arrest or detention before it was passed; the Act was a temporary measure for three years only. Thus the Bill, though objectionable "was a weapon with blunted teeth". This version in small print would have been noticed by a few like Malaviya ji and Gandhi ji, and not by the public in general.

Protests against the Bill had started even before their introduction in the Imperial Council. Gandhi ji announced his intention to go on Passive Resistance/Satyagraha from 24 Feb 1919, if the Bill became Law. Gandhi ji had lost confidence in the Government and was bent on continuing with the Satyagraha. Even while **Tagore's note that 'Power in all its forms is irrational'** got a good public response, Gandhi toured the country and asked the people to take the Satyagraha pledge. Delhi observed the satyagraha on 30th March and the shooting to disperse the crowd resulted in several deaths. Satyagraha in other places went off peacefully on 6th April 1919.

An Offensive Speech: Michael O'Dwyer, the Lt Governor of Punjab (1913-1919), was upset with the happenings else where and on 7th April delivered an offensive speech boasting that the British Government had earlier 'crushed foreign foes and quelled internal rebellion' indicating that the present agitations could be looked down with contempt. He also stated that his Government in the province 'will remain determined that public order shall not be disturbed in the time of peace'.

The enthusiastic Rama Navami celebrations on 9th April when Muslims joined in the procession as a mark of unity, further incensed O' Dwyer.

On 10th April, two Congressmen Dr Saifuddin Kitchlew and Dr Satyapal, who had planned for holding the Congress Session in Amritsar in Dec 1919, were arrested. Gandhi ji, who was on his way to Amritsar, was sent back to Bombay. The Satyagrahis were tensed up and the mob frenzy was pressurised like a bomb and the news of arrests worked like the spark of ignition. Riots, outrages, destruction of railways, bridges, telegraphic wires and property were reported from Gujarat and Punjab. In Amritsar, people took out processions first to the Magistrate and then to the Deputy Commissioner, demanding the release of the arrested Congress leaders. The mobs were fired at, killing two in the first case and twenty in the second case. The mob reacted violently. damaging property and killing five Europeans. The riots in Lahore were more severe and a sort of mutiny complex gripped the British.

Crushing Revolutionary Activities: The incidents in Punjab and Gujarat intensely disturbed the mind of Michael O'Dwyer, the Lt Governor of Punjab, who had scant regard for the natives and hated their 'revolutionary activities'. He was enraged by many other observations—he saw an unholy alliance between the Hindu, Muslims and the Sikhs; he hated the popular slogan of Hindu Muslim unity all over Punjab; he construed that the forthcoming Congress Session in Amritsar in Dec 1919 would support more revolutionary activity; in particular he wanted to teach a lesson to the Congress leaders who had planned to hold the Congress Session that year. Every tit bit raised his temper till he completely lost his control.

The Massacre: Though the Martial Law was declared on 15th April, Brigadier General Reginald Dyer exercised Military rule from 12th April itself and arrested many in Amritsar. He made an announcement prohibiting the holding of public meetings. Unaware of this announcement, a public meeting was held on 13th April, the Baisakhi day at Jallianwala Bagh. When the meeting had just started, Gen Dyer with 90 soldiers and two armoured cars blocked the only escape route and opened indiscriminate firing for ten minutes, with 1650 rounds of ammunition, leaving more than 500 dead and many injured!

It was clear that Brigadier Gen Dyer had no idea of preventing the holding of the meeting or of dispersing the crowd. As per his evidence to the Enquiry Committee later on, his objective was not to disperse the crowd but to strike such terror into the hearts of the people that they might not venture to flout his authority again!! The shock, the horror, the pandemonium, the tragedy, the monstrosity of the indescribable massacre formed only the beginning of the horrifying story

Barbarous Action Continues: Lt Governor and British rulers backed Gen Dyer, who continued with the Martial Law for two months, enforced curfew, humiliated the people, flogged them in public, tortured them, made them crawl, and resorted to all sorts of atrocities. Martial Law Tribunals tried 298 persons of whom 218 persons were convicted, 48 persons including the Congress leaders sentenced to transportation for life and forfeiture of property; 51 were sentenced to death, and the rest to imprisonment. Civil Courts tried criminal cases and sentenced many. Outside lawyers were barred from handling any of these cases.

Reactions to Jallianwala Massacre: The heinous crime tore apart Malaviya ji's heart and fired his commitment to the cause of India's freedom. 'He poured out his anguish in an impassioned address in the Legislative Council. He spoke for a full 5 hours and gave what is considered as the most powerful speech in the history of Indian Legislature'. The opposition Labour Party in England in their conference in June 1920 passed a resolution, which termed the massacre as 'cruel and barbarous action'. Winston Churchill called it as "an episode without a precedent or parallel in modern history of Europe". This was an era of misdeeds of British officers in India.

Khilafat & Non Co-operation (1920): Gandhi announced the launch of the non co-operation movement (August 1920) on the issue of the Turkish Problem of Khilafat. Non co-operation meant triple boycott. It also included nationalisation of Aligarh Muslim University and the Banaras Hindu University. Gandhi's call to the students to join the boycott excited them and the gullible students became a soft target of the movement. Their demand to return the charter of the University and picketing to prevent other students from writing the examination, the ruckus in the University court over boycott, Gandhi's address to the students in November 1920, establishing of a 'national university' (Kashi Vidyapeeth) in 1921 as per Gandhi's hopes, scathing criticisms in papers ... all these events created uneasy tension, struggle and violence and was a big set back for Malaviya ji but nothing unnerved him.

Gandhi ji praised the courage of conviction of Malaviya ji saying, "If any man should be free from insult it is Panditji. His services to the Punjab are still fresh in our memory. ... His patriotism is second to none..." (March 1921). Forty years later, Sri Prakasa, the most respected and seasoned statesman of Congress and an avowed opponent of Malaviya ji during those days, agreed with his views (in 1962). So also, many critics have expressed that it was not right to utilise the students in political agitations and disturb the even tenor of their studies, a wrong example that is carried on over generations to the present day

Malaviya ji's Role as a Unifier: With all the set back, Malaviya ji did not sit back silently and watch helplessly. But with his commanding confidence with both Congress and the Government, he took the bold step needed at that time. He was convinced that 'Ahimsa' would prevail only if meaningful talks are held in a conference. He then persuaded Gandhi and Viceroy Lord Reading to meet in Simla and they had six sittings of discussions (May/June 1921).

After that there was the boycott episode during the visit of Prince of Wales to India in November 1921. The boycott of foreign goods, by setting fire to them on the day of the Prince's arrival in Bombay (17th Nov 1921), resulted in rioting for three days killing 53 and injuring 400 persons. But Malaviya ji welcomed the Prince to the University, as an Atithi as an honoured guest, and honoured him with a Doctorate.

Civil Disobedience Movement (1922): Non co-operation movement had generated uneasy tension and struggle for a long time. In the next two months nearly 30,000 people were imprisoned and Government resorted to more repressive measures. Then there was a stalemate with no meeting and both sides were not ready to make the first move. After the Prince's visit, the Government appeared to be in no hurry to think of a Round Table Conference or any talks. Frustrated with the undue delay, Gandhi ji again gave a notice that the Civil Disobedience movement would be started by 8th Feb 1922.

Chauri Chaura Case: This call of 8th Feb 1922 resulted in the over enthusiastic reaction of the mob, which took law into its hands, resulting in a frenzy of destruction. In this infamous Chauri Chaura case in Gorakhpur, the mob burnt the police station on 5th Feb 1922, even before the day for starting the Civil Disobedience. This incident resulted in the death of 22 police personnel. This is yet

another horrid story! What Malaviya ji feared had happened and Gandhi ji hastily withdrew his movement. Congress Working Committee meeting at Bardoli (12th Feb 1922) decided to suspend the Civil Disobedience (the triple boycott of legislatures, law courts and the educational institutions) and take up instead to the meek movement of khaddar, charka, national schools, temperance and Harijan uplift. The AICC Session in Nov 1922 at Calcutta also resolved that the country was not prepared for mass civil disobedience, a forgone conclusion of Malaviya ji, Mrs. Besant and some others.

It was during the Belgaum Congress in Dec 1924 that Gandhi ji withdrew the programme of non-cooperation by suspending all the boycotts, excepting the boycott of foreign cloth. Even after all this Congress leaders had not mentally closed the chapter on Civil Disobedience. Finally, it was discontinued in March 1931 after the Gandhi Irwin Pact.

Divergent Views on Non Cooperation: Historians and writers have expressed divergently on Gandhiji's Civil Disobedience and Malaviya ji's views on it. It revolutionised the thinking of the countrymen, aroused them from a slumber in darkness, meekly accepting the worst as an inevitable atonement for their past sins. It made them aware of their rights and a new way to fight for them unitedly. Looking from a different angle the Civil Disobedience movement had failed to win Swaraj, promised within a year.

It was unimaginable (on Gandhiji's part) to think that the common people in the mob would understand the armchair philosophy of non-violence and would adhere to it. It caused a good deal of suffering, torture and loss of life. It was nothing but a proxy war of the untrained soldiers, who took it as a tacit authority to indulge in violence.

There were critics on Malaviyaji's views and his Responsive Cooperation, as a drag on the forward push, as a retrograde step etc; but the History of Congress is appreciative of his insistence-"Pandit Malaviya whose very fight against non cooperation from inside the Congress endeared him to friends and opponents alike... "That Gandhi ji himself realised his 'blunder' is clear from his article in Young India (16th Feb 1922): "God has been abundantly kind to me. He has warned me the third time that there is not as yet in India that non-violent and truthful atmosphere which alone can justify mass civil disobedience..." In fact the warning had come much earlier from the godly personality of Malaviya ji!!

When some one from the audience in Allahabad asked Malaviyaji why he did not strengthen Gandhi's hands in 'non-cooperation', Malaviyaji is said to have replied-"Gandhi is after all a man and I think he is mistaken". Gandhi in his address to students in Nov 1920 said-"I am sure whatever Malaviya ji is doing is because he considers it to be his duty (dharma). Difference of opinion cannot diminish my respect for him"

#### **UNITED INDIA - COMMUNAL UNITY**

I can not even dream that after gaining strength Hindu will create difficulties to others..... My desire is that both Hindu and Musalman become strong and be able to stand proudly by the side of others in the world" (Lahore, 28 June 1933).

—Malaviya ji

That Hindu or Musalman, who tries to create animosity and fight between the two communities, is an enemy of the country and also the enemy of his own sect or community.

— Malaviya ji

The British Government changed its policy favourably towards the Muslims after 1870. The British preference to Muslims was visible on a number of political or social issues and climaxed when Lord Curzon acknowledged in 1906 that he was entirely in accord with the political importance and the service Muslim community had rendered to the Empire. The British took a number of other steps to drive a wedge between the Hindus and Muslims with the object of weakening the nationalist movement. Bengal Partition (1905), among other actions, was an extremely disturbing measure. The Hindu community noticed all this with displeasure.

In spite of all the British favours, the Muslims were gradually disillusioned with them also from 1907. Particularly, the British role in Turkey confirmed that the British Government was not friendly to Islam. Indian Muslims attached great importance to the preservation of the Khilafat and started the Khilafat movement. The communal harmony was vitiated further by the frequent communal riots in several parts of the country due to various reasons. One of the worst was the Moplah riots (in Malabar) on the ground that Hindus did not support the Khilafat.

MALAVIYA JI'S ROLE: It was under this complex scenario that Malaviya ji worked hard to bring in unity among the various communities. Malaviya ji, as a keen observer of historical and social facts, realised that India is a country of many communities and cultures and he often reiterated, "India belongs to the Hindus, the

Mohammedans, the Sikhs, the Parsis and others. No single community can rub over the rest......". He often expressed (right up to his last days) that winning the freedom and the future growth of the country depended on harmonious living between the various communities and there was no way of wishing it off. Malaviya ji's ideology for communal harmony can be considered as the starting point of the ideals of 'Secularism', the much-discussed subject of the post independence historians, political leaders and critiques.

**MALAVIYA JI'S IDEOLOGY**: Malaviya ji's strong beliefs on the subject of Communal Unity can be summarised in these important points—

- a) The only way to win freedom is through inter communal harmony, (He said so during the Banaras Session of Mahasabha in 1923)
- b) The only way of survival and growth after independence is to continue with long term inter-communal unity, so essential for peace and harmony, ("Act in such a way that all may unite.... Let there be mutual trust").
- c) Communal harmony, peace and unity in the society is possible only when every individual and community is treated with equality, fair play and justice, irrespective of religion, caste or creed or any other differentiations. ("We will have to make such a law and such a constitution that nobody may be afraid of anyone else in the country in whatever circumstances he be placed").
- d) The well being and strength of each community is important for the overall growth of the nation, (just as the growth and strength of each limb of the body is important for a good healthy body).
- e) While it is the role of the Government to look after the welfare of people, protection of life, honour and property of all its citizens, irrespective of their communities, it is the responsibility of each community to safeguard and build up its own traditions and culture and also to exercise its understanding, accommodation, tolerance, and respect of other communities.
- f) Understanding, accommodation and tolerance exercised by each community leads to peaceful co-existence. Similarly, internal unity and strength of each community helps in effectively opposing the unreasonable excessive claims by any other community.

Malaviya ji echoed these thoughts on various occasions starting form 1890 when he said: "India is the common motherland of all Hindus, Muslims" and "Hindus and Muslims would have to live in peace and harmony and that it was improbable that only one community lived in India" and many such utterances throughout his career.

# MALAVIYA JI'S IDEOLOGY IN ACTION, AN OVERVIEW:

The above ideology of Malaviya ji is clearly visible in his approach and action to all the problems of inter-community and intra-community, during his long career of sixty years in the service of the nation. Malaviya ji acted in three definite ways in his efforts to forge unity between the communities- a) holding continuous dialogues in unity conferences in a spirit of "Never say, 'Now we break'. Never say, 'die'", b) keeping good relationship with the leaders of different communities and c) undertaking extensive tours and campaigns to understand and explain different view points.

Initiating Unity Conferences: Malaviya ji believed that continuous dialogues with the other community leaders were essential in practicing his ideology. Such conferences would enable better understanding of points and counter points, clear some of the misunderstandings and show a way out of the crisis. Malaviya ji initiated and played an important role in all the Hindu–Muslim unity conferences from 1910 onwards up to his retirement from politics.

Unity Conference of (Sept 1923) at Delhi was mainly to clear the much criticised, badly misinterpreted and misunderstood proceedings of Hindu Mahasabha Session of August 1923 at Banaras (presided by Malaviyaji). Malaviya ji emphasised that there was nothing against any community in the resolutions and members from all communities were welcome to join the sanghatan. It was at this Banaras Session that Malaviya ji made his famous declaration during the Presidential speech: "Hindu Muslim unity is an essential condition for the attainment of Swaraj" It is interesting to note that Abul Kalam also echoed the same feelings of Malaviya ji on Hindu-Muslim unity during the Congress Session at Delhi (15th September 1923). Unity Conferences were held in Delhi (Oct, 1924), and at Simla (August 1927) to discuss on riots and cow slaughter and other issues.

During the All Party Conference in Allahabad (1927), presided by Malaviya ji, he expressed: "If we....

pledge ourselves to respect the religion, life, liberty and honour of others as we wish others to respect ourselves, if we decide to be just to one another, all disunity will be avoided and harmony and goodwill pervade the land". All Party Conference (May, 1928) set up a sub committee under Motilal Nehru to prepare a draft constitution for India. Malaviya ji made it clear that 'nationalism and not communalism was the way to Swaraj' and convinced the Hindu Mahasabha to accept the 'Nehru Report' and asked the Sikhs and Hindus (in certain States) not to press for their minority claims.

Relations with Leaders of All Communities. Malaviya ji's relations with many Muslim and other community leaders were very good mainly because of his principles and frankness, his willingness to listen seriously to other view points, and his eagerness to understand them with a benign note. There are many instances when the Muslim leaders invited Malaviyaji for dialogues and vice-versa.

Malaviya ji, on invitation from Jinnah, addressed the Muslim League Session in 1927. This invitation may surprise many critics but speaks volumes on Malaviya ji's clear thinking and ideology and his acceptability in all groups. In his address, he said: "The responsibility for the present plight of the country lies squarely on our shoulders. .... Our enemies are taking advantage of our differences and the civilized world is being led to misunderstand us. We are perpetuating our slavery by our own deeds..."

He also invited Muslim leaders to attend the Hindu Mahasabha Sessions.

Malaviya ji's Ideology Put to Test: The crux of his ideology was put to severe test when the 'Communal Award and Separate Electorate' to cover a total of ten communities or groups was announced in 1932. Malaviya ji found that it was a hideous plan to detach the depressed class from the Hindu society. There was no easy solution for this problem and Congress kept a silence on the issue. Malaviya ji alone had to tackle the problem and he thought of taking the Muslims into confidence.

The Nationalist Muslim Meet (Oct 1932) was organised at Lucknow as per Malaviya ji's suggestion. As a result of this, the nationalist Muslims like M.C.Chagla and Abdul Kalam Azad initiated and there was a call for the Unity Conference of 1932. This Ekta Conference was unique in many ways: every one knew

it was like opening the cobweb, for which no other national leader was ready; Muslims showed great confidence in Malaviya ji and requested him to find solutions and modify the Communal Award by mutual consent; Syed Mahmud, Shaukat Ali and others also joined in this effort.

Malaviya ji convened the Ekta Conference, a conference of all communities, at Allahabad, on Nov 3rd 1932 and held its second and third sessions till 23rd Dec 1932. It was a tricky situation balancing the claims of the Muslims and the Hindu Mahasabha. Finally, 'by dint of patience and perseverance' agreement was reached on joint electorate and also on all other points. The Nationalist Muslims All Parties Conference at Lucknow (Dec 1932) accepted the decisions of the Unity Conference with minor amendments. Similarly the Indian Christians, Sikhs and the Hindu Mahasabha endorsed the conference decisions. A few other wings of Muslim groups led by Suhrawardi did not accept the decisions of the Unity Conference. In an effort to sort out the differences, which had cropped up, Malaviya ji had frantic negotiations with Europeans, the Muslims and the Bengali Hindus. It was a great success to the mediating efforts of Malaviya ji to bring in communal unity to this extent in a matter of great importance.

Malaviya ji's continuous efforts against communal representation and separate electorate were greatly appreciated by Dr. Mahammadullah after the 1932 Ekta Conference thus: "His highest service to the country was that he brought about an understanding between the various communities in India". Even Tagore exclaimed: "Your efforts have had a perceptibly wholesome effect on other communities and we feel grateful for the lead you have given to our country in its present crisis". Another contemporary, Munshi Iswar Saran said: "I can truthfully assert that he is by no means anti-Mohammedan. I have had innumerable talks with him on the question, but never has he betrayed even in private any hostility to the Muslim community..... He desires to be just to Mohammedans, but unlike Mahatma Gandhi he is not prepared to give them all they want. He would be just and even a little generous to Mohammedans but not over generous.... To stigmate him as anti Mohammedan is to do him a great wrong".

The problem of Communal Award was not settled even by 1935, which happened to be one brief year of Hindu Muslim co-operation. The 1935 Congress decided that the then Congress President

Dr Rajendra Prasad should discuss with Jinnah to have an understanding on the Communal Award. But Jinnah had not much confidence with any other leader and insisted that Malaviya ji should be a party to the agreement, because he had such a dominant influence in Bengal and Punjab that any pact could be nullified without him.

Malaviya ji's good relations with Dr Ambedkar also helped in meaningful negotiations with him. How he won over Dr Ambedkar and avoided this unholy detachment of the depressed classes from the main stream Hindus is another story. Malaviya ji toured in Punjab, conferred with Hindu and Sikh leaders and canvassed support for joint electorates.

Government Plays Foul: But the destiny turned the other way when the British announced (on 29th Dec 1932) the special Communal Award. The British 'outdid' the terms of the Unity Conference by offering one-third of the seats in Central Legislature to Muslims instead of 32% agreed in the Unity Conference and with separate electorate instead of the joint electorate agreed in the Ekta conference!!

During 1933-1934, the Government continued with its repressive policies, banned Congress, arrested many Congress leaders, would not release Gandhi from jail to help in communal problem and would not allow Congress sessions to be held (1932 &1933 March). Ban on Congress was lifted in June 1933, only after Civil Disobedience was withdrawn in April 1933 and Gandhi declared that he alone was responsible for resorting to individual civil disobedience. The Government of India Bill (on separate electorate etc) was framed and introduced in the Parliament in December 1934 and it became law on 4th August 1935.

At this crucial point in the political scenario of the country, Gandhi decided not to take part in politics for a year from August 1933 and instead would devote it for Harijan uplift.

Most strikingly, Congress was cool on the subject for a long time during the conference at Poona (JULY 1933), Congress Leaders' Conference at Delhi (Mar 1934) and the Swarajists' Meet at Ranchi (May 1934). Congress met again at Patna (May 1934) and Malaviyaji was requested to chair the session to discuss the agenda. Here again the Congress was hesitant to talk or tackle the issue. The Congress Working Committee (in June 1934) took a decision 'neither to accept nor to reject the Communal Award'.

Malaviya ji Fights a Lone Battle: Malaviya ji should be given credit for staging a lone battle for joint electorates at a time when Gandhi took political sanyas and other leaders were in jail. He called for a conference of Hindu, Muslim and Sikh leaders (Oct 1933), had informal consultation between Hindus and Muslims (April 1934) and held talks with Jinnah.

Malaviya ji, was shocked with the Working Committee's (1934) decision 'neither to accept nor to reject the Communal Award'. He was amazed at the shivering, tongue-tied posture of Congress on such an important issue— an issue that would positively have had far reaching consequences even after independence. He felt that Congress had violated its own basic policy and earlier decision (July 1931) on joint electorate, a decision taken before Gandhi left for RTC. Malaviya ji further commented that to maintain neutrality merely because there were differences of opinion on Communal Award was bad in policy and contrary to Congress tradition of opposing the wrongs. Malaviva ji was absolutely exasperated, resigned from the Congress on this issue and set up his own party Congress Nationalist Party at his age of 73 years in 1934, along with Aney. It is creditable that Malaviya ji's National Party won 11 seats as against 44 by Congress and 22 by independents.

Malaviya ji was of the firm belief that the atmosphere will forbid the growth of mutual confidence, if Communal Award stands. The Communal Award had, by giving separate representation to several minority groups and disproportionate representation to the Europeans in Bengal, reduced the representation of both Hindus and Muslims considerably below their population strength. Opposition to the Communal Award was, therefore, legitimate. Malaviya ji said: "If Communal Award stands, every class and creed in the country will be organised under it as a separate political community to scramble for its own interests in the Legislature in disregard of people as a whole".

Tours and Campaigns: Malaviya ji campaigned for communal unity and against the Communal Award by touring a number of Provinces in 1934. Malaviya ji toured in Punjab, conferred with Hindu and Sikh leaders and canvassed support for joint electorates. He also planned for a visit to England to persuade the Government to modify the Award, but he was not well. His other proposals were – to observe the All India Anti Award day, to organise Anti Award Associations, and to hold All

Parties Conference again. His consistent agitation was remarkable.

To lecture on communal harmony is one thing, but to practice it is another tough task. Malaviya ji effectively practiced what he preached. During the communal riots in Banaras in 1932-1933, innocent people of both communities locked themselves inside their houses for fear of being hurt badly. The situation was pitiable. The Hindu citizens formed a Seva Samiti and started distributing food articles to the hungry people at their door step. When Malaviya ji heard of this, he said that help should be extended to the Muslim mohallas also, as they were also hungry and suffering. At the risk of being hit, the Seva Samiti sent trucks of material to the affectd Muslim localities.

After years of struggle by Malaviya ji, Congress took four years to reject the Communal Award in their manifesto of Sept 1936.

True Appreciations. The fight on Communal Award and Separate Electorate was lost. But the true significance of all of Malaviya ji's fight against injustice was understood only by Jawaharlal Nehru who said: "Malaviya's consistent agitation had some impact on the policy of the Congress too. It revised its stand on the (Communal) Award considerably" (Oct 1936).

Mirza Ismail said: "Some people told me that he was anti Muslim, but how untrue it is in the case of this great patriot. Pt Malaviya is just an Indian. The great qualities of his personality which impressed me most are his humanity, selfless service and high standard of values". Rajarshi Purushottam Das Tandon once said: "Malaviya ji's personality was unique in that he never craved for fame; he used to work himself, but for fame and name he used to push forward other persons". It is clear that Malaviya ji worked for the country and the good of the people and never for any credit! What came in the way as appreciation in the case of Communal Award was too late and any change in the Congress thinking was also too late and too insignificant.

"You must always be prepared to do the duty that your country may demand of you. Love your countrymen and promote unity among them. A large spirit of toleration and forbearance, and a larger spirit of loving service are demanded of you. We expect you to devote as much of your time and energy as you can spare to the

uplift of your humble brethern. We expect you to work in their midst, to share their sorrows and their joys, to strive to make their lives happier in every way you can."

Convocation Address of Malaviya ji on 14 Dec.
 1929, B.H.U.

**Background**: The Hindu society, apparently monolith outside, continued to be divided with an umpteen number of fissures deep within. There were divisions based on various considerations, one of the prominent being the division between the upper classes and the depressed. Many reformist movements had tried to bridge the gap, but without much of success. Malaviya ji was well aware of the divisions and had close association with reformist organisations. He soon realised that it was a herculean task to bring in even a semblance of uniformity in beliefs and traditions among the major groups, or a notional acceptance of the depressed classes by the upper caste Hindus. However, he realised that internal unity in the Hindu community was most essential (1) to strengthen the community to face outside threats on its dharma, culture, property, life or honour, and (2) to get justice in the changed political atmosphere under the British rule.

Malaviya ji's fight for equality and justice for all, through a good constitution has often been mistaken and misrepresented by critics as 'communalistic', particularly his opinion that every limb of the body has to be strong for maintaining a healthy body. There was no Hindu political/social force that could bind the community together; and unlike Muslims no religious dictates could force a united voice from the splintered monolith of Hinduism. At this crucial stage, the only way was to create a forum for bringing about Intra Communal Unity.

Hindu Mahasabha: It was under these circumstances that All India Hindu Mahasabha was started in 1915, as an organisation with the objective of unifying the Hindus. It was not supposed to be a separate political party, as Malaviyaji believed that a united Congress was capable of effectively fighting for the freedom. Presiding over the Mahasabha session at Belgaum in 1924, Malaviya ji once again stated the object of the Mahasabha in very clear terms "It would be a shame if any Hindu opposed the National Congress. Their object was to supplement and strengthen the Congress. The necessitiy for organising the Mahasabha had arisen because the Congress being a political body could not deal with questions which affected various communities in social and other spheres" Malaviya ji and Lala Lajpat Rai took enough care to see that the Mahasabha would not take up the political role of the Congress. Malaviya ji did not allow it to become a rival of the Congress or a replica of Muslim League. It is interesting to note that the annual sessions of the Mahasabha were held in conjunction with the Congress sessions and in pandals set up next to the Congress pandal.

For Malaviya ji it was a forum to foster unity within the community. Malaviya ji's ideas were to utilise the platform for educating the Hindu people on their political and social responsibilities, uniting or integrating the various groups for constructive work, achieving solidarity in the society and helping it in times of calamities or need, and getting the privileges due to them. It is to Malaviya ji's credit that strong groups of Arya Samaj, Sanatan Dharma and others united under the platform of this new forum. In appreciation of its basic policy, Gandhi spoke in support of the All India Hindu Mahasabha in Haridwar (1915).

Malaviya ji had assumed the leadership of Congress in 1922, when the triple boycott had been withdrawn and a constructive programme was announced. Then, Malaviya ji toured around Punjab, Assam and portions of UP. He combined his political mission with that of consolidating Hindu society and stressed the need for strengthening it in self-defense. He was obsessed with the idea of Hindu weakness and wanted them to achieve solidarity (sanghatan). Malaviya ji's another contribution was the strengthening of the rural base of the Mahasabha by 1923, which till 1920 had only a strong urban base.

Malaviya ji's ideology and his work for achieving solidarity among the Hindus, for uplifting the depressed classes and for forging communal unity clearly indicate his secular views.

Gandhi ji conceded that Malaviya ji was not a communalist but a sincere patriot trying to be both a good Hindu and a good Indian. Even While bitterly criticizing the activities of the Mahasabha, Gandhi said in May 1924 "He has been suspected of secret motives... I have had the privilege of the closest communion with him. I regard him as one of the best among Hindus who, though orthodox, holds most liberal views. He is no enemy of Musalmans. He is incapable of hatred of any one"

Malaviya ji and the Depressed Class: In 1922, Dr Rajendra Prasad persuaded Malaviya ji to preside over the annual conference of the Mahasabha at Gaya to give it a course of direction. The conference was held in conjunction with the Gaya Congress Session (Dec 1922) in the Congress pandal. This session is acclaimed as a new phase in the growth of the Hindu unity movement. It passed resolutions—to establish a Hindu Relief Committee to assist the riot victims, Hindu Raksha Mandal to protect Hindu interests in riots, support to Hindi and cow protection.

An important resolution of the Gaya Conference expressed concern for the depressed classes and untouchables and asked the religious leaders to give religious instruction to these classes and improve their social habits and sanitary conditions. Malaviya ji allowed both the Arya Samaj and the Sanatana Dharma movements to sink their differences and come together on the same platform. During his presidential speech, he strongly observed, "Our Dharma tells you that if some one is assaulting your Dharma, then for self defense you should not hesitate to sacrifice your life... But always remember that you are first an Indian and then a Hindu"

In the next session of Hindu Mahasabha in Banaras in August 1923, Malaviya ji was instrumental in passing a resolution, which read "Dalits have the right for education, drawing water from public wells, mixing with others and to enter the temples". The Conference also set up a regular organisation under the Mahasabha to adopt a definite programme on shuddhi movement for receiving the forced converts and the untouchables back into Hindu fold. In spite of stiff opposition, Malaviya ji passed a resolution permitting untouchables to study in schools, to use wells, to enter temples, and to participate in the public meetings. Very soon, he passed another resolution in the Sanatana Dharma Sabha for giving 'Mantra Diksha' to the untouchables. His statement on these resolutions is famous: "whatever is right, according to Dharma and good for the people's welfare should be done... I speak from the study of Dharmic volumes that they should get the benefit of temple entry... We should give them water, place to live and education". These monumental resolutions, particularly the one on temple entry came out of introspection and self-realization among the Hindus and had come a decade earlier than the resolution passed in Congress as a consequence of the Communal Award in 1932 and its aftermath.

The 1924 Mahasabha conference at Belgaum was held at the same time and place as the annual Congress Session presided by Gandhi ji. Many Congressmen like Lajpat Rai, CR.Das, Kelkar, Satya Murti and Ali Brothers

attended the Mahasabha conference where Malaviya ji was the President. He again reiterated the programme of Hindu Sanghatan and removal of untouchability.

Malaviya ji conducted a meeting of the Learned Pandits at Allahabad (Jan 1924) and passed a resolution for admitting Non Hindus to Hinduism and had it confirmed by the Mahasabha in Feb1924.

Even when he took a break from his political activities in 1927 for health reasons and traveled to south India, Malaviya ji carried on propaganda for the uplift of the depressed classes.

Malaviya ji used the forum of Mahasabha and other platforms of Sanatan Sabha, Hindu Dharma Mandal for forging the unity of Hindus and for elevating the status of the depressed and the converts. Thus, he presided over the Provincial Sanatan Dharma Sabha at Rawalpindi (1924), the All India Sanatan Dharma Mahasabha at Allahabad (1928), toured in Punjab in 1928. This also generated a good response for the call for social reforms within the Hindu society. While advocating the need for unity for self-defense, he said "I am impelled to advise this course not by any desire to cause any one injury or to acquire power or position but solely by a sense of duty to my country, my religion and my nation. I would rather perish than be powerless to protect our honour, religion and culture"

### Communal Award and Depressed Classes, 1932:

The Communal Award announced in August 1932, gave recognition to the Hindu Depressed Classes as a separate community with their own electorate. Dr Ambedkar found the Award as iniquitous as it accorded unequal treatment to Hindu and Muslim minorities. Leaders of the depressed classes like Dr Ambedkar, M.C.Rajah and Srinivasan had earlier (Simon Commission 1928, Rajah –Moonje Pact, and RTC 1931) pleaded for joint electorates (not separate electorates) with reservation of seats. Communal Award was a threat to the unity of Hindu society as this was bound to detach the depressed classes from the rest of the Hindu society.

Vigorous Action: Malaviya ji, who had all along depended on Mahasabha to work on depressed classes, personally jumped into vigorous action with several steps. (1) In order to ameliorate the feelings and the conditions of the depressed classes, all temples in Allahabad were thrown open to the Harijans on 14th September 1932. There was a good response and Harijans were admitted to many celebrated temples, including the famous Kalighat

temple in Calcutta on 16th Sept. 2) He held a conference of Hindu leaders on 19th Sept 1932 at Bombay and a day later in Poona. Malaviya ji took the lead in the Hindu Leaders Conference, which met at Bombay, Pune under Malaviya in 1932. Dr Ambedkar, Gandhi, and other Hindu leaders signed the Poona Pact or the Yerawada Pact with Malaviya ji, the key link, as the first signatory. The British Government accepted the Pact.

Depressed Classes Remain with Hindus: The importance of the Poona Pact and Malaviya ji's role in it can hardly be exaggerated. It resolved the problem of the Depressed Classes, awakened the conscience of even the orthodox Hindus all over the country and the society started realising the urgency of ameliorating the conditions of the depressed classes. M.C. Chagla observed, "It was largely due to his able guidance that the conference was a marked success". The result was that a major catastrophe was averted and the depressed classes agreed to forego "Separate Electorate". It was at this stage that Gandhi ji started his Harijan movement.

Break Away From Mahasabha: When Dr Ambedkar threatened to quit Hinduism en bloc; Malaviya ji was persuaded to preside over the Poona Session of the Mahasabha in 1935. In his presidential speech, he forcefully exhorted to work for nationalism and untouchability and said, "The flames of Nationalism have got to be lighted in the hearts of all Indians and unity between different castes and creeds must be its effect". Malaviya ji had lost much of interest in the Mahasabha, when he found that its changing ideologies were not based on original principles.

Malaviya ji parted company with the Mahasabha in 1936 mainly because of the pronounced communal bias in the policies of its leaders.

"A giant among men, one of those who laid the foundation of Modern Indian Nationalism and year by year, built up brick by brick and stone by stone, the noble edifice of Indian freedom".

-Pt. Jawahar Lal Nehru

## MALAVIYAJI'S CONTRIBUTION TO HIGHER EDUCATION

S. SOMASKANDAN \*

The role of Mahamana Pandit Madan Mohan Malaviyaji in the cause of higher education in India was unique and highly farsighted. But before coming to the actual subject matter, let us try to know as to what was Malaviyaji's conception of higher education. As we all know, Malaviyaji was born just after the so-called Indian Mutiny of 1857. In the next two or three decades following this First War of Freedom the entire country was passing through a National Renaissance in every sphere of lifesocial, economic, political, religious and educational. The spirit of many great sons of this land rose in revolt against the British domination. Mahamana Malaviyaji was one of them. He joined the Indian National Congress immediately after its establishment, made his maiden speech before the great national gathering at its second session held at Calcutta in 1886 and became an ardent champion of Indian Nationalism. During his tours of the country in the subsequent years while attending the Congress sessions, Malaviyaji had the opportunity to observe the conditions existing in the country in the various spheres. He felt that religion was being neglected everywhere and that patriotism was impossible without religion for, the unity of life which is the essence of religion is also the basis of morality and of all true patriotism. Malaviyaji, therefore, came to the conclusion that in order to revitalise India as a Nation, it was necessary to feed her youth with the old spiritual and moral food and that religion must be a part of the education founded on Indian ideals and enriched with the results achieved by the science and learning of the West. He asked:

"What is it that has reduced Hindus, as a body, to their present condition? They live in a country which abounds in natural wealth. Their land is as fertile as any in the world, and grows the best grains and daintiest fruits. The forests of their country are rich in fuel and timber. The mines of their country are rich in valuable ores and minerals. Their peasantry are industrious, sober and thrifty; their artisans are apt and skilful; their labourers are patient and hardworking; their upper classes include large numbers of highly intelligent men who can compete on equal terms, with the most gifted races, and can be trained to the highest functions which citizens of civilised countries may be called upon to perform. In the past, they produced great men and achieved great things. Hindu

Society was formerly a lofty and noble structure. It is now a shapeless heap." He replied:-

"Whatever other causes may have contributed to bring about this state of things, all thoughtful and well informed men will probably agree that one of the most important causes is the relaxation among the Hindus of the power, which, according to the Hindu scriptures, sustains society, viz. the power of religion as the very name *dharma* signifies."<sup>2</sup>

"Religion is now mainly the pursuit of a few persons here and there. Barring a few exceptions, men who are endowed with intellectual gifts are mostly absorbed in the cares of office or professional business, and scarcely ever think of religion. Those who are possessed of wealth and power are, in too many instances, so engrossed in their temporal concerns that they have little thought of the spiritual interests of their dependants or neighbours or even their own. The rest of the Hindu Society consists of ignorant agriculturists, petty traders, ill-trained artisans, half-starved labourers, all forming a mass of abject humanity, oppressed by poverty and decimated by disease. Excepting a few earnest souls here and there, every Hindu is pursuing his own aims regardless of the effect of his actions on the society to which he belongs. Mutual trust and mutual co-operation, which are the soul of corporate life, have all but disappeared. There are not many capable leaders, and among such as there are, there is not much unanimity and combined action. In short, Hindu Society is utterly disorganised and disintegrated. This deplorable condition cannot be remedied without a wide diffusion of knowledge and the restoration of religion to its rightful place."3

One may well think here that Malaviyaji talked about the reorganisation of the Hindu Society alone which was fundamentally against the development of a true national spirit in the country. This view is not correct. Malaviyaji himself said in his presidential address at the Lahore Congress (1909 A.D.) that "no Indian is entitled to the honour of being called a patriot, be he a Hindu, Mohammedan, Christian or Parsee, who desires for a moment that any fellow countryman of his whatever his race or creed may be, should be placed under the

domination of the men of his own particular persuation or community or that any one section should gain an undue advantage over any other section or all other sections. Patriotism demands that we should desire equally the good of all our countrymen alike. The great teacher Veda Vyasa held forth the true ideal for all religious and patriotic workers to pursue in the noble prayer which he taught centuries ago:

"May all enjoy happiness; may all be source of happiness to others; may all see auspicious days; may none suffer any injury."

As a matter of fact the Mohammedans were also proceeding on the same lines and endeavouring to have an educational system combining learning and scientific training with moral and religious education. They were trying to promote the interests of their own community and the building up of a common national life was not possible. So Malaviyaji had to confine himself to the Hindus only. He thought that "a great revival of Hindu Learning must precede any real advancement of the Hindus", and pointed out to the need for bringing the Hindu community under a system of education which would qualify its members for the pursuit of the great aims of life- Trivarga - as laid down in the scriptures, viz.,

- (1) Dharma Discharge of religious duties
- (2) Artha Attainment of material prosperity
- (3) Kama Enjoyment of lawful pleasures

As regards the fourth great aim - Salvation or Self realisation (Moksha) which was considered in the Hindu thought as an individual's supreme duty to achieve and for which Education and learning was sought as a means, Malaviyaji thought that it should be pursued by each individual by his own efforts under the guidance of his spiritual preceptor and in accordance with the methods of his own particular need or denomination.

While suggesting such a system of education, he was not averse to assimilate the light and spirit of the new scientific age. He felt that "India cannot regain her prosperity until the study and application of the modern sciences becomes, so to speak naturalised in the country and that science cannot become a national possession so long as it has to be studied through the medium of a foreign language." He wanted "a wide diffusion of science in India as a means of rescuing the people from the abject poverty," by making it possible for Indian to learn science, both theoretical and practical, in their own country and in their own languages. Not only that; he considered it essential to introduce an extensive system

of technical and industrial education in the country. Thus we see that Mahamana Malaviyaji sought to preserve the best thought and culture of ancient India and at the same time, to train experts in Science, men of business and industrial leaders. This was his conception of higher education.

With these objects in view he proposed in the year 1904 for the first time the establishment of a University (a) for the promotion of Sanskrit learning as a means of preserving and popularising, for the benefit of the Hindus and the world at large, all that was good and great in the ancient civilization of India especially the high standard of morality, and those teachings, which led to the formation of the solid types of character which were content with plain living and high thinking and delighted in beneficence and generosity, and of enriching the modern vernaculars with the results achieved by modern science and learning and (b) for providing scientific and technical instruction of a superior order as a means of developing the vast resources of the country and of supplying prosperous careers for its people.

He further proposed that instruction at this University would be imparted in Sanskrit to all who desired it and that it should be compulsory in the case of those who wished to qualify themselves to be teachers of religion and those who wished to obtain the highest degree in medicine. For others instruction was proposed to be given through Hindi along with an adequate knowledge of Sanskrit. A sum of Rupees one crore was estimated to cost the establishment of this University.

Though the scheme of Malaviyaji met with approval and support from the public, many thought that it was not practicable. In those days a private University not under the direct control of the Government was considered to be an impossibility. And even if the Government were to grant the required charter, how could the collection of a crore of rupees be made.

We have already noted that Malaviyaji wanted to revitalise India as a Nation through a system of education by reviving the ancient Hindu learning and combining with it the scientific, technical and professional knowledge of the West and at the same time making religion an integral part of education.

Naturally a question arises as to how a spirit of nationalism could be developed by establishing a University at a particular place in the country. Let us see what Malaviyaji himself felt about it. He said:

"University education has come to be regarded in every civilized country as the most important part of a national system of education and if the expenses incurred on University education in the West is compared with what we are expending on it here, it will be seen that we are far below the standard of other civilised countries and have much be way to make up. Our Universities are like so many power-houses needed to scatter the darkness of ignorance, poverty and cold misery which is hanging like a pall upon the country. The larger the number of well educated scholars the Universities will send out, the great will be the strength of the national army which is to combat ignorance and to spread knowledge. Every lover of India must therefore rejoice at the growth of Universities in India."

Malaviyaji thus visualized that the students trained in the new system of education would be able to spread knowledge throughout the country and thereby develop the national spirit. So he proposed the establishment of an All-India University which was to be a teaching and residential University unlike the other five Universities that existed in India at that time viz. those of Calcutta, Bombay, Madras, Lahore and Allahabad. Modelled on the London University they were mainly examining Universities. He proposed the establishment of this new residential and teaching All-India University at Banaras which has been the cultural and religious centre of India since ancient times and thereby tried to maintain the fundamental unity in India.

The political atmosphere in the country was however not favourable during the years 1905 to 1910 for carrying out an active propaganda in favour of the proposed University. The proposal had to be put off year after year. But Malaviyaji kept it alive by discussions and consultations with a view to begin work. As a result of these discussions, the scheme had undergone some important changes. It was agreed that the proposed University should be a residential and teaching University of the modern type and that instruction should be imparted through the medium of English but that as the vernaculars are gradually developed, the University might allow any one or more of them to be used as the medium of instruction in subjects and courses in which it might be considered practicable and useful. Even then English was to be taught as a second language in view of its usefulness as a language of world-wide utility.

In the year 1911, Malaviyaji decided to give up his lucrative practice at the bar for the sake of realising the cherished dream of his life. He started an extensive tour of the country securing the sympathy and support of the public. A society called the Hindu University Society was established. Mrs. Annie Besant and the Maharaja of Darbhanga who had their own schemes of a Hindu University at Banaras, agreed to abandon their schemes and co-operate with Malaviyaji for the establishment of a Hindu University as envisaged by Malaviyaji.

Ruling chiefs were approached for help. The eloquent pleading of Malaviyaji worked wonders. Money came pouring in. All - rich and poor, princes and peasants contributed their mite and within a short time over Rs. 50.00 lakhs were subscribed.

The Government was then approached to sanction the establishment of the University. Great help was received in this direction from the then Education Member of the Government of India, Sir Harcourt Butler. Considerable time was required for drafting the Hindu University Bill which was eventually introduced in the Imperial Legislative Council on the 22nd March, 1915 by Sir Harcourt Butler.

Exception was taken by some members at that time to the proposed University on the ground that it would be a sectarian University. They expressed an apprehension that being sectarian in its character, it might foster or strengthen separatist tendencies. They thought that the existing Universities had been exercising a unifying influence in removing sectarian differences between Hindus and Mohammedans. In reply to these objections Malaviyaji said in his speech in the Imperial Legislative Council:

"The University will be a denominational institution but not a sectarian one. It will not promote narrow sectarianism but a broad liberation of mind and a religious spirit which will promote brotherly feeling between man and man. Unfortunately we are all aware that the absence of sectarian religious Universities, the absence of any compulsory religious education in our State Universities has not prevented the growth of sectarian feeling in the country.

"I believe, instruction in the truths of religion, whether it would be Hindus or Mussalmans, whether it be imparted to the students of the Banaras Hindu University or of the Aligarh Moslem University will tend to produce men who, if they are true to their religion, will be true to their God, their King and their country. And I look forward to the time when the students who will pass out of such Universities, will meet each other in a closer embrace as sons of the same motherland than they do at present."

The bill was passed by the Imperial Legislative Council and received the assent of the Governor General on 1st October, 1915 and became Law. It came into effect from 1st April, 1916.

Arrangements were soon made for laying the foundation stone of the University at the extensive site acquired on the south of the city of Banaras about half a mile away from the banks of the river Ganges. The Foundation Stone was laid on the 4th February, 1916 by Lord Hardinge the then Governor-General and Viceroy of India. The University began to function from 1st October, 1917 with the Central Hindu College as its first constituent College. Soon the buildings began to raise their heads at the new site and in the year 1921 the University started functioning in its home.

Malaviyaji laid great stress on the Technical Education and Agricultural Education. His separate note as a member of the Indian Industrial Commission 1916-18 is a masterly presentation of India's Industrial and Economic position and an open exposition of the causes which have operated to work her ruin. Concluding the portion dealing with Technical Education Malaviyaji wrote:

"I cannot close this portion of my note better than by adopting with necessary modifications the concluding remarks of Mr. Samuelson on the subject of Technical Education:

'In conclusion I have to state my deep conviction that the people of India expect and demand of their Government the design, organisation and execution of systematic technical education and there is urgent need for it to bestir itself for other nations have already sixty years' start of us, and have produced several generations of educated workmen. Even if we begin to-morrow the Technical Education of all the youth of twelve years of age who have received sound elementary education, it will take seven years before these young men can commence the practical business of life, and then they will form but an insignificant minority in an uneducated mass. It will take fifteen years before those children who have not yet begun to receive an elementary education shall have passed from the age of 7 to 21 and represent a completely trained generation; and even then they will find less than half of their comrades educated. In the race of nations, therefore, we shall find it hard to over-take the sixty years we have lost. Tomorrow, then, let us undertake with all energy our neglected task; the urgency is two-fold—a small proportion of our youth has received

elementary, but no technical education; for that portion let us at once organise technical schools in every small town, technical colleges in every large town, and a technical University in the metropolis. The rest of the rising generation has received no education at all, and for them let us at once organise elementary education, even if compulsory."

Malaviyaji expressed the opinion that "every teaching University should be encouraged to provide instruction and training in mechanical and electrical engineering under its own arrangements. The needed measure of workshop practice can be provided by arrangements with railway and other workshops existing in or near the cities or town where they exist: and where this may not be feasible; they should be encouraged to establish sufficiently large workshops to be run on commercial lines as a part of their engineering departments. Under such an arrangement the students will be able to spend their forenoons in the workshops and their afternoons in the classes at the University, they will live in an atmosphere of culture and will cultivate higher aims and ideals than they are likely to, in schools attached to railway workshops. As our mechanical engineers are to play a great part in the future development of the country, it seems to me highly desirable that they should combine culture and character with expert knowledge and technical skill. And nothing is better calculated to ensure this than that that they should be brought up under the elevating influences of a University and should bear its hall-mark."

Malaviyaji did not stop there. He put into action immediately his ideas and started the Engineering College in the Banaras Hindu University in the year 1919. Soon he established a Department of Mining and Metallurgy also. Other technological courses like Ceramics Technology, Glass Technology etc. were also introduced. The graduates who came out of the Colleges of Engineering, Mining and Metallurgy etc., are to-day occupying key positions in several industries. Malaviyaji thus rendered an invaluable service to the country in the field of industrial and technological development by making available well-trained personnel for the purpose.

Malaviyaji pleaded for the promotion of commercial education also. He said (in his note as a member of the Indian Industrial Commission):

"I believe that in view of the industrial development which our recommendations foreshadow, if a College of Commerce is established in every major province of India, a number of our young lawyers who find the bar over crowded, will be glad to take advantage of such education and become efficient means of promoting the growth of industry and commerce in the country."

The establishment of the Banaras Hindu University was a novel experiment in the field of education. It was the first residential and teaching University to be established in the country. The next decade was an era of a general development of University education in India. "Twelve new Universities were organised or strengthened by the addition of staff and equipment to afford facilities for higher education and research in both arts and science subjects. It is just after the establishment of the Banaras Hindu University that the Calcutta University Commission submitted its report. That report was the result of several years of close study. It may be noted that the recommendations which were made by the Calcutta University Commission both on the administrative and on the academic side were forestalled by the Banaras Hindu University. The constitution which Commission recommended was on the lines of the one adopted by the Hindu University.

Thus we see that it was Pandit Madan Mohan Malaviyaji who showed us the way in the field of the University Education in India.

Malaviyaji laid great stress on the contact between the teachers and the taught. He was keen in developing the corporate life in the University campus. It is for this purpose that he wanted all the Colleges of the University at one place and not scattered. Speaking about the Hindu University at its twelfth Convocation held in 1929, he said:

"We do not rely upon the teaching of religion alone for the building up of character in our youth. The whole life at the University is so happily moulded and regulated as to help a student to develop the best of which he is capable. Physical culture is greatly encouraged. It is practically compulsory ..... They (the students) live under the eye of the teacher, for residences for the teachers have been provided in the hostels themselves. The whole arrangement is such that the teachers and the taught come into close contact with each other, so also students with students......The common life which makes the many one is pulsating more vigorously. The atmosphere is pure and elevating. Apart from the help which he receives from his teacher, each student is educating himself and educating his fellow-students at the University. A code of honour is silently growing among them - a good augury for the future."

Malaviyaji exhorted the graduates going out of the University "to form Loka Siksha Samiti, a People's Education League and start betimes the campaign against illiteracy and ignorance." He asked them "to invite all the educated youth of our country to join in undertaking this grand endeavour."

He wanted the students to "make it a point to go to the villages and work among their countrymen." He exhorted them to be determined to dispel the darkness which envelopes our masses." Open Schools. Instruct the masses in the three 'R's, i.e. reading, writing and arithmetic. To which add one more viz., religion, the religion of which I have spoken the religion of love and service, of toleration and mutual regard."

Malaviyaji attached foremost importance to Patriotism. Exhorting the students he says :

"The education you have received would have been lost upon you if it did not plant an ardent desire in your minds to see your country free and self–governing. I wish you to cherish that desire, and to prepare yourselves to discharge every obligation which may be cast upon you for the early fulfilment of it. You know that the highest duty of a citizen is to offer the final sacrifice of his life when the honour of the motherland requires it. I desire you at the same time to remember that that duty also demands that life shall be preserved for service and not lightly thrown away under wrong inspiration. I, therefore, wish you to act with a full sense of responsibility and to work in the right spirit and under proper guidance for the freedom of the country."

For Malaviyaji, to keep alive the sense of duty towards God and towards our motherland, to serve our fellowmen, to promote public weal and to be prepared to sacrifice everything for the sake of the motherland, was the real purpose of higher education. Throughout his life he endeavoured to serve this cause.

#### References

- Pandit Madan Mohan Malaviya, The first prospectus of 1904, p. viii
- 2. Ibid, p. ix
- 3. Ibid, p. x and xi
- 4. S.L. Dar and S. Somaskandan, History of the Banaras Hindu University, B.H.U. Press, 1966, p. 61
- 5. Ibid, p. 282
- 6. Pandit Madan Mohan Malaviya's Convocation address, Twelfth convocation of the Banaras Hindu University held on 14<sup>th</sup> December, 1929.

# CONTRIBUTION OF MAHAMANA IN THE FIELD OF INDIAN ECONOMY

DR. R. S. MEENA\*

Madan Mohan Malaviya was born in Allahabad on December 25, 1861. His ancestors were poor but had a social status and were known for their Sanskrit scholarship. Madan Mohan's education began at the age of five when he was sent to Pandit Hardeva's Dharma Gyanopadesh Pathshala. Mohan, who was a diligent boy, matriculated in 1879 and joined the Muir Central College and finally graduated from the Calcutta University in 1884. He was appointed as a teacher in his old school on forty rupees a month and soon became popular among his pupils. As there were no rules in those days preventing government servants from attending political meetings he attended the second Congress session held in Calcutta in 1886 and delivered a speech which held the audience spell-bound. A. O. Hume the General Secretary of the Congress made a very appreciative reference to it in his annual report. Soon after his return from Calcutta he was offered the editorship of the Hindi weekly, the Hindustan. He also edited another weekly, the Indian Union. Malaviya wanted to devote himself entirely to the service of the country. The legal profession did not attract him though he studied law and passed the LL.B. examination in 1891.

With few exceptions Malaviya regularly attended the annual Congress sessions from 1886 to 1936. In 1887, he invited the Congress to Allahabad. During the session great enthusiasm prevailed among the delegates and its success was phenomenal. Malaviya was the Secretary of the Committee. He invited the Congress to Allahabad again in 1892, and again its success was largely due to his devoted efforts. In the Congress sessions he spoke generally on the political subjection of the country, the poverty of the masses owing to the British economic policy and the monopoly of the higher posts by officers recruited in England. On account of his services to the Congress he was elected its President in 1909,1918,1932 and 1933, but owing to his arrest by the Government of India. he could not beside over the 1932 and 1933 sessions which had been banned. Perhaps, he tried to popularise the national cause more than many other leaders.

Although he was a strong supporter of the Congress he founded the Hindu Mahasabha in 1906. It was established, according to its supporters, to oppose not the just claims of the Muslim community but the

"divide and rule" policy of the British Government. Malviya became a High Court Vakil in 1893. He always gave preference to public work over his legal work. He virtually withdrew from the legal profession in 1909 but he made an exception in 1922 in regard to the appeal of 225 persons condemned to death in connection with the Chauri Chaura riots (Gorakhpur District, U.P.) on account of which Mahatma Gandhi suspended the civil disobedience movement, and saved 153 accused from the gallows.

Malaviya's zeal for public work made him realise the necessity of starting newspapers particularly in Hindi, for the education of the public. He started the Abhyudaya as a Hindi weekly in 1907 and made it a daily in 1915. He also started the Maryada a Hindi monthly in 1910 and another Hindi monthly, in 1921. He started the Leader, English daily in October 1909. He was the Chairman of the Board of Directors of the Hindustan Times from 1924 to 1946.

In consequence of the active work that he did as Senior Vice-Chairman of the Allahabad Municipality, he was elected to the Provincial Legislative Council in 1902. The ability and independence which marked his speeches in the Council led to his election in 1909 to the Imperial Legislative Council, of which he soon became one of the most important members. He participated in the debates on important resolutions, e.g. those relating to free and compulsory primary education, the prohibition of recruitment of Indian indentured labour to the British colonies, nationalisation of railways, etc. He took a keen interest in the industrial development of the country and was therefore appointed a member of the Indian Industrial Commission in 1916.

In view of the non-cooperation movement started by Mahatma Gandhi in 1920, he did not seek election to the Indian Legislative Assembly in 1921. But he was a member of the Assembly from 1924 to April 1930. He resigned shortly after the salt satyagraha started by Mahatma Gandhi and took part in it. He supported the demand for the grant of full Dominion Status to India put forward by Pandit Motilal Nehru. He was invited to the Round Table Conference in 1931, but he inevitably returned dissatisfied with the attitude of the British Government.

<sup>\*</sup> Asst. Professor, Faculty of Commerce, Banaras Hindu University, Varanasi-221005

The Benares Hindu University betrays the keen interest that he took in the education of the mind and the spirit. The importance that he attached to the economic development of the country made him combine the teaching of science and technology with that of religion.

Malaviya was a conservative in social matters. He believed in the 'Varnashrama Dharma' (caste system). He was, however, prepared to adjust himself to social changes in the country to a limited extent, but wanted to take the leaders of the Hindu community and the Benares pandits with him in matters of social reform. He felt strongly the injustice done to the depressed classes in connection with temple entry and pleaded their cause before the pandits in 1936. He also favoured the raising of the position of Hindu women.

He occupied a very high position in Indian public life and his public activities were numerous. The freedom struggle, the economic development of the country, promotion of indigenous industries, education, religion, social service, the development of Hindi and other matters of national importance continued to occupy his attention as long as he lived. He was the President of the All India Seva Samity from 1914 till 1946. He was known for his gentleness and humility but he did not yield where principles were concerned. He had the courage to differ more than once from the Mahatma even at the risk of becoming unpopular. He opposed, for example, the boycott of schools and colleges, the burning of foreign cloth and the boycott of the visit of the Prince of Wales in 1921. It will be true to say that he considered responsive co-operation a better policy than civil disobidence.

#### - H. N. Kunzru

I appeal to my countrymen to wake up to the reality of the situation. I take it that every Indian wants that we should have complete freedom for the management of our own affairs. The attainment of this freedom will become easier if we unite and work with one mind and purpose to achieve it. I implore all Hindus and Musalmans, Sikhs, Christians and Parsees and all other countrymen to sink all communal differences and to establish political unity among all sections of the people.

In the midst of much darkness, I see a clear vision that the clouds which have long been hanging over our heads are lifting. Let every son and daughter do his or her duty to expedite the advent of the drawn of the day of freedom and happiness. Truth is on our side. Justice is with us. God will help us. We are sure to win. "Vande Mataram". From the Presidential Address - Pandit Madan Mohan Malaviya I.N.C. Session, 1933, Calcutta.

Madan Mohan Malaviya, the founder of the Banaras Hindu University, was born on December 25, 1861 in a literate but financially poor and orthodox Hindu family at Prayag (Allahabad). Madan Mohan's education began at the age of five when he was sent to Pandit Hardeva's Dharma Gyanopadesh Pathshala. He matriculated in 1879 and completed law education but his earnest eagerness to serve the nation prevailed upon his legal profession.

However, many nationalists raised eyebrows over him, when he laid the foundation of Hindu Mahasabha in 1906. But at no point of time during the freedom struggle was he neglected by contemporary leaders. He was invited to the Round Table Conference in 1931 He was invited to the Round Table Conference in 1931, but he inevitably returned dissatisfied with the attitude of the British Government.

Pandit Madan Mohan Malaviya created history in Indian education with this institution, the first of its kind in the country. He chose Banaras as the site, because of the centuries old tradition of learning, wisdom and spirituality inherent to the place. His vision was to blend the best of Indian education called from the ancient centers of learning. Takshashila and Nalanda and other hallowed institutions, with the best tradition of modern universities of the west.

Great minds and personalities like Annie Besant, Mahatma Gandhi, Rabindranath Tagore, Shyama Charan De and many others joined hand with him in his quest for knowledge, arousing the national spirit in India and winning freedom with the power of education and righteousness. Madan Mohan Malaviya is a name to be recognized as an outstanding and noble son of India. His multifaceted personality made him, at the same time, a great patriot, an educationist with a vision, a social reformer, an ardent journalist, reluctant but effective lawyer, a successful parliamentarian and an outstanding statesman. Among Malaviyaji's many achievements, the most monumental was the establishment of the Banaras Hindu University or Kashi Hindu Vishvidyalaya. In the course of his lifetime Banaras Hindu University came to be known as a Capital of Knowledge acknowledged across India and the World. Malaviya passed away on November 12, 1946. But his spirit still lives and there are many who bear the torch that he lit, Many more stand ready to shoulder the mantle of his responsibility.

### **Advocate of Industrial Development**

The Mahamana's interests are nation-wide and are not confined to politicians or education.

- In his Classic Note of Dissent appended to the Report of the Industrial and commercial commission in 1918.
- Mahamana Ji outlined the industrial and commercial prominence of ancient India.
- Malaviya Ji had a very strong view that every university should provide a platform for an intensive.
- Close interaction with the industries to import the benefits of current development in various disciplines of science and technology to them.

Malaviya's vision of modern India envisaged rapid industrial and agricultural advocated education in the field of sciences and technology.

Mahamana's services to the socio-political life of Indian and its economic regeneration have indeed been great.

## **Top-Ranking Educationist**

- A patriot, a politician, an educationist and a religious person, all combined in one, Pandit Malaviya Ji was a unique personality and had no equals.
- Malaviya Ji has a very broad minded outlook to welcome any great idea from any culture or part of the world.
- Mahamana Malaviya Ji also understood the significance of both (Science and Technology) for an overall progress of humanity.

- He was always so deeply engrossed in politics that one could hardly have imagined at the beginning of this century that this great politician would be a top-ranking educationist as well.
- The establishment of B.H.U. by Mahamana was one of the major events in the history of Indian education during the century.

#### Conclusion

He sought to preserve the best thoughts and culture of Hindu religion and philosophy and at the same time, he did his best to train experts in Science, man of business and industrial leaders, who would help to increase the country's production and wealth. Mahamana's model of holistic development encompassed a balanced between the material and spiritual well-being of the whole mankind and therefore, it still remains vibrant. This shows that Mahamana's vision still need to be pursued to accomplish an all round level development in various fields of human-endeayours

#### References

- 1. R.P.B. Singh B.H.U. Architectural Plan: Souvenir, III international BHU Alumni Meet and International Seminar on Education in 21st Century and Mahamana's Vision Jan. 6-7, 2007, BHU, Varanasi, India, p.50-57.
- 2. Thoughts and Vision, Prof. Y.C. Simhadri.
- 3. Inspiring Edisodes on Mahamana Pt. Madan Mohan Malaviya Part-1, Zm, PZT-1; 22.

# MALVIYA'S VISION, GLOBALIZATION AND HIGHER EDUCATION: CONCERN FOR SOCIAL SCIENCE DISCIPLINE

DR. ANUP K. MISHRA\*

Education, especially the Higher Education, is a liberating force as also an evolutionary forces, which enables individuals to rise from more materiality to superior planes of intellectual and spiritual consciousness. Education is a true blend of past, present and future, so that the new generations receive the accumulated lessons of knowledge and carry it forward. In the event of Globalization and liberalization, every sphere of our life is concerned. The field of education is also no exception to it. Quite unfortunately our present education system in the field of social sciences does not provide any answer to meet the current challenges of this new century. As a result, there is increasing frustration among the youth of our society and this ultimately has posed almost unanswerable threat of unemployment for the Government So, the present paper is an effort to see that what should be the role of the discipline of social sciences, in solving the problem of unemployment, to standardize the competitiveness among the youths and in producing 'Leadership' qualities among the students and what kind of changes are necessary to meet the challenge ahead. We should like to clarify that here leadership does not include political or religious leadership, rather we would like to confine our attention to the leadership in the Business at Industrial environments, in the present globalisation era. As a faculty member of the Banaras Hindu University, it is also our duty to visualize the vision of Mahamana Madan Mohan Malviya, who was never against any positive change viz. his main cards to win the game of life was 'Character industry-integrity'. So the present paper also correlate the Mahamana's vision for Higher Education in present Globalisation era.

### **Present Situation of Higher Education**

The University Grants Commission (UGC) was established in 1953 to enhance and maintain the standard of high education. But more-or less the situations are same in the Golden jubilee year in 2003 and in the year 2006 as it was in 1953. The numbers of the students are growing but the standard of the Higher Education is declining, especially in the field of Social Sciences.

Table-1
All India Growth of Universities since 1950-51

Year	Universities/University level Institutions	Colleges
1950-51	32	695
1960-61	56	1542
1970-71	102	3604
1980-81	133	4722
1990-91	190	7346
2000-2001	258	12346
2005-2006	274*	14000

Source: The Hindu; Jan 5, 2003 \* Tentative

Table-2
All India Growth of Student since 1950-51

Year	Total enrolment	% increase over preceding year
1950-51	1,73,696	_
1960-61	5,56,559	15.6
1970-71	19,53,700	9.0
1980-81	27,52,43 7	3.9
1990-91	49,24,868	7.0
2000-2001	83,99,443	4.3
2005-2006	*Around 1 Crore	_

Source: The Hindu; Jan 5, 2003

Viewing the above tables (1 & 2) we can see the decadal growth in number of universities, university level institutions and colleges and also the decaded growth of all India students since the period 1950-51.

The University or university level institutions was only 32 in the year 1950-51 which rose up to 258 in the year 2000-2001 and further 274 in 2005-06 which is 13 fold growth while the growth of colleges is 25 fold i.e. it was only 695 in the year 1950-51 and rose up to 12346 in the year 20002001 and further 14000 in 2005-2006. Observing the table no.2; we can view that the all India growth of students since 1950-51 is nearly 30 fold i.e, it was 173696 in the year 1990-91 and rose up to 8399443 in the year 2000-2001 and further around one crore in 2005-06.

<sup>\*</sup> Tentative (UGC website)

<sup>\*</sup> Assistant Professor in Economics, DAV PG College (B.H.U.) Varanasi

So the question arises here, that how to cope with the growing numbers and how to maintain the standard of Higher education. Here one more fact is necessary to be quoted that out of 14 thousand colleges and 274 University/ Institutions only 6 hundred colleges and 167 University/ Institution is capable to take the grants from UGC (T.V. Rajeshwar Rao, 2009)1

Table-3 Level-wise students in the Institutions Year 2000-2001

Year	Total enrolment	% increase over preceding year
Graduation	74,86,968	89.14
Post Graduation	7,77,073	9.25
M-Phil	11,964	0.14
Ph.D	45,447	0.54
Diploma/Certify	77,993	0.93
TOTAL	83,99,443	100

Source: The Hindu; Jan 5, 2003

Despite the multi-fold growth in the institutions and the students, the access to and quality of higher education remain limited. Table 3 indicates the level-wise students in the institution which shows that the level of higher education are limited in the graduation level, as 89.14% the students are overflowing in the graduation level while only 0.14 and 0.54 are in the level of MPhil and Ph.D respectively in the year 2000-01.

Table-4 Persons-days of works & Unemployment (in Million)

Year	Persons-days of work*	Unemployment**
1990-91	875	24
1993-94 1994-95	1073 1226	18
1995-96 1996-97	1232 803	20
1997-98	868	-
1998-99 1999-2000	792 547	21
2000-2001	486	20
2005-2006	476	25

Source: \*Times of India, Swami nomics, Aug. 11, 2002 \*\* NSSO, Employment and unemployment various round

Over viewing the Person days of work and unemployment in the decade of nineties (Table-4) one could see that in 1990-91 it was 875 million Person days of work which reduced up to 486 million in the year 2000-2001 and 24 million people were employed in 1990-91 which maintain the figure in 2005-06 where 25 million people were unemployed, whereas in the years 2000-01 the total enrolment of the students was 8399443 in which 7486968 students were in the graduation level and 777073 students were in the post graduation level which person to 98.39 percent of the total students. So, it seems that the overseers in the graduate factory could not engaged in the employment schemes of the government, neither the research output is satisfactory, as only 0.54 percent of the total students opted for the Ph.D degree in the year 2000-01.

#### **Paradoxial Facts**

One paradoxial fact is that on one side unemployment is increasing and on the other side there are 23 thousand school which have no teachers, in 1,30000 School there are only I teacher (T.V. Rajeshwar Rao, 2009)<sup>2</sup>

Table-5 Declining share of Higher Education in GNP

Year	Percentage
1990-91	0.46
1991-92	0.43
1992-93	0.41
1993-94	0.40
1994-95	0.39
1995-96	0.37
1996-97	0.35
1997-98	0.35
1998-99	0.44
1999-2000	0.49
2000-2001	0.50
2001-2002	0.39
2002-2003	0.40
2003-2004	0.37
2004-2005	0.36

Source: Alternative survey Group 2001-2002, New Delhi compiled work.

The declining Share of Higher Education (as in table 5) is also of great concern. It is merely 0.50 percent in the year 2000-2001 and maintained the declining trend on the decade of nineties.

So it seems that students join colleges today not because they always wish to pursue higher education but

because, in the absences of job opportunities, they have little also to do. They are not interested either in acquiring knowledge or under going any training at the skill level and the result is that they are only marginally better trained than they were in school.

#### Malviya's vision for Higher Education

We know that, this is not time to dig the history of the Banaras Hindu University but at the same time we know that as a faculty members of the Banaras Hindu University we should always admire the vision of Mahamana Madan Mohan Malviya, especially when we are talking and discussing about the Higher Education on the Soil of Malviyas land. The vision of Malviya ji was so perfect and dynamic that every solution regarding the problems of Higher Education is there. The motive of Malviya ji was to make Higher Education answerable in any conditions, period or time. The concept of globalisation from the vision of Madan Mohan Malviya could be seen in the following version "And the creator and Benefactor of the World, the universal soul moving in all, brought together his children of the East and the West, and induced their minds to that unanimity which meaneth good and right understanding and directed them to raise this Home of Universal Learning in the Capital Town of the Lord of Universe" (Printed in Copper Plate, 1916, BHU)<sup>3</sup> Again Malviya's pray was-

"May saraswati, in earnate in the Shruti-Heart of wisdom, ever bloom and shine with Worship from her human children, may they ever assiduously imbibe the Vital milk of knowledge flowing from her sweet breasts of science and Philosophy; may all hearts turn to acts of good alone; and may all hearts be filled with love of the supreme!" (Printed in copper plate, 1916)<sup>4</sup>

So this was the globalised vision and religions trust of Madan Mohan Malviya to enhance the Higher Education through Banaras Hindu University.

## Co-operation vs. competition: The Malviya's choice

Today's era is the age of competition. But where is the place of cooperation in the midst of competition? Could the movement of enhancing the qualitative higher education is possible by competition? We get the answer in speech of Modan Mohan Malviya. He said "in the main, the character and results of any movement depend upon the spirit that aninates the workers; the question is whether the spirit is one of competition or co-operation. The teaching of the latter half of the nineteenth century unhappy not corrected by the teaching of religion, engendered an unhealthy spirit of competition resulting in rivalry and a derive for domination", (Malviya speech, 1916)<sup>5</sup> Then he urged to the people that "I am sure that is not the spirit of competition that is the motive force of your undertaking. Your watchword is co-operation, So I have no fear unmixed good upon the country."

Again he said "for all true religion is based on the belief in the are Supreme Being, the Almighty God. And the essence of all morality founded upon such a Faith is charity and goodwill towards all. This is the spirit of co-operation in its highest form."

Malviya's vision was so clear and dynamic, that when he said at his time for the induction of religion into Higher Education, are the matter of research now days. He said "There are some people, I am fully aware, who doubt whether the teaching of Faith, side by side science, can be productive of good results. This assumes that, if religion and science are not antagonistic, they are at least incompatible. But happily, signs are not wanting that the attitude of science towards Religion is undergoing a great change." (Malviya's speech, 1916)<sup>6</sup>

# The Character and Functions of the Graduates of BHU: Malviya's Dream

For qualitative higher Education the character of the students could play the vital role, and the functions of the students were defined by their character. This was the dream of Mahamana. The instruction and training in the direct production of wealth which the students will receive in the technical colleges, it is hoped, place them above want, and they will begin to produce wealth before they have completed their term at the University, and it may be possible to give them stipends out of their own earnings during their apprenticeship. They will be established in life as employers of labour, organizers of industries, managers of leveled estates and business house, scientific and literacy men, engineers, professors, religious teachers, conductors of researchers in literacy fields and investigators into the phenomena of laws of nature. Being able to earn wealth by honorable means, they will be above temptations to unworthy conduct, and being inspired by high principles imbibed from Sanskrit learning; they will be men of unswering rectitude and incorruptible integrity. Their 'brahmcharya' will give them physical and mental robustness which will enable them to bear the strain of intellectual work, whether Professional or civic. Their culture will command respect. Their character will inspire confidence. The guarantee of their word will inspire capital for great industrial enterprises. Their

direction and control will ensure success to religious, educational mercantile, industrial and philanthropic undertakings. They will establish harmony and co-operation where there is discord and strife. (History of B.H.U.)7

# Syllabus of the Study: The Practical Approach of Mahamana

The vision of Mahamana was so farsighted that he knew the basic problems of the Higher Education and as well as of the students. He knew the problem at his time, for what we are crying today. The problem of unemployment and qualitative Higher Education is of great concern today. Yet we are searching for the solution. But at the time of Mahamana the sources of study were to be so fixed that a student of average intelligence; taught on the modern methods may become skilled in some art of producing wealth; and versed in the principles upon which it is based. (History of B.H.U.)8

# Character-Industry-Integrity: The tricard of Mahamana

Mahamana Malviya knew the changing pattern of the time and so he was so dynamic that his main cards to win the game of life was 'Character-Industry-Integrity". According to him "There will prove trumps every time before the game is ended. We cannot escape from our share in the game; we cannot be mere on-lookers. For good or evil, we are all here to play the game. How shall we do it? Shall we, if we think our hand a poor one, throw down our cards and make no effort to win? Surely not; that is the coward's way. Let us play it out in true sportsmanlike manner, making the best of every chance we get; doing always what is right, even if it seems the loosing game; despiting all that as in a game of cards, so in the game of life, we must play what is dealt out to us; and the glory consists, not so much in wining, as in playing a poor hand well". (History of B.H.U.)9

So, these tricard of Mahamana Malviya may be used in the present globalisation era where the information age is dominating through information and technology and in the Higher Education too the use of information technology are becoming inevitable.

# Information and Technology: Need of the Hour

Information technology has emerged as a very important force for development in the twenty first century. The effect and impact of Information technology can be seen positively in almost every sectors of the society. Higher Education is not exception of that. Infact IT has become an indispensable tool for all owing to its strong spread effects and linkages with the rest of the economy. By virtue of its forward and backward linkages, any effort at promoting IT growth will only help the other sectors of the economy. The forward linkages extend to all the sectors of the economy because of its capacity to not only bring out new products but also diversity and modify the existing ones. The backward linkages involve material sciences, software and communication technology. (RIS Report 2001-02)10

The liberalisation and globalisation era imposes a need for variety and complexity of interpretations of information outputs generated by computer systems. The views about the knowledge-based society in the offing require a major change in the way universities are going to train the next generations of social scientists. Such variety is necessary for deciphering the multiple worldviews of the uncertain and unpredictable future. The implementation of these issues in terms of the shift from the traditional emphasis on transaction processing, integrated logistics, and work flows to systems that support competencies for communications building. People networks, and on-the -job learning. The education to be imparted by the universities has to produce individuals who are more social, open, and flexible and are oriented towards problem solving. It is seemed from the above argument that the Universities have not only to revise but improvise and invent newer methodologies to cope with the onslaught of the knowledge based future world. (Fragm 2001)11.

#### Social Science Discipline: A case to be tasted

Until now Indian Social Science has been mainly and primarily dominated by positive empirical studies of a structural or behavioural nature, related to both the explanations of human agency and socio-cultural causation. Majorities of disciplines as well as universities in India, including prescribed curriculum and text book at all levels of education, are based mainly on these structural, behavioural and positive studies. (Ajay Kumar, 2000)<sup>1z</sup> Social Science Discipline in Eastern Uttar Pradesh is also not exception of it. This is mainly because our entire educational system, especially the Higher Education, is a product of the colonial modernist project which discarded all traditional endowments and achievements of Indian Society. The Indian educational system continues to be based on alien structures borrowed from Western models, values and goals in scientific and technological effort. (Ajay Kumar, 2000)<sup>13</sup>.

In the eastern Uttar Pradesh Social Sciences discipline has also copied the same blind attitude of the western concepts, leaving the 'values and vision' of Mahamana, which led to the following:

- Incapacity to find a right dynamic balance between practical application and theoretical rigour.
- A total neglect of epistemology of local issues, (b) problems and desired dynamic.
- An inappropriate choice of issues and problems for (c) investigation, inadequate and superficial concepts and theoretical frame works.
- Alienation from academic value. (d)
- Last but not least is the lack of the knowledge of (e) information and technology and its practical use for the Higher Education.

#### Use of IT in the Social Sciences Discipline

Realising the challenge of the globalisation era we had tried to discuss issues related to integrating IT into teaching and learning of Social Science in Higher Education. Information Technology can not only be used as a non-linear media, but also as a platform which can support unprecedented learning experiences. It could be integrated into regular curricula to achieve great value addition in education. It is argued that such developments will be significant only when the teacher understands the real possibility of computer media and directs its use for higher education.

Table-6 **Current status of IT Literacy Among teachers of** social sciences in Eastern U.P.

No.	Items	Percentage
1	Have access to PC	33
2	Own a PC	50
3	Have operated a PC by them self	60
4	Use E-Mail	30
5	Browsed Internet	20
6	Have internet connection at home	20
7	Recommended internet connection to	
	students	5
8	Familiar with educational CDs	5
9	Use PC for setting QPs	2
10	Use PC for sharing/analyzing student	
	performance	2
11	Have personal web site	2
12	Demonstrated an involvement in	
	use of IT	1

**Note:** Complied from personal observation.

The above table (6) shows the knowledge of information technology in the social sciences discipline. Out of 200 teacher (personal observation) only 100 have their PC (i.e. 50%) in which only 66 teachers have access to PC (i.e. 33%). Only 30 Percent teachers use e-mail and 20 percent teachers of the region are habitual to browsed internet and have internet connection at home. The recommendation to the students and use of PC for setting QPs are only 5 and 2 Percent respectively.

The present situation shows that the Eastern Uttar Pradesh, has been slow in waking up to the harsh relatives of a fast changing world. The Higher Education systems run like factory. The focus on the hours of work, the bureaucratic attitude, the lack of basic facilities like computers. Teachers are fit perfectly into the UGC's design for Higher Education. They are overseen in a factory system of education, where a student may take an examination if he or she meets the' attendance requirements' and a teacher has done his/her job if he or she can string a bunch of sentences together and stretch them over 45 minutes.

The UGC's emphasis is on the numbers of hours taught. A 'hard working' university teacher is one who fulfills teaching commitments in terms of completing the syllabus and teaching the stipulated number of hours. The quality of teaching, it would seem, is immaterial. A Professor is seen to have done his or her job as long as he or she turns up at the time stated in the department timetable and delivers his or herself of a lecture that he or she may well have prepared 25years ago.

There are no systems of teaching quality assessment. No body here, bother to keep up with the new research in their disciplines. But this is not only the fault of the teachers. System itself is faulty. There are very few books in the department's/Colleges libraries. Access to books and journals, considered basic tools of higher education elsewhere in the world, is highly restricted. Getting research leave or time off to attend seminars or conferences is impossibly hard. Computer system or computer networks are far away from their reach. Facilities are restricted in a bureaucratic manner. Rooms are not available for common purpose or for a group discussion with the students.

Until these changes, the eastern part of the Uttar Pradesh will continue to produce graduates and Post-graduates with little real claim to having received a higher education.

# Conclusion with suggestions

To conclude, we can say that there is no difference between Mahamana's vision and Globalisation regarding the Higher Education. Malviya ji was never against any positive change as he use to say that' for good or evil, we are all her to play the game'. So here is the time when we, as faculty members of the Banaras Hindu University should admire the vision of Mahamana Malviva whose main cards to win the game of life was 'Characterindustry-integrity'. Let us accept the challenges of the present era. Let us accept the changes made by the UGC in her golden year celebration. Let us take our Ex. Prime Minister's Mr. Bajpayees announcement for 'reforms and innovation on teaching-learning and focused research and development,' in a sports manlike manner. Let us make a syllabus with the changing world so that a student of average intelligence, taught on the modern methods may become competitive or skilled in some area of producing wealth, exactly what Mahamana wanted to do so.

Let us prepare ourselves to face the situations through learning Information and Technology for the qualitative Higher Education. Let us replace the hierarchy in its traditional sense by organised networks of influence. Let us make our institutions different from others with the value addition of Mahamana Madan Mohan Malviys's vision.

#### REFERENCES

- 1. T.V. Rajeshwar, Rao, Governer, U.P., Speech delivered at convocation function of Purvanchal University Jaunpur, 24th March 2009, Published in Dainik Jagran. March 25, 2009.
- 2. Ibid
- Copper plate writing, 1916, from the history of the Banaras Hindu University, by Dar S.L. & Somaskandan. S., B.H.U., Press, 1966.
- Ibid
- Malviya's speech as Pro-Chancellor in 1916, from the history of the Banaras Hindu University, by Dar S. L. & Somaskandan.S., B.H.U., Press, 1966.
- Ibid
- 7. Ibid
- Ibid
- 9. Ibid
- 10. South Asia Development & cooperation Report 2001/02, RIS, New Delhi, 2002
- Faragm; M.N., Role of University in Developing Leadership, Indian Horizons, Vol. 48, No.2, April- June-2001
- 12. Ajay Kumar, Indigevrus Knowledge: Social Science in Indian Context, Mainstream, Vol. XXXVIII No. 38, Sept 9, 2000
- 13. Ibid

# MALAVIYA JI'S VALUES AND HIS RELEVANCE

K. CHANDRAMAULI\* (BENCO, 1963)

Malaviya ji was an institution by him self with a wide spectrum of thoughts, speeches and activities. This spectrum starting from his simple personal life gradually enlarged in different shades to brilliant professional life, active community life, compassionate social concerns, involvement in tricky inter community conflicts and the tough struggle for the freedom of the country. All these public activities gave him ample opportunities of travelling all over the country, meeting different people, observing their miserable living conditions, seeing a multitude of problems from various angles, discussing the alternatives and understanding the harsh social realities. The pathetic physical conditions of the people in the late 19th century pained him. Natural calamities shocked him. The internal strife between persons and religious groups tormented him. And above all, there was the oppressive bondage under a foreign rule. Malaviya ji wanted to find a way out of these multi fanged conflicts at the inter personal, intra and inter communal, social and national levels. How did Malaviya ji face the situations, cope up with the problems, react to them, resolve the conflicts, and find alternative options or solutions to them? Was there any specific way of reasoning, logic, method, basis, principle or value that he adopted in his approach to problems?

#### **Progress Through Right Means**

The more problems and situations one faces, the harder will be the test of one's character and values. Malaviya ji found that all the problems, all the conflicts, related to the general classification of *Artha* and *Kama*. This basically meant enhancing the individual and social prosperity to meet the needs, ambitions, aspirations of the people (in not only mundane life but also in other areas like art, culture, language, religion and the way of life). However, conflicts could be resolved and general welfare and peace could be sustained only when prosperity is achieved through the right means and the aspirations are within the framework of righteous living. This brings in the tenets of Dharma or righteousness — righteousness that would shape the values and strengthen the core of one's personality.

# **Harmony To Sustain Progress**

Individual progress much depends on the progress and economic well being of the nation. Malaviya ji, like all the other contemporary leaders and luminaries of the country, felt that all round progress could be achieved only when the country was free from the yoke of foreign rule, only when the countrymen were at liberty to voice concerns and opinions in deciding their own destiny. He once said: "Sub-ordination to a foreign Govt. is the greatest curse that can fall upon any nation. It destroys the manhood in the people and it affects their moral fibre to a terrible extent.....It corrupts the people over whom it exercises power, its patronage and its influence. Its very presence has a corrupting influence".

Malaviyaji also believed in the need to develop an atmosphere of tolerance and amity in a country of wide diversities in languages, creeds, beliefs and religious faiths. This was essential both for presenting a united front in the freedom struggle and for maintaining a harmonious living in the independent country. It would be futile to expect sustainable progress in an atmosphere of intolerance and disharmony between various groups. Practically, some of the leaders exhibited a great hurry to get independence by any means, with the misconceived presumption that all other aspects would fall in line after independence. Here again, Malaviya ji was clear that harmony could only be a result of equity, fair play and justice to all irrespective of the religion, community, caste or creed or any other factor that divided one person from the other. He strongly felt that equity, fair play and justice should be observed at every step of the freedom movement and thereafter.

#### **Progress Through Vision**

A new phase in Malaviyaji's life started after a few years of intense work in the freedom struggle. This was the start of a life which dazzled with the brilliance of a new vision. It was a vision unmatched by any others of that age, a vision that drew him to play a magnificent role, a vision of the century that made him the greatest builder of modern India in the true sense.

Malaviyaji believed that the freedom of the country was inevitable and India would soon be independent and

therefore started thinking of the future of the country. And then he realised that there was a major task after the independence of the country, the task of learning to manage our own affairs and of equipping ourselves to build a modern India. His lofty vision of a modern India was that of a country buzzing with economic progress, peace and general welfare. He also felt the need for rekindling and recharging the social, moral and spiritual spirit of the Indian people. This major paradigm shift required not only all round technical and scientific progress but also that the consequent prosperity be laced with an unique touch of Indian ness, of our culture and ethos. This vision could be fulfilled only by preparing the young generation to take up the new challenges and responsibilities through proper training, education and values. Therefore he expanded the meaning of a strong foundation in education to include the basic scientific and technical education for prosperity and also the dharmic concepts (universal values) for probity in life and character building. The finest example of his vision on the subject could be seen in the wonderful clarity of the Prospectus of The Banaras Hindu University. The true result of his action could be seen in the products of the University who championed the cause of progress all over the country in many fields before and after independence.

Thus, Malaviya ji can be considered as a rare and unique leader who emphasised on the right means for achieving freedom; who believed in keeping the country's progress and welfare through economic prosperity, righteous living (on dharmic principles) and harmonious social and political life; who conceived the building of Modern India through a holistic approach to education.

#### **Vision With Values**

A farsighted vision with lofty goals would come to naught if the chosen means are not backed up by strong ideals, basic principles and universal values. Malaviya ji had an edge over all others in this area as well and therefore had difference of opinion at times with other leaders in some of their strategies and action plans. What then were the values that Malaviya ji believed in? How did Malaviya ji translate the Dharma and Universal Values into practice? What were the ideals, the values he emphasised on?

# *'Vasudhaiva Kutumbakam'* as the Dictum for National Integration

When thinking of the Nation, Malaviya ji started with the premise of the noble dictum 'Vasudhaiva

Kutumbakam' or world as one unit, one extended family, where there should be no differentiation between people, where there should be unity, feeling of cohesiveness, of belonging to the same unit, same family. "The ancient religion of India (Sanatan dharma) teaches man to regard himself as a unit of a greater whole, and to live and work for the good of the whole. As no man can live and work for the good of the whole to which he belongs without living and working in harmony with his fellow-men, the ancient religion has prescribed duties and imposed restrictions which, if properly understood, and duly observed make for peace and goodwill among men, and lead to harmonious cooperation by them for the good of the society of which they are members, and the world they live in."

Malaviya ji voiced this thought on many occasions, making no distinction between communities: "India is the common motherland of all Hindus, Muslims and Parsees—" (Aaj, Apr 12<sup>th</sup> 1924); "The days of Hindu or Muslim state had long passed"; "India is One Nation- it is the motherland of all Hindus, Muslims, Christians, Sikhs....we would have Indian Raj in India and not Hindu or Muslim Raj" (address to the students of Allahabad University in Oct 1941). When the One Nation—One Family theory is accepted, every member in the family is equal to every other member in all respects. His advice to the big brother was: 'Follow your dharma and respect others' and 'Work closely with Parsees, Muslims, Christians and Jews for the progress of the country'.

#### Fair Play and Justice

Equal rights go along with equal justice and fair play, with no partiality, favouritism, direct or indirect tipping of the scale or special favours. Malaviya ji's sayings on various occasions are illustrative of his thinking.

He agreed with A.O. Hume's statement which opposed the communal representation: "Indians are Indians, why should there be a majority or a minority?". However, the proportional representation of minorities was accepted by Congress in 1889. When Morley Minto Reforms announced separate electorate for Muslims in 1909, Malaviyaji denounced it. He raised the issue in the Imperial Council in 1911, much to the chagrin of some leaders. When the Muslim delegation represented to the Viceroy, Malaviya ji said that he did not agree because: "It claimed that the Mohammedans were politically a more important community—and therefore entitled to special consideration and even preferential treatment" (Presidential Speech Lahore Congress, 1909).

'Equal justice to each component of one composite nation' and 'Unity and amity among different communities based on principles of justice and fairplay' (1916). In the All Parties Conference in 1928, Malaviya ji stated: "If the Muslim demand for reservation was accepted then other communities like the Sikhs, Depressed Classes might demand reservation and then no national unification could take place". It may be noted that his statement appears prophetical, when the recent happenings in the country are considered. Malaviya ji also made it clear that 'nationalism and not communalism was the way to swaraj'.

Malaviya ji could not accept any unjust demand or when one claimed more than his just due. How can there be a 'more important community' in the One Nation One Family theory? Throughout his life, he was never reconciled to accept any suggestion of preferential treatment for any community or the Communal Award of 1932. Malaviya ji felt that the lesser mortals can err but not the rulers, national leaders, thinkers and constitution makers. He said "It will remain as a condemnation of its authors — calculated to divide one community from another, making it impossible for communities to be brought together" (Hindustan Times, Sep 4th 1932, after announcement of Communal Award). Analysing the results of such a gross injustice, he prophetically commented: "If Communal Award stands, every class and creed in the country will be organised under it as a separate political community to scramble for its own interests in the Legislature in disregard of people as a whole" (Hindustan Times, May 9th 1934).

Malaviya ji didnot agree to any discrimination or disparity for the reason of maintaining unity in the country. His idea of unity was not for the day or the decade or a short sighted and short lived unity, he wanted unity that would sustain even after independence. When Congress did not want to comment on the issue of Communal Award, he criticised Congress: "To maintain neutrality merely because of difference of opinion on Communal Award was bad in policy and contrary to the Congress tradition of opposing the wrongs and injustices....." Pt Jawahar Lal Nehru was the only one to appreciate his stand: "Malaviya's consistent agitation had some impact on the policy of the Congress too. It revised its stand on the Award considerably" - (Hindustan Times, Oct 31st 1936)...

#### Reciprocity

Apart from the 'Vasudhaiva Kutumbakam' or his stress on national integration or a united One Nation, Malaviayji strongly believed in another dictum: "Whatever appears bad to you, do not do it to others". This value is exemplified in his treatment of the depressed, deprived, downtrodden, poor, neglected classes. Malaviya ji expressed that such people should not only get their rightful share but they also deserve our sympathy and compassion. Despite the rigid posture of the orthodox Hindus, Malaviya ji passed a resolution in Hindu Mahasabha (1923) - 'Dalits have the right for education, drawing water from public wells, mixing with others and to enter the temples'. On another occasion he differed with Gandhi on the enactment of a law for temple entry and said: "Whatever is right, according to Dharma and good for the people's welfare should be done —I speak from the study of dharmic volumes that they should get the benefit of temple entry—we should give them, water, place to live and education".

# **Equal Opportunity For Education**

Malaviyaji was keen on giving equal opportunity in education to every one, irrespective of religion, caste, creed, status or sex. This can be seen in the University and its working. He invited Babu Jagjivan Ram to study on par with his own son in the University: "Bring him along to BHU; he will study where my Govind is studying". Malaviyaji financially assisted hundreds of young Harijans to receive high education and rise in life. And this is what others talked about him: "Large numbers of educated Harijans of today owe their education to Malaviya ji"; "There is no trace of the curse of untouchability in Malaviya's Saraswati Temple.... Discrimination between high and low seems never to have entered his compassionate heart". There is no wonder that he declared: "My Lord, the University will be a denominational institution, but not a sectarian one. It will not promote narrow sectarianism but a broad liberation of mind and a religions spirit which will promote brotherly feeling between man and man" To Malaviya ji, any scheme of education was incomplete so long as "half the portion of a community (the woman) is allowed to grow up in ignorance to be shut out from all light of knowledge".

#### Non Violence

Malaviya ji was never afraid of facing any adverse or violent situation. But he never agreed to direct action leading to confrontation or violence. Some revolutionaries worked to overthrow the government through armed struggle, while others took the path of civil movement to force the government to adopt

people-oriented policies. Malaviya ji believed more in constitutional methods like conference, negotiation and conciliation. He once said: "It would be a crime to go to war and to incite the people to a war or hostile activities so long as there is a possibility of honourable solution by negotiations" and again: 'Congress is the only hope and constitutional method the only remedy'. Just like most of the early Congressmen, he had explicit faith in the fair dealings of the British, and said: "We must only go up to the Govt. again and again and ask their earliest consideration of our demands and entreat them to concede to us these reforms."

One could see that there was not even an iota of violence in his expressions, nay, not even in his thoughts. While resolving the Ganga canal case at Haridwar, he advised the Govt., in the same flowery smooth strain: "What upsets the inner feelings and emotions of the people, should be dealt with in a gentlemanly and cultured way". When Montford Scheme was not acceptable also, he said: 'accept what is offered and agitate for more'. When Gandhi ji launched his Satygraha movement in 1918, he was not for handing over the burning torch of agitation to the people at large, because that would certainly lead to violence or war like hostilities. In that case, violence did take place and Gandhji had to hastily withdraw his Satyagraha.

#### **Master of Conflict Management**

While adopting the constitutional methods, Malaviya ji never allowed the discussions to be distorted into conflicts, the conflicts then leading to confrontation and finally the confrontation resulting in violence. He understood that fire can be doused only by water (cool reasoning and persuasion) and not by inflammables (fiery emotions). He tackled many such situations with his tremendous tact and sweet persuasion in what may be termed as the best type of 'Conflict Management' and 'Crisis Management'. There could be no better complement than Mr. A.O. Hume's comments: "there was some difference of opinion over the Boycott Resolution but.....complete unanimity attained by the exercise of that sweet reasonableness which is one of the best known characteristics of Malaviya" (Report of INC 1905). He was a master in conflict management and many such instances can be quoted.

# Unity Was His Mantra

'Discuss for participation, debate for clarity and decide for unity' appeared to be Malaviya ji's mantra in

all forums. He chanted this unity mantra in different ways on a countless number of times and succeeded: 'Keep the congress united and synthesise the old and new spirit'; "The need for unity was never greater. Let there be one party in India until the goal is reached"; Malaviya ji wanted the Independent Party and the Swaraj Party "to regard themselves as the members of one party, the Indian Party"; Malaviya ji was opposed to the Home Rule League in 1916 mainly because it might affect and lower the work of Congress. He disagreed with the Congress on the 'Satyagraha'; but when he saw that Congress had reached a point of no return by plunging into it, he took the 'Satyagraha Pledge' and toed the line for the sake of internal unity. Congress chose Malaviya as President of Delhi Congress for his unifying role in 1918. Gandhi in his address to students in Nov 1920 said-"I am sure whatever Malaviya ji is doing is because he considers it to be his duty (dharma). Difference of opinion cannot diminish my respect for him"

Malaviya ji made many attempts to unify the factions in the Congress to present a united front to the Govt. A few are noted here— When Moderates accepted, Extremists opposed the Montague Chelmsford Reforms in 1918, he brought the two factions together to attend the Session. Malaviya's resolutions were adopted by majority. In May 1921, when Non Cooperation Movement produced uneasy tension, struggle and violence, he persuaded Gandhi and Viceroy Lord Reading to meet in Simla. In end 1921, when boycott and agitation during Prince of Wales visit was imminent, Malaviya ji tried his best to bring in better understanding between the Govt. and the Congress. In 1923, division on party lines was inevitable. Malaviya ji suggested a common programme by different parties to put up a united front against the Govt.

#### **Communal Harmony**

He organised or played a major role in the All Party Conferences or the Ekta Conferences to bring in communal amity - Allahabad 1910 and Bombay (14th Jan 1922). Malaviya convened a Conference of all communities at the request of M.C.Chagla and Abdul Kalam Azad 1932. M.C. Chagla commented: "It was largely due to his able guidance that the conference was a marked success". Malaviya ji took a lead during the Pune Pact. Dr. Mahammadullah commented in 1932: "His highest service to the country was that he brought about an understanding between the various communities in India..." Rabindranath Tagore said: "Your efforts have had a perceptibly wholesome effect on other communities

and we feel grateful for the lead you have given to our country in its present crisis".

#### **Patriotism**

He felt that apart from respecting the values of the other communities and the society, the only other emotion that could bring in unity, that could bind the people together even amidst the wide diversities was 'Patriotism'. He said that patriotism has to commence since birth "as in Japan, along with a general spread of education and religious spirit" (Abhyudaya,1906). He traced the basis of nationalism in religion, i.e. dharma, which teaches each man to regard himself as a unit of a greater whole and to live and work for that greater whole. This perception of the larger whole progressed from the individual to society, to nation, to humanity, to all creatures, and finally to the cosmic whole. It is from this standpoint that Malaviya ji asked students to "...Keep alive that sense of your duty towards God and towards your country". Notice the mention of duties towards God and towards the country in the same breath. It is on the ground of religion that he asked them to "....Love your countrymen and promote unity among them. A large measure of toleration and forbearance, and a larger spirit of loving service is demanded of you. ... A remembrance of your duty to your country will help you always to be prepared to offer any sacrifice which may be demanded of you for the protection of its interests or honour.... The education you have received would have been lost upon you if it did not plant an ardent desire in your minds to see your country free and self-governing. I wish you to cherish that desire, and prepare yourself to discharge every obligation which may be cast upon you for the early fulfillment of it..." As stirring, forceful and inspiring call to nationalism and patriotic spirit as any can be!!

#### **Holistic View From Early Education**

The holistic Indian view of good life fully recognises man's natural strivings for prosperity and various material and sensual cravings, *artha* and *kama*, as valid goals of life to be attained within the bounds of the general laws of morality specified by *dharma*. Malaviya ji wanted the moral and spiritual values or the universal values (*dharma*) to become an integral part of the individual and collective value-temper of the modern Indians. This is especially necessary amongst the elite educated and professional classes who run the affairs of the nation. Malaviya ji conceived that the right way to achieve this goal was by instituting a new system of modern education, informed and inspired by the Indian ideals of life and living. This

was his motivation behind establishing the great centre of learning, Banaras Hindu University. The fourth object of the university as laid out in the prospectus states 'to promote the building up of character in youth by making religion and ethics an integral part of education'. Here again 'religion' means 'dharma' or the universal values.

#### Compassion (Daya)

This was more of his personal quality than a universal value realised and cultivated by him. There are a number of anecdotes which highlight his compassion for the poor, needy, affected persons and to the helpless even including the animals. During an accident, he rushed out from his car to see that the bull pulling the cart was not hurt rather than look at his damaged car. Many poor students were allowed by him to write their examination in spite of their inability to pay the annual fees. It was sheer human kindness that flowed from him at the sight of the affected.

#### Relevancy

The question often asked about any historical person under discussion, "Is he relevant in today's context and in what way?" This pertains to the relevancy of historical view points in the changed conditions. Since we do not normally learn from History and continue to make similar mistakes, rhetorically it may be asked "Is History a relevant subject in the modern context?"

Only a great visionary like Malaviya ji could have conceived of painting such a lofty, holistic, humanistic and futuristic vision of the individual, the society and the nation on one fabric, the fabric of universal values or dharma. His views on 'One Nation, One Family', 'Fair Play and Justice', 'Reciprocity', 'Compassion', 'Non Violence', 'Communal Harmony', 'Unity', 'Patriotism' have already been recorded in earlier passages. These values are not only relevant today, but also very essential and most needed values to be cultivated, to be emulated by every section of the present day society riddled with umpteen problems. For example, it has already been noted that his ideal of patriotism is equally relevant in the present day when political, social, communal turmoil and terrorism threaten to break the country's backbone and unity. He not only preached them as values but also practiced them vigorously.

Malaviyaji had given prime of place for the education and upbringing of the younger generation, who at any time form the future of the nation. Hence some thoughts are detailed here at the cost of repetition. The

education of the youth, his ambitions and struggles in life, his harmonious living in society, his useful contributions in building of Modern India, his fervour for the country's welfare and progress through economic prosperity, his patriotism to sacrifice for the country .... Malaviyaji neatly knit up all these in the fabric of righteous living (on *dharmic* principles) and harmonious social and political life. Of singular significance is the building up of character of youth as an integral part of university education. This goal is as important today as it was when formulated nearly a century back; perhaps much more important today than then. This point has been all but forgotten in today's system of education and life of unholy competition and blind consumerism. The result of this neglect is glaringly visible all around us. A climate of rampant corruption, self-promotion, injustice and unconcern for the common good has firmly established itself and is steadily growing in all walks of our public life.

It appears that Malaviya ji could foresee the dangers and ill effects of scant regard for values in life. A few of his sayings can be quoted here:

"....mere industrial advancement cannot ensure happiness and prosperity to any people; nor can it raise

them in the scale of nations. Moral progress is more important for that purpose than material".

"....formation of character is even more important for the well-being of the individual and of the community than the cultivation of intellect"

"A teaching university would but only half perform its function if it does not seek to develop the heart-power of its scholars with the same solicitude with which it develops their brain power. Hence it is that the proposed university (BHU) has placed the formation of character in youth as one of its principal objects. It will seek not merely to turnout men as engineers, scientists, doctors, merchants, theologians, but also as men of high character, probity and honour, whose conduct through life will show that they bear the hall-mark of a great university."

"Such character can be most securely built upon the solid foundation of religion"

Malaviyaji's *dharmic*, humanistic, and holistic spirit is always universal and eternal too. May this spirit be born again and again whenever there is a decline in values and may it inform, instruct and inspire us today also in our present endeavors of nation building.

# RESURGENCE OF INDIA'S ECONOMY: MAHAMANA'S VISION

SHAIVALINI SINGH\*

Pandit Madan Mohan Malaviya dominated the scene of public life in India for about sixty years. His life was a shining example of self abnegation, service and devotion to duty. His dreams were concerned with the upliftment of the people, their welfare and happiness, their all-round progress and weal. The poverty of the masses, the illiteracy and backwardness of the people, the suffering and the sorrows of common men and the evils afflicting the country greatly perturbed him and throughout his life he worked for the betterment of his countrymen.

Malaviyaji has been generally regarded as a man of deep religious values and there is a misconception that his views due to his belief in Sanatan Dharma were regressive. The present paper is a modest attempt to show that he was a constructive idealist who not only envisaged the revival of the past but also its fusion with modern science and technology to make India a progressive and economically strong country.

# **Economic Development**

His interest in the economic development of India was no less profound than his concern about other things. Though not a financial expert like Naoroji, Wacha, Gokhale etc. he could ascertain the colossal loss sustained by India on account of British economic policy. He realized that "finance is not mere arthmetic; finance is a great policy. Without sound finance, no sound government is possible; without sound government, no sound finance is possible."

In his prolific writings Mahamana has often emphasized the importance of economic prosperity for a nation. We can visitualize his progressive economic attitude in his statement that "one of the abstract principles that had been established in the industrial world was to look at problems from national point of view and not to have a parochial and small commercial man's point of views."<sup>2</sup>

#### **Economic Philosophy**

His economic philosophy was influenced by the writings of John Stuart Mill, Hyndman, Digby and by nationalists like Naoroji, Dutt and Ranade as Malaviyaji has profusely quoted them. There were great debates on vital issues like Indian gains or losses arising from British rule and the ways and means to make India prosperous.

He was critical to the impetus given to British industries at the cost of indigenous industries. The new economic system introduced by the British in India enriched the rich and reduced the poor to abject poverty. It was the cause of distress among the poor sections and

discontent among the educated middle classes. In short, the government policies were considered to be detrimental to the economic development of India.

The central theme of Malaviyaji's economic philosophy was the regeneration and development of Indian economy which had become an object of exploitation by the British Government Colonial rule broke down the autonomous economy of independent handicraft workers and self-sufficient peasants and directed domestic economic activity towards two main areas-export oriented agriculture with very small returns, to provide primary products for the West at bargain prices. The British altered the political economy and state structure of India to provide state protection to British trade.

# **Decline in Indian Economy**

In the note of dissent given by Malaviyaji on the Indian Industrial Commission in 1918, he suggested many constructive proposals to enable India to develop her industries in her own interest. He stated that India had become an agricultural country from an industrial and agrarian nation due to the policy of the government and not because of any want of industrial capacity, and enterprise among her people.<sup>3</sup>

Malaviyaji cited various sources to prove that India had trade relations with Babylon in 3000 BC and Indian Mulmul had a exclusive market in Egypt and Greece more than two thousand years ago whereas cotton textile industry started in Britain only in the 17th century. India was even superior in technique and quality in Iron and Steel manufacturing and forging, and the world famous Damishk Swords were made by Indian steel.<sup>4</sup> The British traders ultimately resorted to political injustice to strangle a competitor whom they could never have met on equal terms.<sup>5</sup>

As a member of the Indian Industrial Commission, he endorsed the words of Sir Fredrick Nicholson: 'I beg to record my strong opinion that in the matter of Indian Industires, we are bound to consider Indian interest firstly, secondly and thirdly—I mean be 'firstly' that the local raw products should be utilized by 'secondly', that industries should be introduced and by 'thirdly' that profit of such industries should remain in the country.<sup>6</sup>

# **Agrarian Economy**

According to Mahamana, the poor economic condition of the people was due to growing burden on land because of decline in rural industries. He made an enquiry of the economic condition of the masses with a

<sup>\*</sup> Research Scholar, Department of Political Science, B.H.U., Varanasi

view to take steps for its remedy. He considered the imposition of British land revenue and tenancy systems as a great burden on the peasant community therefore he demanded the land revenue to be reduced by twenty five to thirty percent and a guarantee made against the enhancement of land tax. Revenue demands had to be paid in cash, which had helped to draw urban moneylenders and traders into local level economic relations, further deteriorating the condition of peasants. Therefore he wanted the government to collect its dues in kind and not cash and that too should not exceed more than six percent.

Malaviyaji realized that the lack of adequate irrigation facilities and high rises in the price of foodgrains further aggravated the problem of poverty and famine prevalent in the country. He regretted that sufficient attention was not paid to irrigation inspite of repeated recommendations of the Famine Commissions of 1880 and 1901-1903. He advocated that there should be increase in irrigation from tanks and wells besides canals and other means of artificial irrigation. He suggested that the government should advance taqavi to tenants for making wells<sup>8</sup> and supported his arguments with the sayings of ancient sages who had stressed on the importance of storage of water<sup>9</sup> and lamented that the British Government spent seven times more on Railways than on Irrigation, though irrigation yielded five times more than the Railways.

# Means to Improve the Economic Condition

Mahamana was of the opinion that the cultivators deserved reduction in land tax. He even opposed the restriction on free movement of grains from one province to other and was in favour of imports to save the people from starving to death. The soundness of his policy can be appreciated by the fact that he even suggested the maintaince and sale of foodgrains at subsistence price, which the masses could afford, a policy which seems to be the forerunner of the present day 'Below Poverty Line' scheme regarding distribution of foodgrains by the Indian government.

Not only this, he even advocated for the establishment of an agency which would purchase grains directly from the cultivators, advancing money to them and on the other hand selling it at economic prices to the poor, a replica of the above can be said to be the Farmer's Cooperative Societies of the modern days. He realized that the want of credit was a major headache of agriculturists therefore he urged the government to supply more credit on cheap rates to them and to promote banking facilities which would reduce the necessity of landowners going to the local moneylenders. He also realized the necessity of inviting the representatives of tenants to the representative Assemblies so that they could articulate and safeguard their interests effectively.

Mahamana pleaded the cause of Permanent Settlement in the Congress and Provincial and Imperial Legislative

Councils because he believed that it would check the growth of burden on land, accumulate capital and promote other agro-based industries and ultimately lead to improvement in the economic condition of the masses.<sup>10</sup>

He stressed for the adoption of scientific agriculture as it would increase the per hectare yield, at the same time he cautioned against the blind acceptance of western methods and implements of agriculture which would further add to the difficulties of peasants. He endorsed Mackenna's view that, "as in the case of plant, the improvement of the local material which the cultivator can himself make and repair and which his cattle can draw seems the more hopeful line of improvement." He was against tax on agriculture, as he considered the land revenue paid by the peasant as a form of tax and thus it would amount to double taxation.

#### Importance of Industrialization

In his words, "A purely agricultural country cannot prosper and be self-supporting any more than a merely manufacturing country." Malaviyaji realized that though the country lacked expertise and machinery a national economic policy had to be adopted which utilized the local raw products, established industries and the profits gained should be used for the development and progress of the country.

#### **Banks as Edifice of Economic Development**

He was convinced that the economic development of the country was not possible unless there was a sound and extensive system of banking, especially in a country like. India where the habit of hoarding was prevalent and banking tendencies were at primary state.

When Malaviyaji presided over the Congress for the second time, it passed the resolution that, "While generally welcoming the recommendations of the Industrial Commission and the policy that in future the Government must play an active part in promoting the industrial development of the country the Congress hopes that in the practical application of this principle, the object kept in view will be encouragement of Indian capital and enterprise and the protection of this country against foreign exploitation, with the sole aim of making India industrially and economically self contained and self dependent." 12

#### **Railways**

Mahamana considered a developed transport system like Railways essential for industrial development. It was a 'public utility' meant for 'services' and not profit and he wished them to be run as a financial proposition in the public interest.<sup>13</sup>

He regretted that inspite of enormous natural resources and raw material, it was not used for India's economic development, rather it was exported out of the country and even the Freight policy of the Railways helped to this end. In his opinion, "If there was common stock for all state lines of the same gauge, and if they are

properly distributed according to actual requirements, they would result in great sevings of vehicles, reducing capital cost and avoiding empty haulage."

#### **Tariff and Fiscal Policy**

Malaviyaji criticized the tariff policy of the colonial government and the countervailing excise duty on Indian goods which had destroyed the indigenous art, handicraft and industries. He advocated that protection should be given to Indian industries in the same way as Britain and other Western countries followed for their respective industries.

#### Importance of Swadeshi

The main object of Swadeshi movement was the improvement of the economic condition of the country. He was a constructive nationalist who emphasized on adopting a policy of self-help and self-sacrifice. He realized that "the counsumers will save a little money for a time but they will have to be dependent upon foreign manufactures for their supplies in the years to come and the foreign manufacturers will mercilessly fleece them more than any other manufacturers."<sup>14</sup>

He was convinced that appreciation of rupee was against the interest of indigenous trade and industry and was also detrimental to the cultivators as they got less for their produce. According to him gold Currency was advantageous to the country as it would give higher wages to wage earners and secure profits to agriculturists and promote indigenous industries. He wanted government control over the credit and currency of the country as it greatly affects the nations economy.

Mahamana had firm belief in the Indian philosophy and value system and he believed in the saying of 'Isha Upanishad' that "Knowledge is wealth, knowledge is power". Mahamana's philosophy reflects a balanced approach to development which endorsed a righteous way of living but without scarcity and poverty. He supported industrialization because he considered that economic resurgence of India was not possible without creating a firm industrial base and to this end, he was emphatic about the urgent need for scientific and technical education in India for which a national University was set up at Benaras to provide highly qualified and trained technical, scientific and engineering personnel which are the prerequisite for industrial development.

Though he was concerned more with the problems of peasants but in his opinion, 'State should have the duty to safeguard the interest of industrial workers and secure for them a living wage, healthy conditions of work and protection against old age, sickness and unemployement.'15

He was opposed to labour strikes as he considered it detrimental to the interests of the public and the labour

but even then he recognized the right of the labour to go on strike to safeguard their interests. Thus we see that Malaviyaji was a nationalist leader whose ideas regarding labour show his concern not only for them but also the national economy.

Mahamana believed in the ancient Indian thought that 'all life was worthy of reverence and that everyman's comfort was worthy of our earnest consideration.' which sounds closer to the Communist philosophy but he denounced the doctrine of violence and common ownership of property. He seems to be more closer to the socialists, as he wanted State control over basic industries and advocated a socio-political system based on justice to foster economic progress.

Malaviyaji's economic philosophy was centered around national interest and the good of the common man was the central theme of his economic ideas. His vision has assumed even greater importance in today's 'knowledge based' world economy where the nations are pursuing policies that encourage innovation and access to advanced knowledge. It was his vision to adapt modern technologies alongwith indegenous methods to our specific needs in order to bring progress and prosperity to the nation.

#### References

- 1. Annual Proceedings of U.P. Legislative Council, Apr. 11, 1906, p.62
- 2. Legislative Assembly Debates, Vol. IV, Part I, Feb. 7, 1924, p.308
- 3. Report of Indian Industrial Commission, p. 257
- 4. Parmanand, Mahamana Madan Mohan Malaviya, Malaviya Adhyan Sansthan, BHU, 1985, Vo. 2, p. 457-462
- 5. Dutt. R., The Economic History of India in the Victorian Age, Kegan Paul, Trench, Trubner & Co. London, 1906, p. vii-viii.
- 6. Bakshi. S. R., Madan Mohan Malaviya, The Man and His Ideology, Anmol Publications, New Delhi, 1991, p. 22.
- Annual Proceedings of United Provinces Legislative Council, Apr. 7, 1908, p. 61
- 8. Annual Proceedings of United Provinces Legislative Council, Apr. 7, 1908, p. 61
- Annual Proceedings of United Provinces Legislative Council, March30, 1907, p. 53 also Proceedings of Imperial Legislative Council, Vol. LII, Feb. 27, 1914, p. 603-604
- 10. Report of Indian Irrigation Commission, p. 268
- Annual Proceedings of United Provinces Legislative Council, March 30, 1907, p. 60
- 12. Bakshi S.R., Madan Mohan Malaviya, The Man and His Ideology, Anmol Publications, New Delhi, 1991, p. 245
- Proceedings of Imperial Legislative Council, Vol. LVI, Part II, March 8, 1918, p. 832-833 and Legislative Assembly Debates, Vol. V, Part II, Feb. 23, 1925, p. 1392
- Legislative Assembly Debates, Vol. IV, Part II, March 6, 1924, p.1244, also Legislative Assembly Debates, Vol. IV, Part I, Feb. 7, 1924, p.310
- 15. Legislative Assembly Debates, Vol. II, March 7, 1927, p. 1772-80
- 16. Sitaramayya op. cit. Karachi Congress Resolution, p. 464

# ''प्रज्ञा'': नियम एवं निर्देश

- 1. "प्रज्ञा", जहाँ तक संभव होगा, वर्ष में दो प्रकाशित होगी : प्रथम अंक सन्नारम्भ के अवसर पर और दूसरा अंक मालवीय जयंती के अवसर पर।
- 2. "प्रज्ञा" पत्रिका में प्रकाशनार्थ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शोध छात्रों एवं अध्यापकों के लेख/शोध प्रपत्र सम्पादक "प्रज्ञा" के कार्यालय में प्रथम अंक के लिए 30 नवम्बर तथा द्वितीय अंक के लिए 30 अप्रैल तक पहुँच जाने चाहिए। शोध छात्रों के लेख/शोध प्रपत्र अपने निर्देशक एवं विभागाध्यक्ष से संस्तुत एवं अग्रसारित होने चाहिए।
- 3. "प्रज्ञा" जर्नल में प्रकाशित लेखों/शोध प्रपत्रों के लेखकों को "प्रज्ञा" की दो प्रतियाँ दी जायेगी : प्रथम लेखकीय प्रति और दूसरी प्रतिमुद्रण की 10 प्रतियों के बदले में।
- 4. सभी प्रकार का शुल्क, सम्पादक "प्रज्ञा" काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका, वाराणसी-221005 के नाम भेजें।
- 5. शोध-प्रपत्र/लेख के पाण्डुलिपि निर्माण सम्बन्धी दिशा-निर्देश:
  - (क) संगणक (कम्प्यूटर) पर टंकित शोध प्रपत्र/लेख की एक प्रति सी.डी. के साथ ''प्रज्ञा'' कार्यालय में जमा करना होगा।
  - (ख) पाण्डुलिपि ए-4 आकार के बाण्ड पेपर पर डबल स्पेस में टंकित होना चाहिए। लेख के चारों तरफ 2 सेमी0 की हासिया छोडें।
  - (ग) हिन्दी एवं संस्कृत भाषा में टंकित लेखों के लिए दिशा-निर्देश :

ए.पी.एस.-डी.वी.-प्रियंका रोमन फॉन्ट, शीर्षक-17 प्वाइंट ब्लैक, लेखक का नाम - 13 प्वाइंट इटैलिक ब्लैक, टेक्स्ट - 13 प्वाइंट, फोलियो - 11 प्वाइंट और पाद टिप्पणी 9 प्वाइंट। (घ) अंग्रेजी भाषा में टंकित लेखों शोध प्रपत्रों के लिए दिशा-निर्देश:

> 'टाइम्स न्यू रोमन' फॉन्ट, शीर्षक - 14 प्वाइंट आल कैप्स काला, लेखक का नाम - 11 प्वाइंट सभी कैप्स इटैलिक ब्लैक, टेक्स्ट - 11 प्वाइंट ऊपर नीचे की पाद टिप्पणी और फोलियो - 9 प्वाइंट।

- (ङ) टंकित पृष्ठ संख्या : अधिकतम 10 पृष्ठ।
- 6. लेखक का घोषणा-पत्र:

''प्रज्ञा'' जर्नल में प्रकाशनार्थ प्रेषित ''......'' शीर्षक लेख/ शोध-प्रपत्र का लेखक मैं घोषणा करता हूँ कि—

- (अ) मैं लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है, और साथ ही अपने लेख/शोध प्रपत्र को ''प्रज्ञा'' जर्नल में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ।
- (ब) यह लेख/शोध प्रपत्र मूल रूप से या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छापने के लिए भेजा है। यह मेरी लौकिक कृति है।
- (स) मैं ''प्रज्ञा'' जर्नल के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। ''प्रज्ञा'' में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापी राइट का अधिकार सम्पादक ''प्रज्ञा'' को देता हूँ।

लेखक	का	नाम	एवं	हस्ताक्षर	
दिनांक	एवं	स्थान	Ŧ		

# PRAJÑĀ: RULES AND GUIDELINES

- 1. As far as possible, "**Prajñā**" will be published twice a year: One issue at the time of start of the academic session, the other on the occasion of the Malaviya Jayanti.
- 2. The Teachers/Research Scholars of B.H.U. intending to publish their articles/research papers in the first issue of "Prajñā" are required to submit their manuscripts in the office of "Prajñā" before 30th November. The deadline for the submission of articles/research papers for the second issue shall be 30th April. The research papers/articles of research scholars should be forwarded and recommended by the Supervisor/ Head of the Department concerned.
- 3. The authors contributting their research papers/ articles shall get two copies of "**Prajñā**": The first one would be the author's copy and second will be in lieu of 10 reprints of their articles.
- 4. All donations/subscriptions should be sent to the Editor, "**Prajñā**" B.H.U. Journal, Varanasi-221005.
- 5. Guidelines for preparation of Manuscript of Articles/Research Papers:
  - Article/Research Papers should be Computer typed. Authors are required to submit a C.D. of their manuscripts alongwith the hard copy.
  - b. The manuscript should be typed in doublespace with 2 cm margin on the A-4 size bond paper.
  - c. For the manuscripts in Hindi and Sanskrit, the following instructions be followed:

APS-DV-Priyanka Roman Font, Title-17 Point black, Author's Name-13 point italic

black, Text 13 point, folio 11 point and footnote 9 point.

- d. For the manuscripts in Enlgish, the following instructions be followed:
  - 'Times New Roman' font, Title-14 point All caps black, Author's Name-11 point All caps italic black, Text-11 point upper lower, Footnote and Folio-9 point, Text should be composed on A-4 size in the above font.
- e. The Research papers/articles should not go beyond a maximum of 10 typed pages.
- 6. The declaration of the author for publication of articles in the "Prajñā" journal:

I,	the author of the research paper/article entitled
،،	" declare that:

- a. I take the responsibility of the content and material of my papers as I myself have written it and also have read the manuscript of my paper carefully. Also, I hereby give my consent to publish my paper in the "Prajñā" journal.
- b. This article/research paper is my original work and no part of it's similar version is bublished or has been sent for publication anywhere else.
- c. I authorise the Editorial Board of the "Prajñā" journal to modify and edit the manuscript. I also give my consent to the Editor of "Prajñā" to own the copyright of my research paper/article.

Author's Name a	and signature	 
Date and Place .		 



''प्रज्ञा'' अंक 56, भाग 1, वर्ष 2010-11 ( मानव-मूल्य विशेषांक ) के विमोचन पर लिया गया चित्र दिनांक 05.09.2010 ( शिक्षक दिवस-स्थान : मालवीय भवन )

बाँये से : प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय, सम्पादक 'प्रज्ञा' जर्नल; प्रो. जगमोहन सिंह राजपूत-पूर्व अध्यक्ष, एन.सी.टी.ई. नई दिल्ली; प्रो. धीरेन्द्र पाल सिंह, कुलपति; प्रो. ब्रह्मदेव सिंह, रेक्टर; डॉ. केशव प्रसाद उपाध्याय, कुलसचिव एवं प्रो. आशा राम त्रिपाठी, छात्र अधिष्ठाता।



# विश्वविद्यालय के उद्देश्य

- 1. अखिल जगत् की सर्वसाधारण जनता के एवं मुख्यतः हिन्दुओं के लाभार्थ हिन्दू शास्त्र तथा संस्कृत साहित्य की शिक्षा का प्रसार करना, जिससे प्राचीन भारत की संस्कृति और उसके विचार-रत्नों की रक्षा हो सके, तथा प्राचीन भारत की सभ्यता में जो कुछ महान् तथा गौरवपूर्ण था, उसका निदर्शन हो।
- साधारणतः कला तथा विज्ञान की समस्त शाखाओं में शिक्षा तथा अन्वेषण के कार्य की सर्वतोन्मुखी उन्नति करना।
- 3. भारतीय घरेलू धन्धों की उन्नति और भारत की द्रव्य-सम्पदा के विकास में सहायक आवश्यक व्यावहारिक ज्ञान से युक्त वैज्ञानिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक शिल्प कलादि सम्बन्धी ज्ञान का प्रचार और प्रसार करना।
- 4. धर्म तथा नीति को शिक्षा का आवश्यक अंग मानकर नवयुवकों में सुन्दर चरित्र का गठन करना।

# **OBJECTIVES OF THE UNIVERSITY**

- 1. To promote the study of the Hindu Shastras and of Samskrit literature generally as a means of preserving and popularizing for the benefit of the Hindus in particular and of the world at large in general, the best thought and culture of the Hindus, and all that was good and great in the ancient civilization of India;
- 2. To promote learning and research generally in Arts and Sciences in all branches;
- To advance and diffuse such scientific, technical and professional knowledge, combined with the necessary practical training as is best calculated to help in promoting indigenous industries and in developing the material resources of the country; and
- 4. To promote the building up of character in youth by religion and ethics as an integral part of education.



ISSN: 0554-9884